श्री नर्मदा पुराण
हर हर नर्मदे

॥ माँ श्री नर्मदाजी सदा सहाय ॥

अथ श्री स्कंद पुराण अन्तर्गत रेवाखण्डोक्त

अर्थात्

श्री नर्मदा पुराण

सरल हिन्दी भाषा में

शुद्ध संशोधित संस्करण

प्रकाशक :

पंकज प्रकाशन

७१५, सतघड़ा. मथुरा (उ० प्र०)

प्रथम शुद्ध संस्करण फोन - ४०११३० न्योछावर 25.0

प्रकाशक :
पंकज प्रकाशन,
सतघड़ा, मथुरा फोन : ४०११६० (०५६५)

□

प्रथम शुद्ध संस्करण

□

टीकाकार :
स्व० पं० छिदामीलाल जी शास्त्री
साहित्य विशारद रामायणी व्यास

संशोधक :
वेदमूर्ति आचार्य लड्डूगोपालजी वेदशास्त्री,
मथुरा वासी

□

□

□ विपिन धार्मिक पुस्तक भंडार
सराफा बाजार होशंकाबाद (म. प्र.)

□ श्री नर्मदा पुस्तक भंडार
मैन रोड, होशंगाबाद

□ जयप्रकाश जी पुरोहित
ओमकारेश्वर धाम

□ अरुण बुक डिपो
कमानिया गेट, जबलपुर

□ धार्मिक पुस्तक भंडार
स्कूल रोड, मनेन्द्रगढ़

□ मीतल एण्ड कं.
सतघड़ा, मथुरा

□ गणेश पुस्तक भंडार,
नरसिंहपुर

□ राज पुस्तक भंडार
मन्दिर रोड, अमरकंटक (म. प्र.)

□ रवीन्द्र बुक डिपो
घोड़ा नखास, भोपाल

□ गुरु कृपा जनरल स्टोर
ममलेश्वर रोड, ओमकारेश्वर (म. प्र.)

□ देवेश धार्मिक पुस्तक भंडार
ओमकारेश्वर (म. प्र.)

□ गोपाल पुस्तकालय
ओंकारेश्वर

□ नर्मदा पुस्तक भंडार
सब्जी मंडी गाडर बाड़ा (म. प्र.)

□ भक्ति ज्ञान मंदिर
नरसिंह घाट पुष्कर (राज.)

□ केशव पुस्तकालय
सतघड़ा मथुरा (उ. प्र.)

□ अशोक पुस्तक भण्डार
कमानियाँ गेट, जबलपुर

श्री नर्मदापुराण भाषा विषय अनुक्रमणिका सहित

नर्मदाष्टकम्

सविन्दु सिन्धु सुस्खलत्तरंगभंगरञ्जितं, द्विषत्सुपापजात-जातकारि-वारिसंयुतम् ।
कृतान्त-दूतकालभूत-भीतिहारि वर्मदे, त्वदीयपादपंकजंमजं नमामि देवि नर्मदे ॥१॥

अपने जल विन्दुओं से सिन्धु की उछालती हुई तरंगों में मनोहरता लाने वाले तथा शत्रुओं के भी पाप समूह के विरोधी और कालरूप यमदूतों के भय को हरने वाले, अतएव सब भांति रक्षा करने वाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे जलयुत चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

त्वदम्बु-लीनदीन-मीन-दिव्यसम्प्रदायकं, कलौ मलौघ-भारहारि सर्वतीर्थनायकम् ।
नभस्य-कच्छ-नक्र-चक्रवाक-शर्मदे । त्वदीयपादपंकजं० ॥२॥

तुम्हारे जल में लीन हुए दीन-हीन मीनों को अन्त में स्वर्ग देने वाले औरकलियुग की पापराशि का भार हरने वाल, समस्त तीर्थों में अग्रगण्य अतः मच्छ कच्छ आदि जानवरों तथा चकई चकवा आदि नभचरों को सदैव सुख देने वाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥

महागंभीर - नीरपूर - पापधूत - भूतलं, ध्वनत्-समस्त-पातकारि-दरितापदाचलम् ।
जगल्लयेमहाभये मृकण्डुसूनु-हर्मदे । त्वदीय पादपंकजं० ॥४॥

महान् भयंकर संसार के प्रलयकार में महर्षि मार्कण्डेय को आश्रय प्रदान करने वाली हे नर्मदे ! अत्यन्त गम्भीर नीर के प्रभाव से पृथ्वी तल के पापों को धोने वाले तथा समस्त पातक रूप शत्रुओं को ललकारते हुए विपत्ति रूप पर्वतों को विदीर्ण करने वाले तुम्हारे पादपद्मों को मैं प्रणाम करता हूँ ।

गतं तदैव मे भयं त्वदम्बुवीक्षितं यदा, मृकण्डुसूनु-शौनकासुराररिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धि-जन्मजं भवाब्धिदुःखशर्मदे । त्वदीय पादपंकजं० ॥४॥

सदैव मार्कण्डेय शौनक आदि मुनियों तथा सुरगणों से सेवित जब आपके दिव्य जल का दर्शन किया, तभी संसार में बारम्बार जन्म मरणादि से होने वाले मेरे सभी भय भाग गये । अतएव भव-सिन्धु के दुःखों से बचाने वाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे पाद पद्मों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

अलक्ष-लक्ष-किन्नरमसुरादिपूजितं, सुलभ नीरतीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम् ।
विशिष्टशिष्ट-पिप्पलाद कर्दमादि शर्मदे । त्वदीयं पादपंकजं० ॥५॥

महर्षि वशिष्ठ श्रेष्ठ पिप्पलाद कर्दम आदि प्रजापतियों को सुख देने वाली हे देवि नर्मदे ! अदृश्य लाखों किन्नरों सुरों और नरों से पूजित तथा प्रत्यक्ष तुम्हारे तीर पर बसने वाले लाखों धीर पक्षियों की सुरीली ध्वनि के गुन्जायमान आपके चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

सनत्कुमार-नाचिकेत कश्यपादि-षट्पदे- धृतं स्वकीयमानसेष नारदादिषट्पदैः ।
रवीन्दु-रन्तिदेव-देवराज-कर्म शर्मदे । त्वदीय पादपंकजं० ॥६॥

सूर्य चन्द्र इन्द्र आदि देवताओं को तथा रन्तिदेव नृपति को कर्म का निर्देश कर सुख प्रदान करने वाली हे देवि नर्मदे ! सनत्कुमार नाचिकेत, कश्यप अत्रि तथा नारदादि ऋषि-मुनिगण रूप भ्रमरों द्वारा निज मानसतल में धारण किये गये आपके चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥

अवक्षलक्ष-लक्षपाप-लक्ष-सार-सायुधं, ततस्तु जीव-जन्तुतन्तु-भुक्तिमुक्तिदायकम् ।
विरञ्चि-विष्णु-शंकर-स्वकीयधाम वर्मदे । त्वदीयपाद पंकजं० ॥७॥

ब्रह्मा विष्णु और महेश को निज-निज पद या अपनी निजी शक्ति देने वाली हे देवि नर्मदे ! अगणित दृष्य-अदृष्य लाखों पापों का लक्ष भेद करने में अमोघ शस्त्र के समान और तुम्हारे तट पर बसने वाली छोटी-बड़ी सभी जीव परम्परा को भोग और मोक्ष देने वाले तुम्हारे पाद-पंकजों को मैं प्रमाण करता हूँ ॥७॥

अहोऽमतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजातटे, किरात-सूत वाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्त पाप-ताप-हारि-सर्वजन्तु-शर्मदे । त्वदीयपाद पंकजं० ॥८॥

हम लोगों ने शिवजी की जटाओं से प्रकट हुई रेवा के किनारे भील भाट ब्राह्मण विद्वान् और धूर्त नटों के बीच घोर पाप ताप हरने वाली अहह ! अमृत मय यशोगान सुना, अतः प्राणीमात्र को सुख देने वाली हे देवि नर्मदे ! तुम्हारे चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

इदन्तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव यदा पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा ।
सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधाम गौरवं पुनर्भवा नरान वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥९॥

निसन्देह जो मनुष्य इस नर्मदाष्टाक का तीनों समय सदैव पाठ करते हैं, वे कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होते अर्थात् पुनर्जन्म से रहित हुए रौख नरक नहीं देखते । किन्तु अन्य प्राणियों को दुर्लभ देह भी उन्हें सुलभ होकर शिवलोक का गौरव प्रदान होता है ॥९॥

श्री नर्मदा पूजन

पवित्री-- ॐ अपवित्रः पवित्रो सर्वावस्थां गतोपिवा । यः स्मरैत पुण्डरीकाक्षं स ह्याभ्यंतरः शुचिः ।१।

श्री गणेश-- ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ।२।

श्री नर्मदा-- अभिनवबिषवल्लीं शंकरा सुता मर्दन मथनमौले मालती पुष्पमाला ।३।

जयति अयपताका काम्यसौमोक्ष लक्ष्याः भक्ति रुपायो हृदये वसंन्तेमां नर्मदा ।४।

आवाहनं-- सर्वलोकस्य मात देवी मकरवाहिनी । आवाहयामि त्वं नर्मदा नमस्ते शंकर सुतां ।५।

आसनं-- शंकर महामाये त्रैलोक्येषु सुपूजिते । मकरे दिव्यमासनं प्रतिगृहयताम् ।६।

पाद्यं- सर्वाणि तीर्थ सम्भूतं गन्धपुष्पादिभिर्युताम् । पाद्यं ददाम्यहं देवि गृहाणाशु नमोनर्मदे ।७।

अर्घ्य-- अष्टगंध समायुक्तं दूर्वापुष्पदिभिर्यु तमम् । अर्घ्यं गृहाणमद्दत्तं नर्मदे परमेश्वरीम् ।८।

आचमनं-- सर्वलोकस्य या शक्ति शिवा नमस्ते । ददाम्याचमनं तस्यै प्रसीदमेतु मकरेश्वरी ।९।

स्नानं-- सर्वतीर्थाणि आनीयात हेमाम्भोरुहवासिसनैः । स्नानं कुरुत्वं देवेशिः नर्मदेः सुगन्धिभिः ।१०।

पन्चामृतं-- पन्चामृत मयायुक्तं तीर्थानां सलिलं शुभम । गृहाणं मां नर्मदे स्नानार्थं भक्तवत्सले ।११।

शुद्धोदकं-- तोयं तव महादेवि कर्पूरागरुवासितम् । तीर्थेभ्यं सुसमानीतं स्नानार्थं प्रति गृहयताम् मां नर्मदे ।१२।

वस्त्रं-- दिब्याम्बरं नूतनंहि क्षोमत्वति मनोहरम् । दीयमान मयादधि गृहाणे मां नर्मदे ।१३।

हरिद्रादूर्वा-- मंगला हरिद्रा दूर्वाग्रहणं ते परमेश्वरी । यजमानस्य दुधः समर्प्य सुमंगला नर्मदेश्वरी ।१४।

मधु-- कापिलं दधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् । स्वर्णपात्र स्थितं चापि मधुपर्क गृहाण मां नर्मदे ।१५।

आभूषणं-- स्भाव सुन्दरागाभै नानादेवाश्रये शुभे । भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि रुचिते मां नर्मदे ।१६।

गन्धं-- श्रीखण्डागरु कर्पूर मृगनाभ समन्वितम् । विलेपनंदेवि तुभ्यदास्यामि भक्तितः सदां नर्मदा ।१७।

विल्वपत्रं-- त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिजन्म पाप नाशनम् । शिवप्रिये देवी नर्मदे समर्पणम् ।१८।

कुंकुमं-- कंकुमं कामदं दिव्यं कुंकुमं कामरूपिणम् । अखण्ड काम सौभाग्यं कुंकुमं प्रतिगृह्यताम् ।१९।

अक्षतं-- अक्षतान्निर्मितान् क्लान मुक्तामणि समन्वितान् । गृहाणाशु महादेविदेहि में निर्मलांधियम् ।२०।

पुष्प-- कंजपारिजाताद्याः पाटौ केतकी तथा । मरुवामोंगरं चैव गृहाणायु मां नर्मदे श्वरी ।२१।

पुष्पमालां-- पद्म शंख जपापुष्पेः शतपत्रविचित्रताम् । पुष्पमालां प्रयच्छामि गृहाणत्वं नर्मदेश्वरी ।२२।

सुगन्धितं-- स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकेश्वरी दयानिधे । सर्वलोकस्य जननी ददामि स्नेह पूरितम् ।२३।

धूपं-- बनस्पतिरसोद् भूतंगंधाढ़्यो गन्ध उत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धुपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।२४।

दीपकं-- साज्यं च वर्तिसंयुक्तं नह्मिनायोर्जितंमया । तमोनाश करं दीपं गृहाण नर्मदेश्वरी ।२५।

नैवेद्य-- नैवेद्य गृहयतांदेवि दुग्ध खीर भोज्य समन्वितम । षडमेरन्ति दिब्यं मकरेश्वरी नमोस्तुते ।२६।

ऋतुफल-- फलेन फलितंसर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । तस्मात् फ़ल प्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।२७।

आचमनीयं-- शीतलं निर्मलंतोयं कर्पूरेण सुवासितम । आचम्यता देवि प्रसीद त्वां देवेश्वरि ।२८।

चरणामृतं-- अकाल मृत्यु शमनं सर्वदुखः विनाशनम् । सर्वव्यापी शमनं नर्मदा देवी चरणामृतम ।२९।

ताम्बूल-- एलालवंग कर्पूर नागपत्रादिभिर्युतम् । पूगीफलेन संयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।३०।

श्री गणेशाय नमः

श्रीमन्महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासविरचित स्कंदमहापुराणान्तर्गत

श्री नर्मदा पुराण हिन्दी भाषा में

श्लोक-- नर्मदा पूजिता तन भगवान महेश्वरः ।
वाचके पूजिते तद्वद् देवाश्च ऋषयोऽचिताः ॥

प्रथम अध्याय

देवी श्री नर्मदा का स्वरूप वर्णन

श्री कार्तिकेय जी ने मार्कण्डेयजी से कहा कि हे मार्कण्डेय अब हम नर्मदा का जल जिसमें माँ साक्षात् विराजती है उन माँ का चरित्र संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं । जो इस धरा पर देव-दानव-मानव को दुर्लभ थी । जो माँ का कहना है कि वह इस देव भूमि के मानवों को सुलभ होगी हां तो आज के प्रसंग में मार्कण्डेय जी ने कहा कि नर्मदा का प्रादुर्भाव इस वसुन्धरा पर हर जीव के उद्धार हेतु हुआ है जो जिस कामना को लेकर आते हैं वही उन्हें मिल जाता है इस स्वरूप को चर अचर जीवों के उद्धार हेतु वरदानी बनी । जब माँ नर्वदा में स्नान करते हुये गजों के गण्डस्थल से गिरे हुए मद से जो मदिरा के समान गंध से उत्तम स्नान क्रीड़ा द्वारा देवांगनाओं के स्नान से देह गंध केसर की सुगंध युक्त सुबह शाम मुनि गणों द्वारा पुष्पों वा दीपों से समर्पित विटपवृन्द की गज सूड़ जैसी नवन तरंगों की लहर नर्मदा के जल से सबकी रक्षा करो ॥१॥ मार्कण्डेय जी बोले कि सिद्धि गंधर्वों से सेवित यक्ष वा विद्याधरों से व्याप्त अनेक प्रकार के देव गणों से युक्त रमणीक हिमालय के शिखर में ब्रह्मा, विष्णु सब देवताओं सहित स्वामी कार्तिकेय नन्दी गणेश

वा नौ ग्रहों सहित चन्द्रमा सूर्य नक्षत्र ध्रुव मंडल के सभी देवता नर्मदा को नमस्कार कर प्रार्थना कर रहे हैं ॥२॥ वरुण कुबेर यम इन्द्र गन्धर्वो के सहित सभी गण दर्शन कर प्रणाम करते भये साथ में ब्रह्मा आदि मातृगण और तपो मूर्ति ऋषि मुनि चन्द्र वा भृंगी आदि पहुँचे ॥३॥ दानव असुर दैत्य पिशाच भूत राक्षस ये सब लोग करोड़ों सूर्य के प्रकाशरूपी तेज को देख माँ को प्रणाम करने लगे ॥४॥ नर्मदा तट पर लगे कदम्ब फूल वृक्षों से सुन्दर दीखता अभीष्ट फलदायक पनडुब्बी के झुन्ड के झुन्ड शोभा बढ़ा रहे हैं ॥५॥ सिद्ध योगी तीन लोकों में पवित्र नर्मदा का यश गान श्री महादेव वा पार्वती सहित अपने पुत्र कार्तिकेय से बोली की हमें उस मृत्यु लोक में जो गंगा यमुना सरस्वती काबेरी वा पूज्य नदी नदों का जो वर्णन है सो कहो ॥६॥

सवैया-- *तारक नाम जहाज बनो गंगा से अलोकिक शोध कहाँ ।*
बड़ भाग जो पायो कीर्तिन जहाँ दर्शन सों फल होत तहाँ ।
फल चाहों मिले मन का उद्धार हो माँ की सेवा यहाँ ।
भव पार की बल्ली बनी तन की कलिकाल में "भानू" उबारे यहाँ ।

सबैया-- *गंग तरंग अनंग बिदारन बैद समान सो मंत्र बखाने ।*
नाग लपेट हला हल कंठ गज चरम लपेट भभूत रमाने ॥
पूछे लला . ललना बतलाओ भूतल प्राण गये भटकाने ।
हाल कहों धरणीं पे गिरी जो "भानू" के पाप नसाने मिटाने ॥

उस नर्मदा का वर्णन करो तब कार्तिकेय जी ने अपने पिता महादेवजी की स्तुती की और कहा की आप तीन लोकों का प्रलय व पिनाक के धारण करने वा मुन्ड माला पहने जगत् के पिता वैद्य स्वरूप पार्वती के सहित अर्ध नारीश्वर जिनका नाम जगत् में जगत् के हरेक जीवों में बास है हे पिता मेरा आपको बारम्बार नमस्कार हो ॥७॥ श्री शौनक जी ने श्री सूत जी महाराज से पूछा सब पूजित धर्म की निपुणता आप में मानता हूँ पवित्र अमृत मयी कथा के वक्ता आप हैं आपही व्यास जी के शिष्य हैं जिनने १८ पुराण का व्यास अर्थात् विस्तार करके रचना की ॥८॥ आप से धर्म और तीर्थ का आश्रय मैं सुनना चाहता हूँ तीर्थ बहुत हैं उन्हें हमने देखा हैं ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाली दिब्य नदी सरस्वती तथा विष्णु भगवान की पवित्र नदियाँ गंगा भी सुनी

किन्तु भगवान शंकर की तीसरी नदी कभी भी नहीं सुनी ।।९।। इसलिये हे महावाहो देव परिणित देववृन्द से अभिवंदित तीर्थ समुदाय से परिष्कृत वह आप मुझको कहें ।।१०।। नर्मदा किस देश में आश्रित है श्री भगवान शंकर से कैसे उत्पन्न हुई, उनके पास जो जो तीर्थ हैं उनका विस्तार से वर्णन करें ।।११।। सूत जी बोले हे कुलपति अति सुन्दर प्रश्न आपने किया तब शौनक जी ने नर्मदा चरित्र जो पवित्र कलिकुलश नाशक कहा वा सुना जाता है जो व्यास के अठारह पुराणों के अन्तर्गत है ।।१२।। जो व्यास द्वारा अठारह पुराण अठारह उपपुराण वेद उपवेद आयुर्वेद धनुर्वेद, गंधर्व तथा अर्थशास्त्र और वेदांग शिक्षा कल्प निरुक्त व्याकरण छन्द और ज्योतिष आदि विभाग जिनने किये वे अठारह पुराणों के वक्ता श्री व्यास जी महाराज हैं ।।१३।। यथावत् अठारह पुराणों का वर्णन करता हूँ । जिनके वर्णन से धर्म आयु की वृद्धि होती है ऋग्वेद और स्मृति धर्मशास्त्र ब्राह्मणों के नेत्र हैं इनमें ये एक से हीन काना दो से हीन अन्धा कहा जाता है ।।१४/१५।। वेद धर्मशास्त्र और विद्वानों के तीन नेत्र है, जो इन तीनों नेत्रों से निहारता हैं निःसन्देह वह महेश्वर का अंश है ।।१६।। ईस्वर ने आत्मज्ञान रूप वेदविद्या और सूत-शौनक-संवाद-प्रधान पुराण तथा धर्मशास्त्र विद्या स्वयं रची । समस्त शास्त्रों से अर्थ निश्चय में यही तीन विद्याये मुख्य है । इनमें पुराण पंचम वेद है । यह ब्रह्माजी का आदेश हैं ।।१७/१८।। यहाँ जिनसे पुराण को नहीं जाना उसने कुछ नहीं जाना, भला ! बताइये वह कौन धर्म है ? वैसा क्या ज्ञान है ? अथवा अन्य भी यहाँ क्या है जो पुराणों में नहीं मिलता देखा जाता । पुराण में वेद प्रथम ही स्थित हैं, वेदों का आधार लेकर ही पुराण रचे गये इसमें सन्देह नहीं ।।१९/२०।। अल्पशास्त्र श्रवण किये हुए मनुष्य से वेद "अल्पज्ञ मेरा विनाश कर देगा, मुझ पर प्रहार करेगा" ऐसा जानकर भयभीत होता है ।।२१।। इतिहास पुराणों से पहले यह ही निश्चय किया गया है । वेदों की आत्मा पुराण, शिक्षा, कल्प, आदि उसके छः अंग है । जो वेदों में ज्ञान वर्णित है स्मृतियों के द्वारा भी वही वर्णित हैं वेद और स्मृति में जो ज्ञान बतलाया

है वह पुराणों में कहा गया है । ब्रह्मा के समस्त शास्त्रों में पुराण को प्रथम स्थान मिला ।।२२/२३।। पश्चात् ब्रह्मा के मुख से वेद निकले । हे मुनिवर ! इस कल्प में पुराण एक ही था ।।२४।। देवश्रेष्ठ ब्रह्मा ने धर्म अर्थ काम के साधन पुण्यप्रद सौ करोड़ विस्तार से विस्तृत इस पुराण का चिन्तन कर उसे मुनियों से कहा ।।२५।। उनसे पुराणों एवं सर्व शास्त्रों का प्रचार हुआ । समय के प्रभाव से पुराण के प्रचार को मन्द देखकर भगवान स्वयं व्यास मुनि का रूप लेकर पुराण का विस्तार तथा प्रचार करते है । पुनः युग-युग में उसे संकुचित कर लेते है । सदा वह व्यास आठ लाख वर्षो से परिमित प्रति द्वापर में इस लोक में अठारह भेद से उसे विभक्त कर कहते हैं ।।२६/२७।। आज भी सौ करोड़ श्लोकों से विस्तृत वह पुराण देवलोक में हैं । पर यहाँ पर वह पुराण-विद्या चार लाख में ही सन्निविष्ट की गयी हैं । इस समय वह पुराण-विद्या अठारह पुराणों के रूप में कथित है । ऋषिश्रेष्ठ शौनक ! मैं उनका लक्षण तथा नाम से उन्हें बताता हूँ आप सुने ।।२८।। सर्ग अर्थात् कारण सृष्टि (१) प्रतिसर्ग अर्थात् कार्य सृष्टि का विस्तार या लय और पुनः सृष्टि (२) सृष्टि के पूर्व की वंशावली-राजाओं की वंश परम्परा का वर्णन (३) धन्वन्तर अर्थात् किस-किस मनुकी स्थिति किस-किस समय तक थी तथा उस समय की मुख्य-घटनाएँ (४) और वंशानुचरित सूर्य तथा चन्द्रवंश में उत्पन्न योग्य राजाओं के चरित्र का वर्णन (५) यही पुराण के पाँच विषय है । अतः पुराण इन्हीं पाँच लक्षणों से सम्पन्न है ।।२९/३०।। अब नामों से उसका परिचय सुने- (१) ब्रह्मपुराण--जो संहिता ग्रंथ हैं नाना पुण्य कथाओं से युक्त दस हजार श्लोकों में विभक्त है (२) पचपन हजार श्लोकों से युक्त पद्मपुराण (३) तेईस हजार श्लोकों वाला विष्णुपुराण (४) वायुदेवता से कहा हुआ वायुपुराण है और शिवभक्ति के योग से इसका दूसरा नाम शिवपुराण भी है । हे शौनक ! वह चौबीस हजार श्लोकों में निबद्ध है (५) चार पर्वों में विभक्त चौदह हजार पाँच सौ श्लोकों वाला भविष्यपुराण है । (६) नौ हजार मंत्रों से युक्त मार्कण्डेय पुराण कहा गया है । (७) सोलह हजार श्लोकों में अग्निपुराण (८) पच्चीस

हजार श्लोकों में नारदपुराण । (९) दो भागों से युक्त श्रीमद्भागवतपुराण अठारह हजार श्लोकों में वर्णित हुआ है । (१०) दस हजार श्लोकों वाला ब्रह्मवैवर्तपुराण कहा गया है । (११) ग्यारह हजार श्लोकों की संख्या से युक्त लिंगपुराण जानना चाहिए । हे ऋषिश्रेष्ठ ! वह दो भागों में विरचित हैं (१२) चौबीस हजार श्लोकों वाला वाराह पुराण विद्वान् जानते है । (१३) भाग्य वानो में श्रेष्ठमुनि ! सात खण्डों में विभक्त इक्यासी हजार श्लोक संख्या युक्त स्कन्द पुराण का निरूपण हुआ है । (१४) हे कुलपते ! दस हजार श्लोकों में बामनपुराण है (१५) हे ज्ञानपति ! कलियुग में सत्रह हजार श्लोकों वाला दो भागो से विभूषित कूर्म पुराण प्रसिद्ध है । (१६) वक्ताओं में श्रेष्ठ ! मत्स्यअवतार द्वारा मनु के लिए कहा गया चौदह हजार श्लोकों वाला मत्स्यपुराण बनाया गया है । (१७) दो भागों में विभूषित बारह हजार श्लोकों से युक्त ब्रह्माण्डपुराण वर्णित हुआ है । ये अठारह महापुराण कहे जाते हैं ।।३१/४५।। इसी प्रकार ब्रह्मा के द्वारा अठारह उपपुराण भी कहे गये है वे क्रमशः १--ब्रह्मपुराण का उपपुराण दो संहिता वाला पवित्र सदाशिव का आश्रय उत्तम उपपुराण सुलभ हुआ है । उसकी प्रथम संहिता सनत्कुमार से दूसरी सूर्य से भाषित हुई । हे महामुनि ! वह पुराण सनत्कुमार नाम से विख्यात है । २--पद्मपुराण से सम्बन्ध रखने वाला नरसिंह उपपुराण है । ३--विष्णुपुराण से समस्त शुकगणों द्वारा कहा गया शौकेयपुराण है । ४--वायुपुराण का उपपुराण बार्हस्पत्यपुराण हैं । ५--श्रीमद्भागवत में स्मरण किया गया दौर्वासस उपपुराण है । ६--भविष्य पुराण से सम्बन्धित नारद द्वारा कहा गया नारद उपपुराण का कथन विद्वानों ने पूर्व में किया हैं । वृहन्नारदीय और नारदीय भेद से दो पुराण प्रसिद्ध हैं । ७-कापिल ८--मानव ९--शुक्राचार्य से कहा गया औशनस उपपुराण है । १०--ब्रह्माण्ड ११--वरुण १२--कालिका उप पुराण दो रूपों में वर्णित है । १३-महेश्वर १४--साम्ब १५--सब प्रकार के अर्थो का संग्रह करने वाला सूर्य उपपुराण हैं । १६--पाराशर १७--देवी भागवत तथा १८--कूर्मपुराण है । उक्त अठारह उपपुराण यथा क्रम हमने कहे

हैं ॥४६/५०॥ (ब्रह्माण्ड तथा कूर्म महापुराण भी कहे और यहाँ उपपुराण, अतः ब्रह्माण्ड पुराण भी दूसरा कोई सम्बन्ध है जिसमें अध्यात्मरामायण भी तदन्तर्गत मानी जाती है । कूर्मपुराण भी उक्त समाधान की दिशा से सम्भव हैं । वास्तव में सूतसंहिता श्रीमद्भागवत एवं नारदीयपुराण आदि की विषय सूची लेकर पुराण संख्या अर्थात् श्लोकों की न्यूनाधिकता तथा दो स्कन्द, खण्ड और संहिता भेद से एवं दो शिवपुराण आदि प्रसिद्ध होने से विद्वानों के लिए सर्वथा अनुसन्धेय है) । जो इस पुराणसंहिता का पाठ और श्रवण करता है । वह अनन्त पुण्य का भागी होकर अन्त में ब्रह्मलोक प्राप्त करता है ॥१-५३॥ इस प्रकार पुराणसंहिता वर्णन नाम का प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

द्वितीय अध्याय

नर्मदा महात्म्य वर्णन

सूत उवाच-- नर्मदायास्तु माहात्म्यं कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥१॥

सूत जी बोले--महर्षि व्यास ने नर्मदाजी का जो माहात्म्य वर्णन किया था और हे शौनकजी जो तुमने पूछा है वही मैं तुमसे कहूँगा ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ ! नर्मदा के तीर्थों का विस्तार ब्रह्मा और शिव को छोड़कर अन्य कौन वर्णन करने में समर्थ हैं ? ॥२॥ यही प्रश्न प्रथम परीक्षित पुत्र राजा जनमेजय ने व्यास-शिष्य वैशम्पायन से पूछा था । हे शौनक ! रेवा तीर्थ से सम्बन्ध रखने वाला पुण्य वृत्त आपके लिए वर्णन करता हूँ । पूर्वकाल में परीक्षित यज्ञ दीक्षा में दीक्षित हुए ॥३/४॥ तबयज्ञ कर्मों के आरम्भ होने पर, हविष्यादि द्रव्य संचित किये जाने पर तथा ब्राह्मणों के समासीन हो जाने पर अग्नि का आवाहन किये जाने पर, तथा सर्वत्र धर्म कथाओं की प्रवृत्ति होनेपर, अहर्निश यज्ञ भूमि में जनों द्वारा हे कुलपति ! लीजिए, भोग लगाइये इत्यादि शब्द सुने जाने पर, और विनोदियों द्वारा विनोद परिहास करते हुए

स्वर्गीय सभा के समान इस प्रकार यश के आरम्भ होने पर, सुख पूर्वक बैठे हुए वैशम्पायनजी से जनमेजय ने पूछा ।।५/८।। जनमेजय ने कहा है वैशम्पायन ! भगवान् व्यास की कृपा से आप सब कुछ जानते हो ऐसा मैं मानता हूँ, इसलिए ऋषियों के समीप मैं आपसे पूछता हूँ, हमारे पूर्वजों का पूर्व आचरित तीर्थ-सेवन आदि सब मेरे लिए कहो । मैंने सुना है वे दीर्घकाल तक अनेक प्रकार के क्लेशों का अनुभवं किये थे ।।९/१०।। मेरे पूर्व पितामह पाण्डव जुए में क्यों हारे ? फिर तीर्थ के लोभ से हे विप्र ! वे समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर घूमते रहे । हे तात ! किसके साथ अनेक भूभागों पर विचरे वह सब कहें, मैं आपको सर्वज्ञ मानता हूँ ।।११/१२।। वैशम्पायन बोले, भूस्वामिन् ! जो आपने पूछा, हे अनघ ! महर्षि वेदव्यास और त्रिलोचन भगवान् शंकर को नमस्कार करके मैं वर्णन करूँगा । तुम्हारे पितामह पांडव द्रौपदी के साथ उत्तम काम्यक वन में ब्राह्मणों सहित निवास करके विन्ध्याचल की ओर गये ।।१३/१४।। राजेन्द्र ! वहाँ धौम्य के शिष्य उद्दालक के अग्रगण्य होने पर महामति कश्यप तथा उनके पुत्र विभाण्डक महामुनि एवं गुरुजन पुलस्त्य लोमश जैसे और भी पुत्र पौत्रादि सहित वे सब समस्त तीर्थों में स्नान करते हुए पहुँचे ।।१५/१६।। वे वहाँ पवित्र आश्रमों का दर्शन करके सुन्दर विपिन की मनोरम छटा का अवलोकन करते हुए विन्ध्याचल के वन में प्रविष्ट हुए, जो कि चम्पा, कनेर, नागकेशर, पुन्नां-सुल्ताना चम्पा मौरश्री, कचनार, अनार, पुष्पित, धवल-कहू, विल्व, गुलाब, केतकी, कदम्ब, आम, महुआ, नीम, नीबू, तेन्दू, नारियल, कैथा, खजूर, कटहल आदि--नाना प्रकार के वृक्षों एवं गुल्मलताओं से युक्त पुष्प फल से परिपूरित कुबेर के उद्यान चैत्ररथ के समान था ।।१७/२०।। वह अनेक सुन्दर जलाशयों से पूर्ण था, कुमुदनी खंड से मंडित और नील, पीत, श्वेत, लाल कमलों से आच्छादित एवं हंस, कारण्डव, चकवा, चकवी, आड़ी, काक, बगुलों की पंक्ति एवं कोकिल आदि से सुशोभित था ।।२१/२२।। तथा सिंह, बाघ, शूकर, हाथी,

विशालकाय वन भैंसे, सुरभी, सारंग, भालू आदि जानवरों से युक्त था ।।२३/२४।। कोल, मयूर एवं नाना प्रकार के पक्षियों से सुशोभित हो रहा था । दुःख और शोक से रहित वन था ।।२५/२६।। जहाँ सिंहनी का दूध स्नेह सहित हिरण पान करते थे, विलाव और मूसक एक दूसरे के मुख चाटते थे । सिंहों के साथ हाथियों के बच्चे और मोरों के साथ सर्प क्रीड़ा करते थे, ऐसे सुन्दर वन में पांडवों ने प्रवेश किया ।।२७/२८।। वहाँ तरुण भुवन भास्कर के समान महर्षि मार्कंडेय का दर्शन उन्होंने किया । वे नाना शस्त्रों में निपुण कुलीन सत्वगुण-सम्पन्न पवित्र आचार से युक्त, बुद्धिमान, क्षमाशील, त्रिकाल, सन्ध्या जप परायण, वेदत्रयी निहित मन्त्रों द्वारा होम आदि में तत्पर ऋषियों से सुशोभित थे ।।२९/३०।। वहाँ कोई पञ्चाग्नि तपते, तो कोई एकान्त में स्थिर रहते थे, कुछ हाथों को ऊपर किए सूर्य की उपासना में रत थे, कुछ सायं प्रातः भोजन करने वाले, कोई एकादशी, कोई बारह दिन में, कोई पल में, कोई अमावस्या के दिन ही भोजन करते थे ।।३१/३३।। कोई जल की काई खाकर ही रहते थे, कोई खली खाकर, तो कोई पत्ते चबाकर, कोई नियत आहार करने वाले, केवल वायु और जल ही आहार रूप में ग्रहण करते थे । इस प्रकार वृद्ध मुनियों से वे सेवित थे । तब धर्मराज युधिष्ठिर उस आश्रम में प्रविष्ट होकर परमपद के ध्यान में स्थिर हुए ।।३४/३५।। उन शान्त मुनिवर का दर्शन कर प्रदक्षिणा क्रम से वह सहसा दण्डवत् भूमिपर सामने गिर पड़े । श्रद्धानत हुए युधिष्ठिर को देखकर दृष्टि सुस्थिर करके बुद्धिमान मुनि ने पूछा--आप कौन हैं ? उनका वह वचन सुनकर समीप में खड़े हुए बालक ने कहा--यह धर्मराज हैं, आपके दर्शन के लिए उपस्थित हुए हैं ।।३६/३८।। बालक से उत्तर सुनकर आदर पूर्वक आगे बढ़कर मुनि ने कहा--हे वत्स, आइये, आइये, उनको स्नेह से सूंघकर आसन पर समीप में बैठाया ।।३९।। सभी के बैठने पर यथाविधि वन्ना अन्न, फल, कन्दमूल, फूल और अनेक रसों से ब्राह्मणों के सहित पांडवों

का यथायोग्य सत्कार किया । दो घड़ी विश्राम करके धर्मराज युधिष्ठिर उत्कण्ठापूर्वक मुनि से पूछने लगे । हे भगवन् ! सम्पूर्ण लोकों में आपको मैं दीर्घायु मानता हूँ ।।४०/४२।। हे अनघ ! सात कल्पों का वृत्तान्त समग्र आप मुझसे कहें । सृष्टि के क्षीण हो जाने पर भी अर्थात् स्थावर जंगम लोक का प्रलय हो जाने पर हे विप्रेन्द्र ! आप क्यों और किस हेतु नष्ट नहीं हुए । हे मुनि ! गंगा आदि समुद्र में मिलने वाली जो सरितायें थीं उनमें किनका प्रलय हुआ और कौन शेष रही कौन पवित्र जल वाली नित्य सरिता है जिसका क्षय न हुआ हो ? तात ! प्रसन्न मन से यह सब मुझसे कहें । ऋषियों सहित सभी बन्धु-बान्धवों के साथ सुनने की मैं इच्छा रखता हूँ ।।४३/४६।। श्री मार्कण्डेय बोले--साधु-साधु महा बुद्धिमान धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! जो तुम पूँछते हो, हे निष्पाप ! यथायोग्य वह मैं कहूँगा । समस्त पापों को हरने वाला भगवान शिव से वर्णित पवित्र पुराण को जो भक्तिपूर्वक श्रवण करता है उनका पुण्यफल सुनो । हजारों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों बाजपेय यज्ञों से भी हे राजन् ! वह फल प्राप्त नहीं होता इसमें सन्देह नहीं ।।४७/४९।। ब्रह्मघाती मदिरा पीने वाला चोर कसाई गोघाती भी शिवजी के वचन सुनकर सर्वपापों से कैसे मुक्त होता है सो सुनो ।।५०।। सरिताओं में गंगा जी श्रेष्ठ है और सरस्वती भी, तथा काबेरी, देविका, सिन्धु, सालकुटी तथा सरयू, शतरुद्रा, मही चम्बल, गोदावरी, यमुना, पयोष्णी ताप्ती, सतलज पवित्र देव नदियाँ हैं । इनके अतिरिक्त और भी पाप हरने वाली नदियाँ कही जाती हैं ।।५१/५३।। किन्तु हे नृप श्रेष्ठ ! जो तुमने प्रश्न किया है वह कहता हूँ । प्रत्येक कल्प में सभी सरितायें क्या समुद्र भी क्षीण हो जाते हैं, किन्तु सप्तकल्प क्षीण होने पर भी 'न मृता' इससे जिसे नर्मदा कहा जाता है, राजेन्द्र ! नदियों में सर्वोत्तम यह एक ही नर्मदा सदा विद्यमान रहती है ।।५४/५५।। हे महाभाग ! मुनिवृन्द वन्दनीय जलपूर्ण गंगा आदि अन्य सभी नदियाँ क्षीण हुई किन्तु प्रथम कल्प में देवी नर्मदा को मैंने विद्यमान देखा । हे अनघ !

इसी से मैं तुम्हारे लिए उसका वर्णन करता हूँ । हे राजेन्द्र ! तीनों लोकों में आश्चर्य-मयी यह विख्यात है ।।५६/५८।। यह नर्मदा माहात्म्य का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।। इति द्वितीय अध्यायः ।।

तृतीय अध्याय

मार्कण्डेयकृतपोतार्धारोहण वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- *सप्तकल्पक्षया घोरास्त्वया दृष्टा महामुने !*
न चापीहास्त भगवन्दीर्घायुरिह कश्चन ।।

युधिष्ठर बोले--हे महामुनि ! आपने घोर सात प्रलय देखे, और हे भगवन् ! वहाँ दूसरा कोई दीर्घायु भी आपसे भिन्न नहीं दीखता । आपने प्रलयकाल में एकीभूत हुए समुद्र में दैत्य-दलन, अनन्त-चरण, अनन्त नेत्र, अनन्त उदर वाले भगवान पद्मनाभ को सोते हुए देखा । चराचर के जल जाने पर भी उन्हीं के अनुग्रह से या उन महात्माके वरदान के कारण तुम नष्ट नहीं हुए । निष्पाप ! भ्रमण करते हुए आपने उस समय क्या आश्चर्यमय दृश्य देखा मेरे मन में जानने की बड़ी उत्कण्ठा है, अतः हे भगवन् ! यह सब आप कहें ।।१/४।। युग का अन्त होने पर और महाप्रलय में सैकड़ों वर्षों तक अनावृष्टि से लोकों के नष्ट हो जाने पर समस्त औषधियों का अत्यन्त नाश होने पर देव-दानवों से हीन तथा यज्ञों के अभाव में तथा कलियुग के प्रभाव से अत्यन्त दोष ग्रस्त एवं निस्तेज हो जाने पर नदी और तालाब तथा पोखरा वन, उपवन सभी के सूख जाने पर उस समय हे ब्रह्मन् ! युग के सर्वथा क्षीण होने पर निराकार स्थिति में जब महालोक के वासी यमलोक चले गये, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि तथा सभी ऋषि-मुनि-महात्मा उस समय दिव्य तेज से युक्त हुए । तब हे महामुनि ! किन प्राणियों की स्थिति रही और कौन नष्ट हो गये, हे महाभाग ! यह सब पृथक-पृथक मुझसे कहें । हे विप्रेन्द्र ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि के भी कार्यकाल की समाप्ति हो जाने

पर अत्यन्तदारुण स्थिति में कौन प्राणी किस प्रकार सिद्धि को प्राप्त हुए ।।५/१०।। बुद्धिमान धर्मराज द्वारा इस प्रकार पूछने पर ऋषियों मुनियों से घिरे हुए मार्कण्डेय ने कहा ।।११।। श्री मार्कण्डेय बोले--हे नरेश्वर ! आप तथा सभी ऋषिगण सुनें । वायु देवता के पूछने पर भगवान शंकर ने जो पुराण कहा, वायु से स्कन्द (कार्त्तिकेय) ने पुरातन पुराण सुना उनसे वशिष्ठ ने, वशिष्ठ से पराशर ने, तथा पराशर से अनेक महर्षियों सहित जातुकर्ण्य से सुना, इस प्रकार सैकड़ों उत्तम द्विजों ने परम्परा से सुनी हुई सौ हजार श्लोकों वाली संहिता जो पहले भगवान शंकर ने कही थी, और सभी शास्त्रों का मंथन करके प्रथम वेदार्थ को जो तत्त्व निरूपित किया ।।१२/१५।। यही युग के प्रभाव से पीछे चार प्रकार से विभक्त की गयीं । मनुष्यों की मन्द बुद्धि के कारण महर्षियों द्वारा यह सब हुआ । पशुपति महेश्वर की आराजना् करके मैंने प्रथम जो पुराण सुना वही आपके लिये विस्तार से कहूंगा । हे महेश्वर ! जिसको सुनकर जीव, कायिक, वाचिक और मानसिक सप्त जन्म में सज्जित हुए सभी पापों से मुक्त हो जाता है । भयंकर सात कल्पों का पाप क्षीण होगा प्रलय मैंने बारम्बार विधि-हरि-हर की कृपा से देखा । बारह सूर्यों के दग्ध होने पर तथा सातों समुद्र के सम्मिलित होते ही भ्रमता हुआ, थका हुआ भी भुजाओं से उस समुद्र में तैरता रहा । तब हे राजन् ! आदित्य के समान तेजस्वी अनादि अनन्त परम रूप को जल में मैंने देखा ।।१६/२०।। तथा दशों दिशाओं में सुमेरु के शिखर को प्रकाशित करते हुए पुत्र-पौत्र से युक्त अन्य दूसरे मनु को भी मैंने देखा । वे भी अन्धकारमय अगाध महासमुद्र में भ्रमते हुए चक्र पर आरूढ़ हुए मुहूर्त भर विश्राम न पाते हुए दिखलाई दिये । भय से उद्विग्न हुआ एवं भुजाओं से समुद्र में तैरता हुआ मैंने मद से युक्त एक महामात्स्य को भी देखा ।।२१/२४।। तदनन्तर मुझे देखकर हे भारत ! वह बोला-- इधर आओ, इन सब में परम प्रदान मत्स्यरूप वह महेश्वर भी थे । हे नरेश्वर ! उस समय मैं शीघ्रता से उसके मुख में प्रविष्ट

होकर अत्यन्त थका हुआ चेतनाशून्य परम विश्रान्ति को प्राप्त हो गया। उस समुद्र के मध्य में विशाल भंवरों से प्राप्त उन उन्नत तरंग वाले जल से तथा फैन समूह से मानो अट्टहास करती हुई स्वेच्छानुसार गमन करने वाली मकर, मीन आदि जलचरों से व्याप्त पवित्र देवनदी को भी देखा। उसके मध्य में इच्छारूपिणी, नीलकमल दल के समान, महान क्षोभ को वहन करने वाली दिव्य-स्वर्ण-वर्ण-मयी विचित्र अंगवती, हेम के समान उज्ज्वल आभायुक्त कन्या को देखा, जो दोनों घुटनों को मोड़कर विशाल जहाज पर बैठी थीं, तब मनु ने उनसे हे दिव्य-अंगवती भगवती ! आप कौन हैं ? यह पूछा ।।२५/३०।। हे सुरसुन्दरी ! आप यहाँ किस कार्य से रह रही हैं, सुरासुर-गण के नष्ट होने पर भी प्रलय के जल में लीला करती हुई घूम रही हो। सरिताओं, सागरों और पर्वतों के अनेक बार नष्ट होने पर भी हे साध्वी ! तुम अकेले कैसे रह रही हो ? इसमें कोई महान कारण है क्या ? हे देवि ! यह सब मैं सुनने की इच्छा करता हूँ आप कहें। वह देवी बोली--महेश्वर के अंग से उत्पन्न हुई अमृता नाम मेरा प्रसिद्ध है, पुण्यशीला, पापहरिणी, सुरसरिता, मुझ देवनदी का आश्रय लेकर तुम्हें भय कैसा ? मैं यह विशाल नौका, हे द्विज ! तुम्हारे लिये लेकर आयी हूँ, जिसमें सदाशिव विराजमान हैं ऐसे इस पोत का क्षय कभी नहीं होता उसके वह वचन सुनकर आश्चर्य से प्रफुल्ल नेत्र मैं, हे राजन् ! मनु के साथ उस पोत पर आरूढ़ हो गया ।।३१/३५।।और अंजली बांधकर एवं सिर से प्रणाम करके उस अभय प्रदान करने वाले व्यापक परमेश्वर की मैंने स्तुति की। सद्योजात महादेव के लिए और वामदेव के लिए नमस्कार है। कल्प-कल्प में प्रकट हुए भयरूप को नमस्कार हैं, भक्ति से जाने गये स्वरूप के लिए नमस्कार है। "भूर्भुवः" के लिए नमस्कार है। रामवन्द्य ज्येष्ठ श्रेष्ठरूप को नमस्कार है। भद्रकाल के लिए नमस्कार हैं। और नमस्कार है उस कालरूप के लिए भी। अचिन्त्य अव्यक्त रूप महादेव के दिव्य तेज को हम जानते हैं। हमारा उस देवाधि-

देवरुद्र के लिए भी बारम्बार नमस्कार है । जगत् की उत्पत्ति विनाश के हेतु को पुनः पुनः नमस्कार है । हे निष्पाप सृष्टि के पूर्व महादेव की मैंने इस प्रकार स्तुति की । प्रसन्न हुए महादेव तब मुझसे बोले--सुव्रत ! वरदान माँगो ।।३६/४१।। इति श्री तीसरा अध्याय समाप्त ।।

चतुर्थ अध्याय

नर्मदा जी के पन्द्रह नाम का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--ततोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरेस्थितम् ।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलांचिते ।।

मार्कण्डेय जी बोले--तदनन्तर प्रलय के समुद्र से पार होकर महान स्वर्ण वर्ण की आभा वाली, नाना प्रकार की शिलाओं से सम्बन्धित त्रिकूटा चल के शिखर में महादेव जी को स्थित देखा । हे तात ! उस उच्च शिखर पर कोटिरुद्र से युक्त अविनाशी, अज, ईशान, महादेव, परमात्मा, सर्वभूतमय शिव समासीन थे । हे सुव्रत । मनु के सहित एवं देव नमस्कृत उन युगल चरणों की मैंने वन्दना की । हे मान देने वाले ! उस समय रुद्र के साथ उस भयंकर प्रलय पधोनिधि में हजार युग पर्यन्त, नन्दन में स्थित रहा । यह सुनकर युधिष्ठिर बोले--तात ! अपने बन्धुबान्धवों सहित श्रवण करने की मेरे हृदय में बड़ी उत्कण्ठा हो रही हैं ।।१/५।। कमलदल नेत्रवती घोर अन्धकारमय प्रलय सागर में योगियों के समान भ्रमने वाली जो अपने को रुद्र से उत्पन्न हुई और नित्य बतलाती थी वह कौन थीं ।।६।। मार्कण्डेय ने कहा--यही प्रश्न मैंने स्वयं मनु से किया था आज उस अवला की उत्पत्ति तुम्हारे लिए कहूँगा । परमेष्ठी ब्रह्मा की निशा व्यतीत होने पर प्रभात की विमल बेला में जीवों की सृष्टि का सृजन होने पर, हे युधिष्ठिर । सब को सिर से प्रणाम कर उस समय यह मैं पूछता हूँ, कि चन्द्रमा के समान मुख वाली, श्यामवर्णमयी, कमलदल नेत्री वह कौन हैं । उस एकावर्ण सिन्धु में

"मैं रुद्र से उत्पन्न हुई" ऐसा कहने वाली और एकाकी घूमने वाली क्या वह वेदमाता सावित्री अथवा सरस्वती, सरिताओं में श्रेष्ठ मन्दाकिनी अथवा लक्ष्मी या उमा कालरात्रि सुख समृद्धा साक्षात प्रकृति देवी है क्या ? ।।७/११।। हें भगवान । अमृत से उत्पन्न हुई उस घोर एकार्णव में जहाँ कि सर्प राक्षस आदि नष्ट हो चुके थे वह कौन है, यह कहिये । मनु बोले--हे वत्स ! जैसा मैंने ज्ञान प्राप्त किया, वह सुनो--उसकी उत्पत्ति कहता हूँ । वह रुद्र से जैसे उत्पन्न हुई और जैसी वह उत्तम दिव्य स्त्री रूप थी । प्राचीन काल में परम शान्त विग्रह सदाशिव शंकर ने उमा के सहित सब लोकों के हित के लिये महान तप किया ऋक्षवान पर्वत पर समारूढ़ हुए सर्वभूत स्वरूप जितेन्द्रिय सभी प्राणियों के लिए अदृश्य हुए शिव ने घोर तप किया ।।१२/१५।। तपस्या करते हुए महादेव के दिव्य शरीर से पसीना बह निकला यह प्रसिद्ध हैं । वह रुद्र देह से उत्पन्न हुई जो वह कमल-दल-नेत्र वाली, एकार्णव सिन्धु में तुमने देखी थी । हे नृप ! प्रथम उसने सम्यक स्त्री स्वरूप धारण कर उस आदि सतयुग में दश हजार वर्ष पर्यन्त रुद्र की आराजना की थी, तदनन्तर उमा सहित प्रसन्न हुए महादेव शंकर ने कहा--हे महाभागे ! जो तुम्हारे मन में हो वह वरदान मॉगो । सरिता बोली हे प्रभो ! स्थावर जंगम के नष्ट होने पर अर्थात् प्रलयकाल प्राप्त होने पर भी, हे देवेश ! आपकी कृपा से मैं अक्षय बनी रहूँ । सरिताओं के और सागरों तथा पर्वतों के क्षीण हो जाने पर भी हे महादेव । आपके अनुग्रह से मैं अक्षया और पुण्यशीला सदा बनी रहूँ ।।१६/२१।। जो महापातकी ओर उपपातकों से युक्त हैं वे सभी हे प्रभो । भक्ति पूर्वक स्नान करके सर्व पापों से मुक्त हो जॉय । उत्तर प्रदेश में महापातक नाशिनी जाह्नवी गंगा है, इसी प्रकार दक्षिण मार्ग में सभी देवताओं से पूजित होऊँ । हे विभो ! स्वर्ग से आई हुई भूतलपर जैसे गंगा प्रख्यात हुई, हे त्रिदशेश्वर । वैसे ही मैं दक्षिण गंगा-नाम से प्रसिद्ध होऊँ । पृथ्वी पर सभी तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, हे महेश्वर । भक्ति पूर्वक

स्नान करके वही पुण्य फल मुझमें मनुष्य प्राप्त करे ।।२२/२५।। संचित हुए कहीं जो ब्रह्म हत्यादिक पाप हैं, एक मास के स्नान से हे देव ! वे सब क्षीण हो जाँय । हे करुणा-वरुणालय । समस्त वेदों में और सभी यज्ञों के सम्पन्न होने पर जो फल प्राप्त होता है वह सब मुझमें स्नान मात्र से प्राप्त हो, यही मेरी इच्छा है । सर्वदान और उपवास आदि में तथा समस्त तीर्थों के स्नान में जो फल प्राप्त हो, हे दीनबन्धु । वही मेरे जल से उत्पन्न होवे । हे कल्याणमय । मेरे तट पर जो मनुष्य भगवान महेश्वर की अर्चना करेंगे वे आपके लोक को प्राप्त हों, यही सब दो । हे महेशान । उमा सहित और समस्त देवताओं के साथ हे विश्वनाथ । मेरे तट पर आप भी नित्य निवास करें, यही मुझे वर दें ।।२६/३०।। सतकर्मी हो, शान्त तथा दान्त, जितेन्द्रिय, जीव जो भी मेरे जल में मृत्यु को प्राप्त हो वह अमरावती पुरी को जाय । तीनों लोकों में महापातक-नाशिनी मैं विख्यात होऊँ । हे देव देवेश । यदि आप प्रसन्न है तो यही सब मुझे दें ।।३१/३२।। हे नृपश्रेष्ठ । ये और अन्य दिव्यवर नर्मदा द्वारा मांगे जाने पर प्रसन्न हुए वृषभवाहन शिव उस समय बोले । श्री महादेव जी ने कहा हे कल्याणी । जो तुमने वर माँगे, वे सब सफल हों । हे अनिन्दिते । किसी भी लोक में तुम्हें छोड़कर, हे कमलनयनी । अन्य कोई इन वरों के योग्य नहीं । हे श्रेष्ठ मुखी । जिस समय मेरे शरीर से तुम उत्पन्न हुई थी तभी से सर्व पापों को निवारण करने वाली तुम सिद्ध हो गयीं, इसमें सन्देह नहीं ।।३३/३५।। सृष्टि के क्षीण होने पर या विशेष संकटकाल आ पड़ने पर भी जो उत्तर तट पर मृत्युपर्यन्त निवास करने वाले हैं, वे वहाँ कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति आदि क्यों न हों, हे देवि । वे सभी सद्गति को प्राप्त होंगे । धर्मपरायण हुआ आजीवन जो द्विजाति दक्षिण तट का आश्रय लेकर निवास करेंगे वे सब पितृलोक के अधिकारी होंगे । तुम्हारे कथन से और अन्य कारणों से भी मैं उमा के सहित सदैव तुम्हारे तट पर निवास करूँगा, इसमें सन्देह नहीं । हे महादेवी । ऐसा ही होगा । ब्रह्मा,

इन्द्र, चन्द्र, वरुण और साध्य देवों के सहित मैं निवास करूँगा ॥३६/४०॥ हे देवि। मेरी आज्ञा से ये सब उत्तर तट में निवास करेंगे। हे सुर सुन्दरी। पितृगणों के साथ अन्य देवता भी मेरे साथ दक्षिण तट में निवास करेंगे, तुम्हारे लिए यही उत्तम वर है। महाभागे ! "जाओ जाओ" मृत्युलोक के प्राणियों को पापों से मुक्त करो। ऋषि संघ और सिद्ध सुर असुरों समेत, उमा सहित वे सर्वव्यापी महादेव यह वरदान देकर मनु और मेरे द्वारा वन्दना किये गये अन्तर्धान हो गये। इससे वह नर्मदा महान पुण्य शीला और महापातक-नाशिनी है। तुम्हारे पूछने पर जो नर्मदा वर्णित हुई है उससे तुम्हें विस्मय न हो यह महापुण्यशीला गंगा तीनों लोक में विख्यात है ॥४१/४५॥ पन्द्रह स्त्रोतों से दशों दिशाओं को आप्लावित वा पवित्र करती हुई बह रही है। क्षीण, महानद, और नर्मदा, सुरसा, कृता-कृपा मन्दाकिनी दशार्णा, चित्रकूटा, तमशा, विदशा, रञ्जना एवं वालुवाहिनी, ऋक्षपाद से उत्पन्न हुई ये सभी पापों को हरने वाली, पवित्र सर्वमंगलदायिनी, कल्याणरूपा है। वेद के पारंगत पुराणवेत्ता महाभाग्यशाली राज्यपालों द्वारा, तथा सोमपान करने वाले याज्ञिक इन पन्द्रह दिव्य नामों से स्तुति करते रहते हैं। हे नरोत्तम ! यह सब महान पुण्यतम वर्णन मैंने तुम्हारे लिए किया ॥४६/५०॥ मनु से कहा गया मेरे लिए जो नर्मदा जो की उत्पत्ति का पुण्यमय अत्यन्त पवित्र और अतुलनीय भगवान शिव से गाया गया यह शुभ प्रसंग है। भक्ति-पूर्वक जो मनुष्य इसका कीर्तन करेंगे और जो प्रातःकाल उठकर इन पन्द्रह नामों का उच्चारण करेंगे या सुनेंगे हे भारत ! वे स्नान से उत्पन्न होने वाला समस्त पुण्य प्राप्त करेंगे। अन्त में सूर्य के समान दिव्य विमान से सैकड़ों घंटा घड़ियों से निनादित हुए मनुष्य शरीर को छोड़कर परम गति प्राप्त करेंगे ॥५१/५४॥

॥ इति श्री चतुर्थ अध्याय ॥

पंचम अध्याय

नर्मदा जी के नाम का वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- आश्चर्यमेतदखिलं कथितं भो द्विजोत्तम ।
विस्मयं परमापन्ना ऋषिसंघा मया सह ॥

युधिष्ठिर ने कहा-- हे द्विजोत्तम ! यह सब आश्चर्यमय वृत्तान्त आपने कहा । ऋषियों सहित मैं अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुआ हूँ । अहो पुण्य मयी अयोनिजा भगवती नर्मदा यह रुद्र देह से प्रकट हुई महान पापों का क्षय करने वाली है । हे सुव्रत ! सप्त कल्पो के नष्ट होने पर भी तुम्हारे साथ यह महाभागा मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई । अतः इससे और उत्तम इसका क्या पुण्य होगा ! हे ऋषिश्रेष्ठ ! वे सप्त कल्प कौन हैं ! और उनका प्रलय भी क्या है ? यह नर्मदा देवी और तुम भी मृत्यु को जबकि प्राप्त नहीं हुई । पक्षी गणों के समूहों का जहाँ सर्वथा अभाव था, सम्पूर्ण जगत् एक समुद्र रूप हो गया, युग के क्षीण होने पर महादेव का तब क्या स्वरूप रहा ? ॥१/५॥ वह विश्व का संहार कैसे करते है, और उस प्रलय जल में वे कैसे रहते है ? पुनः विश्व का सृजन किस प्रकार करते है, तथा समस्त प्रजा का धारण भी उनके द्वारा कैसे होता है ? एकार्णव अर्थात् एक समुद्र रूप होनेपर यह नर्मदा देवी सरिता रूप में किस रूपवाली होती है ? नर्मदा किसलिए और रेवा नाम क्यों पड़ा ? अञ्जना, सुरसा मन्दाकिनी किसलिए और शौण नाम कैसे हुआ । त्रिकूटा बालुवाहिनी किसलिए कहलाई । करोड़ों कोटियाँ, महागर्व में प्रविष्ट हुई कितनी सरिताओं की कोटियाँ नर्मदा की उपासना करती हैं, और कितने यज्ञोपवीती--ब्रह्मचारी ऋषिगण और देवताओं ने इसकी उपासना की है ॥६/१०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह किसलिए विभक्त हुई और पुराणवेत्ताओं द्वारा वैष्णवी यह संज्ञा भी किसलिए हुई ? किन तीर्थ स्थानों में यह श्रेष्ठ सरिता विशेष पूजनीय है, जिसकी सन्निधि में सर्वदा शिव निवास करते हैं और इसके विभिन्न तीर्थों का क्या स्वरूप हैं, कहिए । कितने विस्तार वाली

रुद्र के द्वारा प्रकट हुई यह देवी है, वह और किस प्रकार के आपके कर्म शिव ने कहे वे भी आप कहें ? हे द्विजश्रेष्ठ ! यह म्लेच्छों से आक्रान्त क्यों हैं ? हे महामते ! ब्रह्मन् ! मार्कण्डेय ! मुझसे यह सब कहिये । श्री मार्कण्डेय बोले--हे तात युधिष्ठिर ! तुम और सभी ऋषिगण सावधान होकर श्रवण करे, त्रिशूलधारी शंकर ने नर्मदा के विषय में जो पुराण कहा हैं ।।११/१५।। वायु से मैंने और उन्होंने महेश्वर से सुना । मनुष्यों के लिए कठिन होने से ऋषियों द्वारा आरम्भ में वही संक्षिप्त किया गया । प्रथम मायूर कल्प, हे तात ! तदनन्तर कौर्म्य तथा पुर, कौशिक, मात्स्य और द्विरद तथा वाराह कल्प एवं आठवाँ वैष्णव कल्प रहा । न्यग्रोध नामका उत्तम कल्प मेरी आकांक्षा का विषय उस समय बना रहा । पद्म, त्रामस और संवर्त एवं उद्वर्त, वेद-चिन्तकों ने पुराणों में चार महाप्रलय कहे हैं । यह संक्षेप से उन महात्माओं द्वारा एवं ब्रह्मादिक महर्षियों ने भी चार भागों में वह संक्षिप्त वर्णन किया है । वही । हे पुराणार्थ-विशारद ! मैं भलीभाँति वर्णन करूँगा । महाघोर जो सात कल्प हैं जिनमें यह मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई, वह भी कहूँगा ।।१६/२१।। समस्त जंगम पर्यन्त घोर अन्धकार या अविज्ञात लक्षणहीन सूर्य चन्द्र की किरणें भी नष्ट जहाँ हो चुकी थी । भूत प्राणी रहित स्थिति जहाँ भी उस अन्धकार के मध्य में महापुरुष नाम से वह जगत् गुरु सनातन एकांकी व्यक्तिव्यक्त रूप हुआ वहाँ विचरता रहा । उसने ओंकारमय सर्वातीत द्वितीय पुरुष होकर गायत्री का सृजन किया । उसके साथ विराट ईशान पुरुष क्रीड़ा करता रहा । उसके देह से पञ्च भूतात्मक विश्व उत्पन्न हुआ । क्रीड़ा करते हुए ही यह पञ्च भूतात्मक संज्ञावाला, विश्व उत्पन्न हुआ ।।२२/२५।। क्रीड़ा करते हुए विराट संज्ञावाले पुरुष ने बीज सहित हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति की जो बारह सूर्यों के समान दिव्य अण्डे के रूप में परिणत हो गया । उस अण्डे को भेदन करके चतुर्भुज ब्रह्मा उत्पन्न हुए । उसने देव; असुर, मानव, संयुक्त इस प्रकार के विश्व का सृजन किया । तिर्यक गतिशील प्राणी, पशु, स्वदेज,

अण्डज, जरायुज युक्त यह अण्ड पुराणों में प्रथम शरीरी कहा जाता है। पूर्वकल्प में हे नृपश्रेष्ठ ! क्रीड़ा करती हुई उमा के साथ परमेश्वर ने क्रीड़ा करते हुए रुद्र के एकार्णवरूप हर्ष से एक शुभ कन्या प्रकट की जो उमा के स्वेदसे और सदाशिव के उरस्थल से अर्थात् उमा के अंग मर्दन करने से प्रकट हुई। अतःस्वेद से कमलनेत्री महती कन्या प्रकट हुई कही जाती है। हे युधिष्ठर ! यह रुद्रदेह से इसका द्वितीय जन्म कहा गया है ।।२९/३१।। तब वह अनुपम रूपवती देवासुर और मानवों के विभिन्न लोकों में घूमती हुई, त्रैलोक्य को मोहित करती हुई भ्रमती रही। उसे देखकर देव दैत्य प्रमुख सभी मोहित हुए कैसे हमें यह प्राप्त हो, हे भारत ! वे जहाँ तहाँ उस कन्या की खोज करने लगे। हावभाव और शृंगारमयी चेष्टाओं से अखिल जगत् को मोहित करती हुई, विद्युत के समान दिव्यरूप नर्मदा भ्रमण करती थी। मेघमण्डल में भी अपने प्रकाश से देव स्त्रियों में सर्वोत्तम हुई विराजती थी। सभी देव दानव कालान्तर में भगवान सदाशिव के समीप काम से आकुल हुए उस कन्या की माँग करने लगे। उस समय दोनों के मध्य में महादेव जी बोले ।।३२/३९।। जो तेज से बल से हे सुरोत्तम। सर्वाधिक सिद्ध होगा, वही उस कन्या को प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। तदनन्तर वे सभी देव और असुर कन्या के समीप उपस्थित हुए; मैं इसको वरण करूँगा, मैं इसको वरण करूँगा--बोलते रहे। उन सबके देखते-देखते वह कन्या अन्तर्धान हो गई, पश्चात् वे सब कई योजन दूर स्थित हुई उसें देखते रहे। जहाँ वह दिखलाई दी वे सब वहीं दौड़े। वह पुनः तीन चार और दस योजन दूर स्थित होती रही ।।३७/४०।। उन सबों को वह गजगामिनी इस प्रकार सैकड़ों और हजारों योजन दूर उनसें अवस्थित हुई पुनः पुनः दिखलाई दी। तदनन्तर लक्ष योजन दूर अत्यन्त लघु रूप में वह दिखलाई दी। फिर उन्होंने अपने आगे-पीछे सभी दिशाओं में भी स्थित देखा, इस प्रकार देवता हजार वर्ष पर्यन्त भटकते हुए उस उत्तम दिव्य कन्या को, कभी एकरूप में कभी बहुरूपों

से बार-बार उसे देखते रहे, किन्तु वे महादेव से उत्पन्न हुई उस कन्या को प्राप्त न कर सके। तब उमा के सहित महादेव उच्चस्वर से बारम्बार हँसे। गणों ने तालिया बजाई प्रसन्न होकर वे भी नाचने लगे। उसी समय कन्या अकस्मात् शंकर के समीप दिखाई दी। वे देवता उसको देखकर विस्मित हुए निराश होकर वहाँ से लौटे। तब पिनाकपाणि शंकर ने स्वयं ही उसका नामकरण किया ॥४१/४६॥ विलासपूर्ण चेष्टाओं से अर्थात् अपने हाव-भाव से इन सबको नर्म अर्थात् सुख देती रही; इसलिए हे सुन्दरी ! सरिताओं में श्रेष्ठ तुम नर्मदा के नाम से प्रसिद्ध होगी। स्वरूप में स्थित हुए देव उससे भूतल में हास्य को प्राप्त हुए, इसलिए भी नर्म अर्थात् हास्य रस देने वाली होने से यह सुशीतल जल वाली कल्याणी नर्मदा कहलाई। सप्त कल्पों के क्षीण होने पर भी भगवान् शम्भु ने इसे प्रथम जो वर दिये थे, अतः 'न-मृता' इससे हे राजेन्द्र ! नर्मदा नाम से विख्यात हुई। तदनन्तर उस शीलवती सुन्दरी कन्या को सर्वभूपति देवेश्वर प्रभु ने समुद्र को समर्पित कर दी ॥४७/५०॥ तदनन्तर वह ऋक्षशैल से फेनपुञ्ज के रूप में अट्टहास करती हुई, सरिताओं के पति समुद्र में नर्मदा प्रविष्ट हो गई। इस प्रकार प्रथम ब्राह्मकल्प में महेश्वर से प्रकट हुई नर्मदा का यह स्वरूप हुआ। अब जो मत्स्य कल्प में मैंने देखा वह वर्णन करता हूँ, मुझसे सुनो ॥५१/५२॥

॥ इति श्री पाचवाँ अध्याय ॥

छठवाँ अध्याय

रेवा नाम महत्व मयूरकल्प वर्णन ॥

मार्कण्डेय उवाच-- पुनर्युगान्ते सम्प्राप्ते तृतीये नृपसत्तम ।
द्वादशार्कवपुर्भूत्या भगवान्नीललोहितः ॥

श्री मार्कण्डेय बोले--हे तृपश्रेष्ठ ! पुनः तृतीय युग का अन्त प्राप्त होने पर भगवान नील लोहित शिव द्वादश सूर्य शरीर धारण कर, सप्त द्वीप समुद्र

पर्यन्त पर्वत कानन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल को कालरूपी महेश्वर ने दग्धकर दिया। तदनन्तर महामेघ होकर जल से इसे डुबा दिया। कृष्ण वर्ण हुए इस सम्पूर्ण जगत् को उस एकार्णवीभूत सागर में विद्युत एवं इन्द्रायुध से अंकित हुई इस पृथ्वी को डुबाकर माया द्वारा उस विमल जल में जगत् का संहार करके स्वयं कृष्णवर्ण विष्णु होकर, योग निद्रा में स्थित हो गये। तदनन्तर मैं उस घोर अन्धकारमय प्रलयजल में वायुरूपी महेश्वर के स्वरूप में एक हजार दिव्य वर्ष पर्यन्त भ्रमता रहा ॥१/५॥ जिसने यह गहन गम्भीर दृष्य उपस्थित किया उस देवदेवेश्वर का ओंकार पूर्वक ध्यान करता हुआ हे राजेन्द्र ! उस समय विमल जल में मैं स्थिर रहा। सभी स्थावर जंगम के नष्ट होने पर उस घोर महाप्रलय में सहसा स्वर्णपत्र वाले मयूर को जल में देखा। जो विचित्र चन्द्रबिम्ब से युक्त था। सुन्दर नेत्र वाला नीलकण्ठ था। तदनन्तर वह मयूर महा भयंकर महावर्णन के मध्य में शब्द से विक्षोभ करता हुआ तीन शिखर वाला त्रिखण्डी तीनों लोकों का रक्षक वह महानुभाव विचरने लगा। शिव ने मयूर रूप अर्थात् रुद्रस्वरूप से उस जल के विक्षुब्ध हुए, महार्णव में भ्रमण करती हुई महावेगवती, सुमहती सरिता को देखा। मयूररूपी महादेव भ्रमती हुई उत्तंग तरंग ज़ाल से सहसा सामने देखकर बोले हे शुभे ! तुम कौन हो ? शाश्वत शरीर रूपिणी इस महा प्रलय में भी सत्य को प्राप्त नहीं हुई ॥६/१०॥ समस्त सुरासुर-गणों के नष्ट होने पर तथा सभी सरोवर सरिता और सागर के भी विलीन हो जाने पर हे कमला नयनी ! तुम कौन हो और क्यों क्षय को प्राप्त नहीं हुई ? कहाँ जा रही हो ? नर्मदा जी बोली--हे देवेश ! आपकी कृपा से मुझे मृत्यु प्राप्त नहीं होती। हे देव ! रात्रि व्यतीत हो चुकी पुनः आप विश्व का सृजन करे। ऐसा कहे जाने पर महादेव ने अपने पंखों और पञ्जर को फड़फड़ाया। उसी समय उसके मध्य से और पंखों से देव दैत्यराज निकलकर प्रगट हो गये। उनके मध्य में यह जो अति विस्तीर्ण तीन शिखरों से युक्त बैल के श्रृंग के समान था ॥११/१५॥

वह त्रिकूट नाम से विख्यात सर्वरत्नों से विभूषित रहा। उसी त्रिकूट से मही को डुबोती हुई वह भूतल पर आई इसलिए त्रिकूटी नाम से यह नर्मदा विख्यात हुई। पितरों को तारने वाली परा नाम की प्रसिद्धि हुई। तदनन्तर इस द्वितीय शिखर से गंगा धरणीतल पर विस्तीर्ण हुई। उस समय तृतीय शृंग उस त्रिकूट का सात खण्डों में विभाजन हो गया वे ही जम्बूद्वीप में सात कुल प्रसिद्ध हुए। चन्द्र और नक्षत्र सहित गृह, काम, नदी, नभ, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज प्राणी प्रकट हुए। इस प्रकार यह सब जगत् प्रथम उस मयूर से प्रकट हुआ था। हे नरशार्दूल ! यह समस्त महादेव का ही प्रकट रूप हुआ ॥१६/२०॥ तदनन्तर उस नदियों और समुद्रों का अलग-अलग विभाग करके देवेश्वर ने नर्मदा को कहा तुम भी दक्षिण दिशा में प्रयाण करो। इस प्रकार वह महा पातक नाशिनी दक्षिण गंगा, दक्षिण दिशा में प्रसिद्ध हुई। जैसे उत्तर दिशा में गंगा, पवित्र है उसी प्रकार यह भी मंगलमयी हुई जैसे महा पवित्र गंगा मेरे मस्तक से उत्पन्न हुई, इसी प्रकार उसी प्रभाव से युक्त हे महाभागे ! तुम भी हो, इसमें सन्देह नहीं। और तुम्हारे साथ हे सुव्रते। मैं अपने एक अंश से सदा रहूँगा। महापातकियों के लिए तुम औषधि रूप सिद्ध होगी। महादेव के द्वारा ऐसा कहे जाने पर महापातक नाशिनी वह शीघ्रगतिवती नर्मदा दक्षिण दिशा की ओर चली गई ॥२१/२५॥ ऋक्षशैल को प्राप्त कर चन्द्रमौलि शिव के अनुग्रह से महान वेगवान जल के प्रभाव से, महादेव से प्रेरित हुई, बलमयी समुन्नत यह इस लोक में महादेव द्वारा महती नाम से प्रसिद्ध हुई। तपस्या करते हुए उन महादेव के त्रिशूल के अग्र भाग से कुछ जल बिन्दू गिरे। इससे यह शोणनाम से प्रसिद्ध हुई। वे सत्रह विन्दु कहे जाते हैं। उन सबमें रुद्र देह से निकलती हुई और महादेव से वरदान प्राप्त होने के कारण सभी नदियों में नर्मदा अत्यन्त पुण्यशीला है। शंकर के अनुग्रह से महापातक नाशिनी यह देवी उस घोर महार्णव में दिखाई देती रही। ऐसी स्पष्ट स्वरूप वाली महाकाया होने से भी महती

कही जाती है मेघमण्डलों के समान दिग्गजों द्वारा मोक्ष को प्राप्त कराये जाने से कलुषता के वहन करते हुए सरस हुई सुरसा कही जाती है ॥२६/३१॥ समस्त लोकों को अभय प्रदान करने वाली एवं संसार सागर में डूबने वालों पर कृपा करने वाली होने से इसे कृपा कहा जाता है। प्राचीन पुण्यमय सतयुग में दिव्य मन्दार वृक्षों से अलंकृत कल्पवृक्षों से व्याप्त, रोहिणादि वृक्षों से घिरी हुई मन्दगति से बहने वाली मन्दाकिनी कहलाई। शीघ्र ही महार्णव के प्रलय को भेदन करके इस लोक में आई ऐसी सिद्ध और देवताओं से पूजित यह महार्णव कहलाती हैं ॥३२/३५॥ विचित्र शिला-संघातों से और रिक्षपर्वत में होने वाले हाथियों से व्याप्त विपुल पर्वत का भेदन करके समुद्र की ओर जाती हुई दशों दिशाओं में महान रवसे भ्रमण करती हुई, जहाँ-तहाँ भूमि को आप्लावित करती हुई सुशोभित रहती है, इसलिए रेवा कही जाती हैं। स्त्री-पुरुष आदि से अत्यन्त दुःखी हुए, श्रापों से घिरे हुए मनुष्यों को विपाप-पाप रहित करने वाली होने से यह विपापा कहलाती है। मल-मूत्र का भण्डार अस्थि, रक्त आदि कीचड़ से युक्त शरीर रूपी पाशों से बँधे हुए व्यक्तियों को संसार से तारने वाली और उक्त पाशों मुक्त करने वाली होने से विपाशा कही जाती है ॥३६/४०॥ यह नर्मदा निर्मल जल वाली होने से विपाशा कही जाती है ॥३६/४०॥ यह नर्मदा निर्मल जल वाली होने से तथा विमल चन्द्र के समान सून्दरमुखी और महाघोर अन्धकार में भी महाप्रभा जैसी होने से, हे नृप श्रेष्ठ ! विद्वानों ने इसे विमला कहा हैं। चन्द्रमा की किरणों के जैसी सूर्य की रश्मियों के समान प्रभाव वाली करों से अर्थात् किरणों से विश्व को प्रसन्न करने वाली बहती हुई यह करभा नाम से प्रसिद्ध हुई। हे भारत ! लोगों को दर्शन से ही रञ्जित करने वाली होने से धावर्त्थक रञ्जना नाम हे राजसत्तम ! सार्थक हुआ। तृण, वनस्पति, गुल्मलतादि उद्भिज प्राणियो को तिर्यक्योनिके कीट पतंगों को, पक्षियों को भी उनका उद्धार करके स्वर्ग ले जाने वाली होने के कारण इसे बालू या वायुदाहिनी कहते हैं। इस

प्रकार इन नामों को जो जानता है और विशेषतया इसकी उत्पत्ति को भी जानता है, वह सब पापों से मुक्त हुआ रुद्रलोक को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ।।४१/४५।। रेवा आदि नाम का महत्त्व व मयूर कल्पवर्णन का यह छठवाँ अध्याय पूरा हुआ ।। इति श्री छठवाँ अध्याय ।।

सातवाँ अध्याय

पूर्व कल्प उत्पत्ति वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- पुनरेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे ।
सलिलेनाप्लुते लोके निरालोके तमोद्भवे ।।

श्री मार्कण्डेयजी बोले--फिर एक समय चराचर का घोर विनाश हो जाने पर लोक जब जल में व्याप्त हुआ, एक समुद्र रूपप्रकाश रहित अन्दकारमय हो गया, तब अन्धकार से पूर्ण उस महासमुद्र में अकेले ब्रह्मा खद्योत जुगनू के समान रूप वाले होकर दिव्य हजार वर्ष तक विचरते रहे । वहाँ ब्रह्माजी ने हजार योजन तक फैले अपरिमित और सर्वश्रेष्ठ बारह सूर्यों के समान तेजस्वी हजारों चरण नेत्रवाले कच्छप शरीर धारण किये सोये हुए उस परमात्मा को क्षीर समुद्र में देखा । उन्हें देखकर आश्चर्य में पड़े ब्रह्माजी उन्हें धीरे-धीरे जगाने लगे ।।१/४।। वेद-वेदांगों में होने वाली स्तुतियों एवं मांगलिक वचनों से जगाते हुए ब्रह्माजी ने कहा--वाचस्पते ! वाणी के अध्यक्ष ! महापुरुष ! तुम जाग जाओ तुम्हें हमारा नमन स्वीकार हो । हे परमेश्वर ! तुम्हारे उदर में सम्पूर्ण जगत् स्थित है । परम तेजस्विन ! जिसे तुमने पहले समेट लिया था उसे आप मुक्त कर दें । देखिये यह ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत हो चुकी, अब दिन हो रहा है । सर्व लोकेश ! सम्पूर्ण विश्व के स्वरूप का विचार कर जैसे जगत् की सृष्टि हो वैसा करें । तब कच्छप रूप में स्थित शंकरजी ब्रह्माजी के वचन सुनकर उठकर खड़े हो गये और वह प्रलय के समय काल के ग्रास बने हुए लोकपालों सहित ग्रासभूत तीनों लोकों को बाहर करने लगे । देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षसों सहित

चन्द्रमा, सूर्यादि सभी ग्रह उनके शरीर से निकल रहे थे ।।५/९।। पश्चात् भगवान शंकर ने समुद्रमय सब जगत् का यथायोग्य विभागकर विशाल पाषाण एवं जल से पूर्ण नदी तालाब से समृद्ध वृक्ष औषधि तथा स्वल्प जलाशयों से परिपूरित पृथ्वी को श्रेष्ठ हिमालय पर्वत तथा श्वेत पर्वत को और समुन्नत शिखर वाले महाशैल के साथ ही अन्य पर्वतों को देखा जम्बूद्वीप, कुशद्वीप, कौञ्च, शालमणि, पुष्कर, प्लक्ष और शाक द्वीपों को तथा लवण, इक्ष, सर्पि, घृत, दधि, क्षीर, सुरा आदि पूर्ण समुद्रों को एवं महापर्वत लोकालोक को भी अपने सामने देखा ।।१०/१३।। चार योनियों से युक्त चराचर जगत् को उसी परमेश्वर ने युग के रूप में निकलते देखा । प्रभु ने बिखरे हुए शैल शिखरों में जो नदी तालाब हीन थे वहीं असंख्य तरंगों से चञ्चल जलवाली विविध भँवरों से भरपूर अनेक औषधि लताओं से विकसित विभिन्न कमल और शिला तलों में व्याप्त अनेक विचित्र जाति वाले हंस सारस आदि पक्षियों से शब्दायमान मछली मछुआ आदि जल जीवों से पूर्ण दिव्य मायारूप वाली सुन्दर श्यामल मेघ के समान चमकते सोने के समान कान्ति वाली अनुपम जलाशय से पूर्ण नदी को भगवान शंकर ने देखा । उस नदी के बीच नवीन मेघ के समान श्यामल विशाल जंघा कटिभाग तथा स्तनवाली, अनुपम वस्त्रों और दिव्य अलंकारों से अलंकृत नूपुर पादभूषण पायजेवादि के शब्दों से मन को आकर्षित करने वाली हार और केयूर बाजूबन्द सुशोभित, योगमाया रचित आश्चर्यजनक दिव्य आभूषणों से आभूषित अव्यक्त शुद्ध अंगोंवाली, परम सौभाग्ययशालिनी स्वयं स्त्री रूप धारण किये हुए सबको आनन्द देने वाली ऐसी देवी नर्मदा को श्री शंकर ने देखा ।।१४/२१।। उन्नत स्तनों वाली, सुन्दरी कमल पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्रों वाली देवाधिदेव शंकर की स्तुति करती हुई जल से ऊपर निकलती हुई, उस कल्याणी को देखकर विस्मित हृदय हुआ उसके निर्मल जल में स्नान कर मैं उसकी स्तुति करने लगा वेद-शास्त्र-पुराण-सम्मत मन्त्रों से प्रसन्न होकर

मैंने उनकी प्रेम से पूजा की । राजन् ! पहले उत्पन्न किये चराचर को भी मैंने वहाँ देखा । देवता, असुर, गन्धर्व, नाम आदि सब दिखलाई दिये । इस महाभाग नर्मदा को भी देखा जो कभी क्षीण न हुई । राजश्रेष्ठ ! महादेव की कृपा से उनके ही अंग से (शरीर से) उत्पन्न इस नर्मदा को मैंने बारम्बार देखा जिसे मैंने तुम्हें बताया । जो श्रेष्ठ ब्राह्मण आदि कूर्मकल्प में इस प्रादुर्भाव की कथा को पढ़ते हैं और जो विद्वान सुनते हैं वे भी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।२२/२७।। इति श्री सातवां अध्याय ।।७।।

आठवाँ अध्याय

बक कल्प उत्पत्ति वर्णन

श्रीमार्कण्डेय उवाच--नष्टे लोके पुनश्चान्ये सलिलेनसमावृत्ते ।
महार्णवस्य मध्यस्थो बाहुभ्यामंतरं जलम् ।।

मार्कण्डेय जी बोले--एक समय पुनः प्रलयकाल में लोकों के नष्ट होने पर जलमय महासमुद्र के बीच स्थित हुआ मैं हाथों से वहाँ तैरने लगा । राजश्रेष्ठ ! देवताओं के सौ वर्ष पूर्ण हो गये मैं थक भी गया । तब महासागर से पार उतारने वाले भगवान शंकर का मैं ध्यान करने लगा । ध्यान करते हुए मैंने हारसिंगार, कुन्द, पुष्प, चन्द्र के समान या गोदुग्ध जैंसे श्वेतवर्ण वाले एक श्रेष्ठ बड़े बक पक्षी को देखा । देखकर मुझे आश्चर्य भी हुआ । इस भयंकर महासमुद्र में यह पक्षी कहाँ से आया ।।१/४।। भुजाओं से तैरते हुए अथकित सा उस बक से मैंने पूछा । इस समुद्रमय जगत् में पक्षी रूप धारणकर उपस्थित हुए आप कौन हैं ? दिव्ययोग स्वरूप ! सर्वसमर्थ ! मुझे मोहित से करते हुए घूमने वाले आप कौन हैं ? यह सब मुझसे कहें । वह बोला-वत्स ! मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ मैंने ही सारे जगत् का संहार किया है क्या तुम नहीं समझते ? इस समुद्र में पड़े हुए तुम्हें देखकर मुझे दया आ गयी । इसीलिए मैं यहाँ पक्षी का रूप धारण कर तुम्हारे सामने आया

हूँ। इस प्रकार समुद्र में तुम दुःखी होकर क्यों घूम रहे हो ?।।५/९।। ब्राह्मण तुम शीघ्र ही मेरे पंखों में प्रवेश करो तुम्हें जिससे विश्राम प्राप्त हो। देव के द्वारा ऐसा कहने पर हे राजन् ! तब मैं जल में घूमता हुआ उस देव के पंखों में छिप गया। हजारों युगों के अनन्तर मैं समुद्र के मध्य में पड़ा हुआ भी थकावट से हीन रहा। तभी सहसा मैंने दशों दिशाओं में कुछ नूपुरों की ध्वनि से मिश्रित अद्भुत् उत्तम शब्द हुआ। वह समुद्र का सम्पूर्ण जल सहसा मिट गया। यह क्या है--ऐसा विचार कर मैं दिशाओं को देखने लगा। तभी वहाँ वस्त्र और अलंकारों से भूषित नूपुर धारण किये दश कन्यायें उन दिशाओं से सामने आयीं। कोई चन्द्रमा के समान और कोई सूर्य के समान कान्तिवाली तथा घने अञ्जन जैसी वर्ण वाली कोई अन्य रक्त कमल के समान छटा वाली थी ।।१०/१५।। अनेक रूप धारण करने वाली; प्रियदर्शन वाली अनेक अलंकारों से अलंकृत सुन्दर व्रत वाली वे कन्यायें अर्घ्य-पाद्य से मालाओं से बक रूपी श्री शंकर की पूजाकर स्थित हुई। तब वह अद्भुत दर्शनवाला पर्वताकार बक पक्षी सहसा भयंकर समुद्र के जल में प्रविष्ट हुआ। हजारों योजन तक विस्तीर्ण भू-मण्डल में वह घूमा। तदनन्तर पञ्चरत्नों से युक्त दिव्य स्फटिक मणियों से जड़े सोने के स्तम्भों से मनोहर दिव्य भूमण्डल में हजार योजन पर्यन्त लम्बा उससें द्विगुणित विस्तृत बावड़ी तथा कूपों से पूर्ण बड़े-बड़े भवनों से शोभित उन्नत अट्टालिकाओं एवं कल्पवृक्षों से सुशोभित सात पताकाओं से युक्त एक श्रेष्ठपुर को मुनि ने देखा। उस श्रेष्ठपुर में जो बड़ा रमणीक था ।।१६/२१।। विविध रत्नों से पूर्ण पताकाओं से उज्जवल वेदिकावाले सौ योजन पर्यन्त फैले हुए और उससे द्विगुणित चौड़े एक दूसरे रमणीय पुर को देखा। उस संयुक्त पुर के बीच में एक विशाल उत्तम पवित्र जलवाली अनेक रत्न और शिला संयुक्त एक नदी दिखायी दी। उसके तट पर मैंने चमकने वाली बिजली एवं सूर्य के समान कान्तिवाले इन्द्रनील, महानील मणियों से सब ओर जड़े हुए कहीं अग्नि के समान रूप

वाले और कहीं इन्द्र धनुष के समान कान्ति सम्पन्न कहीं धूमिल कहीं पीले और कहीं लाल कहीं सफेद, इस प्रकार अनेक वर्णों से चित्रित अद्‌भुत दर्शन वाले ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, साध्य नन्दीश्वर, गणेश सूर्य आदि देवों से घिरे हुए लिंगस्वरूप ईश जो महान तेजोलिंग भी है उसे मैंने देखा ॥२२/२६॥ तदनन्तर सभी ओर अलौकिक आभूषणों से भूषित आँखें बन्द किये हुए सोये पड़े-देवदानवों को भी देखा । फिर कमल पत्र के समान नेत्रों वाली परम सुन्दरी वे दश स्त्रियाँ कन्यायें उस नदी के जल में स्नानकर मनोहर दिव्य पुरुषों से पक्षी के साथ तेजोलिंग को विधिपूर्वक अर्ध्य-पाद्य आदि उपचारों से पूजने लगीं--पश्चात् उसी श्रेष्ठ पुर में वे दशों कन्यायें उस दिव्य लिंग की पूजा कर मेघों में बिजलियों की भाँति विलीन हो गयीं ॥२७/३१॥ वह पक्षीराज तथा स्त्रियाँ और देवगण सभी अदृश्य हो गये । केवल लिंग ही स्थित रहा । जिसे मैं विस्मित होकर पूज रहा था । तदनन्तर दुःख से मोहितचित्त होकर मैं यह सब शंकर की माया है, यह चिन्तन करने लगा । उसी समय दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित मेघों को प्रकाशित करने वाली बिजलियों की भाँति सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करती हुई-सी सुन्दरी कन्यायें पुनः उतरकर दिव्य सुवर्णमय कमलों से अर्चना करके वे अलंकृत कन्यायें शीघ्र ही उस जल में प्रविष्ट हो गयीं । वे अन्य भी उसी श्रेष्ठ नगर में प्रविष्ट हो गये ॥३२/३५॥ मैं तो बार-बार भी शंकर की पूजा करती हुई उस अमर कन्या को देखता रहा । उसी समय मैंने कमल नेत्र वाली उस सुन्दरी से पूछा । देवी ! शंकर का पूजन करने वाली इस पुर में रहती हुई तुम कौन है । और सारी स्त्रियाँ जो आयीं थी वे कहां गयीं । वे देवता भी कहां गये । पुण्यशीले ! महेश्वरि ! महाभागे ! तुम्हें मेरा सादर प्रणाम हो । हे सुव्रते ! तुम्हारी कृपा से मैं यह जानना चाहता हूँ । निष्पापे महादेवी ! दयाकर तुम मुझसे कहो ॥३६/३८॥ तब वह स्त्री बोली--ब्राह्मण ! प्राचीन कल्प में मुझे देखकर भी तुम कैसे भूल गये ? तुम्हारी स्मृति में मोह न हो । वही

कल्पवाहिनी देवी हूँ रुद्र के शरीर से निकली नर्मदा नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ। शंकर जी को पूजने वाली अन्य जिन कन्याओं को तुमने देखा है, पक्षीराज से मुक्त जिनके द्वारा तुम यहाँ लाये गये हो। हे मुनि श्रेष्ठ ! तुम उन सबको सम्पूर्ण दिशाएँ समझो, और इस बक पक्षी के रूप में वे महायोगी महेश्वर ही हैं। इनके द्वारा वह शंकर शिवपुर से यहां लाये गये हैं। ब्राह्मण ! वह महादेव तेजोलिंग के रूप में स्थित है। सुर-असुर आदि जगत् के गुरु वह शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि के द्वारा पूजित होते हैं। जिस कारण इसमें चराचर रूपी जगत् लय को प्राप्त होता है, उससे पूरणाचार्यों ने इसे लिंग कहा है ।।३९/४४।। उस ईश ने ही पहले माया से सब देवगण आदि को संक्षिप्त किया है सब लीन भी हो चुके हैं। अतः लोकेश ! इस समय वे नहीं दीखते ।।४५।। ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होने पर वे दृष्य रूप हो जायेंगे अतः वही मैं लिंग पूजा करने में तत्पर नर्मदा नाम वाली हूँ। मैं सहस्त्रों युग से रुद्र की दासी हूँ। श्रेष्ठ ब्राह्मण ! इन्हीं शंकर की कृपा से तुम भी अमर हो। शिव के पूजन से ही तुम सत्यता, सरलता युक्त सिद्ध हुए हो। ऐसा कहकर वह देवी वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो गयीं। और वे कन्यायें तथा बकरूपी महेश्वर भी उस कन्या के वचन सुन उस नदी में उतरकर सभी अन्तर्ध्यान हो गये ।।४६/४९।। महानदी नर्मदा में विधि से मन्त्र पूर्वक स्नान कर तुम भी हे राजन् ! उस लिंग का पूजन करो। उस समय में भी स्नानकर बाहर आने पर राजन् मुझे उस लिंग और उन नदी के दर्शन नहीं हुए। बस तभी सम्पूर्ण बनों रहित यह पृथ्वी और सारे लोक उत्पन्न हुए थे। नक्षत्र चन्द्रमा सूर्य के साथ वही आकाश जो दिखायी नहीं दे रहा था पहले के समान ही रचित हो गया। मैंने भी मन से महेश्वर को नमन तथा पूजन किया ।।५०/५२।। इस प्रकार मनुष्य लोक के सब पापों को दूर करने वाली इस अव्यय नाश रहित श्री नर्मदा को मैंने बक नामक प्राचीन कल्प में देखा है। अतः धर्म बुद्धि से कार्य करने वाले धर्म परायण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

आदि द्वारा वह महाभाग्य सम्पन्न नर्मदा सदा ही पूजनीय है और जो लोग भक्ति पूर्वक एक बार भी नर्मदा के जल में स्नान कर श्री शंकर को पूजते हैं वे निश्चय ही अपने सब पापों को विनिष्ट कर देते हैं ॥५३/५५॥ इति श्री आठवाँ ध्याय ॥८॥

नौवां अध्याय

नर्मदा उत्पत्ति स्नान फल वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--पुनर्युगान्तं ते वाऽन्यं सम्प्रवक्ष्यमि तच्छृणु ।
सूर्यैरादीपिते लोके जंगमे स्थावरे पुरा ॥

श्री मार्कण्डेय जी बोले--अब दूसरे प्रलय का वृत्तांत मैं तुमसे कहता हूँ ध्यान से सुनो पहले चराचरात्मक जगत् द्वादश सूर्यों से जब जल गया सब प्रकार से नदी तालाब और समुद्र भी क्षय को प्राप्त हो गये सर्व मर्यादाओं का विनाश हो जाने पर अनेक रूप वाले इन्द्र धनुष से शोभित मेघों से सम्पूर्ण आकाश भर गया । फिर सब जल पूर्ण हो गया । तदनन्तर सब समुद्रमय होने पर सारे जगत् को उदरस्थ कर भगवान शंकर अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर सो गये ॥१/४॥ योग स्वरूप वह प्रजापति हजारों युगों तक समुद्र में प्रविष्ट होकर सोते रहे । वहाँ अनेक बिस्तरों से युक्त निर्मल चमकीले शयन कक्ष में सो रहे उन महात्मा सपत्नीक महादेव शंकर को भृगु सनक आदि ऋषियों ने भी जो ब्रह्मलोक निवासी है देखा । विश्वरूप धारिणी वह नारी तथा विश्वरूप वह महेश्वर वे दोनों ही खूब सटकर सोये थे । उन अव्यय अविनाशी प्रकृति व पुरुष को मैंने भी देखा ॥५/८॥ पश्चात् उस देव के चरणों के समीप पद्म लक्षणों से लक्षित सुन्दर कटिभाग वाली उस देव के चरणों को दबाती हुई उस सुन्दरी कन्या को भी मैंने देखा । सुन्दर निर्मल वस्त्रों से आच्छादित नागरूपी यज्ञोपवीत धारण किये हुए सब आभूषणों से भूषित कमलनयनी श्यामा स्निग्ध प्रायः षोडश वर्षीय कन्या को मैंने देखा । इस प्रकार हजार युग तक सुन्दर विदुषी यह नर्मदा सोये हुए उन देव देवेश

की आराजना कर रही थी इस प्रकार चारों युग तक सुन्दर विदुषी यह नर्मदा सोये अपने मानस पुत्र भृगु आदि के साथ अविनाशी श्री शंकर की स्तुति कर रही थीं ॥९/१२॥ राजन् ! बड़ी भक्ति से वहाँ स्वरूप स्थित श्री शंकर की ईश वन्दना विषयक मन्त्रों से युक्त कर रहे चारों वेद सहसा समुद्र में लुप्त हो गये। वेदों के लुप्त होने पर अज्ञानान्धकार से युक्त भगवान ब्रह्मा सोये हुए भगवान शंकर को जगाते हुए उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने कहा--सबके पाप ताप हरने वाले हर ! पीले नेत्रों वाले पिंगाक्ष ! महेश्वर ! तुम उठो मुझे दिव्य ज्ञान के रूप में प्राप्त वेद राशि जिसमें मैं सृष्टि का कार्य पूर्ण करता हूँ वह लुप्त हो गयी हैं। अतः उन्हें पाने के लिए मैं तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ। दिव्य अदिव्य चराचरात्मक सम्पूर्ण संसार लौकिक अलौकिक वह सभी वेदों से व्याप्त है। वेद ज्ञान से ही मैं अतीत और वर्तमान के पदार्थों का स्मरण कर उनकी सृष्टि करता हूँ। वेदों के बिना मैं स्वयं सदा मूक अन्ध और जड़ के समान हूँ। वेदों के बिना मेरी गति और ज्ञान शक्ति अभ्यन्तरबल उत्साह सभी नष्ट ही हैं। हे देव देवेश ! उनके बिना मेरी स्मरण शक्ति निश्चय ही लुप्त सी हो चुकी है ॥१३/१८॥ ईश ! शीघ्र ही तुम उन वेदों को देने में समर्थ हो। यह सम्पूर्ण जगत् चरअचर उनके बिना जड़ अन्ध और विवेक ज्ञान शून्य है। देवेश ! चौदह लोक अशोभन से हो रहे है। हे देव ! वेदहीन होने से मैं अल्प शक्ति हूँ तुम्हारे सामने सादर नत मस्तक हूँ। वेदों से ही यह सारा संसार उत्पन्न है। स्थायी एवं अविच्छिन्न है सामने नहीं आता। जिस प्रकार सूर्य के उदित होने से सारा अन्धकार दूर हो जाता है। इसी प्रकार वेद के धारण से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वेद में प्रतिपादित सनातन ब्रह्म तत्व जो परम सूक्ष्म और कठिनता से जानने योग्य है हृदय में स्थित है उसको भी मैं वेदों से ही जानता हूँ। वह ज्ञेय तत्त्व वेदों से छूटने से लुप्त हो चुका है। हे शंकर ! तुम्हारे आगे वेदों का पाठ करते हुए मुझसे वेद सहसा लुप्त हो गये महादेव ! वे सभी सम्मुख स्थित समुद्र में प्रविष्ट

हो चुके हैं ।।१९/२५।। जिनके बिना पृथ्वी की सृष्टि सम्भव नहीं है । देवेश । वे प्रार्थित होने पर मेरे स्मरण में स्थित हों । विशाल नेत्रों वाली यह कन्या हे शंकर ! सब जानती हैं । यहाँ हजार युग पर्यन्त पर जागती रही है । हे शिव ! दूसरी कोई ऐसी नहीं है । महादेव ! परम बुद्धिमान महात्मा वह ऋषि मार्कण्डेय भी प्रतिकल्प में तुम्हारी उपासना करते हैं । त्रिलोकी के कल्याणार्थ उत्तम व्रत करते हैं परमेष्ठी ब्रह्मा के ऐसा कहने पर भगवान शंकर मधुरवाणी से श्रेष्ठ नदी नर्मदा से बोले । महाभाग ! पूछने वाले ब्रह्मा के समक्ष तुम्हीं बताओ ? ब्रह्मा से वेदों का हरण किसने किया ?।।२६/३०।। रुद्र के ऐसा कहने पर वह मृगनयनी बोली । महेश्वर ! तुम्हारे सो जाने पर वेदों का जाप करते हुए ब्रह्मा से आपका व्यवधान पाकर भयंकर इस समुद्र में, पूर्व कल्प में उत्पन्न देवों से भी दुर्जय श्री सम्पन्न तुम्हारे द्वारा प्रथम प्रगट सुरासुरों में परम पराक्रमी मधु कैटभ दानव सूक्ष्म वायुमय शरीर होकर वेदों को हरकर महा समुद्र में गए हैं । महा तेजस्वी श्री शंकर ने अमृता श्री नर्मदा के वचन सुनकर देव श्रेष्ठ शंख, चक्र, गदाधारी श्री विष्णु का स्मरण किया ।।३१/३५।। महाराज ! देव श्रेष्ठ वह भगवान विष्णु जी सब देवताओं से पूजित और दानवों को विनाश करने वाले हैं । तभी वह महामत्स्य का रूप धारणकर पृथ्वी के नीचे प्रविष्ट हुए । उन्होंने समुद्र को मथा । भगवान ने वहाँ पाताल में रखे वेदों को देखा । मधु दैत्य के मारने वाले भगवान विष्णु ने पराक्रमी उन दोनों वीरों को भी देखा । और शीघ्र ही महावेग शाली बड़े भुजाओं वाले उन मधु कैटभ दैत्यों का वध किया । और चक्रधारी जगद्गुरु श्री विष्णु ने उन वेदों को लाकर ब्रह्मा जी को दिया । तदनन्तर भगवान विष्णु वेदों को पाकर प्रसन्न हो पुनः चराचर रूप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति किये । तब वह सब जीवों को पवित्र करने वाली श्री शंकर की सेविका पुण्य नदी नर्मदा पूर्ववत जल के रूप में बहने लगी ।।३६/४१।। उस नर्मदा के तट पर देवता-ऋषि-तपोधन-महात्मा प्रसन्न चित्त से भगवान

शंकर को पूजने लगे। शंकर की एक मूर्ति त्रिगुणात्मक होकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव के रूप से अन्य कारण भाव को प्राप्त होकर सृष्टि-स्थिति प्रलय करती है। इन तीनों मूर्तियों में जो अज्ञानी भेद दृष्टि करते हैं उन पापात्मा पुरुषों को धर्म और सिद्धि की प्राप्ति कैसे सम्भव है ? इसी प्रकार ये तीनों नदियाँ रुद्र से उत्पन्न है। एक होकर भी गंगा, नर्मदा, सरस्वती रूप से तीन भेदवाली हो गयी ।।४२/४५।। सब पापों को नष्ट करने वाली गंगा तो वैष्णवो श्री विष्णु की मूर्ति है। रुद्र के शरीर से उत्पन्न श्री नर्मदा भी सब पापों को विनष्ट करती हैं। और तीनों लोकों में प्रसिद्ध दिव्य रूप वाली कामना से यथेच्छ गमन करने वाली देवी ब्रह्माशक्ति-सम्पन्न थी सरस्वती की मूर्ति वाणी की विभूति के लिए स्थित हुई है। भगवती नर्मदा कोई अनिर्वचनीय शिव शक्ति स्वरूप दिव्य रूपवती यथेच्छ गति वाली देवी है। वह सर्वत्र सुरों से पूजित है। सब भूतों में व्याप्त अत्यन्त सूक्ष्म मृत्यु लोक की अमर मूर्तिकला अक्षया अमृत यह नर्मदा स्वर्ग की उत्तम सीढ़ी है ।।४६/४९।। मनुष्यों को संसार सागर से पार करने वाली रुद्र से उत्पन्न है। जो पुरुष इस नर्मदा का जलपान करते हैं वे सब पाप समूह से मुक्त हो जाते हैं। अनादिकाल से चले आ रहे संसार का परित्याग कर स्थिर परम शुद्ध मोक्ष स्वरूप भगवत्पद को प्राप्त करते हैं। जैसी गंगा जैसी नर्मदा ठीक वैसी ही सरस्वती है। स्नान, दर्शन तथा स्मरण से इनका पुण्य फल समान ही कहा गया है वरदान से यह महाभागा नर्मदा विद्वानों के द्वारा श्रेष्ठ बताई गयी है। दयालु अन्तः करण से यह माता अमृत रूपा है ।।५०/५३।। स्नान आदि मांगलिक कार्यों से तथा दर्शन मात्र से नर्मदा में जो श्री शंकर को नमन करते हैं। राजन् ! वे सब पापों से छूट जाते हैं। जिस कारण यह महानदी नर्मदा पार्वती और शंकर के अंग से उत्पन्न है लोगों को दर्शन स्मरण व स्नान से स्वर्ग पहुंचाती है। अतः यह पुण्य शालिनी है। जो मनुष्य इस प्रकार श्री शंकर के देह से उत्पन्न नर्मदा की पवित्र कथा को प्रेम से सुनता है वह पुरुष गन्धर्व

यक्षों द्वारा उच्च स्वर से गायी जा रही अपनी प्रशंसा सुनता हुआ भगवान शकंर को प्राप्त होता है ।।५४/५६।। इति श्री नौवां अध्याय ।।९।।

दसवाँ अध्याय

प्रलय में नर्मदा स्थिति वर्णन

युधिष्ठर उवाच-- कस्मिन्कल्पे महाभागा नर्मदेयं द्विजोत्तम ।
विभक्ता ऋषिभिः सर्वैस्तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥

युधिष्ठिर ने कहा--श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यह परम पूज्या नर्मदा ऋषियों एवं तपस्वी महात्माओं से किस कल्प से विभाग वाली हुई । वक्ताओं में श्रेष्ठ ! यह विस्तार से मुझसे कहो । प्रलय की अवस्था में लोकों में जो कष्ट उपस्थित होता है वह और उनका स्वरूप भी कहो निशपाप ! पहिले कल्प में पहले जैसे यह स्थित रही और प्रभो । इस अन्तिम कल्प की व्यवस्था भी इसकी कहो । सभा में ऐसा पूछे जाने पर श्री मार्कण्डेय ने कहा । मार्कण्डेय बोले- इस कथा को हमने पहले जैसा सुना है वह मैं कहूँगा तुम सब सुनो । इस कल्प से लगी हुई पहले की यह कथा बड़ी सुन्दर है । सब लोकों का विनाश करने वाला एक भयंकर समय आया ।।१/५।। उस महाघोर समय में भी इसका विनाश नहीं हुआ तथा सन्त महात्माओं ने जैसा इसका विभाग किया है उस कथा को तुम लोग सुनो । ब्रह्मा का एक दिन बीतते ही प्रलयकाल उपस्थित होने पर उनके मानस पुत्र साक्षात उन्हीं के समान श्रेष्ठ सनक, सनन्नद, सनातन, सनत कुमार आदि महात्मा और दूसरे देवगण यम, इन्द्र, वरुण आदि लोकपाल ये सभी लोकों के वृतान्त में तत्पर लोक-मर्यादा के संरक्षक अपने अधिकार के समय तक ठहरते हैं । तदनन्तर कल्प क्षय उपस्थित होने पर उनका श्रेष्ठ ज्ञान और आयु युग की व्यवस्था के अनुसार नष्ट हो जाती है । वे भूलोक को छोड़कर तब भुवर्लोक चले जाते हैं ।।६/१०।। स्वर्ग महर्लोक को, जन तपोलोक को, इन लोकों को क्रमशः छोड़ते हुए सत्य

लोक का आश्रय लेते हैं । युग सहस्त्र पर्यन्त पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर जब तक जगत् की सृष्टि हो तब तक सत्य लोक में रहते हैं। ब्रह्मा के पुत्र जो कोई प्रथम नहीं होते वे त्रिलोकी को छोड़कर आधार रहित परितत्त्व में प्रवेश करते हैं । उनके साथ ही जो अन्य तपस्वी ब्राह्मण होते हैं । वे ज्ञानी भी परम तत्त्व में प्रविष्ट होते हैं । यक्ष, राक्षस, पिशाच, और दूसरे देवगण ऋषि तथा दूसरे विविध वर्ग अन्य तलवासी जीव भी भूमि के साथ ही तब दुःखी हो जाते हैं ।।११/१५।। उस समय सौ वर्ष पर्यन्त कहीं वर्षा न हुई, उससे वृक्षों लताओं का विनाश हो गया । संसार का क्षय करने वाली यह भयंकर अनावृष्टि थी । तीनों लोकों को व्याकुल करने वाली जिससे सात समुद्र भी सूख गये तब सभी लोग भूखे दशों दिशाओं में घूम रहे थे । अत्यन्त दुखित लोग कन्द मूल फलों से जी रहे थे । बड़े दुख से समुद्र कुंआ आदि का उपभोग करते थे । वे सब समुद्रों के साथ सूख गये । अल्प शक्ति वाले जीव पहले समाप्त हो गये ।।१६/२०।। नदी समुद्रों के सूखने पर कुरुक्षेत्र में रहने वाले साठ हजार ऋषि, वानप्रस्थ व्रतधारी दाँतों से ही ओखली का कार्य करने वाले ब्राह्मण, तपस्वी हिमालय के गहन गुहावासी ऋषि थे । सभी भूख प्यास से व्याकुल होकर मेरे पास आकर हाथ जोड़कर मुझसे बोले । महामुने ! हम सब बहुत दुःखी हैं । हम तुम्हारे साथ कहाँ चलें जिससे हमारा समय यापन हो । श्रेष्ठ विप्र ! तुम बड़ी आयु वाले हो, तुम युग क्षय में भी नहीं मरते भूत, वर्तमान और आगे होने वाला, सब कुछ तुम्हारे हृदय में स्थित है । तुम उसे जानते हो । महाव्रतधारिन ! ।।२१/२५।। पूज्य ! हम लोग किस प्रकार समय बितायेंगे सारा चराचर रूप जगत् अवृष्टि से नष्ट होकर दुःखित हो रहा है । महाभाग ! तुम हमारी रक्षा करो जिससे हम विनष्ट न हों ! तदनन्तर मन से कुछ विचार कर शीघ्रता करते हुए ब्राह्मणों से मैने कहा । तुम लोग स्त्री पुत्रों के सहित कुरुक्षेत्र छोड़ दो । उत्तर दिशा छोड़कर हम सब सर्वोत्तम, दक्षिण दिशा चलेंगे । नगर, ग्राम

को और छोटे ग्रामों, खेड़ों के सहित नगरों और बड़े नगरों से शोभित अनेकों सिद्धों से सेवित नर्मदा के तट पर हम सब चलते हैं । श्री शंकर के अंग से उत्पन्न बड़े-बड़े वृक्षों से व्याप्त, महाभाग्यशालिनी उस नर्मदा को हम सब देखें ।।२६/३०।। तरंगों और भंवरों से भरे जल वाली, मेंढ़की और मछलियों से पूर्ण, विविध पक्षियों से शब्दायमान, करोड़ों ऋषियों से सेवित, महेश्वर--मतानुयायी भागवत-सम्प्रदाय वाले तथा सांख्याचार्यों, सिद्धों से सेवित श्री नर्मदा को देखें । वृष्टि के अभाव से डरे हुए नर्मदा के दोनों किनारों पर व्रत धारण करते हुए दिव्य आश्रम बनायें ऐसा कहने पर अनुसरण करने वाले विद्यार्थियों और अन्य जनों के साथ नर्मदा के तट पर पहुंचकर सभी निर्भय स्थित हुए । प्रलय के भय को प्रथम ही स्मरण कर पूर्व कल्पों के भय का भी चिन्तन कर, आदि कलियुग में ही नर्मदा के तीर पर पहुँच गये । जब नर्मदा तट पर रहते हुए उन देवताओं के सौ वर्ष पूर्ण हो गये ।।३१/३५।। मनुष्यों के छब्बीस हजार वर्ष बीत गये । राजन् ! वहाँ ऋषियों के रहते हुए मैंने एक आश्चर्य देखा अवृष्टि से सम्पूर्ण लोक के विनष्ट होने पर चर-अचर सबके सब सूख ज़ाने पर युग की व्यवस्था छिन्न-भिन्न होते ही सभी को अचेतन एवं हाहाकार सा करते हुए चारों वर्णों के लय हो जाने पर होम-बलि-आदि कार्य समाप्त होने से स्वाहाकार वषट्कार से लोक के शून्ह होते ही शुद्ध आचारों का भी विनाश हो जाने पर ऐसी भयावह स्थिति में करोड़ों ऋषियों से सेवित यह एक ही श्रेष्ठ नदी शेष रही । राजन् ! उन तीनों लोकों मैं कोई दूसरी रमणीय नदी नहीं थी ।।३६/३९।। जैसी यह पुण्यजल वाली नर्मदा इन्द्र की पुरी अमरावती के समान सुन्दर, देव मन्दिरों सी मनोहर, आश्रमों से स्वर्ग में मन्दाकिनी गंगा के समान शोभित होती है । बहुत वृक्षों से पूर्ण पर्वतों के भागों से युक्त, समुद्र की उत्पत्तिका स्थान यह नर्मदा गंगा के समान है । दोनों तटों पर सुन्दर मन्दिरों और स्थानों से शोभित है । जहाँ अग्नि में हवन हो रहे हैं । यज्ञ-धूम्र से भरी हुई श्री

नर्मदा अनेकों देव मन्दिरों, आश्रमों से और पूजन से संस्कारों से संस्कृत, वर्षा समय में रात्रि की भाँति दिखायी पड़ी ।।४०/४३।। सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली पुण्य दायिनी श्रेष्ठ नदी नर्मदा शोभा पा रही है । वहाँ कुछ पंचाग्नि तप करने वाले, तथा कुछ अग्निहोत्र कर रहे हैं । कुछ मुनि उग्र तपस्या में लगे हुए हैं । धूम्र का अशन-भोजन तो कुछ जल मात्र पीने वाले केवल वायु का आहार करने वाले । कुछ आत्म यज्ञ-सब कुछ परमात्मा में अर्पित करने वाले दूसरे भक्ति मार्ग का आश्रय लेने वाले कुछ वैष्णव व्रत का अन्य शैव व्रत का पालन करने वाले रहे । कुछ तपस्वी एकरात्र व्रत कुछ द्विरात्र व्रत अन्य छठे-छठे दिन भोजन करने वाले रहे । कुछ मुनि कृच्छ-चान्द्रायण अन्य अति कृछ-चान्द्रायण व्रत आत्म सिद्धि के लिए धर्म शास्त्रों में विदित है करने वाले रहे । ऐसे तपस्वियों से नर्मदा शोभित रही । भेद तथा अभेद दृष्टि से भगवान शंकर और विष्णु का जहां भजन-पूजन हो रहा है । जिस पुरुष की जैसी भक्ति विज्ञान जैसा होता है, महा भयंकर कलियुग में वैसे ही वे सिद्धि पाते हैं । भगवान मनुष्यों को जिस-जिस देवता में जैसी भक्ति देते हैं स्वभाव की एकता और भक्ति उसे अन्तःकरण में पाकर उसी में वह विलीन होता है ।।४४/५०।। जो पुरुष भेद दृष्टि से भक्ति करते हैं और जो महा वृक्ष रूपी शंकर को छोड़कर शाखा रूपी अन्य देवों का अवलम्बन करते हैं वे संसार में अनेक योनियों में भटकते हुए पशु पक्षी आदि योनियों में जन्म पाते हैं । बारम्बार चारों युगों में वे अनेक योनियों में देवयोनि से स्थावर-योनि-पर्यन्त आवागमन किया करते हैं । फिर जन्म फिर स्वर्ग में फिर भंयंकर रौरव नरक में चक्कर लगाते हैं । किन्तु भक्ति पूर्ण जो पुरुष सबको उत्पन्न करने वाले श्री शंकर में सुस्थिर भक्ति वाले है नर्मदा के तीर में भगवान का भजन करते हैं, फिर वे जन्म नहीं लेते । मरण पर्यन्त उपासना करने वाले कुछ लोग परब्रह्म को पाते हैं । कुछ तपस्वी बारह वर्षों में, दूसरे छः वर्षों में अन्य तीन वर्षों में ही, कुछ मुनि एक वर्ष

में ही, दूसरे छः महीनों में ही तथा अन्य मुनि शंकर तथा भगवती कीर्ति शालिनी नर्मदा का आश्रय लेकर तीन-तीन मास में ही उत्तम सिद्धि पा लेते हैं ॥५१/५६॥ संसार के दोषों को काटकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त हो गये। इस प्रकार घोर कलियुग में सैकड़ों हजारों मुनि नर्मदा के तीर का आश्रय लेकर भगवान शंकर को प्राप्त हुए हैं। ऐसे महात्मा और जो ब्राह्मण नर्मदा के तट पर पहुंच कर शिव को आराजना में तन्मय होकर भक्ति पूर्वक पूजाकर उन शिव को ही पाते हैं और ध्यान, पूजन, जप तथा महा व्रत आदि उपायों से जो नारायण का निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे श्वेत वस्त्रधारी महात्मा राजहंसों की भाँति संसार समुद्र के पार पहुंच जाते हैं। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है हाथ उठाकर यह कहा जाता है जो सर्वथा सिद्ध हैं कि सदा नारायण का ही चिन्तन करना चाहिए। जो पुरुष इन्द्रियों को तथा मन को वश में कर नर्मदा के तीर पर एक मास या पक्ष पर निवास करता हुआ भगवान शंकर का पूजन करते हैं। राजन् ! महा तेजस्वी वह पुरुष साक्षात् देवाधिदेव शंकर हो जाते हैं ॥५७/६२॥ कीड़े पतंग-पक्षी चींटे, चींटी ऐसे ही अन्य जीव जो नर्मदा के जल में मरते हैं, वे दिव्य रूप सम्पन्न उत्तम कुल में उत्पन्न होकर सौ वर्ष पर्यन्त धर्म पारायण होते हैं ॥६३॥ टेढ़े वृक्ष जो समय आने पर बड़ी तरंगों के प्रबल वेग में कटे मूल वाले होकर गिरते हैं, वे नर्मदा के जल से नष्ट पाप वाले प्रकाशित होकर स्वर्ग की शोभा बढ़ाते हैं ॥६४॥ जिनकी सब कामनायें नष्ट हो चुकी हैं। वे पुरुष और जो सकाम भक्त नर्मदा का तट पाकर वहाँ मृत्यु पाते हैं वे जड़, अन्ध-मूक भी स्वर्ग जाते हैं। फिर शंकर में पवित्र भक्ति वाले ब्राह्मणों का कहना क्या है ? ॥६५॥ मासभर उपवास करने से सुखाये गये शरीर वाले शिव के पूजन से वा विष्णु में भावना वाले पुरुष उस गति को नहीं पाते हैं, जो पुरुष नर्मदा के तट पर निवास करते हुए अविनाशी शंकर व नारायण की मन से परम पवित्र होकर पूजा करते हैं वे फिर माता का स्तन नहीं पीते ॥६६/६७॥

जो मुनि-देव-पूजित नर्मदा के तट का आश्रय लेकर नीवार, सांवा, जौ, इंगुदी फल आदि से अपनी जीविका चलाते हैं वे पुनः जीवन को नहीं पाते । नर्मदा के तट पर पहुंच कर जो पुरुष तीनों काल देव पूजन तथा सत्य से पवित्र होकर नर्मदा की परिक्रमा करते हैं, वे पुरुष पुनः विष्ठा मूत्र, चर्म हड्डी और शिर रूपी तकिया उपवर्ह सिराहना वाले होकर माता की कुक्षिमें निवास नहीं करते ।।६८/६९।। लोगों को बहुत यज्ञ दानों से अथवा सम्पूर्ण अन्य तीर्थों के सेवन से भी क्या है ? जो नर्मदा के उत्तर या दक्षिण तट का सेवन करते हैं, वे भगवान शंकर के पार्श्ववर्ती--पार्षद होते हैं । जो पुरुष शंकर के शरीर से उत्पन्न तथा उनके शरीर रूपी स्वर्ग की सीढ़ियों की पंक्ति रूप इस नर्मदा का सेवन नहीं करते वे संसार से वंचित, जन्म लाभ से चूके हुए, पंगु-अन्य पशुओं के समान हैं ।।७०/७१।। जो पुरुष श्रेष्ठ ब्राह्मण इस घोर कलियुग को फिर कभी न देखना चाहे तो वह आसक्ति को छोड़कर नर्मदा का तट नहीं त्यागते वे सबके हितकारी और सम्पूर्ण जनों के मान्य और वन्दनीय हैं । भृगु-अत्रि-वशिष्ठ-गार्ग्य-कंक आदि कितने ही असंख्यक ऋषि-मुनि नर्मदा में स्नान करते हुए आर्द्र देह देवलोकगामी हुए ब्रह्मपद को प्राप्त हुए हैं । नित्य निर्मल साफ चित्त वाले पुरुष इस अत्यन्त पुण्य पवित्र ज्ञान से पूर्ण नर्मदा के महात्म्य को पढ़ते हैं, भगवान शंकर के वचनानुसार वे महात्मा उत्तम गति को पाते हैं इसमें सन्देह नहीं ।।७३/७४।। इस प्रकार यह दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

नर्मदा माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर उवाच--अहो महत्पुण्यतमाविशिष्टा, क्षयं न माता इह कथा युगान्ते ।
तस्मात्सदा सेव्यतमा मुनीन्द्रैर्ध्यानार्चनस्नानपरायणैश्च ।।

युधिष्ठिर बोले--अहो ! नर्मदा बहुत पुण्य दायिनी और श्रेष्ठ है जो प्रलय में भी नष्ट नहीं होती । इसी से नर्मदा ध्यान-पूजन-स्नान में लगे हुए बड़े-

बड़े मुनीन्द्रों को सेव्य है। जिसका आश्रय लेकर धर्म प्रेमी ऋषि मोक्ष पा चुके हैं। वेद से प्रमाणित ऋषियों के बताये गये वे नियम तुम्हारे द्वारा कहे गये हैं, जिनके अनेक नियमों से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मनुष्य उन महादेव शंकर के पूजन से सदा बारह या छे आठ अथवा तीन चार वर्षों में क्या मासों में ही कलि के दोषों से मुक्त हो जाते हैं। देव श्रेष्ठ ब्रह्मा अथवा जगद्‌गुरु विष्णु का पूजन करने वाला मनुष्य भी सम्पूर्ण पाप से मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं। किन्तु हे निष्पाप ! यह सब मुझे आप विस्तार से बताओ जिस गहन संसार में सारे जीव डूबे हुए हैं वे सब स्वर्ग कैसे पहुँचेंगे ? यह मेरा संशय निवारण करे ॥१/६॥ श्री मार्कण्डेय जी बोले--बहुत जन्मों के अनन्तर यह मनुष्य जन्म मिलता है। इस जन्म में भी भगवान शंकर में बहुत कठिनता से भक्ति उत्पन्न होती है। राजन् ! तीर्थ दान उपवासों से यज्ञों तथा देव ब्राह्मण पूजन में अतिशय श्रद्धा द्वारा मनुष्यों को शंकर की भक्ति प्राप्त होती है। उनमें धर्म प्रेमी जनों को सर्वभाँति अनन्त श्रद्धा करनी चाहिए। भगवान शंकर भी श्रद्धा से ही साध्य अर्थात् प्रसन्न होते हैं, अतः श्रद्धा ही सर्वश्रेष्ठ है। भरत वंशोत्पन्न राजन् ! श्रद्धा में रहित सभी कर्म निष्फल है उसमें भगवान शंकर की भक्ति का आश्रय मनुष्य ले ॥७/१०॥ जिसकी भक्ति स्थिर है सात्विक, राजस और तामस, उन सब लोगों को श्रद्धा के अनुसार ही फल मिलता है। सभी जीव कर्म फलों के संयोग से बारम्बार संसार में आते-जाते हैं। सैकड़ों जन्मों में देवों का भजन-पूजन करने वाले ज्ञानी पुरुषों के पाप-कर्म के क्षय होने से तीनों देवों ब्रह्मा विष्णु और महेश: रूप शंकर में भक्ति होती है। भगवान संकर से मनुष्य को निस्संदेह मोक्ष प्राप्त होता है। पुनः जो ब्राह्मण नर्मदा तट का आश्रय लेकर तीनों वेदों के मार्ग में सन्देह रहित है वे परमगति पाते हैं। एकाग्रमन वाले जो पुरुष या अविकारी अविनाशी शिव-शंकर की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं ॥११/१५॥ अन्यत्र मनुष्यों

को बहुत समय में कर्म सिद्धि मिलती है पर नर्मदा के तट पर शीघ्र ही सिद्धि होती है । सांख्य-शास्त्र के ज्ञाता जन छै वर्षों में सिद्ध होते हैं । ज्ञान प्राप्त वैष्णव भी आगे सिद्ध हो जाते हैं । नदियों के समुद्र में मिलने की भाँति सब योग के जानने वाले लोग माहेश्वर योग को पाकर प्रलय-काल में एकता को पा लेते हैं । अतः सब योगों में माहेश्वर योग ही श्रेष्ठ है ।।१६/१९।। महेश्वर शंकर के परम भक्ति रूप माहेश्वर योग को पाकर मुक्त हो जाते हैं । भगवान् शंकर की पूजा या नर्मदा-तट पर शंकर की उपासना कर फिर मनुष्य जन्म नहीं लेते । यह गति बड़ी दुर्लभ और कठिन है । सब पापों का विनाश करने वाली भी है । जीव नर्मदा का आश्रय लेकर शीघ्र ही संसार से मुक्त हो जाते हैं । अतः मनुष्य नित्य ही नर्मदा में स्नान करे और भस्म का लेपन करे नर्मदा के तीर पर पहुँचकर मनुष्य शीघ्र ही सिद्धि पा लेता है । जो मनुष्य शान्त होकर आदर पूर्वक तीनों समय--प्रातः, मध्याह्न, सायं नर्मदा का पूजन करता है वह पापी पुरुष सर्व रोगों से मुक्त होकर परम गति को पाता है । भले ही वह पापी पुरुष हो तो भी वह छै मास में नर्मदा स्नान से शुद्ध हो जाता है । शुद्ध मन वाले पुरुष तो तीन मास में ही शुद्ध और सिद्ध हो जाते हैं ।।२०/२४।। जैसे सूर्य किरणों के स्पर्श से पहाड़ की वर्फ के टुकड़े हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार शुद्ध भस्म के कणों के स्पर्श से पाप भी विलीन हो जाते हैं । 'सद्योजातम' आदि मन्त्रों से युक्त भस्म से अभिषिक्त शंकर जी भक्त ब्राह्मण सूर्य के समान निर्मल प्रकाशमान होते हैं । जिस प्रकार गरुड़ के भय से डरे हुए सर्प भाग जाते हैं उसी प्रकार भस्म से अभिषिक्त होने पर सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ।।२५/२७।। नर्मदा के जल से पवित्र हुई भस्म से जो अपने शरीर को धूसर-लिप्त करते हैं वे शीघ्र ही पाप समुदाय से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं । जो पुरुष पाशुपत व्रत का विधि पूर्वक कहे गये नियम पालन करते हैं शूद्र के अन्न से रहित हुए वे परम गति को प्राप्त करते हैं । ब्राह्मण का अन्न अमृत, क्षत्रिय का अन्न दुग्ध के

समान, वैश्य का अन्न-अन्न के समान ही है। किन्तु शूद्र का अन्न रक्त माना गया है। शूद्र के अन्न से पुष्ट हुए जिन श्रेष्ठ ब्राह्मणों का मरण हो जाता है वे तप और ज्ञान से रहित होकर कौआ और गृध्द होते हैं। मनुष्यों का पाप उनके अन्न पर ठहरता है। अतः जो जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप खाता है। विशेष रूप से पति धर्म के सन्यासी साधु के वेष में क्षुद्र अन्न खाकर तप की चञ्चलता का आश्रय लेने वाले मनुष्य निस्सन्देह नरक में जाते हैं ऐसा शंकर ने कहा है ।।२८/३३।। ऐसे मनुष्य भी शंकर में भक्ति रखने वाले स्थिर चित्त के ब्राह्मण बड़े पाप समुदाय को भी जला देते हैं। परन्तु पाखण्डी लोभी एवं चञ्चल वृत्ति वाले पुरुष न तो सम्भाषण के योग्य हैं और न पास बैठाने के ही योग्य हैं वेद की ऐसी आज्ञा है। कुछ लोग माता-पिता के दोषों से और दूसरे अपने कर्मों के दोषों से या मिथ्या ज्ञान अभिमान से और कोई अहंकार से नष्ट हुए धर्म शास्त्र के अर्थों से विरुध्द चलने वाले क्लेशों को भोगते हुए भी शैवमत में शिव भक्ति के प्रभाव से उत्तम गति को पा लेते हैं। श्रध्दा रहित पाखण्डी निन्दित द्रष्टान्तों के अर्थों पर चलने वाले दुष्ट अविवेकी पुरुष सिध्दि नहीं पाते केवल तीर्थ कीर्त्तन-मात्र से निन्दित दृष्टि एवं भावना वाले लोग सिध्दि नहीं पाते। तीर्थ का बड़ा प्रभाव होने पर तथा शंकर की भक्ति का आश्रय लेने वाले लोलुप जन, निःसन्देह नीच योनियों में जन्म लेते हैं। तीर्थ एवं दानादि से सभी पापों का विनाश नहीं होता। किन्तु अज्ञान या प्रमाद से किये पाप ही विनष्ट होते हैं। यह समझकर विधिपूर्वक परमात्मा का जपादि करते हुए ब्राह्मणों को बारम्बार स्वधर्म में तत्पर होना चाहिए। ऊर्ध्व रूप त्रिलोचन रुद्र के मन्त्रों का जो अध्ययन जपादि करते हैं। आसक्ति रहित वह पुरुष छः मास में ही साक्षात् शंकर के दर्शन करता है। जो नर्मदा के तट पर निवास करते हैं. इन्द्रियों के वश में न होकर रुद्र संहिता की दश आवृत्ति करते हैं वह सब पापों से मुक्त होते हैं। श्री नर्मदा के तट पर निवास करते हुए जो पुरुष

शिव अथवा विष्णु की इस पुराण संहिता का नियमित पाठ करते हैं अथवा इसके तट पर शिव अथवा विष्णु की लीला विशेषों का वर्णन करते हैं वह शिव के समीप शिव के स्वरूप हो जाते हैं प्रलय पर्यन्त वह स्वर्ग लोक में पूजित होते हैं ।।३४/४४।। साँसारिक दुःख की निवृत्ति के लिए नन्दीश्वर ने जो प्रथम कहीं, देव, ऋषि, सिद्ध गन्धर्वों के मध्य गन्धर्वों के मध्य शिवालय में नन्दीश्वर के द्वारा गाई गयी उस शुभ गीता को हे राजन् ! तुम एकाग्र मन हुए सुनो । संसार के भय का नाश करने वाली तथा स्वर्ग और मोक्ष देने वाली पवित्र यह नन्दी गीता है । पद-पद पर संसार के तापों से सन्तप्त तथा नाना प्रकार से निज कर्म पाशों द्वारा जकड़े हुए मनुष्यों ! यदि तुम लोग संसार रूप गहन गुफा को छोड़ना चाहते हो तो एक मात्र हितकर मेरी बात सदा के लिए सावधानी से सुनो । इन्द्र ! तुम कुटिलता का परित्याग करो । यम ! तुम कष्ट मत करो । वरुण ! तुम अपने चित्त को शान्त करो । धनेश ! तुम लोलुपता--लोभ चाञ्चल्य छोड़ दो । दीनों तथा अनाथों और योग्य पात्रों को सब धन दे दो । यदि तुम संसार समुद्र की तरंगों के विक्षोभ से व्याकुल हो जन्म ग्रहण तथा मृत्यु से डरे हुए काम-क्रोध-लोभ आदि से ग्रसे हुए तथा यम-नियम आदि से ग्रसित हुए पुरुष को परम पावन पिनाकी शंकर क्या नहीं पालते ? यम ! तुम वृथा अभिमान मत करो । पीड़ा देते हुए परिहास का स्थान बनना होगा, वस्तुतः जो तुम्हारा रक्षक है शिव तथा विष्णु परायण मनुष्यों के लिए कराल काल भी बालक सा है उसे मृत्यु क्या ? और अधम यम भी क्या ? ऐसे जीवों को भला भय क्या ? नर्मदा के तट पर रहने वालों के तथा संसार के भार से दुःखी जीवों के भय का निवारण करने वाले भगवान शंकर ही हैं । दीन जीव ! तुम शिव का ही भजन करो, शिव का ही चिन्तन करो, और शिव की स्तुति करो, शिव का ही पूजन करो, शिव को नमन करो । ज्ञान तथा मोक्ष यदि चाहते हो तो शिव सम्बन्धी पुराणों का पठन करो तथा पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्र का जप करो ।

पञ्चात्मक तत्त्व का चिन्तन कर अपने शुद्ध स्वरूप को समझो । केवल शंकर का भजन-पूजन करो । यदि सर्व कल्याण पञ्च मुख श्री शिव की पूजा करते हो तो नाना भावों से युक्त शोक पहुँचाने वाले परिणाम में दुःखदायी अनेक कर्मों के करने से क्या है ।।३५/५७।। संसार रूपी हाथी के मद पूर्ण चिंघाड़ों से या बड़े कोलाहलों से भी क्या है ? यदि भगवान शंकर की भाव रूपी गन्ध से सेवा की है । अरे मूर्ख ! कर्मवश दुःख पूर्ण विषाद से क्या प्रयोजन है ? पापों के नाश में भयंकर, भय विनाशक, भवानी पति शंकर को भजो । सदा नर्मदा तट पर विहार करने वाले, दुखों के विनाशक, स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले, देवों के ईश, पापों को नष्ट करने वाले श्री शंकर की सेवा करो । देव नदी गंगा को भी सेव्य नर्मदा को और उनके तीर पर स्थित शंकर तथा विष्णु को छोड़कर मूढ़ पागल की भाँति भाव भक्ति से रहित होकर दिशाओं के किन भागों में भागे जा रहे हो ? नर्मदा का पुण्य जल सेवन करो । सनातन सदाशिव का पूजन भजन करो । पञ्चाक्षरी विद्या, नमः शिवाय का जप करो । इष्ट स्थान पर जाओ । बहुत उपायों से अपने शरीर को क्लेश देने से क्या लाभ है ? नर्मदा में पहुँचकर अनायास प्रसन्न होने वाले उत्कृष्ट स्थान वाले शिव को भजो । इस प्रकार नन्दीश्वर ने कैलाश पर्वत पर शिव के समीप लोकपाल देवों के सामने जो कहा वह मैंने तुम्हें भी सुनाया । श्री मार्कण्डेयजी बोले--नर्मदा के तट पर रहकर स्नान दान में तत्पर धर्म में नित्य स्थिति वाला पुरुष सब पापों से छूट जाता है । बिना विधि के नित्य ही चाहे सौ वर्ष पर्यन्त सब वेदों का स्वाध्याय करे, पर मृत्यु वारक जप के समान ही वह है । चाहे गुणों से भले ही वह अधिक हो जिस प्रकार बीज और योनि से अशुद्ध पुरुष शंकर को नहीं पाता । उसी प्रकार लांगुल मन्त्र भी गत वायु वाले पुरुष में स्थिर नहीं होता । गायत्री के जप से युक्त संयमी नियमित चित्त वाला गुणों से अधिक हैं । 'अग्नि मीले' 'इषेत्वोर्जेत्वा' और नित्य ही 'अग्न आयाहि' इन मन्त्रों का जप करे 'शन्नो

देवी' इस मन्त्र का तट पर स्थित होकर भी जप करता है वह सब पापों से छूट जाता है । नित्य सावधान होकर अंग-शिक्षा व्याकरण आदि, उपांग पुराण इतिहास आदि सहित वेदों का नित्य सावधान होकर पाठ करते हुए भी पुरुष वह फल नहीं पाता जो फल संयमी पुरुष गायत्री मन्त्र से प्राप्त करता है ।।५८/७०।। वेदज्ञ ब्राह्मण एक रुद्र सूक्त स्वाध्याय कर सब पापों से छूट कर विष्णु लोक जाता है । और अन्य जप योग मन्त्रों की स्थिति आरण्यक सूक्त आदि भी पुण्य दायक है । जिनसे मनुष्य पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक जाता है । नर्मदा के जल के साथ उसके तट के पास जो कुछ जप किया जाता है या दान देते हैं वह सब अक्षय हो जाता है । ऐसे उत्तम व्रत का संकल्प लेकर जो नर्मदा का आश्रय लेते है, वें मरकर अविनाशी-वैष्णव और अविनाशी शैव पद पाते है । कुछ लोग अप्सराओं से युक्त हो सत्य लोक जाते हैं । दूसरे सूर्य लोक में प्रलय पर्यन्त निवास करते है । हे राज श्रेष्ठ ! इस प्रकार इस वर्तमान लोक में कुरुक्षेत्र निवासी दस करोड़ ऋषि मेरे साथ नर्मदा के तट निवास करते हैं । महाभाग ! वे फल मूल का आहार करते हुए शिव की पूजा करते रहते हैं वहाँ समय की संख्या के अनुमान से दिव्य सौ वर्ष अर्थात् मानव समय के मान से छब्बीस हजार वर्षों का समय व्यतीत हो चुका है । राज श्रेष्ठ ! तब वहाँ सन्धि काल बीत जाने पर मनुष्यों के सौ वर्ष शेष रहे । तदनन्तर लोगों का विनाश करने वाली अनावृष्टि (अवर्षण) हुई । जिससे सम्पूर्ण जगत् का भयंकर विनाश हुआ । पहले जो यहाँ बेदों के पारगामी योग्य सिद्ध ऋषि थे उनके प्रभाव से इन्द्र भगवान ने वर्षा की । वहाँ बड़ी भारी वृष्टि चारों ओर होने लगी । तब वृष्टि होने पर उन सबकी वृत्ति (जीविका) सिद्ध हुई नर्मदा के तट पर उगे हुए श्यामाकं इंगुदी और विल्व आदि फलों से समय महासिद्धि को पाने की इच्छा वाले महात्मा बिताते रहे । फिर युगान्त समय उपस्थित होने पर जब कलयुग शेष रहा तब सम्पूर्ण चर, अचर रूपी संसार सब शुष्क हो गया ।

उस समय लता विहीन सारा भूमण्डल अवर्षण से अत्यधिक पीड़ित हुआ। राजन्! तब वे ऋषि भूख प्यास से पीड़ित हजारों की संख्या में युग स्वभाव में प्रविष्ट होकर हीन शक्ति वाले हो गये। जब हवन का स्वाहाकार एवं स्वधाकार नष्ट हो गया। प्रलय का समय उपस्थित हो गया लोग कहने लगे हमें क्या करना चाहिये ? कहाँ जाँय ? हमारा रक्षक कौन होगा तब इनसे मैंने कहा तुम लोग डरो मत। ऐसे बहुत से काल विभाग मैंने देखे है किन्तु नर्मदा तट का सहारा लेकर मैंने वे सब बिता दिये हैं। युग क्षय उपस्थित होने पर यह भगवती नर्मदा ही हमारी रक्षा करने वाली रही। श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! हमारी रक्षा के लिए कोई दूसरी गति नहीं है। ब्राह्मणोत्तम ! यही सब जीवों की जननी है पिता पितामह तथा उनके पितृगण प्रपितामह वे सभी इस महानदी नर्मदा का आश्रय लेकर स्वर्ग पहुंचे हैं। भृगु आदि सात मेरे पितामह जो प्रथम हो चुके हैं और पवित्र मुस्कराहट वाली मेरी पावनी सौभाग्यवती द्यौमणी और मेरी माता मनस्वती तथा भार्गव आगंगिरस, पुलस्त्य, पुलह वशिष्ठ, अग्नि नन्दन काश्यप, तथा महाभाग्य शाली नियम व्रत का आचरण करने वाले अन्य सैकड़ों हजारों महर्षि यहाँ सिद्धि पा चुके हैं। इससे यह भगवती सदा ही सेवनीय है। इसका कभी त्याग न करना चाहिए। इस प्रकार तीनों लोकों का उत्तम फल देने वालीं और नदी नहीं। नर्मदा के तट पर निवास करने वाले महात्मा अनेकों द्वन्दों-सुख-दुःख आदि तथा भूख-प्यास आदि बड़े भयों से शीघ्र छूट जाते हैं। अतः इस लोक और परलोक में उत्तम कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को श्रेष्ठ नदी नर्मदा का सर्व उपायों से सेवन करना चाहिए ॥७१/९४॥ ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥११॥

बारहवां अध्याय

नर्मदा स्तोत्र वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--एतच्छुत्वा वचो राजन्सहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।
नर्मदां स्तोतुमारब्धाः कृताञ्जलिपुटा द्विजाः ॥

सवैया-- पहिंले गणेश दूजे शेष तीजे शारद को, भाव के प्रसून श्रद्धा भक्ति से चढ़ाऊं मैं ।
चौथे मां पार्वती--पाँचवे मां सीता के चरण कमलों में निज शीश को झुकाऊं मैं ।

मार्कण्डेयजी बोले--राजन् ! इस वचन को सुनकर सभी ऋषि बड़े प्रसन्नहुए वे ब्राह्मण हाथ जोड़कर नर्मदा की स्तुति करने लगे । पवित्र जल वाली नर्मदे तुम्हें नमन है मकर वाहनी माँ तुम्हें नमन है । सुन्दर मुख वाली देवी ! पापो को छुड़ाने वाली तुम्हें पुनः पुनः नमन हैं । पुण्य जल रूपी आश्रय वाली सुर सिद्धों से पूजित और तीर्थों से सेवित तुम्हें सर्वदा नमन हो । शिव के अंगो से उत्पन्न शोभने ! तुम्हें हमारा नमन हो । समुद्र में मिलने वाली देवी ! तुम्हें नमन हो, वर देने वाली, कल्याणी ! इस लोक परलोक का सुख-साधन करने वाली अनन्त जीवों का आश्रय देने वाली निर्मल निष्पाप माता तुम्हें नमन हो । नदियों में श्रेष्ठ ! पापों को हरने वाली विचित्र कर्मों से युक्त गन्धर्व-यक्ष-सर्पो से सेवित अंगों वाली, सदा बनी रहने वाली, दया करने वाली हे देवी ! तुम हम सबका कल्याण करो । बड़े हथियारों से महिषों-भैसों से और सूकरों से पूर्ण बहुत तरंग-रूपी मालावाली देवी ! वर देने वाली सुख दायिनी माँ को नमस्कार करते हैं । हम सब आपकी वन्दना करते है । हमें पशुपाश बन्धन-अज्ञान से मुक्त कर दो तब तक ही अनेक अशुभ पापों से खूब बँधे हुए मनुष्य नरकों में भ्रमण करते है जब तक बड़े वायु के वेग से उठीं तरंगों वाले तुम्हारे पवित्र जल का स्पर्श नहीं करते । कमल के समान सुन्दर नयनों-वाली ! अनेक दुःखों तथा भयों से पीड़ित अनेक पापों से घिरे रागद्वेष, शोक-मोह आदि द्वन्दों से पूर्ण, बिना गति वाले मनुष्यों की तुम्हीं गति हो । हे देवि ! नदियाँ तुम्हें पाकर परम पवित्र हो जाती हैं इसमें संशय नहीं ।

महात्माओं से पूजित तुम दुःख से व्याकुल जीवो को अभय देवी हो । हे माता ! आपका जल चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से स्पर्श पाते ही परम पद देता है । फिर तुम्हारे पुण्य जल में डूबे पाषाण यदि शिव भाव को प्राप्त होते है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? हे भगवती ! पापों से पूर्ण शरीर वाले दुःखों से व्याकुल मनुष्य तभी तक नरको मेंघूमते हैं जब तक महा वायु से उठी लहरियो वाले तुम्हारे पवित्र जल का आश्रय नहीं लेते है । हे देवि ! मलेच्छ-पुलिन्द और राक्षस जो कोई तुम्हारा पवित्र जलपान करते है वे घोर भय से निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं इसमें आश्चर्य क्या है ? इस दूषित कलियुग में सरोवर नदियाँ सबसूख जाती है । किन्तु देवी ! तुम सदैव जल समूह से पूर्ण आकाश गंगा की भाँति शोभित होती हो । बरदानी श्रेष्ठ माता ! तुम्हारी कृपा से इस समय को भली-भाँति बिताकर हम तुम्हारे सुप्रसाद से भगवान शंकर को प्राप्त कर लें, तुम ऐसी कृपा करो । माता के समान तुम्हीं हमारी रक्षक हो । हम जब तक वर्षा के बिना पीड़ित इस भयंकर काल को तुम्हारी कृपा से पार कर लें । श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! जो लोग इस स्तोत्र को आदर पूर्वक पढ़ते है और जो शान्त पुरुष इसे सुनते हैं । वे सदिव्य वस्त्रालंकारों से भूषित हुए धर्म युक्त विमान से साक्षात् शंकर को प्राप्त करते हैं । जो नर्मदा जल में स्नानकर इस स्तोत्र का सदा पाठ करते हैं । यह उत्तम नदी भगवती नर्मदा अन्त में उन्हें शीघ्र ही परम पवित्र गति देती हैं । जो पुरुष प्रातःकाल उठकर और सोते समय प्रतिदिन इसका कथन करता हैं वह पुरुष पापों से मुक्त हुआ परम निर्मल अन्तःकरण व शरीर वाला होकर शिव का सामीप्य पा जाता है ॥१/१८॥ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

इक्कीस कल्प कथा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- एवं भगवतो पुण्यास्तुता स मुनिमुंगवैः ।
चिन्तयामास सर्वेषां दास्यामि वरमुत्तमम् ॥

सवैया-- देवि ! मुझे ज्ञान देहु--नर्मदा यश वर्णन करूँ, रावरी कृपा से माँ निर्मल मति पाऊँ मैं ।
बुद्धि को अति हीन एक आसरो तुम्हारो माँ, दीजो सहारो आज भक्तिगीत गाऊँ मैं ॥

श्री मार्कण्डेय ने कहा--इस प्रकार श्रेष्ठ मुनियों द्वारा स्तुति की गयी प्रणय दायिनी उस भगवती ने विचार किया मैं इन सबको उत्तम वर दूँगी । तदनन्तर रात्रि में सोये हुए उन ऋषियों को जानकर सुन्दर हासवाली देवी ने एक ऋषि को स्वप्न में दर्शन दिया पश्चात् आधी रात में जल के बीच से उठी हुई निर्मल शुद्ध वस्त्रों से युक्त दिव्य माला से विभूषित छत्र धारण किये हुए पद्मराग मणियों से सुशोभित सुन्दर मध्य भाग वाली उस देवी ने उन ऋषियों से पृथक-पृथक--मत डरो--ऐसा कहा--भूख आदि के भय को छोड़कर मेरे पास तुम लोग निवास करो । तभी स्वप्नावस्था में उन महर्षियों से ऐसा कहकर पश्चात् अपने जल में प्रवेश कर--अदृष्य हो गयी । तदनन्तर प्रातःकाल मुनि लोग हर्षित होते हुए परस्पर कहने लगे । हमने स्वप्न में परम दर्शनीय देवी का उसी प्रकार दर्शन पाया है जैसा सुना था । हमें उन्होंने शीघ्र ही अभय एवं सिद्धि को प्राप्त होने का वचन दिया है । उन नर्मदा का दर्शन परम श्रेष्ठ है । अब दूसरे दिन राजन् ! सपरिवार सभी ऋषियों ने अपने आश्रम के समीप उत्तम रूप वाली मछलियों को देखा । वहाँ उन मछलियों को देखकर आश्चर्य में पड़े हुए ऋषियों ने शान्त होकर हव्यकव्य से देवों का पूजन किया । महादेवी की कृपा से उन मछलियों को पाकर पुत्र, स्त्री, अनुचरो से सहित पृथक-पृथक व्यवहार का आचरण करने लगे । प्रतिदिन इस प्रकार आश्रयों में वे ब्राह्मण मछलियों का समूह देखकर विस्मय में पड़ गये । युधिष्ठिर ! तपस्वियों के आश्रम के द्वार-द्वार में बहुत पुष्ट

अंग वाली मरी हुई उन मछलियों को उनमें विशेष रूप से पाठीन नामक मछलियों को पाया। तब नर्मदा तीर में रहने वाले सभी ऋषि हृष्ट-पुष्ट होकर उन सबने भूख-प्यास से उत्पन्न भय को छोड़ दिया। भरतवंशोत्पन्न ! नर्मदा तट पर रहते हुए वे जप और तप करते हुए स्थित रहे। पितृगंण और देवों की पूजा करते हुए निरन्तर जप करने वाले उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से वह श्रेष्ठ नदी ताराओं और ग्रहों से आकाश की भाँति शोभित हो रही थी। वहाँ वेद परागामी उन परम तेजस्वी बहुत ब्राह्मणों के द्वारा धर्म का दान करने वाली नर्मदा पहले क्रमशः विभाग वाली हुई ॥१/१७॥ नर्मदा के तट पर रहने वाले दश करोड़ ऋषियों द्वारा यज्ञोपवीत एवं शुभ अक्षसूत्रों से विभाग वाली पृथक-पृथक अंगों वाली मनुष्यों को सर्व सुख देने वाली यह नर्मदा है। भरतवंशोत्पन्न ! समुद्र गामिनी दोनों तटों पर महा पुण्य-दायिनी है। अलग-अलग विशाल मन्दिरों से बालु का और मिट्टी के लिंगों से जो उत्तम नदी नक्षत्रों से रात्रि की भाँति शोभित होती है। इस प्रकार वे ऋषि देवों पितरों का तर्पण करते हुए प्रलय पर्यन्त नर्मदा के तट पर रहे। हे भारत ! तदनन्तर सौ वर्ष से अधिक कुछ और समय बीतने पर आधी रात में बिजली के समूह की कान्ति वाले सर्प का यज्ञोपवीत पहने हुए त्रिशूल हाथ में लिये हुए सुन्दर दर्शनीय रूप वाली एक कन्या जल से बाहर आकर उन ऋषियों से बोली। मुनियो ! मुझ अयोनिजा में--बिना योनि से ही जन्म वाली मुझमें तुम सब पुत्रो स्त्रियों के साथ प्रवेश करो तब तुम सिद्धि पाओगे। जिस-जिसकी जो इच्छा हो मैं पूर्ण करूँगी। विष्णु ब्रह्मा व शंकर सब श्रेष्ठ देवताओं को भी वहाँ ले जाऊँगी। मैं प्रसन्न होकर सब वरो को देने वाली हूँ। तुम सब प्राणायाम का साधन कर सावधान हो मुझमें प्रवेश करो। पुत्रो स्त्रियो के साथ आश्रमों को छोड़कर शीघ्र मुझमें आ जाओ। समय न बिताओ यह प्रलय का समय उपस्थित है। सब भूतो के भयंकर दाह के रूप में संहार उपस्थित हुआ है। प्रथम महा भयंकर प्रलय में मैं अकेली

ही थी। शेष नदियाँ और समुद्र सभी नष्ट हो गये। भगवान शंकर के बरदान में नष्ट नहीं हुई। ब्राह्मणो ! वह भगवान शंकर अमृत रूप नित्य एकरस प्रकाश मान स्थिर सर्व समर्थ सनातन और अविकारी है। पूजित तथा प्रार्थना करने पर वह क्या नहीं देते। हाथ में शूल लिए हुए सर्व यज्ञोपवीत वाली वह देवी नर्मदा ऐसा ऋषियों से कहकर पुनः जल में प्रविष्ट हो गयी। वह वचन सुनकर विस्मित मन वाले ऋषि मेरा अभिवादन कर बार-बार मुझमें क्षमा याचना करते हुए बोले हे मुने ! घर छोड़कर तुम्हारे आश्रम में निवास करते हुए हमारे किये गये और कहे गये अपराधों को क्षमा करें। सब छोड़कर शिष्यों और बन्धनों के साथ वे महात्मा एक अक्षर वाले ब्रह्म (ॐ) का जप कर हृदय में महेश्वर का चिन्तन कर मन्त्रों से पवित्र हुए जल में स्नान कर उत्तम व्रत वाले पक्षधारी पर्वतों की भाँति सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कुशों को हाथ में लिए अग्नि के साथ नर्मदा के जल में प्रविष्ट हो गये। राज श्रेष्ठ ! उन सबके चले जाने पर तब मैं वहाँ अकेला देवेश भगवान शंकर को पाकर उनका और नर्मदा देवी का पूजन करता रहा। भरतवंशोत्पन्न राजन् ! ब्रह्मा की कृपा से नर्मदा के साथ मैंने मायूर आदि कल्पों का अनुभव किया है। इसकी पूर्व कालिक स्थिति को मैं जन्म से लेकर आज तक नहीं जान पाया। निश्चय ही शंकर की इला नामक कला शक्ति है। यह नर्मदा सब पापों का विनाश करने वाली संसार से तारने वाली है। पाण्डुनन्दन ! प्राचीन चौदह कल्पों में यह नर्मदा नष्ट हुई। देवी ने जिस प्रकार मुझके कहा है वैसे ही तुम्हें बताऊँगा। पहला कापिल, दूसरा प्राजापत्य, ब्राह्म सौम्य, सावित्र बार्हस्पत्य-प्रभासक-माहेन्द्र-अग्नि-कल्प जयन्त-मारुत वैष्णव बहुरूप ज्योतिष में चौदह कल्प मेरे द्वारा कहे गये हैं जिनमें नर्मदा नष्ट हुई। पन्द्रहवाँ मायूर सोलहवाँ कौर्म बक-मात्स्य पाद्म-व्रटकल्प और इस समय चल रहा इक्कीसवाँ बाराह कल्प है। मयूर आदि ये सात कल्प मेरे रेवा के साथ व्यतीत हुए है। राज श्रेष्ठ ! शिव के अंग से उत्पन्न नर्मदा के इक्कीस कल्प अनेक

बार मैंने देखे इन सबको मैंने तुमसे कहा ॥१८/४७॥ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

जगत् सँहार वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- ततस्ते ऋषयः सर्वे महाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तु परमं लोके ततः किं जातमभ्दुतम् ॥

सवैया-- जनम लिया है तो मरना है एक दिन माँ, तेरी ही गोद में माँ मरके समाऊं मैं ।
एक ही प्रार्थना और एक अभिलाषा मेरी, कर्म वश संसृति में यदि जनम पाऊँ मैं ॥

युधिष्ठिर जी बोले--उसके अनन्तर महाभाग्य शाली तपोधन वे ऋषि उत्तम लोक को प्राप्त हुएं । पश्चात् क्या आश्चर्य जनक हुआ, कहें । मार्कण्डेय जी बोले--इसके अनन्तर नर्मदा के तट पर निवास करने वाले उन ऋषियों के चले जाने पर सब जीवों का विनाश करने वाला भयंकर संहार होने लगा । कैलाश के शिखर में बैठे हुए सनातन देव सदा शिव की ब्रह्मा आदि देवों ने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के मन्त्रों से सुन्दर स्तुति करके कहा देवेश । युग सहस्त्र का समय बीत चुका हैं अब देवता असुर मनुष्यों के सहित इस जगत् का संहार करो । देव । तुम्हीं ने अपने रूप का आश्रय लेकर प्रथम यह सब बनाये और वैष्णवी शक्ति का आश्रय लेकर तूने ही इसका पालन किया है । एक ही मूर्ति ब्राह्मी-शैवी-वैष्णवी के रूप में तीन भेद वाली है । वैष्णवी मूर्ति का आश्रय लेकर तुम इसका पालन करते हो । महेश्वर । सृष्टि-संहार और रक्षा के लिए ऐसा करना उचित ही है । इस प्रकार श्री विष्णु भगवान के इस सुन्दर सत्य पूर्ण वचनों को सुनकर गण और परिवार गण और परिवार हसित ब्रह्मा तथा विष्णु के सहित, उमा के साथ नील लोहित रुद्र ने इन सातों लोकों का भेदन कर भूलोक से ब्रह्म लोक पर्यन्त और उससे भी पर ब्रह्माण्ड के भेद कर उन्हीं के साथ भगवान ने जन्म-मृत्यु से रहित शैव पद में प्रवेश किया । वहाँ वायु-प्रकाश और अग्नि और भूतल

नहीं था जहाँ उमा के साथ श्री शंकर स्थित है वहाँ सूर्य, ग्रह तथा नक्षत्र दिशाएँ क्या वहाँ लोकपाल भी नहीं थे। राजन् ! सुख और दुःख भी वहाँ नहीं था। कवि जिसे ब्रह्म पद के रूप में कहते हैं और जिसे विद्वान शिव पद कहते है। दूसरे उसे क्षेत्रज्ञ-जीव और ईस भी कहते है। जिसे कोई सर्व-स्वरूप ईशान और अजन्मा तथा शर्व प्राचीन कहते हैं। एक रूप और अनेक रूपों वाला भी उसे कहते हैं। उसे रूप सहित आद्य और सबसे परे अविकारी अविनाशी भी कहते है। विद्वान् वर्ण से रहित अथ स्वरूप, नाम गोत्र से रहित जिसे तुरीय चतुर्थ पद-स्थान कहते है। ध्यान-अर्थ विज्ञान स्वरूप परम सूक्ष्म सब में स्थित सबसे श्रेष्ठ सबका स्वामी कहते है। फिर वे सभी भगवान शंकर को पाकर उनमें मिलकर एक हो जाते हैं और फिर वे ही सृष्टि काल में पृथक-पृथक तपों से सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं। रुद्र बाद में वही सबका संहार करते है विष्णु रूप में लोकों का पालन करते हैं। तथा ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं। महेश्वर काल रूप होकर प्रकृति से संयुक्त होते है। विश्व रूप वाली महा माया उनके पास में स्थित है जिसे श्रेष्ठ बुद्धिमान तत्त्व के जानकर पदार्थो की प्रकृति कहते हैं। पुरुष और प्रकृत्ति के रूप में कारण स्वरूप वह परमेश्वर ही है उससे ही यह चराचर जगत् सम्पूर्ण रूप से उत्पन्न हुआ है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर यह सब उसी में लीन होता है। भग और लिंग से चिह्नित सम्पूर्ण जगत् भगवान से व्याप्त है। भग रूपी भगवान विष्णु है और लिंग रूपी भगवान शंकर है। सम्पूर्ण लोकों में वह प्रकाश ज्ञान है। भूः, भुवः स्वः आदि लोकों में वही गाया जाता है। सारे जीवों में वही प्रविष्ट हैं। उससे उसे भग रूप से स्मरण करते है। सर्व देव रूप वह महान देव सब में प्रवेश करने वाला प्राप्त होने से भी उसका नाम भग है। ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् जिसमें लीन होता अर्थात् एक भाव को प्राप्त होता है। उससे विद्वान उसे लिंग कहते है। तब महादेव श्री शंकर ने समीप में स्थित देवी से कहा

हे सुन्दरी ! अब सारे जगत् का संहार करो बिलम्ब मत करो । श्वेत चन्द्र की किरणों से निर्मल सुन्दर इस रूप को तुम छोड़ दो । भयंकर गणों से युक्त होकर तुम इस सम्पूर्ण जीव लोक का भक्षण करो । कमल के समान नेत्रों वाली ! तब मैं इस जगत् का मर्दन करूँगा तथा जल में डुबा दूँगा । सम्पूर्ण जगत् की एक समुद्र मय बनाकर फिर तुम्हारे साथ सुख पूर्वक सोऊँगा ।।१/२७।। देवी जी ने कहा--परम तेजिस्वनी देव ! मैं माता होकर इस जगत् का संहार नहीं करूँगी । अत्यन्त व्याकुल और चेष्टा रहित इस संसार को मैं नहीं खाऊँगी । स्त्री स्वभाव से मेरा हृदय दया शील है । जगत्पते ! इस जगत् को मैं कैसे जलाऊँगी । अतः शंकर तुम स्वयं ही इसका संहार करो इस प्रकार कहे जाने पर श्री शंकर ने क्रोधित होकर हुंकार से उस देवी को धमकाया भय दिया । इसके अनन्तर क्रोध से पूर्ण नेत्रों से देखते हुए 'ॐ हुंफट्त्वर्चसः', ऐसा कहा । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! शंकर के द्वारा हुंकार से घुड़काई जाने पर विशाल नेत्रों तथा मोटे जंघा वाली वह देवी तत्क्षण ही रात्रि के समान रौद्र भयंकर हो गयी । 'हुम्' उच्चारती हुई तुमुल शब्दों से दशों दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई बड़ी भयंकर वह तीव्र बिजली की भाँति बढ़ने लगी । उस समय वह बिजली के गिरने के समान दुःख से दर्शनीय विद्युत समूह की भाँति चञ्चल अपनी ज्वालाओं से पूर्ण भयंकर बिजली की अग्नि के समान नेत्रों वाली थी । बिंखरे केशों वाली बड़े नेत्रों तथा दुर्बल ग्रीवा वाली, पतले उदर वाली व्याघ्र चर्म रूपी वस्त्र तथा सर्परूपी यज्ञोपवीत धारने वाली, अग्नि की चिनगारी के समान विच्छुओं से सर्पो से शोभित हो गयी । उसने अपने विस्तार और ऊँचाई से तीनों लोकों को पूर्ण कर दिया । वह प्रकाशित बाम अंगों वाली काले साँप को एक कान का कुण्डल बनाये हुए विचित्र दण्ड हाथ में लिए व्याघ्र चर्म पहने हुए थी । जगत् का संहार करने वाली महा भयंकर रूप धारण किये हुए कठोर फुफकार छोड़ती हुई अपने ओठों को चाटती हुई वह बढ़ने लगी । अपना मुख फैलाये

हुए धुर धुर शब्द बाली जगत् में क्षोभ पैदा करने वाली हुई। उसके पीछे भूत खेल रहे थे। लम्बी सांस छोड़ती हुई बड़ी कठोर और भयंकर थी। वह अट्टहास कर रही थी। अग्नि कुण्ड के सम्मान बड़े नेत्रों वाली विकृति नाशिका वाली किलकिल नामक विनाशक शब्द करती हुई सम्पूर्ण संसार को जला दिया। वहाँ जलते ही देवगण पृथिवी में गिरने लगे, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े सर्प भी गिरे। हा, हा, हे, हे शब्द करने वाले भूतों के झुण्ड झंझावत मुख से बुलबुले गिराते हुए ताराओं और बिजली टूटने के साथ-साथ रोने के व दुःख के स्वरों वाले वे गिर रहे थे। तब उछल रहे गिर रहे जल रहे भूतों से सम्पूर्ण पृथिवी चराचर सहित सारी त्रिलोकी पूर्ण हो गयी हो। चटचटा शब्दों से गिर रही पहाड़ियों की चोटियों से वहाँ उस भयंकर उत्सव में वह माता रुद्र के आनन्द को बढ़ाने वाली हुई। भूतों की हिंसा करती हुई जीवों का भक्षण करने वाली नरों को चबाती हुई विविध गणों को लेकर श्यारिनि का शब्द करने वाली जगत् के संहार कर्म में लगी हुई गिर रहे रक्त की धारा के समक्ष देख रही रक्त से सने शरीर वाली वह चण्ड के रूप में उपस्थित हुई। भृगु आदि महर्षि जो महर्लोक पहुंच चुके थे वे भी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सैकड़ों बार नष्ट होते रहे ॥२८/४७॥ यक्ष सर्प राक्षसों के साथ देवता असुर भी डरकर कुछ पाताल में प्रविष्ट होने लगे। दूसरे गुहा आदि में छिप रहे थे। उस प्रलय काल में महादेव के द्वारा नियुक्त वह देवी सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त कर मृत्यु के समान स्थित थी। अकेली रहकर भी वह नव रूप दश रूप सौ रूप चौसठ रूप वाली अट्टहास करती हुई हजारों रूप वाली क्या लाखों करोड़ों रूप वाली विविध रूपों, आयुधों, आकारों वाली अनेक बाजों के साथ भ्रमण कर रही थी। शिव की आज्ञा से देवी शिवा ऐसे भयंकर रूप वाली हुई। राजन्! सम्पूर्ण दिशाओं में आकाश में भयंकर हथियारों को धारण किये हुये नष्ट हो रहे उन प्राणियों को रोकते हुए शूल पट्टिस हाथो में लिए शिव के गण

उस देवी के साथ विचर रहे थे । उस समय विनायक गणों के साथ कुछ मातृगण जो जगत् का संहार करने वाले और बड़े भयंकर थे वे बढ़ने लगे । पश्चात् उस देवी की कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान दाढ़ हजारों करोड़ों योजन बढ़ी । दाढ़ी की पंक्ति क्रूर तीखे, कठोर, नख पृथिवी को और आकाश को खींच रहे थे । उनकी दाढ़ों के प्रहारो से वन और पर्वत चूर-चूर हो गये । शिलाओं के समूह हजारों टुकड़े हो गये । राज श्रेष्ठ ! हिमालय, हेमकूट, निषध, गन्ध मादन, माल्यवान्, नील और महापर्वत श्वेत, मेरु मध्य, इलापीठ, समुद्र सहित लोकालोक के साथ सप्त द्वीप ये सभी कम्पित हो गये । दाढ़ रूपी वज्रों के स्पर्श से बड़े बड़े वृक्ष गिर गये । चारों ओर भयंकर उत्पातों से दिशायें व्याप्त हो गयी ताराओं, ग्रहों का समुदाय और सम्पूर्ण देवगण, महा मातृगण और हजारों शिवाओं से घिरी हुई वह देवी उस प्रलय बेला में सारे जगत् में विचर रही थी । चारों ओर विचर रहे, घूम रहे, विलाप कर रहे, उपद्रव कर रहे, जला रहे रुद्र के गणों से दशों दिशायें पूर्ण हो गयीं । फैले शिला समूह केशों और सूखी हड्डियों से पूर्ण जले हुए ग्राम और नगरो में भस्म की ढेरी के रूप में, स्थित चिता के, धूएं से व्याप्त हाहाकार से व्याकुल आह आदि दीन दुःख मय शब्दों से युक्त चराचर सहित सारा त्रैलोक्य उस समय निराधार और रक्षक रहित आश्रय हीन हो गया ।।४८/६६।। चौदहवां अध्याय पूर्ण हुआ ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

सृष्टि सँहार वेग का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--ततो मातृसहस्रैश्च रौद्रैश्च परिवारिता ।
कालरात्रिर्जगत्सर्वं हरते दीप्तलोचना ।।

सवैया-- *मानुष बनूं तो तेरे तट पर ही जनम धरूं, तेरौ स्नान कर नित तेरे गुन गाऊ मैं ।*
अन्य जीवन बनूँ तो तेरे आश्रय में रहूँ, जन्म जन्मों तक रेवा तुझमें विलय पाऊं मैं ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--तदनन्तर हजारों माताओं और रुद्र गणों से युक्त

प्रदीप्त नेत्रों वाली काल रात्रि सम्पूर्ण जगत् का विनाश करने लगी तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव के रूप वाली शक्तियाँ चन्द्र, शूल, गदा, खड्ग-वज्र शक्ति ऋषि पट्टियों के साथ उस समय विचर रही थी। काल रात्रि से प्रेरित सम्पूर्ण माताएँ प्रलय में खट्वांग एवं अर्धज्वलित काष्ठों से दशों दिशाओं में दौड़ रही थीं। उनके चरणों के तीव्र प्रहारों से तथा हुंकार के उच्चारण से यह सम्पूर्ण संसार चारों ओर से जल रहा था। हाहाकार के शब्दों का विलाप और मुण्डों और केशों से विनष्ट मार्गों घरों और गोपुरों आंगनों से चारों ओर नरमुण्डों केशों से विपिन वर्ग वाली यह पृथ्वी अति भयंकर रूप वाली हुई ॥१/६॥ राजश्रेष्ठ ! जो यह हजारों योजन पर्यन्त फैला हुआ जम्बूद्वीप कहा जाता हैं उसे घर्षित करके वह सब नष्ट कर दिया। जम्बू द्वीप, शाक, कुश, क्रौञ्च, गोमेद, शाल्मलि पुष्कर द्वीप में रहने वाले और पर्वतों में रहने वाले वे सभी मृत्यु भूतो तथा मातृगणों से ग्रस्त होकर नष्ट हो गये। मांस चर्बी बसा से उग्र बड़े-बड़े सुरा के कपालों से बहुत रहने वाले मदिरा के गन्ध से मोहित भयंकर मातृगणों एवं भूतगणों से युक्त हजारों ज्वाला से व्याप्त बिजली के समान प्रकाशित कुण्डल धारण किये हुए रक्त की धारा से लाल अंगों वाली मायाओं में भयंकर महा मांस और बसा से प्रेम रखने वाली रक्त पीती हुई हाथ में कपाल खप्पर लिये हुए देव दानवो को चबाती हुई विकट वेश धारण किये हुए नाचती हुई तीनो लोकों को भय दे रही थी। बिजली की तीव्र कड़कड़ाहट के समान हँसने वाली सातों द्वीप तथा समुद्र सहित पृथिवी को खाकर जहाँ भगवान शंकर थे वहाँ अपने स्थान पर वह देवी जा पहुंची। वहाँ मातृ गणों के पास नर्मदा के तट पर निवास किया। देवों के शरीर रूपी ऊँचे कटों पर प्रसन्न मुख होकर वह नाचने लगी। अमर देव कहे जाते हैं और शरीर को कट कहते हैं श्रेष्ठ राजन् ! जिससे यह पर्वत छिन्न भिन्न अस्थि समूहो से वसा मेदा आदि से पूर्ण कटों--शरीरों से व्याप्त था। अतः योग्य पुरुषों द्वारा रचित है। नित्य ही वहाँ पार्वती के साथ शंकर जी स्थित है

। तब मैं वहाँ नियम युक्त हो उनके चरणों के आगे स्थित हो गया । तदनन्तर ताल दे-देकर उछलने वाले गणों मातृ गणों के साथ श्री शंकर मृत्यु के साथ परम प्रसन्न होकर नाचने लगे । खट्वांग अर्धज्वलित काष्टों पट्टियों और परिधों को लिए हुए वामन-बहुत छोटे जटाधारी मुण्ड लम्बी ग्रीवा ओठ और केश वाले गण, मांस, मेदा वसा आदि हाथ में लिए झुण्ड के झुण्ड नाचने लगे बड़े मूत्रेन्द्रिय बड़े पेट और भुजा वाले वे विरूप मुखों भयंकर भुज और मुख आदि से नाचने और हंसने लगे । विपरीत समय होने पर उसे उसने दुःख मय बना दिया । उनके बीच में जगत् को परम भय देने वाले महा भयंकर बिजली के समान पीले केश वाले नाच रहे मृत्यु को मैंने देखा । उनके पास में बैठी हुई देवी श्वेत वस्त्रो से सजी हुई कुण्डलों का झंकार युक्त कपोल वाली सर्प रूपी यज्ञोपवीत धारण किये विविध विचित्र भेटों से शंकर को पूजती हुई वहां विश्व वन्दिता माता को देखा । वह बड़े तलाबों एवं नदी के पटने से अदृश्य रूप वाली और दृश्य रूप वाली भरत वंशोत्पन्न ! सबके मध्य में सुर सिद्ध मुनियों से वन्दित हो रही थी । इसी बीच में भयंकर उनचास भेद वाली बड़ी-बड़ी लम्बी लहरियों और फेन से सम्पन्न जगत् को सजल करती हुई मृग के समान काले परिधान वाली देवी नर्मदा को मैंने देखा । राज श्रेष्ठ ! इस प्रकार चन्द्रमा-सूर्य की किरणों से युक्त चराचरात्मक जगत् शून्य हो गया मैंने इस अनुपम संहार को प्रत्यक्ष देखा ।।७/३०।। बड़े उत्पातों से उत्पन्न नक्षत्र मण्डल के विनाश से युक्त बलात चक्र बनैठी की भाँति सम्पूर्ण दृश्य को बड़ी तेजी से घूमते हुए करोड़ों विमानों से परिपूर्ण किन्नर महा सर्पों से युक्त शब्दाय मान महावायु उठा जिससे सब चराचर काँप उठा । रुद्र के मुख से उत्पन्न सर्वत्र नाम से प्रसिद्ध उस वायु ने सातों समुद्रों को सुखा डाला । भस्म युक्त बंध केश वाले घोर शब्द करने वाले प्रज्ज्वलि विशाल शूल धारण किये हिए वह शंकर प्रति दिन तुम्हारी रक्षा करे । कृपोलों की माला कण्ठ में पहने हुए महा सर्प रूपी सूत्रों से बद्ध केश वाले सूत्र धारी पिनाक पाणि कवच किरीट

धारण किये हुए शंकर श्मशान की भस्म से लिप्त सर्व अंग वाले थे । वह सर्पो से लिपटे गात्र वाले गले में विष की नीलिमा भाव में नेत्र, रूप में अग्नि, मस्तक में चन्द्र और गंगा से वह सुशोभित थे । पिनाक धनुष और खट्वांग से भयंकर हाथ बाले व्याघ्र चर्म का परिधान किये डमरू का शब्द करते हुए शंभु शोभायमान हो रहे थे वह शंकर प्रलयकाल में सातों लोकों के मध्य भाग में तथा बाहर स्थित बड़ी भुजाओं से सम्पूर्ण अंगों को लपेटे हुए सूर्योदय के समान अत्यन्त रक्त वर्ण से भीतरी भाग वाले नेत्रों से, संध्या कालीन मेघ रक्त कमल पद्मराग मणि सिन्दूर और बिजली के समान रक्त वर्ण प्रकाश मान तेजस्वी लिंग और लोचन से प्रलय काल में क्रीड़ा कर रहे थे । वह भगवान मेरु पर्वत को लिए हुए मानो सुवर्ण मय दण्ड से संहार करते हुए चरणों के अग्र भाग के चलाने से पहाड़ों को बिखेरते हुए जगत् के स्वरूप को विनष्ट करते हुए विचरने लगे । समस्त लोकों के संहार की इच्छा करते हुए भयंकर अट्टहास कर रहे थे । विश्वेश महा प्रभू शंकर ने सबको व्याकुल करते हुए सम्पूर्ण त्रिलोकों का संहार कर डाला । जगत् का संहार करने वाले अजन्मा देव श्रेष्ठ उन शंकर को देखकर मातृ गणों के साथ वह काल रात्रि और अन्य सभी शिव का पूजन करने लगे । नन्दी-भृंगी और अन्य गण आदि जगत् में श्रेष्ठ सबके एक मात्र कारण काम के शत्रु को सबको संहार करने से हर रूप शंकर को दिन रात प्रणाम करने लगे ।।३१/४२।। पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा शिव स्तुति वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--समातृभिर्भूतगणैश्च घोरैर्वृतः समन्तात्स ननर्त शूली ।
गजेन्द्रचर्मावरणे वसानः संहर्तुकामश्च जगत्समस्तम् ।।

सवैया--चातक तृषित जपत एक नाम अहर्निश, तैसे ही माँ-मैं तेरो ही नाम जपत हौं ।
पंचाग्नि क्या अनेक अग्नि तेरे कारण, तेरी ही शरण में आयकें अनेक बार तपत हौं ।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--मातृ गणों एवं भयंकर भूतगणों से चारों और

घिरे हुए गजराज के चर्म को धारण किए हुए सारे जगत् का संहार चाहने वाले वह शूल धारी शंकर नृत्य करने लगे । सब देवों के देव अनेक मन्त्रों से गठित माला युक्त मेदा वसा और रक्त से भूषित पात्र वाले महादेव त्रिलोकी दाह के समय नृत्य करते रहे । प्रलय काल में सर्व श्रेष्ठ महा प्रभावशाली व्यापक परमेश्वर ने संवर्तक नाम रखकर काल रात्रि से युक्त हो सम्पूर्ण त्रिलोकी को जला दिया । तदनन्तर चिनगारियों एवं धूम से मिश्रित भड़की हुई ज्वाला तथा तीव्र वायु ने घोर अट्टहास किया । उन रुद्र ने बड़वानल के समान भयंकर मुख को फैलाया । उनके मुख से निकले हजारों बिजली की कड़क के समान भयंकर उस अट्टहास से दशों दिशाएँ भर गई और महासागर भी क्षुब्ध हो गये । वह शब्द तीन होकर ब्रह्म लोक पर्यन्त व्याप्त हो गया । सारा ब्रह्माण्ड रूपी-भाण्ड चलाय मान हो गया । यह क्या है इस प्रकार व्याकुल चित्त वाले ऋषि भयभीत हो गये । तब वे सभी सुर असुर और महा नागों के साथ सहसा डरे हुए देव-देव ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे बोले । बिजली की तीव्र कान्ति से तेज प्रकाश मान और भयंकर अंगों से युक्त प्रलय काल की अग्नि से व्याप्त शरीर को धारण किए हुए पृथ्वी में स्थित यह कौन खेल रहा है ? जिसके अट्टहास में सम्पूर्ण संसार वा त्रिलोकी विमोहित और व्याकुल यह जगत् दिखाई दे रहा है । क्या यह क्षण भर में ही त्रिभुवन का संहार करना चाहते हैं । सात समुद्रों के साथ और तुम्हारे साथ जन लोक, और सत्य लोक भी गति शील हो रहे है । विनाश की ओर जा रहे है । सर्वज्ञ देव ! इस सबके संहार का इच्छुक यह कौन देव है । तुम इसे कहो ऐसी विषम स्थिति हमने कदाचित् देखी नहीं । तुम इसका यथार्थ रहस्य जानते हो और आप हम सबके परम मान्य हो । ऋषियों के इस वाक्य को सुनकर ब्रह्मा भी देव-असुर आदि को आश्वासन देकर सुन्दर वचन बोले ।।१/११।। ब्रह्मा जी ने कहा--वह यह काल स्वरूप अक्षयात्मा रूद्र सम्पूर्ण लोकों का संहार करना चाहते है । सौ वर्षों के पूर्ण होने पर

इस प्रकार वह शयन करते है । वह भगवान् रुद्र ही होंगे इसमें आश्चर्य नहीं है । यह महादेव समय की गति के भेद से संवत्सर परिवत्सर, उद्वत्सर और वत्सर रूप है । वह दृष्ट अदृष्ट रूपेण बहुत पूजित वा हवन किया जाने से बहुत प्रकाश मान स्थूलसूक्ष्म तथा परमाणु रूप है । लोक में इससे परे और कुछ भी नहीं है । यह प्रभु पर ब्रह्म आदि नाम से प्राचीन तथा कारण कार्य-रूप और उससे भी परे सर्व समर्थ आत्मरूप, काल के समान रूप वाले वह ईश्वर हम पर प्रसन्न हो । ऐसा कहकर भगवान ब्रह्मा सनत्कुमार आदि ऋषियों के साथ नियत चित्त हो उन्हें सन्तुष्ट किया ।।१२/१५।। ब्रह्मा जी ने कहा--सर्व स्वरूप ! सब में व्यापक परम शान्त मूर्ति वाले आपको सादर नमस्कार है । अघोर रूप वाले तुम्हें पुनः पुनः मेरा नमन है । सब में पूर्ण; सबके आत्मा तुम्हें बार बार नमन है । भूतपते ! महात्मा तुम्हें नमन है । ओंकार और हुंकार से शोभित स्वधा और षट्कार से वर्णित तुम्हें बार बार नमन हैं । तीनों गुणों के स्वामी हे महेश्वर ! तुम तीनों वेदों के स्वरूप भी हो । त्रिगुणात्मन् ! तुम्हें नमन है । रुद्र ! तुम ही शिव हो तुम्हीं परम ईश्वर हो तुम्हीं सबसे प्रधान व प्रकृति स्वरूप हो । तुम ही परम प्रधान-स्वरूप सबसे आगे होने वाले तुम ही प्रधान में प्रविष्ट हो । तुम साक्षात् विष्णु रूप हो, रुद्र स्वरूप और प्रपितामह ब्रह्मा भी तुम ही हो । काली कराली आदि सात जिह्वाओ वाले और अनन्त रूपों से अनन्त जिह्वा वाले तुम ही हो । स्रष्टा = सबके उत्पन्न करने वाले तुम ही हो । प्रभो ! तुम ही विश्व के वर्णनीय और कथा के योग्य हो । भगवन् ! तुम ही विश्व के एक मात्र ज्ञेयतव्य हो । सबसे बड़ी निधि तुम हो । वेदों का यथार्थ रहस्य समझने वाले विद्वान् ब्राह्मण तुम्हें परम श्रेष्ठ कहते है । तुम ही को नमन करते हैं । तुम ही सबके रमणीय और परात्पर सूक्ष्म तत्व सबके परम परमात्मा हो और परम सूक्ष्म जिससे वाणी के साथ मन भी लौट पड़ता है वह तत्व तुम हो । श्री महादेव ने कहा--विविध मन्त्रों से तुम्हारे द्वारा मेरी स्तुति हुई है मैं शान्ति धारण कर

रहा हूँ। अनेकों मुखों से इस लोक का बलात् संहार कर रहे जला रहे मुझे तुम देखो। ब्रह्माण्ड के स्वामी वह देवेश शंकर ब्रह्मा से ऐसा कहकर और आश्वासन देकर देवी के साथ वहाँ से अन्तर्धान हो गये। महा पापी पुरुष भी इस परम-पवित्र-श्रेष्ठ स्रोत को सुनकर सद्गति पाते और प्रकाश मान विमानों से रुद्र लोक में जाते हैं। प्रिय युधिष्ठिर ! जो श्रेष्ठ ब्राह्मण इस स्तोत्र को पढ़ते हैं उन्हें कभी भय नहीं होता संग्राम और चोर अग्नि आदि के संकट में वा वन में तथा समुद्र में भी भगवान् शंकर उनकी रक्षा करते है इसमें संशय नहीं ॥१५/२४॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

बारह आदित्य रूप जगत् संहार वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--एवं संस्तूयमानस्तु ब्रह्माद्यैर्मुनिपुंगवैः ।
ब्रह्मलोकगतैस्तत्र सञ्जहार जगत्प्रभुः ॥

सवैया-- अधम उदारन माँ मेरी टेक राख लीजौ; तेरी शरण में अब यह जीवन खपै हौं।
हाथ जोड़ कहूँ जैसो दर्शन दै हौ रेवा माँ, तैसी ही एक मूर्ति तेरे तट पै थपै हौं ॥

मार्कण्डेय जी बोले--इस प्रकार ब्रह्मलोक के रहने वाले मुनियों एवं ब्रह्मा आदि के द्वारा अच्छी तरह स्तुति किये गये प्रभु ने सम्पूर्ण जगत् का संहार किया ॥१॥ इन महा भयंकर स्वरूप दक्षिणाभिमुख अव्यय बड़ी-बड़ी दाढ़ों से उत्कट शब्द वाले पाताल के निचले प्रदेश की शोभा वाले बिजली की ज्वाला व अग्नि के समान पीले नेत्र वाले भयंकर रोमों में भी कम्पन देने वाले लपलपाती जिह्वा बड़ी दाढ़ों एवं महा सर्प को सिर पर धारण किये बड़े-बड़े राक्षसों के सिरों की माला धारण किये महाप्रलय के कारण, महा समुद्र के जल रूपी हवि को पी रहे बड़वानल के समान, जिह्वा से जगत् को चाट रहे महादेव के मुख को ब्रह्मा ने देखा ॥२/५॥ लाखों करोड़ों योजन पर्यन्त दशों दिशाओं में महा भयंकर माँस मेदा और वसा से युक्त उन रुद्र की हजारों दाढ़ें खूब बढ़ने लगी। ब्रह्मा ने उन दाढ़ों में सुर असुर गन्धर्व

यक्ष मानव तथा राक्षसों को लगे हुए देखा। उन सबके सिर दाँत रूपी यन्त्रों के बीच में चूर्णित हो रहे थे ॥८॥ हे राजन् ! जिस प्रकार नाना तरंगों तथा फेन समूह से युक्त नदियाँ समुद्र में समा रही हों उसी प्रकार इस जगत् को उनके मुख में प्रवेश होते देखा ॥९॥ अनेक जीवों के रूप अथाह समुद्र के समान यह फैला हुआ जगत् मेघों के समान नाद करते तथा जलते हुए उन विशाल रुद्र के मुख में प्रविष्ट हो गया ॥६/१०॥ तदनन्तर उन शंकर के मुख से चिंनगारियों के साथ बहुत धूम से पूर्ण बड़ी भयंकर अनेक रूप वाली अग्नि के समान धधकती हुई ज्वालाएँ सारी दिशाओं को प्रकाशित और प्रज्वलित कर रही थी। उस समय अद्भुत रूप धारी रुद्र की चञ्चल जिह्वा और दाढ़ों वाला मुख सूर्य को सहस्र ज्वालाओं से पूर्ण हो गया तब वह अकेले ही बारह सूर्य रूप हो गये ॥११/१२॥ तत्पश्चात् भगवान रुद्र के अंग से निकले हुए बारह सूर्य दक्षिण दिशा का आश्रय लेकर पृथ्वी को जलाने लगे ॥१३॥ पृथ्वी में जो कुछ भी वृक्ष लता तृण में निवास करने वाला जीवन था वह पहिले ही वर्षा के अभाव से शुष्क हो गया। सारी पृथ्वी सम्पूर्ण रूप से व्याकुल हो गई ॥१४॥ रूद्र से उत्पन्न उन सूर्यों से सहसा जलता हुआ सम्पूर्ण जगत् नष्ट-ग्रह-ताराओं वाला होकर धूम्र से आच्छादित हो गया। सम्पूर्ण भूमण्डल सहसा प्रकाशित होकर जलने लगा तथा सम्पूर्ण चराचर ज्वालाओं से व्याकुल हो गया। सप्त द्वीप, समुद्र, नदीं, तालाब तथा समस्त जगत् को यह अग्नि यज्ञ में आहुति के समान खाने लगी। रुद्र से उत्पन्न तीव्र तेज से जल रहे बड़ी ज्वालाओं से पूर्ण सूर्यों ने सम्पूर्ण जगत् को जला डाला। उन सूर्यों की वे किरणें परस्पर मिलकर त्रैलोक्यवर्ती चराचर को दग्ध कर रहीं थीं। उन रुद्र ने सप्त द्वीप समस्त पृथ्वी को जला डाला। तब सुमेरु से मन्दराचल पर्यन्त पृथ्वी को जलाकर सात पातालों का भेदन कर नाग लोक को भी जलाया। हे युधिष्ठिर ? उस अग्नि के ताराओं के साथ भूमि और नीचे के सात लोकों को चारों ओर से जलाते हुए विचरण

किया ।।१५/२२।। जिस प्रकार धोंके जा रहे अंगारों से लोहा रात्रि में जल रहा हो उसी प्रकार प्रलय काल की प्रदीप्त संवर्ताग्नि से यह सब जलने लगा। उस समय यह पृथ्वी, वृक्ष, तृण, नदी, निर्झर, तालाब तथा पर्वतों से रहित होकर कछुए की पीठ के समान दिखाई देने लगी । सम्पूर्ण चेतन जगत् को ज्वालाओं से व्याकुल कर महारुद्र रूप धारी भगवान शिव स्थित हो गये । तब मातृ गणों से युक्त यक्ष-सर्प तथा राक्षसों के साथ हरे नेत्रों वाली देवी महादेवी रुद्र में प्रविष्ट हो गयी । हे निष्पाप युधिष्ठिर ! अग्नि की शान्त ज्वालाओं के समान वह परम शान्ति को प्राप्त हो गयी । तथा वह सम्पूर्ण जगत् तीनों लोकों के साथ जल गया । दश हजार युग पर्यन्त केवल जल पीकर ही मैंने शंकर की आराजन्ा की थी इसलिए में तथा अयोनिजा श्री नर्मदा ही जलने से बच गई । शिव की आराजन्ा से मैं अजर अमर हो गया मैंने शिव की आराजन्ा अघमर्षण अघोर वामदेव त्रयंबक ऋषभ, त्रिसुपर्ण, दुर्गा सविता बृहदारण्यक, बृहत्साम और उत्तर तथा सद्गायत्री शिवोपनिषद, परिरथ-सूक्त तथा मृत्युन्जय आदि मन्त्रों से की थी ।।२२/३१।। अमृत तुल्य महा प्रभाव शालिनी नर्मदा जी को छोड़कर नदी समुद्र सहित सम्पूर्ण पृथ्वी भस्म हो गई . महेन्द्र, मलय, सह्य हेमकूट, माल्यवान, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुल पर्वत है । ये सभीबारह सूर्यों से दग्ध टूटी फूटी शिलाओं वाले पृथक-पृथक बिखरे हुए जल गये । पर नर्मदा जी नष्ट नहीं हुई । देव गन्धर्वों से सेवित पर्वत राज हिमालय, हेमकूट, निषध, गन्दमादन, माल्यवान्, पर्वत श्रेष्ठ नील और उच्च शिखर वाला श्वेत शृंग आदि सभी प्रलय काल की अग्नि से भस्मी भूत हो गये । पर नर्मदा तब भी नष्ट नहीं हुई, हे राजन् ! इस प्रकार मैंने परम पुण्य महिमा वाली श्री नर्मदा को छोड़कर युगान्त समय में पहले सबका निवाश देखा हैं ।।३२/३७।। सत्रहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

अठारहवां अध्याय

नर्मदा माहात्म्य वर्णन

निर्दग्धेऽस्मिंस्ततो लोके सूर्यैरीश्वरसम्भवैः ।
सप्तभिष्चार्णवैः शुष्कैद्वीपैः सप्तभिरेव च ॥

सवैया-- फूल जब चढ़ाये तो सूख गये गल गये, मन में जिज्ञासा रही दुखके भाव छा गये ।
तन मन को अर्पण करो अरे ! मन भाग गयो, रह गयो तन माटी जाके भाव सब मुर्झा गये

श्री नर्मदा माहात्म्य वर्णन भगवान शंकर से उत्पन्न बारह सूर्यों द्वारा सम्पूर्ण जगत् के दग्धहो जाने पर समुद्र सूख गये तथा सातों द्वीप जल गये । तत्पश्चात् रुद्र के मुख से बड़े भयंकर इन्द्र धनुष के समान रूप वाले घने मेघ श्री शंकर से प्रेरित जगत् को अन्धकार मय करने हुए निकल पड़े । उनमें कुछ मेघ नील कमल के समान कान्ति वाले, कुछ अन्जन के समान काले-काले, कुछ गाय के दूध के समान, कुछ कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान थे, कुछ मोर के पंख की आकृति वाले तथा कुछ धूम रहित अग्नि जैसे तेजस्वी थे । कुछ मेघ महा पर्वतों के सदृश रूप वाले और कुछ महामीन समूह के समान थे, कुछ बड़े हाथी के समान आकार वाले तथा कुछ मेघ बड़े ऊँचे मिट्टी के ढेर के समान थे । कुछ चञ्चल तरंग समूह के समान रूप वाले, कुछ विशाल प्रसादों के समान वा बड़े पुरों के स्थानों के समान और पुर-द्वार-सहित अट्टालिकाओं के समान बिजली और लपटों वाले वज्रों से सुशोभित छोर वाले थे ॥५॥ चारों ओर से घिरे और आच्छादित अंग वाले वह देव स्वयं शिव संवर्तक नामक मेघ के रूप में हो गये अब महा भयंकर असीम वर्षा करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् को एक जल मय समुद्र कर दिया । सब महामेघों से बढ़े रूप वाले इन्द्र के वज्र से भी बृहत एवं इन्द्र धनुष से लिपटे अंग वाले शिव को गंगा जल के प्रवाहों से आवृत भय से व्याकुल अंग वाला उन्हें नहीं देख सका । गज के समान बारम्बार जल प्रवाहों से आवृत भय से व्याकुल अंग वाला उन्हें नहीं देख सका । गज के

समान बारम्बार जल पीते हुए वे मेघ सब तरफ से जलते हुए जगत् को जल से परिपूर्ण कर अदृश्य हो गये । सातों महा समुद्र, सरोवर द्वीप, सारी नदियां और सभी लोक जल समूह से परिपूर्ण हो सब एक समुद्र मय हो गये । अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य से रहित इस चराचर जगत् में कुछ नहीं दीखा रहा था । नक्षत्र रहित और अन्धकारमय प्रशान्त व युयुक्त और नष्ट स्थान वाले लोक में कुछ दृश्य न रहा । उस बड़े जलापूर में मैंने उस देव की निर्मल अन्तः करण से उस समय शुद्ध सात्विक स्तुति की । मैं इस अवस्था में किस शरण्य अर्थात् रक्षक के पास रक्षा के लिए कहां जाऊँ, ऐसा विचार करते हुए जल में प्रविष्ट मैंने शरणागत रक्षक, प्रकाश मान प्रभु का स्मरण किया । मैं उस रक्षक महादेव को नमन करता हूं । उसकी शरण हूं वह मेरी रक्षा करे । ऐसा कह मैंने उनके दिव्य स्वरूप का ध्यान भी किया ।।१२।। हे राजपुत्र ! तब मैं उनका चिन्तन कर उनकी कृपा से शान्त सावधान चित्त होकर जल पार करने लगा, देवी की कृपा से मेरी ग्लानि और भ्रम दूर हो गये ।।६/१३।। इति श्री अठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

उन्नीसवां अध्याय

बाराह कल्प वृत्तान्त वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--तत्रस्त्वेकार्णवे तस्मिन्मुमूर्षुरहमातुरः ।
काकूच्छ्वासस्तरंस्तीर्य बाहुभ्यां नृपसत्तम ।।

सवैया-- आत्मा के भाव के प्रसून है कुछ शब्द रूप, नर्मदा मां पर एक बार जो चढ़ा गये ।
जिनको पठन-पाठन से कर्मों का क्षय करके, नर्मदा कृपा से नर शिव धाम पा गये

मार्कण्डेय जी बोले--हे राजन् ! तदनन्तर उस जल मय समुद्र में मरण चाहने वाला मैं दुःखी होकर विकृत श्वास को खींचता हुआ दोनों भुजाओं से तैरने लगा । शब्द रहित उस समुद्र में तब मैंने दशों दिशाओं को प्रतिध्वनित करने वाले अनुपम शब्द को सुना । तथा वहाँ हंस, कुन्द, चन्द्रमा तथा गोदुग्ध के समान श्वेत वर्णधानी, नाना विचित्र रत्नों युक्त वाली, सोने से मण्डित

सींग वाली, मनोरम, मूंगों से जड़े खुरों से तथा पूँछ रूपी पताका से सुशोभित बड़ी लम्बी नासिका युक्त खुरों से समुद्र के जल को उछालती तथा गर्जन करती हुई छोटी घण्टियों से युक्त मुक्ताओं की माला धारण किये हुए स्वर्ण गाय के चरणों के चलाने से उस एकाकी समुद्र का जल बिखरे फेन समूह से चारों ओर नाच सा रहा था । हे महाभाग ! जलके उछालने से महा समुद्र को क्षुब्ध करती तथा गर्जना करती हुई वह गाय सुन्दर एवं गंभीर वाणी से मुझसे बोली । हे पुत्र ! हे पुत्र ! मत डरो तुम्हारी मृत्यु नहीं है । भगवान शंकर की कृपा से तुम तथा मैं अमर हूं । हे विप्र ! इस भंयकर भय से जब तक जगत् जल मग्न है, तुम मेरी पूँछ पकड़ लो, मैं तुम्हें पार किये देती हूँ । भूखतथा प्यास की निवृत्ति के लिए तुम मेरे स्तनों को पीलो, अमृत के समान मेरे दूध को पीकर भूख प्यास से निवृत हो जाओ ।।६/१०।। उस गाय के वचन सुनकर मैने हर्ष से उसका स्तन पी लिया । स्तन के पीने मात्र से मेरी भूख-प्यास शान्त हो गयी । समुद्र से पार जाने का दिव्य सामर्थ्य मुझे प्राप्त हो गया । तब मैंने उस गाय से पूछा कि--इस एकाकी जल मय समुद्र में तुम कौन हो ।।१२।। जो अकेले घूम रही हो, इस बात को सत्य-सत्य कहो । क्यों कि मेरे हृदय में महान आश्चर्य हो रहा है । मृत्यु के चक्कर में दुःखी मेरी आपने रक्षा की है । हे सुव्रते, मेरे भाग्य से तुम मेरी रक्षा करने वाली हो गयी हो । गाय बोली क्या तुम मुझे भूल गये हो मैं वही विश्व रूप वाली महेश्वरी, धर्म का दान करने वाली, मनुष्यों को स्वर्गसुख और वल देने वाली नर्मदा हूँ । तुम्हें दुःखित देखकर श्री रुद्र के द्वारा भेजी गयी हूँ । शिव ने कहा कि हे देवि ! प्राण त्यागते हुए उस ब्राह्मण की तुम रक्षा करो ।।१३/१६।। भगवताज्ञा से मैं गाय के रूप में तुम्हारे समीप आयी हूं, शिव के वचन मिथ्या न होवे इसलिए शीघ्रता करो ।।१७/१८।। नर्मदा जी के वचन सुनकर इन्द्र धनुष के समान उस अविनाशी पूँछ को मैनें अपनी दोनों भुजाओं से पकड़ा । पूँछ रूपी ध्वज का सहारा लेकर समुद्र पार करने लगा तब नर्मदा ने कहा कि यही देव महादेव है । इसके बाद मै नर्मदा के

साथ हजारों युग पर्यन्त चारों ओर घिरे अन्धकार मय स्थिति में विचरण करने लगा। वायु रहित, प्रकाश हीन, घनघोर अन्धकार युक्त उस महा समुद्र में गाय की पूँछ का सहारा लेकर घूमते हुए सहसा मैंने उस जल में अलसी के फूल के समान, घने अन्जन जैसे श्याम वर्ण, पीताम्बर धारण किये विनाश रहित सूर्य के समान प्रकाशित तथा बिजली की चमक जैसी कान्ति युक्त मुकुट से प्रकाशित सिर वाले, आकाश के समान रुपवान, कुण्डलों से सुशोभित गाल वाले, हार से प्रकाशित वक्षः स्थल वाले खरे स्वर्ण से बने दिव्य भूषणों से शोभित नाग रूपी तकिये युक्त शयन वाले, हजारों सूर्य के समान तेज वाले बाहू तथा जंघाओं वाले, अनेक मुख तथा मनोहर हजारों नेत्रों से युक्त-जल-मय-समुद्र में शयन किये, चमक रही बिजली की ज्वाला वाले, विशाल जटा जूट से समुद्र मय सब जगत् में व्याप्त स्थित देवता असुर तथा मानवों सहित सबको खाकर शान्त समुद्र में लुप्त सर्व समर्थ भगवान शंकर को देखा ॥१९/२८॥ सर्व व्यापक, अव्यक्त, अनन्त चारों ओर मुख वाले सन देव के चरण तल के समीप, स्वर्ण के बाजू बन्द से सुशोभित विश्व रूप वाली, महाभाग्य शालिनी, विश्व माया को धारण करने वाली श्री ह्री तथा सरस्वती युक्त वाणी वाली, सिद्धि, कीर्ति, रति, ब्राह्मी, स्वंय सिद्ध काल रात्रि रूपिणी भगवान शंकर के अत्यन्त समीप स्थित उन भगवती शिवा को जो चन्द्रमा के समान मुख वाली, सर्वेश्वरी, उमा ही थी मैंने देखा। तब मैंने योग निद्रा का आश्रय लिये हुए शान्त, नव सुवर्ण के समान वर्ण वाली पार्वती के साथ अन्धकार से घिरे अत्यन्त पुण्य दर्शन सर्व श्रेष्ठ भगवान शंकर को प्रणाम किया। इसके बाद रात्रि के बीत जाने पर सहसा सोने के जागने पर अपने स्वभाव से भुजाओं से समुद्र का मन्थन करते हुए जल में सुप्त जगत् का विचार किया। इस समय मुझे क्या करना चाहिये ऐसा सोचकर वे अद्भुत् रूप वाले वराह रुप हो गये। उनका शरीर बहुत घने मेघों के समान था लम्बी माला व सुन्दर वस्त्र पहने थे। शंख चक्र खड्ग

धारण किये सिर पर सुन्दर मुकुट था उन महात्मा का शरीर सम्पूर्ण वेद वेदांग मय था। कार्य के समय के ही पुराण पुरुष त्रैलोक्य का निर्माण करने के लिए देवत्रय रूप धारण करने वाले है ॥२१/३६॥ जगत् के संहार के समय रूद्र, उत्पन्न करते समय ब्रह्मा तथा जगत् की रक्षा करने के लिए शंख, गदा, पद्म, को धारण करने वाले विष्णु है ॥३७॥ एक शरीर से युक्त एक स्वरूप उन महात्माओं का भेद कोई भी पुरुष नहीं पा सकता। मीमांसा के अर्थ वेद तथा न्याय के चक्रो से जो उनमें भेद का निरूपण करते हैं। वे अज्ञानी है ॥३८॥ जो दुष्ट पुरुष की जिस देवता में जो भक्ति होती है निश्चय ही वह पुरुष उस देव की भक्ति से शरीर छोड़ते हुए अमृतलब्ध यानी मोक्ष प्राप्त करता है ॥३९॥ वह एक परमात्मा ही संसार को मोहित करने के लिए जगत् की सृष्टि रक्षा तथा संसार के लिए तीन रूप धारण करते हैं इसलिए उनको मोह द्वारा द्वेष बुद्धि न रख कर भिन्न रूप का नहीं मानना चाहिए ॥४०॥ जगत् के रचयिता उन प्रभु ने ही यह वाराह रूप धारण कर त्रैलोक्य के नष्ट होने पर जो जल मग्न हो गया था सबके अन्तरात्मा प्रभु ने जल समूह में उसे ढूँढ़ने का विचार किया ॥४१॥ जल के अन्तर में स्थित उन प्रभु ने जल का भेदन कर क्षण भर में ही पाताल तल में प्रवेश कर कमल पत्र के नेत्र वाली जल में मग्न समस्त पृथ्वी का स्पर्श किया ॥४२॥ टूटे-फूटे-शैल तथा चोटियों वाली जल में मग्न उस पृथिवी को अतुल साहस वाले वाराह रूप विष्णु ने एक दाढ़ पर ही धारण कर लिया ॥४३॥ भगवान् वाराह की दाढ़ के अग्र भाग में लटक रहे अंगों वाली यह पृथ्वी, कैलास पर्वत की शिखर पर चन्द्रिका अथवा चन्द्रमा के अनुपम अग्र भाग में चमकने वाली बिजली के समान शोभा पा रही थी ॥४४॥ प्रबल बलशाली अनुपम प्रभाव वाले उन परमात्मा ने समुद्र के जल में डूबी उस पृथ्वी को इस प्रकार उठा लिया जैसे जल में डूबने वाली हस्तिना एवं क्षत विक्षत नौका को मतवाला हाथी उटा ले ॥४५॥ पृथ्वी का उद्धार करने के पश्चात् उस एकाकी जल

का समुद्रों के रूप में विभाजन कर डाला तथा पुनः उस जल को नियमों में विभाजित कर दिया ॥४६॥ इस प्रकार पुनः सृष्टि रचना करने के लिए समस्त द्वीप, समुद्र तथा शैल उपशैल एवं शिलाओं को रच डाला ॥४७॥ अपने शरीर के अनेक रूप बनाकर देवादि रूपों को बना डाला। तथा मुख से अग्नि; मन से चन्द्रमा और चक्षु से सूर्य को उत्पन्न किया ॥४८॥ योग मूर्ति ईश्वर ने अपने चिन्तन मात्र से ही देव समूह समस्त वेद, यज्ञ, वर्ण, औषधी तथा रसों को उत्पन्न कर डाला ॥४९॥ तथा दृश्य मान, स्थावर, जंगम, अंडज, जरायुज, स्वदेज, उद्भिज, कीट, पतंग तथा पीपीलिकादि रूप समस्त जगत् को अपने मन के संकल्प से उत्पन्न कर दिया ॥५०॥ तदनन्तर उन महेश ने अनेक रूप वाले जगत् को क्षण भर में मन से प्रगट कर दिया जिसे अविनाशी परमात्मा ने आठ मूर्तियों में अर्थात् पृथ्वी; जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महतत्व और प्रकृत्ति को पंच, तन्मात्रा, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्दादि रूप से पहिले बनाया था ॥५१॥ समुद्र तेज उस प्रभु ने मेरे देखते-देखते एक मुहूर्त मात्र में अपनी लीला से यह सब बना डाला। हे राजन् ! यह सब मैंने अपनी आँखों से देखा ॥५२॥ सर्व, दृष्टा, सर्वव्यापक, जगत् रचयिता उन देवाधिदेवने इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी लीला से बनाया था। मेरे देखते-देखते वे अन्तर्ध्यान हो गये ॥५३॥ जैसे मैंने कुछ समय पूर्व नाम रूपात्मक जगत् को देखा उसी प्रकार द्वीपों समुद्रों से युक्त नक्षत्र तारादि विमानों से व्याप्त पुनः उस जगत् को देखा ॥५४॥ ग्रहों तथा मेघों से चित्रित आकाश तथा अनेक प्रकार के प्राणियों से यह संसार तो मुझे दिखाई दे रहा था परन्तु गो रूप धारिणी सम्पूर्ण सुरों की स्वामिनी तेजस्विनी भगवती नर्मदा मुझे दिखाई नहीं दी ॥५५॥ वह इस समय कहाँ है; ऐसा विचार कर तब मेरा चित्त भ्रान्त हो गया क्योंकि ईश्वर से उत्पन्न उस नर्मदा को छोड़कर सम्पूर्ण दिशा तथा उनके विभाग दिख रहे थे ॥५६॥ पुनः उस देवी नर्मदा को नीले मेघ के समान शुभ्र जल युक्त अनेक

वृक्षों, गजों, तुरंगों तथा पक्षियों से घिरी यहाँ देखी ॥५७॥ पहिले के समान ही मैंने नर्मदा के तट पर अमरकण्टक में सुख पूर्वक बैठकर शान्त चित्त हो आत्मदर्शन का परम सुख प्राप्त किया ॥५८॥ उसी प्रकार फिर प्रलय काल में भी पुण्य निर्मल जल प्रवाह वाली माता के समान पूज्य, दयालु, सदा जल वाली, विनाश और रोग से रहित श्री नर्मदा को देख कर मैं शोक और दुःख से रहित हो गया ॥५९॥ इस प्रकार जो ब्राह्मण इस परम-पवित्र बाराह कल्प की कथा को पढ़ते हैं सुनते हैं वे भगवान शंकर की कृपा से पवित्र अन्तःकरण वाले होकर परम गति प्राप्त करते हैं ॥६०॥ तथा इस कथा के पढ़ने सुनने वाले लोग हजारों पापों को नष्ट कर देवों से सेवित गन्धर्वों से युक्त स्वर्ग पाकर निर्मल चन्द्र के समान विविध विलास वाली अप्सराओं के साथ स्वर्ग के सुख का उपभोग करते हैं ॥६१॥ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

वाराह कल्प वृतान्त वर्णन

युधिष्ठिर उवाच--श्रुता मे विविधा धर्माः संहारास्त्वत्प्रसादतः ।
कृता देवेन शर्वेण ये च दृष्टास्त्वयानऽघ ॥

सवैया-- पूर्व पुण्य कर्मों से मां के तट पर जनम लिया, महिमा न जानी जीवन भोग में गंवाया है ।
जाने अनजाने माँ नर्मदा स्नान किये, ममता मयी मूर्ति माँ ने मुझे अपनाया है ।

युधिष्ठिर बोले--निष्पाप ! तुम्हारी कृपा से अनेक धर्मों का और भगवान शंकर के द्वारा किये गये विविध संहार जिन्हें आपने देखा है, उनका मैंने श्रवण किया । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इस समय में भी विष्णु के प्रभाव को जिसका आपने अनुभव किया वह सुनना चाहता हूँ । तुम मुझसे वही कहने योग्य हो । श्री मार्कण्डेय जी बोले--इसके अनन्तर मैं प्रजाओं के संहार का लक्षण कहूँगा । जो चिह्न वहाँ देखा जाता है, वहां कल्प के अनुसार वह निहित होता है । युग का अन्त काल उपस्थित होने पर उल्कापात, भूकम्प, धूलि,

वर्षा और भयंकर शब्द होते है। यह किन्नर, गन्धर्व, पिचाश, सर्प, राक्षस सभी विनाश को प्राप्त होते हैं। पहाड़, समुद्र, नदियाँ अनेक सरोवर और सम्पूर्ण वृक्ष लताएँ घास आदि सूख जाते हैं। इस प्रकार सब औषधि जल से रहित; चराचर-सहित त्रिलोकी को काष्ठ के समान हो जाने पर मध्याह्न में स्नान के समय मैंने त्रिलोकी को अग्नि के समान दुःख से देखने योग्य दुर्गम देखा। वहाँ मैंने पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में परम तेजस्वी दो-दो सूर्यों को देखा। नाग लोक में दो सूर्यो को तथा आकाश के मध्यवर्ती दो सूर्यो को इस प्रकार ये बारह सूर्य दिशाओं में उस समय तपते हैं ॥१/१०॥ इन बारह सूर्यों ने पर्वत, वन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को जला दिया कि नर्मदा और मुझे छोड़कर बिना जला हुआ कुछ भी नहीं दीख रहा था। पृथ्वी के जलते हुए उसमें हवि की गन्ध निकल रही थी। प्यास भी बड़ी प्रबल थी किन्तु जल नहीं मिल रहा था। सूर्यों के द्वारा वह सब सूख चुका था। जब मैंने कमण्डल देखा उसका जल भी सूख चुका था। तब मैं दुःखी हो गया। भूख-प्यास से विशेष पीड़ित रहा। ऊपर स्वर्ग की ओर देखते हुए मैं पृथ्वी के ऊपर की ओर उछला तब तक मैंने आकाश में सजे हुए एक घर को देखा। श्रेष्ठ राजन् मैं उसे जानने की इच्छा से आगे चला विचित्र परकोटे से किवाड़ों एवं अर्गला से भूषित विचित्र ऊपरी भाग से युक्त द्वार देश में पहुंचा। ऊँचाई में वह छियालिस हजार योजन और तैंतालिस हजार योजन पृथक रूप से जुड़ा हुआ सुवर्ण मय वह घर था। राज श्रेष्ठ ! वहाँ घर की बीच में एक उत्तम शय्या मैंने देखी। उस शैय्या के ऊपर सो रहे दिव्य केश वाले एक पुरुष को मैंने देखा। जो घुंघराले केशों से युक्त था वे योजन पर्यन्त विशाल थे। परम सुन्दर कान्तिशाली विचित्र मुकुट से शोभित श्याम वर्ण कमल पत्रों के समान कोमल अच्छी कान्ति युक्त सुन्दर नासिका एवं सिंह के समान सुन्दर मुख वाले, फैली विशाल भुजाओं वाले, तीन बलियों से युक्त मूछों से भरे सुन्दर कपोल कानों में भूषित, सुन्दर

कटिभाग से सुशोभित, बटे हुए घुटनों और जंघाओं वाले तथा जिनके हाथ और पैरों के तलों में कमल के चिह्न है ऐसे अत्यन्त रक्त वर्ण नख और अँगुलियों से युक्त मेघ के गर्जन के समान गम्भीर ध्वनि वाले सर्वांग सुन्दर शयन किये एक देव को मैंने देखा। शंख, चक्र, गदा तथा अक्ष सूत्र से युक्त हस्त कमलनैंन सूर्य के समान तेज वाले दक्षिण पार्श्व से लेटे हुए उन देव को देखकर सुस्थित चित्र और भक्ति मान हुआ स्तुति करने की इच्छा से मैंने कहा हे ईश ! तुम्हारी जय हो वाणी के स्वामी तुम्हारी जय हो, दिव्य अंगों में दिव्य भूषण धारण करने वाले भगवान तुम्हारी जय हो ॥११/२५॥ देव-देव श्री मान् साक्षात ब्रह्म स्वरूप तुम्हारी जय हो। हे परमेश्वर ! सम्पूर्ण लोक तुम्हारे शरीर में स्थित हैं तुम्हीं सबके रक्षक हो समस्त लोक तुम्हारे से ही टिके हुए हैं। सम्पूर्ण जीवों में तुम ही श्रेष्ठ हो। पृथ्वी के धारण करने वाले कर्त्ता भी तुम ही हो। अग्निहोत्रों में हवन भी तुम ही हो, मन्त्र भी तुम ही हो गोकर्ण, भद्रकर्ण और महेश्वर के दिव्य पद भी तुम ही हो। दीनता और पाप का विनाश करने वाली सब कीर्तियों की कीर्ति तुम ही हो। तुम नैमिष और कुरुक्षेत्र भी हो। तुम उत्तम विष्णु पद भी हो। खेल में तुमने सारी पृथ्वी को अपने पैरों से लॉघा है। हे देव ! तुमने ही बली का बन्धन और इन्द्र का स्थान सुरक्षित किया है। तुम कलियुग, द्वापर, त्रेता तथा सतयुग के रूप हो। प्रलम्बासुर का दमन करने वाले हो। तुम ही सब लोकों को धारण और सबका क्षय करने वाले हो। देव ! तुमने ही सारी देव सृष्टि की हैं। तुम ही सब लोकों के सरल मार्ग हो और तुम ही मोक्ष रूपी परम गति हो। तुमसे उत्पन्न सनातन रजो गुणी देव ब्रह्मा है, क्रोध से उत्पन्न वे रुद्र भी तमो गुण नियामक है। एवं सत्त्व गुण स्थित विष्णु भी तुम ही हो। हे देव ! यह चराचर रूप जगत् तुमने खेल के लिए बनाया है। राजन् ! इस प्रकार सन्तप्त देह वाले मैंने बड़ी भक्ति से सर्व भूतों के स्वामी उन समर्थ प्रभु की स्तुति की। स्तुति करते हुए मैंने जल

से पूर्ण बहुत घड़ों को देखा। तब मैं जिस प्यास को भूल गया था वह मेरी प्यास फिर बढ़ी। मैं उस पुरुष के पास पहुंचा। जल के पीने की इच्छा से मैंने बारम्बार विचार किया पर वह मुझे देख नहीं रहा था। वह सोया था जग नहीं रहा था ऐसा लगा सुख पूर्वक सोये हुए पुरुष को जो पाप से सर्वथा मोहित पुरुष जगा देता है उस पाप का ब्रह्म हत्या जैसा फल होता हैं। मैं ऐसा विचार कर ही रहा था कि वहाँ दूसरा पुरुष आया। उसके बॉये कन्धे में मृग चर्म था वह न कुछ बोलता था और न देखता था। जटाधारी कमण्डल लिए हुए दण्डमेखला से युक्त, भस्म से लिप्त, सब अंगों वाला बड़ा तेजस्वी और तीन नेत्रों वाला था स्तुति करने की इच्छा करने वाले मैंने निर्मल नेत्र से उन्हें देखा। त्यों ही सब अंगों की बड़ी सुन्दरता रूप सम्पत्ति से युक्त सर्व अलंकारों से अलंकृत उसे नारी के रूप में मैंने देखा। उसे देखकर जय हो ऐसा कहते हुए मैं भूमि पर गिर गया। मैंने उस देवी से कहा रुद्र के अंग से उत्पन्न देवी तुम्हारी जय हो सदा रहने वाली ब्रह्म शक्ति तुम्हारी जय हो, कुमार शक्ति महेन्द्र शक्ति तथा वरुण शक्ति की जय हो, कुवेर शक्ति, सूर्य शक्ति सुन्दर मुख वाली ब्रह्माणी माता तुम्हारी जय हो। इस जगत् में प्यास से दुःखित मेरी तुम रक्षा करो। तब उस देवी ने कहा--श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम्हारे उत्तम वचनों से मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारे मन में जो है वह मैं जान चुकी हूँ। मेरा भी एक अत्यन्त कठोर व्रत प्रतिज्ञात है। वह तुम सुनो स्त्री स्वभाव वश मन्द बुद्धि के कारण यह कठोर व्रत मैंने निश्चित किया है वह यह है। लोकों में प्रसिद्ध पात्र, धर्म शील यदि मेरा पुत्र होता तो प्रथम ब्राह्मण को स्तन देकर पुनः बालक को दूध पिलाऊँगी। महामुनि ! वैसा मेरा पुत्र उत्पन्न हो गया है, हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यदि तुम जीना चाहते हो तो मेरा स्तन पी लो, श्री मार्कण्डेय जी बोले यह ब्राह्मणों का कर्तव्य नहीं हैं। जो इस प्रकार स्तन पीता हैं पुनः उपनयन होने पर भी व्रत सिद्धि को नहीं पाता। हे कमल नेत्रे ! तीनों लोकों में ब्राह्मणत्व बड़ा दुर्लभ है जिन संस्कारों से

संस्कृत होकर वह ब्राह्मण होता है वह तुम मुझसे सुनो प्रथम स्त्री में संस्कार पूर्वक जो बीज का वपन है उसे बीजक्षेप कहते हैं सुभगे ! उसके अन्त में गर्भाधान दूसरा है, तीसरा पुंसवन और चौथा सीमन्त है, पाँचवा जातकर्म, छठा नामकरण संस्कार, सातवाँ निष्क्रमण बाहर निकालना, आठवाँ अन्न प्राशन, नवम चूड़ा संस्कार मुण्डन, दशम मौञ्जी बन्धन उपनयन, ऐषिक-दार्विक-सौमिक-भौमिक ये चार वेद व्रत, स्नान पत्नी संयोजन अर्थात वह सह धर्म चारिणी संयोग पश्चात् देवकर्म यज्ञ अनुष्ठान देव, पितृ, मनुष्य, भूत, ब्रह्म यज्ञों का पालन, मनुष्य कर्म और पितृ कर्म, अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावणी आग्रहायणी चैत्रो तथा आश्वनी ये सात पाक यज्ञ संस्थाएँ निरूढ़ पशुबन्ध सौत्रामणी अग्निष्टोम, षोड़शी, बाजपेयी, अतिरात्र, आप्तोर्याम, दशबाजपेय, पूर्व के भूत भव्य और इष्ट आदि सब जीवों में क्षमा भाव, द्वेष का अभाव, शुद्धता के साथ मंगल उदारता और अस्पृहा इच्छा का सर्वथा त्याग-कामना का अभाव, आदि अड़तालिस संस्कारों से ब्राह्मण संस्कृत हो जाता है । महा भाग्य शीले ! ऐसा समझकर हे नर्मदे ! मुझे तुम्हारा स्तन पान करना उचित नहीं प्रतीत होता । भद्रे ! शिशु से पेय दुग्ध को स्तन को मेरे स्नान नैष्ठिक पुरुष कैसे पी सकता है ? मेरे इस वचन को सुनकर वह स्त्री मधुरता पूर्ण वचन बोली--यदि तुम मेरे स्तन में होने वाले दूध को नहीं पिओगे तो बालक मर जायेगा । तीनों लोकों में वेदों एवं धर्म शास्त्रों में भी यह सुना जाता है कि मनुष्य सब पापों से छूट जाता है पर भ्रूण-गर्भ हत्या उसे नहीं छोड़ती । तुम बड़े भगवद-भक्त हो फिर तुम्हें भी हत्या होगी । बाल हत्या से मनुष्य आठ सौ जन्म क्लेश उठाता है । ऐसा पुरुष मर कर पुनः तीन सौ वर्ष पर्यन्त कुत्ते की योनि में जाता है, उसके पश्चात् वह कौए की योनि पाता है वहां भी यह पाप कर्म में आठ सौ वर्ष क्लेश पाता है । फिर दश जन्म पर्यन्त वह सूकर होता है । उसके पश्चात् वह कीड़े की योनि में जाता है फिर वह ऊपर आने वाली गति को पाकर गाय,

हाथी, घोड़ा, मनुष्य आदि योनियों में भटकता है ऐसा वेद शास्त्रों में सुना जाता है । शत्रु दुःखदायिन ? बालक की हत्या से सब पापों से अधिक पाप होता है । बाल हत्या से युक्त ब्राह्मण निश्चय ही नरक में दुःख उठाता है ।।२६/२७।। बाल हत्या करने वाला पुरुष आठ सौ वर्ष पर्यन्त यम लोक की यातना भोगता है । मेरा स्तन पीते हुए तुम्हें थोड़ा दोष होगा । उसी प्रकार न पीने पर बहुत वर्षों तक भोग्य पाप होगा । स्तन पीते हुए तुम्हें भूख और प्यास की शान्ति और पुण्य दोनों प्राप्त होंगे । इस कारण किसी भी दिशा में अपने चित्त को सन्देह में मत डालो । ब्राह्मण ! तुम आवो बाल रक्षा के लिए इच्छानुसार मेरा स्तन पीलो । ऐसे वचन सुन कर तब मैं स्तन पीने को तत्पर हुआ । उत्तम स्तन पीते हुए मुझे तृप्ति नहीं मिल रही थी । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! इस प्रकार तैतीस हजार वर्ष पर्यन्त मैं स्तन पीते रहा, तब मायामयी निन्द्रा से मोहित होकर मैं उनकी गोद से गिरा त्यों ही निंद्रा मोह रहित में सन्मुख देखता हूँ त्यों ही हे विभो ! वह सोया बालक दिखाई नहीं दिया । हे भारत ! मैंने वहाँ चार घड़ों को देखा किन्तु देवी कहाँ गयी, यह मैंने नहीं देख पाया । इस प्रकार विचार में मैं निमग्न हुआ कि थोड़ी मुस्कराहट भरी वाणी से एक देवी बोली । उस देवी ने कहा-- सोये पड़े वह कृष्ण पुरुष विष्णु हैं, दूसरे देव वह शंकर भी आ गये थे । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जो चार कुम्भ देख रहे हो वे साक्षात् समुद्र है ।।६८/७६।। तुमने प्रथम जिस बाल को देखा है वह लोकों के पितामह ब्रह्मा है । मैं सात द्वीपों वाली पर्वत पूर्ण पृथ्वी हूं । ब्राह्मण तुम्हें छोड़कर जो पृथ्वी में गयी वह भूतल में सुप्रतिष्ठित है, तुम इसे नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा रूप में देखते ही हो । बड़े पुण्य शाली, सर्व प्राणियों पर उपकार के लिए लक्षणों से युक्त यह रेवा नाम से प्रसिद्ध है । यह कभी मरती नहीं अतः नर्मदा अमृता कही गयी । महामुने ! यह समझकर तुम शान्त होओ । ऐसा मुझे कहकर देवी वहीं अन्तर्हित हो गयीं । इस प्रकार भगवान सत्त्व गुण में स्थित होकर सदा

प्रलय में शयन करते हैं। वह महादेव ही सत्त्व रूप वाले हैं। जिसके आधार पर सम्पूर्ण जगत् स्थित है। मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार मैंने इस उत्तम आश्चर्य जनक दृश्य को देखा प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इस सर्व पाप हारी वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा है। इस प्रकार तुमने जो मुझसे पूछा है वह विष्णु का चरित्र तुमसे मैंने कहा। विशाल भुजाओं वाले राजन् ! अब फिर तुम क्या सुनना चाहते हो ।।७७/८३।। बीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२०।।

इक्कीसवाँ अध्याय

कपिला नदी उत्पत्ति वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- श्रुतं मे विविधाश्चर्य त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम।
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत ।।

सवैया-- शब्दों का जाल है या मां का प्रसाद है ये, चरणों में पन्नालाल ने स्थान पाया है।
बिना भाव बिना भक्ति थोड़े से प्रसून ले, माँ तेरी शरण में यह यादव अधम आया है

युधिष्ठिर बोले--श्रेष्ठ व्रत धारण करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम्हारी कृपा से अनेक आश्चर्यों से युक्त वृत्त को मैंने सुना अब पुनः मैं जो सुनना चाहता हूँ वह तुम मुझसे कहो। निर्दोष मुने ! नर्मदा नाम से प्रसिद्ध यह सब नदियों में श्रेष्ठ और पुण्य प्रद कैसे है ? श्री मार्कण्डेय जी बोले--नर्मदा नदियों में श्रेष्ठ और सब पापों को नष्ट करने वाली है। वह चर अचर सभी को तारने वाली है। राजन् ! नर्मदा का जो माहात्म्य पहले मैंने सुना है वह मैं तुमसे कहूंगा, तुम एकाग्रमन होकर ध्यान से सुनो ! गंगा कनखल में विशेष पुण्य दायिनी और कुरुक्षेत्र में सरस्वती को परम पवित्र-पुण्यदा माना है परन्तु ग्राम व वन सर्वत्र ही नर्मदा परम पुण्य देने वाली मानी जाती है। सरस्वती नदी का जल तीन बार में वा तीन दिनों में पवित्र करता है। यमुना का जल सात दिनों में तथा गंगा का जल उसी समय पवित्र करता है पर नर्मदा का जल दर्शन से ही पवित्र कर देता है। कलिंग देश से पिछले पश्चिमी अर्ध भाग में अमरकण्टक पर्वत में प्रगटी नर्मदा तीनों लोकों में

प्रसिद्ध पग-पग में पुण्य दायिनी अत एव पवित्र और श्रेष्ठ मानी गई है। महाराज ! वहाँ देवता गन्धर्व तपस्वी ऋषि सभी तब तक उत्तम सिद्धि को पा चुके हैं। राजन् वहाँ नर्मदा में स्नान कर मनुष्य नियम में स्थित और इन्द्रियों को जीतकर उसके तट पर एक रात्रि निवास कर सौ पीढ़ियों को तार देता है। प्रिय युधिष्ठिर ! अमर-कण्टक पर्वत पर सब देवों का आश्चर्य स्थल और ऋषि मुनियों से सेवित है अतः वह बड़ा सिद्ध क्षेत्र है। राज श्रेष्ठ ! सिद्धि के चाहने वाले सिद्ध विद्याधर भूत और गन्धर्व ये सभी दृश्य और अदृश्य होकर इस उत्तम स्थान का सेवन करते हैं। उस समय से मैं भी इस उत्तम स्थान का आश्रय लिये रहता हूँ। निश्चय ही नर्मदा में ओंकार स्वरूप श्री शंकर जी सदा सब भूत समुदाय से युक्त गण सहित वे यहाँ निवास करते हैं। अतः राजन् ! इस पर्वत अमरकण्टक से तीर्थ के विस्तार को तुमसे कहूँगा। राज्य श्रेष्ठ ! यहाँ जो पुण्य तीर्थ है नर्मदा के दोनों तटों में जो-जो तीर्थ है, राजन् ! उनके विस्तार को कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है। कुछ अधिक सौ योजन अर्थात् चार सौ कोश तक लम्बाई वाली यह श्रेष्ठ नदी है। राजेन्द्र। चौड़ाई में यह नर्मदा आधा योजन फैलाव वाली हैं। अमरकण्टक पर्वत से समुद्र पर्यन्त नर्मदा के दोनों तटों में साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ हैं। इसमें संशय नहीं है। वायु ने श्री नर्मदा के तट पर अड़सठ करोड़ तिहत्तर हजार सात सौ तीर्थ बताये हैं ॥१/१८॥ राजन् ! पर वे सत्य युग में प्रत्यक्ष होते हैं। निरन्तर धर्म बुद्धि वाले मनुष्य उन्हें देखते हैं। राजन् ! जैसे जैसे घोर कलियुग आता है वैसे-वैसे हीन सत्त्व--मनुष्य अल्पता या हीनता को प्राप्त होते हैं। राजन् ! वे पितरों को तृप्ति देने वाले स्वर्ग और मोक्ष देने वाले हैं। वहाँ श्रेष्ठ दारुवन और चरुका नदी का शुभ मंगल है। नर्मदा के उत्तर में उत्तम चरुकेश्वर का तीर्थ और व्यतीपातेश्वर तीर्थ और कोटि तीर्थ कोटि यज्ञ है। राजश्रेष्ठ ! इस प्रकार नर्मदा के उत्तर तट पर तीर्थ है। अमरनाथ अमरेश्वर के बगल में एक सौ साठ लिंग है

उनमें वरुणेश्वर मुख्य है । ये सभी तीर्थ सर्व पापों को हरने वाले हैं ।।१९/२५।। मान्धातापुर के बगल में सिद्धेश्वर और यमेश्वर भी प्रतिष्ठित है । ओंकार क्षेत्र से पूर्व भाग में उत्तम केदार तीर्थ है । महाराज उसके समीप ही पाप नाशक स्वर्ग द्वार है जो ब्रह्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है आगे पुण्य सप्त सारस्वत है । भरत श्रेष्ठ । रुद्राष्टक--आठ रुद्र स्थान सावित्री और सोम तीर्थ ये सभी नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित है । प्रिय युधिष्ठिर । इस ओंकार पर्वत पर करोड़ों रुद्र स्थित है । वे सब स्नान और चन्दन माला से सन्तुष्ट होते हैं । राजन् ! स्वयं वे रुद्र प्रसन्न होते हैं इसमें संशय नहीं है । मन्त्र जप से पापों की शुद्धि और ध्यान से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।।२६/३०।। नर्मदा के तट पर दान से मनुष्य सभी भोग प्राप्त करता है । ऐसा भगवान शिव ने कहा है । पर्वत से पश्चिम देश की ओर भगवान शंकर स्वयं प्रणव ओंकार रूप से स्थित हैं । वे ही जगत् के आदि सनातन पुरुष है । वहां स्नान कर पवित्र होकर जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी होकर विधि पूर्वक कर्म से पितृ कार्य का सम्पादन करे । तिल मिश्रित जल से वहाँ ही पितृ देवताओं का तर्पण करे पाण्डुनन्दन ? सात पीढ़ियों तक उसका कुल स्वर्ग में प्रसन्न रहता है स्वस्थ शरीर के साथ सुखी होकर अनेक भोगों को पाता है । देवों से पूजित होकर वह साठ हजार वर्ष क्रीड़ा करता है । पितृ पूजा के फल की समृद्धि की सिद्धि से वह बहुत समय तक प्रसन्न रहता है फिर वह स्वर्ग से गिरकर उत्तम कुल में जन्म लेता है । वह पुरुष धन सम्पन्न दानी, रोग रहित और लोक में पूजित होता है । पुनः वहाँ जाता है उसका तीर्थ स्मरण करता है । दूसरे जन्म में वह रुद्र का अनुचर होता है और उसका प्रकार वह उपवास से युक्त इन्द्रिय-विजय सब जीवों की हिंसा से निवृत्त होकर उत्तम फल पाता है । राजन् ! जो पुरुष ऐसे धर्म पालन के उत्तम आचरण से युक्त होकर अपने प्राणों को छोड़ता है उसे तो पुण्य फल होता है वह सुनो पाण्डव ! वह सौ हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में प्रसन्नता

से रहता है अप्सराओं से भरे दिव्य शब्दों से प्रति ध्वनित स्वर्ग में दिव्य-चन्दन से अनुलिप्त शरीर वाला दिव्य अलंकारों से शोभित; सिद्ध गन्धर्वों से सम्मानित वह सिद्धों और देवताओं के साथ क्रीड़ा करता है । पुण्य भोग के अनन्तर वह स्वर्ग से नीचे आकर बलवान राजा होता है । हाथी घोड़े रथ आदि से युक्त वह धर्म का जानकार और शास्त्र की आज्ञा में तत्पर रहता हैं । चाँदी-सोने से युक्त रचित सैकड़ों स्तम्भों से युक्त बहुत मञ्जिलों वाले, सुन्दर द्वार से युक्त दासी-दासों से युक्त भवन में वह निवास करता है, मद वाले हाथियों की गर्जना से और घोड़ों की हिन-हिनाहट से उसका वह द्वार इन्द्र के भवन की भाँति शोभित होता है । वहाँ सब सुन्दरी स्त्रियों का प्रिय श्रीमान् राजराजेश्वर चक्रवर्ती वह पुरुष विविध क्रीड़ा भोगों से युक्त हो उस ग्रह में निवास कर सब रोग शोकों से रहित होकर सौ से अधिक वर्षों तक जीवित रहता है ।।३१/४५।। इस प्रकार जो अमरेश्वर में मृत्यु पाते हैं उन्हें सब प्राप्त होता है । जो पुरुष अमरकण्टक में अग्नि प्रवेश करता है वह मरकर स्वर्ग पाता है, उत्तम गति पाता है । स्नान, दान, जप, होम शुभ अशुभ, जो कुछ पुराणों में सुना जाता है राजन् ! वह सब यहाँ करोड़ों गुना हो जाता है । नर्मदा के तट पर जो वृक्ष काल क्रम से गिर जाते हैं वे भी उस जल के छुए जाने पर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं । राजन् उस तीर्थ में जो शरीर पात करता है । आकाश में वायु की भाँति उसकी गति निवृत्ति रहित होती है । पाताल में भोग शाली उसके भवन में तीन हजार कन्यायें स्थित रहती हैं और उससे भोगने की प्रार्थना करती है । वह दिव्य भोगों से सम्पन्न होकर इच्छानुसार समय पर्यन्त क्रीड़ा एवम् आनन्दोपभोग करता है । समुद्र पर्यन्त पृथिवी में वैसा पर्वत दूसरा नहीं है । राजन् ! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत है । यहाँ पर्वत के पश्चिम की ओर तीनों लोकों में प्रसिद्ध जलेश्वर नामक एक कुण्ड में पिण्डदान करने एवं सन्ध्योपासन करने से बारह वर्ष तक पितृगण तृप्त रहते हैं । नर्मदा के दक्षिण

तट पर कपिला नामक महा नदी है जो देव दारु और अर्जुन वृक्षों से ढकी हुई है तथा खादिर वृक्षों से सुशोभित है। यह कपिला नदी माधवी अमरवेल और अन्य लताओं से भी सुशोभित; गर्जने वाले सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जीवों तथा शृंगाल वानर आदि जीवों से और सुन्दर पक्षियों से नित्य ही शब्दाय मान रहती है। राजन्! वहाँ सौ करोड़ से कुछ अधिक ऋषियों का निवास था, ऐसा हमने सुना है। उन सबने वहाँ तप कर मोक्ष पाया है। जिनका पुनः जन्म और संसार में आना नहीं हुआ। वहाँ ही महात्मा कपिल ने उग्र तप किया है। इस कारण वह सिद्धों से सेवित पुण्य तीर्थ हो गया। क्योंकि वह कपिल और कपिला के भक्त महर्षियों के द्वारा तथा कपिल मतानुयायी पुरुषों ऋषियों द्वारा पहिले सेवित हुई है। कपिल महर्षि के निवास और तप से ही वह पापों का क्षय करने वाली नदी कपिला नाम से कही गई है। वहाँ अमरेश्वर अमरकण्टक में सब कुछ अधिक सौ करोड़ तीर्थ है। वहाँ दिन रात्रि निवास कर यथा शक्ति श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥४९/६१॥ भगवान शंकर की कृपा से वहाँ सब कर्म करोड़ गुना हो जाते हैं। क्योंकि भरत वंशोत्पन्न राजन्! वहाँ प्रणव ओंकार का अक्षर रहित रूप है। शिव-स्वरूप उस प्रणव का मात्राओं से ही अक्षर रूप बनता है। तिर्यगजीव पशु-वृक्ष-गुल्म-लता आदि अन्य कोई भी हों वे वहाँ मृत्यु पाकर स्वर्ग जाते हैं इसमें संशय नहीं। वहाँ ही एक जो विशल्या महा नदी है। वहाँ स्नान कर और न्याय पूर्वक दान देकर मनुष्य पुण्यात्मा होता है। वहाँ देव गण और सम्पूर्ण किन्नर और महा सर्पों सहित यक्ष-राक्षस-गन्धर्व और तपोधन ऋषि आदि सभी आकर अमरेश्वर में अमर-कण्टक में वे सब वहाँ आकर उन नर्मदा के दर्शन करते हैं, देखते हैं। दोनों शुभ तटों की वन्दना करते हैं। पहले घोर सर्वलोक भंयकर युग में यहां नर्मदा का पुत्र जो शल्य सहित था, वह शल्य रहित किया गया। सब देवों और ऋषियों ने इसे विशल्या नाम से स्मरण किया

है ॥६२/६८॥ युधिष्ठिर जी ने कहा--पूज्य ! कपिला की उत्पत्ति कैसे हुई और वह विशल्या कैसे कहीं गई । मुने ! नर्मदा का पुत्र शल्य से युक्त कैसे हुआ । श्रेष्ठ व्रत धारण करने वाले विप्र ! यह वृत संसार को आश्चर्य में डालने वाला है मैं वह सुनना चाहता हूँ । मार्कण्डेय जी बोले--राजन् ! पहले शंकर जी के साथ दक्ष पुत्री सती ने नए वस्त्रों से नर्मदा के जल में क्रीड़ा कर जल में बाहर आकर सहसा दूसरे वस्त्र को धारण किया । राजन् ! देवी का वह स्नान वस्त्र जो इन्द्र धनुष के समान था सेविकाओं द्वारा निचोड़ा गया उस वस्त्र के खूब निचोड़े जाते हुए उस समय उसमें जो जल निकला उससे ही यह महानदी कपिला निकली भगवती के अंगराग के सम्बन्ध से इसका जल वस्त्र से निकलते हुए भूरे रंग में बह रहा था, इसी से ही वर्ण और नाम से कपिला हुई और वह सुगन्धित रस से युक्त और अनेक पुष्पों से वासित सुगन्धित था । अनेक वर्णों से लाल श्वेत जल जो वस्त्र से निकला पल्लवों के समान कोमल उन तेजस्वी हाथों से वह निचोड़ा जा रहा था । वह कपिल वर्ण का हो गया था । उसी से यह श्रेष्ठ नदी निकली । उसके जानने वाले पुराणों के अर्थ में चतुर पुरुषों के द्वारा यह कपिला कही जाती है । यह वस्त्र से उत्पन्न श्रेष्ठ नदी कपिला परम पुण्यशालिनी स्नान करने योग्य हैं ॥६९/७८॥ (इस अध्याय में ओंकारेश्वर सहित अमरकण्टक का वर्णन हुआ केवल अमरकण्टक का नहीं, अमरेश्वर, अमलेश्वर, ममलेश्वर भी वहाँ है । इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥२१॥

बाईसवां अध्याय

विशल्या उत्पत्ति वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--अतः परं प्रवक्ष्यामि सा विशल्या ह्यभूद्यथा ।
आश्चर्य भूता लोकस्य सर्व पापक्षयंकरी ॥

सवैया--सृष्टि के आदि पुरुष बैठे शिव आसन पर, राम के भजन में रसमय सरसायो है ।
वो ही रस माथे के चन्द्रमा से पृथ्वी पै गिरो, सरिता बही सोमोद्भवा नाम तब सों धरायो है ।

मार्कण्डेय जी बोले--इसके अनन्तर वह विशल्या नदी जैसे हुई वह मैं

कहूँगा । यह नदी संसार में आश्चर्य के समान हैं सब पापों का विनाश करने वाली है । ब्रह्माजी के मुख्य मानस पुत्र अग्नि देव जिन्हें वन्हि भी कहते हैं 'परम धार्मिक ऋषि भी कहे गये हैं । उस अग्नि देव की दक्ष की पुत्री स्वाहा नामक पत्नी हुई । तब उस स्वाहा पत्नी में मुख्य तीन पुत्र हुए । आहवनीय अग्नि, दक्षिणाग्नी, गार्हपत्याग्नि इनके द्वारा ही त्रिलोकी का धारण होता है । गार्हपत्य अग्नि से दो पुत्र पद्मक और शंकु नामक उत्पन्न हुए । वे दोनों ही श्रेष्ठ अग्नि हैं । नदी के तीर में निवास करते हुए बड़े तप का आश्रय लेकर मन को वश में कर परम सावधान होते हुए अग्नि देव ने एक समय शंकर की आराजना की दश हजार वर्ष तक अग्नि देव ने विशाल उग्र तप किया । तब प्रसन्न होकर महादेव उन अग्नि देव से बोले--महाभाग्य शालिन ! तुम्हारे मन में जो हो, चाहे वह बड़ा दुर्लभ हो मैं तुम्हें दूँगा इसमें सन्देह नहीं ।।१/८।। अग्नि देव ने कहा--हे शंकर भगवान् ! यह महा पुण्य नदी नर्मदा तथा जो ये सोलह नदियाँ हैं, तुम्हारे अनुग्रह से वे मेरी धर्मपत्नी बनें उन स्त्रियों से विचारे गये उत्तम पुत्रों को मैं उत्पन्न करूँ । महेश्वर देव ! यही वर मुझे दीजिये । शंकर जी बोले--वेद में प्रसिद्ध श्रेष्ठ नदियों विद्यमान विशाल नेत्रों वाली हैं ये सभी तुम्हारी पत्नी बनेगी इसमें संशय नहीं । यज्ञ में स्मरण किये गये अग्नि रूप वाले उनके पुत्र होंगे जो प्रलय पर्यन्त यज्ञ में पूज्य और धिष्णय नाम से सुप्रसिद्ध होंगे । ऐसा कहकर महादेव वहाँ से अन्तर्धान हो गये और नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा उस अग्नि की पत्नी हुई । कावेरी, कृष्णवेरी, रेवा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता-झेलम चन्द्रभागा, इरावती-रानी विपाशा व्यास कोशिकी कुशी, सरयू, शत-रुद्रिका सतलज, क्षिप्रा, सरस्वती, आल्हादिनी और पावन ये सोलह नदियाँ अग्नि देव की स्त्रियाँ हुई । उन महा तेजस्वी अग्नि देव ने तब शीघ्र ही अपना विभाग कर पति के अभिचार से नर्मदा आदि धिष्णि नामक स्त्रियों से पवित्र पुत्र उत्पन्न किये वे सभी 'धिष्ण' नाम से स्मरण किये गये हैं ।।९/

१७।। राजन् ! उनमें नर्मदा का पुत्र 'घिष्णीन्द्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ जो बलवान और अनुपम रूप वाला था। तदनन्तर तीनों लोकों में मय तारक नाम से प्रसिद्ध देवों और असुरों का भयानक युद्ध हुआ। वहाँ मय और तारक दैत्य को आगे किये हुए महा भयंकर दैत्यों के द्वारा मारे गये देव गण डरकर भगवान विष्णू की शरण में गए हे हृषीकेश ! तुम बड़े संकट से हमारी रक्षा करो। मय तारक आदि सारे दैत्यों का संहार करो। ऐसा कहे जाने पर उन भगवान ने दश दिशाओं को देखा तब भगवान ने संग्राम में अग्नि और वायु को प्रकट देखा। विष्णु के बुलाने पर शीघ्र ही क्षण भर में वे उसके पास आ गये वे दोनों ही बुद्धिमान भगवान विष्णु के आगे सावधान होकर खड़े हो गये ।।१८/२३।। भगवान विष्णु ने अग्नि रूप घिष्णीन्द्र से कहा--नर्मदा पुत्र ! इन भयंकर असुरों को जला दो। ऐसा कहे जाने पर युद्ध में देव अग्नि और वायु ने मय तारक आदि सारे दैत्यों को जला डाला। जलाये जा रहे उन सभी दैत्यों ने अग्नि को लपेट लिया। दिव्य अलौकिक अग्नि और सूर्य के समान सैकड़ों हजारों शास्त्रों से उन्होंने अग्नि को लपेटा। अग्नि देव ने शस्त्र समूहों से उन भयंकर असुरों को जला डाला। तब सम्पूर्ण जगत् वायु के द्वारा लपटों से व्याकुल हो गया। अग्नि की लपटों से लिपटे हुए जल रहे दैत्य पाताल में प्रवेश कर हजारों की संख्या में छिप गये। तदनन्तर नर्मदा के पुत्र अग्नि कुमार की सब देवों ने पूजा की और वे सभी स्वर्ग गये। बड़े तेजस्वी अग्नियों से घिरे हुए नर्मदा के पुत्र शल्य--घाव सहित शीघ्र ही माता को देखने को उत्कण्ठित हो नर्मदा के पास गये शस्त्रों के घाव से युक्त आते हुए पुत्र को देखकर पुण्य जल वाली नर्मदा अत्यन्त विस्मित होकर उठकर पुनः प्रेम से बहते हुए दूध से युक्त स्तनों वाली हो दोनों हाथों से लिपट गयी और वह शल्य सहित पुत्र को लेकर कपिला नदी के कुण्ड में प्रविष्ट हो गयी। उनके पाप नाशक कुण्ड में प्रविष्ट होते ही शल्य सहित को क्षण भर में ही शल्य रहित कर दिया। उस कपिला के कल्याण कारी

जल को पाकर घिष्णीन्द्र शल्य रहित हो गया उसी से विद्वान उसे विशल्या नाम से कहते हैं और एकाग्र मन वाले जो भी वहाँ स्नान करते हैं वे भी पाप रूपी शल्य से छूटकर पवित्र हो जाते हैं। एवं मरकर स्वर्ग जाते हैं। प्रिय राजन् ! विशल्या की उत्पत्ति का कारण जो तुमने हमसे पूछा था सो सब मैंने तुमसे कहा ॥२४/३६॥ बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

विशल्या संगम की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--तत्रैव संगमे राजन् ! भक्त्या परमया नृप ।
प्राणाँस्त्यजन्ति ये मर्त्यास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥

सवैया-- *'नर्म' कहते आनन्द को 'दा' याने दायिनी हैं, नर्मदा नाम से जग में प्रसिद्धि पायो हैं*
बेगवती होने से रेवा जग जाहिर है, 'मेकल' से प्रकट 'मेकल सुता' कहायो हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राजन् ! वहाँ संगम में जो मनुष्य बड़ी भक्ति से प्राण छोड़ते हैं वे परम गति को पाते हैं और जो पुरुष अमरेश्वर पहुंच कर सब संकल्पों को त्यागकर प्राणों को छोड़ता है वह पुरुष स्वर्ग में नियत रूप से निवास करता है। जो मनुष्य अमरकण्टक शैल राज पर अपने शरीर को छोड़ता है। वह पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी विमान में अमरावती जाता है। अमरकण्टक पर्वत से गिरते हुए पुरुष को देखकर सम्पूर्ण अप्सराएँ कहती हैं यह मेरा पति हो। धर्म के जानने वाले ज्ञानी जन सरस्वती और गंगा के जल को समान कहते हैं किन्तु नर्मदा के तत्व के जानने वाले महात्मा नर्मदा के जल को उससे श्रेष्ठ कहते हैं इसमें कोई विचार नहीं है। परम पुण्य से निवास करने वाले अनेक विद्याधर किन्नर आदि के द्वारा यह जल अधिष्ठित है। निश्चय ही मस्तक से नर्मदा के जल को धारण करने वाले पुरुष का स्थान देवराज के समीप होता है। राजन् ! बहुत कहने से क्या यदि भयंकर संसार सागर को मनुष्य न देखना चाहे तो उसे सदा श्री नर्मदा का सेवन करना चाहिये। यह माता तीनों लोकों में परम पवित्र स्मरण की

गयी है। इसके समीप में जहाँ कहीं भी मरे हुए प्राणी की भगवान शंकर के गण के रूप में उत्तम गति होती है। यह अनेक यज्ञ स्थानों से युक्त है। इसका कोई भी स्थान ऐसा नहीं जो तीर्थ न हो। उसके तीर में तो जैसा आपने कहा है तपस्वी या अतपस्वी कोई भी मरते हैं, वे देवराज की भाँति स्वर्ग जाते हैं। राज श्रेष्ठ ! इस प्रकार कपिला और विशल्या लोगों के कल्याण की कामना से ईश्वर के द्वारा पहले उत्पन्न की गयी है। राजन् ! उपवास सहित और इन्द्रियों का विजयी मनुष्य वहाँ स्नान कर निः संशय बड़े अश्वमेध यज्ञ का फल पा लेता है। राजन् ! उस तीर्थ में जो अनशन करता है वह पुरुष सब पापों से सर्वथा रहित होकर शिव लोक जाता है, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के दान देने से जो फ़ल होता है। राजन् ! विशल्या के संगम में एक बार स्नान कर मनुष्य वह फल पाता है। इस प्रकार यह नदी पुण्य रूपा अत्यन्त कही गयी है। अब तुम फिर जो पूछो वह मैं कहूँगा ॥१/१५॥ तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

कर और श्री नर्मदा संगम महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- संगमः करनर्मदयोः पुरे मान्धातृसञ्ज्ञिते।
गत्वा स्नात्वा तर्पयित्वा पितृन्विष्णुपुरं नयेत् ॥

सवैया-- अपने पितरों को अधम योनि से छुड़ाने हेतु, राजा हिरण्यतेजा ने अपार तप कीन्हो है
देखकर कठिन तप शिवजी प्रसन्न भये, राजा को तुरत मन भावन वर दीन्हो है।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--मान्धाता नामक नगर में कर और नर्मदा का संगम हुआ है वहाँ मनुष्य जाकर स्नान कर और पितरों का तर्पण कर विष्णु लोक को जाता है। भगवान विष्णु ने दैत्यों को मारने की इच्छा से पहिले करों का मर्दन कर चक्र का ग्रहण किया था वहाँ उनके पसीने से यह श्रेष्ठ नदी 'कर' निकली और नर्मदा में मिली। मनुष्य यहाँ स्नान कर सब पापों से छूट जाता है ॥१/३॥ चौबिसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥२४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

नील गंगा संगम माहात्म्य वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ॐ करात्पूर्वभागे वै संगमो लोकविश्रुतः ।
रेवया संगता यत्र नीलगंगा नृपोत्तम ॥

सवैया-- शिव की कृपा से रेवा प्रगट भई धरणी पर, राजा के पितरों ने स्वर्ग गमन कीन्हों है
शंकर कृपा से सारे विश्व को उपकार भयो, मानव की मुक्ति हेतु अमर दान दीन्हों है ।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राज श्रेष्ठ ! ओंकार क्षेत्र के पूर्व भाग में लोक प्रसिद्ध संगम है जहाँ नील गंगा नर्मदा से मिली है । उस संगम में मनुष्य स्नान और मन्त्र जप करने से पृथिवी में कोई कार्य अलभ्य नहीं होता अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है । वहां स्नान कर मनुष्य साठ हजार वर्ष श्री शंकर के लोक में निवास करता है । श्राद्ध में तिल मिश्रित जल से पितरों का तर्पण कर मनुष्य अपने साथ इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर देता है ॥१/३॥
पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

मधूक तीन व्रत विधान वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- जलेश्वरोऽपि यत्प्रोक्तं त्वया पूर्व द्विजोत्तम ।
तत्कथं तु भवेत्पुण्यमृषिसिद्धिनिवेषितम् ॥

सवैया-- अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाने हेतु, राजा हिरण्य तेजा माँ नर्मदा को लाए हैं ।
रानी ने श्रद्धा से नर्मदा स्नान कर, दीपक जलाकर नित्य जल में बहाये हैं ॥

श्री युधिष्ठिर ने कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपने जलेश्वर के विषय में जो पहले बताया है ऋषि सिद्धों से पूजित वह पुण्य कैसे होता है ? श्री मार्कण्डेय बोले--जालेश्वर से बढ़कर उत्तम तीर्थ न हुआ है न होगा । पाण्डुनन्दन ! जलेश्वर की उत्पत्ति कहते हैं तुम वह सुनो । पहले सम्पूर्ण ऋषि और इन्द्र सहित सब देव समस्त असुरों ने सन्तप्त किये और अनेकों बार नष्ट किये

गये। जम्भ और शुम्भ को आगे किये हुए वाणासुर आदि अनेकों असुरों के द्वारा वे मारे गये तब सभी देव ब्रह्मा की शरण गये। पर्वताकार विमानों से और हाथियों के समान घोड़ों से तथा नगर के समान विशालसिंह व्याघ्रों से जुते हुए रथों से और दूसरे कच्छपों मगरों की सवारी से कुछ पैदल भी गये। जिस स्थान को अधार्मिक नहीं जा सकते उस दिव्य स्थान को पाकर सम्पूर्ण लोक के कल्याण कर्ता ब्रह्मा की स्तुति की। देवों ने कहा--देशकाल-वस्तुकृत परिच्छेद से रहित अपरिमित रूप तुम्हारी जय हो। भेद रहित देव ! तुम्हारी जय हो। सबकी उत्पत्ति करने वाले भगवान तुम्हारी जय हो। कमलयोने ! देव श्रेष्ठ ! हम सब तुम्हारी शरण को प्राप्त हैं। पवित्र चित्तवाले देवों के उस वचन को सुनकर देव ब्रह्मा ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा ।।१/९।। देवों तुम्हारा आना कैसे हुआ ? सब उदास क्यों हो ? देवगण ! तुम सब किसके द्वारा तिरस्कृत हो शीघ्र कहो ।।१०।। देवों ने कहा-ब्रह्मन् ! बल से गर्वित महा बलशाली बाण नामक असुर हैं उसने हमारा सर्वस्व हर लिया है हम सब धन रत्नों से पृथक कर दिये गये हैं। देवों के वचन सुनकर लोकों के पितामह देवेश ब्रह्मा ने उस वाणासुर के नाश के लिये कर्तव्य का विचार किया। पापी दानव सम्पूर्ण देवों के लिये अवध्य है। भगवान शंकर को छोड़कर मेरे और विष्णु के द्वारा भी उसका वध सम्भव नहीं। हम सब वहाँ ही चलते हैं जहाँ महादेव श्री शंकर है वह हम सबके रक्षक है अन्य कोई नहीं। वेदज्ञों में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी सब देवों से ऐसा कहकर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ वहाँ आये और बहुत सुन्दर स्तुतियों से श्री शंकर जी की स्तुति की ।।११/१६।। देवों ने कहा--देव देवेश ! तुम्हारी जय हो ! उमा के साथ अर्ध-नारी नटेश्वर का रूप धारण करने वाले विशाल भुजा ! चन्द्रमा को भूषण रूप से धारण करने वाले तुम्हारी जय हो। शूल को हाथ के अग्रभाग में धारण करने वाले आपको नमन है। खट्वांग धारण करने वाले को नमन हैं। हे भूतपते ! तुम्हारी जय हो। देव ! दक्ष यज्ञ

का विनाश करने वाले पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) विशिष्ट ! पञ्चभूत स्वरूप देव ! तुम्हें नमन है। पञ्चमुख ईशान ! तुम्हें ही वेद गाते हैं। तुम सदा ही इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति स्थिति और संहार करते हो तुम्हें नमन है। पृथ्वी, जल तेज वायु आकाश, सूर्य चन्द्र सोमयाजी रूप से आठ मूर्तियों वाले कामदेव विनाशन ! स्तुति के अनुसार तुम सत्य का स्मरण करो। देव ब्राह्मणगण तुम्हारे पञ्चात्मक शरीर का गायन करते हैं। 'सद्यो जातम्' 'वाम देवाय नमः' 'नमो अघोरेभ्योऽथ' 'ईशानः सर्व 'तत्पुरुषाय विद्महे' इन मन्त्रों से तुम्हारा ही यशोगान होता है। सब पापों को हरने वाले हर ! बड़े फैले हुए सुवर्ण के जाल में तुम हंस के समान अव्यक्त शब्द करते हो। इस प्रकार मुनीगण और ब्रह्मा आदि देवों और सुर असुरों द्वारा भगवान शंकर की स्तुति की गयी। स्तुति से प्रसन्न होकर देवगणों से वे बोले ॥१७/२३॥ भगवान शंकर ने कहा--देवताओं और ब्राह्मणों आपका स्वागत है। आज अच्छे प्रातः काल वाली रात्रि है शीघ्र ही कहो कि हम क्या करें ! सुर असुरों का और कौन पूज्य हुआ है। तुम्हें क्या दुःख और सन्ताप है। कहाँ से तुम्हें भय उपस्थित है। महा पुरुषों। तुम्हारे मन में जो बात हो वह कहो। शंकर के ऐसा कहने पर श्रेष्ठ देवों ने कहा--वे सब अपने अपने शरीरों को दिखाते हुए लज्जित होते हुए से नीचे की ओर मुख किये हुए थे। बल से अभिमानी महापराक्रमी भयंकर बाण नामक दानव प्रसिद्ध है। जिसके विशाल तीन पुर हैं उस दानव ने दस सौ वर्ष तक उग्र तप किया। उसके नियम तथा मन की एकाग्रता से ब्रह्मा जी उस पर प्रसन्न हो गये। ब्रह्मा ने उसे आयस--लोह मय रजत--चाँदी से रचित और सौवर्ण--सुवर्ण से बने इच्छानुसार चलने वाले अमोघ तीन चलते फिरते पुर दिये। ये तीनों पुर ब्रह्मा के द्वारा रचित इच्छानुसार चलने वाले थे। उसके सब प्रबल दानव तीनों पुरों में स्थिर रहे ॥२४/३०॥ हे देव ! वे दानव सारी त्रिलोकी की सम्पति पीड़ित कर रहे हैं। वे दण्ड पाश तलवार और अन्य शस्त्रों का प्रयोग

निरपराधों पर भी करते हैं। तीनों पुर दानवों से सेवित चक्र के समान घूमने वाले कभी अदृश्य होकर मृग तृष्णा के समान है। वे बोले उस दानव के तीनों पुर जहाँ पर गिरते हैं वहाँ ब्राह्मण देवता और गौएँ सब नष्ट हो जाती हैं और जीव भी नष्ट हो जाते हैं। जहाँ वे तीनों पुर गिरते हैं वहाँ कुछ नहीं दिखायी देता। नदियाँ ग्राम और देश सभी भस्म की ढेरी बन जाते हैं। सोना चाँदी मणि और मुक्ताएँ और सुन्दर स्त्री रत्न आदि सबको वह बल पूर्वक खींच लेता है। शंकर। देवगण उसे शस्त्र-अस्त्र से दिन या रात्रि में किसी भी तरह नहीं मार सकते ॥३१/३६॥ इस कारण हे शंकर ! इन पुरों को तुम भस्म कर दो, तुम ही मेरी परम गति हो। देवेश ! यह अनुग्रह तुम हम सब पर करने योग्य हो। जिसको देवता गन्धर्व और तपस्वी ऋषि गण सभी बड़े धैर्य से पालते हैं हे प्रभो ! तुम वही करने योग्य हो। महेश्वर बोले--तुम लोग दुखी मत होओ। यह सब मैं करूँगा। समय से शीघ्र ही तुम लोगों के लिए सुख कारक कार्य करूँगा। इन्द्र आदि उन सब देवों को आश्वासन देकर सदाशिव ने सोचा त्रिपुरासुर का वध कैसे करूँ ? एक नारद को छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार अपने हृदय को स्थिर कर श्री शिव ने नारद का चिन्तन किया। उसी क्षण वायु के समान सूक्ष्मगति वाले महा तपस्वी नारद जी उपस्थित हुए। वह कमण्डल लिए हुए त्रिदण्ड धारण किये तेजस्वी ज्ञानी योगपट और अक्षसूत्र तथा छत्र संयुक्त तीन बार महादेव की परिक्रमा कर पृथ्वी में दण्डवत् लेट गये। समर्थ देवर्षि नारद हाथ जोड़कर उदार मन से भक्तिपूर्वक स्तोत्र से शंकर की स्तुति करने लगे ॥४१/४५॥ श्री नारद जी ने कहा--त्रिलोचन सबका कल्याण करने वाले तुम्हारी जय हो। देव तम्हारी जय हो। शंकर ! ईशान ! तुम सबसे उत्कृष्ट हो। हे रुद्र ! ईश्वर ! तुम्हें नमन है। तुम सबके स्वामी और सब जगत् के बनाने वाले तथा तुम ही संहार करने वाले हो। तुम ही सब लोकों के नाथ और दुष्ट दलन, काल के भी विनाशक हो। देवों के ईश वेदत्रयी मूर्ति

धारण करने वाले सनातन देव हमारी रक्षा करो। संसार के अनित्य भावों के विनाश के लिए तुम रक्षक को भजता हूँ। मेरा स्मरण आपने किसलिए किया है प्रभो आज्ञा दीजिए। आज मैं किसके चित्त को व्याकुल करूँ। आज पृथ्वी में कौन जाकर गिरे। सर्व विजयिन् मैं आज किसे कलह से जोड़ दूँ ? आज्ञा दें ॥४६/५०॥ नारद के वचन सुनकर विकसित नयन भगवान शंकर यह वचन बोले--मुनि श्रेष्ठ, कलह प्रिय ! नारद तुम्हारा स्वागत है। वीणा बजाने में निपुण सनातन ब्रह्म पुत्र, नारद तुम शीघ्र ही वहाँ जाओ वहाँ वे तीनों पुर हैं। दानव राज वाण के वे सब लोकों से भयंकर तीनों पुर रहे हैं। वहाँ पति देवता के समान हैं और स्त्रियाँ अप्सराओं के समान हैं। उनके तेज से ही ये विशाल तीनों पुर घूमते रहते हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठ ! सब उपायों से किसी भी प्रकार उसका तोड़ना सम्भव नहीं तुम जाकर उन्हें विविध-भेद मूलक धर्मों से शीघ्र ही मोहित करो ॥५१/५५॥ नारद जी बोले--देवेश ! जो पुर इन्द्र सहित देवों द्वारा बहुत उपायों से अभेद्य है आपकी आज्ञा से अभी तोड़ता हूँ। राजन् ! ऐसा कहकर अनेक सिद्धि समृद्धियों से सम्पन्न सौ योजन फैले वाण के उस श्रेष्ठ पुर में नारद गये। अनेक उत्सवों से युक्त विविध धातुओं से विचित्र वर्ण; अनेक भवनों से शोभित, विविध मन्दिरों से प्रकाशित, द्वार और गृह के बाहरी भागों से युक्त, परकोटे और परिखाओं से पूर्ण, बावड़ी कुएं, तालाबों तथा देव मन्दिरों से युक्त, हंस जल कुक्कुट पूरित कमलिनी समुदाय से विभूषित अनेकों वन की शोभाओं से सम्पन्न, विविध पक्षियों से सब्दाय मान; ऐसे अनेक गुणों से शोभाय मान बाण का उत्तम पुर है। उस पुर के बीच बड़ी विशाल सात कक्षाओं वाला अत्यन्त सुन्दर सम्पूर्ण वर्णों से भूषित; बाण का दिव्य भवन है। मोतियों की मालाओं की शोभा से सम्पन्न, वज्र और वैदूर्य मणियों से अलंकृत सुवर्ण-पट्टतल संव्याप्त और रत्न भूमि से भूषित मत वाले हाथियों के दीर्घ लम्बी श्वासों से रथों से अलंकृत घोडों की हिन हिनाहट और स्त्रियों के पाद भूषणों के

शब्दों से व्याप्त खड्ग तोमर हाथ में लिए हुए वज्र-अंकुश-बाण रूपी हथियार युक्त, भयंकर रूप वाले, बल से गर्वीले दानवों से यह भवन रक्षित है ।।५६/६५।। बाण का उत्तम भवन ऐसे गुणों से पूर्ण कैलाश की चोटी के समान और इन्द्र के भवन के समान था । तब नारद शीघ्र ही पुर के सामने पहुंचे । द्वार पर पहुंच कर द्वार पाल से बोले--बड़ी बुद्धि वाले राज कार्य में कुशल सूत ! तुम शीघ्र ही बाण से कहो कि नारद द्वार पर स्थिर है । वह नारद के चरणों की वन्दना कर शीघ्रता से सभा के बीच में बैठे बाण से बोला उसका शरीर काँप रहा था वह हाथ से मुख ढँके हुए था । सब वीरों के सुनते हुए वह वचन बोला ! देव-गन्धर्व-यक्ष-किन्नरादिकों से पूजित, कलह प्रिय, दुःख से प्रसन्न करने योग्य नारद द्वार पर स्थित है ।।६६/७१।। द्वार पाल के वचन सुन वह दैत्य राज बाण शीघ्रता से विस्मय पूर्वक द्वार पाल से बोला कि तेजस्वी दुःसह और दुःख से पार पाने योग्य महा भाग शाली ब्रह्मा के पुत्र नारद को प्रवेश कराओ । उन्हें बाहर ही क्यों रोक रखा है । स्वामी के वचन सुनकर द्वारपाल शीघ्र ही नारद जी को भीतर ले आया । देव-पूजित नारद को आते देख प्रसन्न मन वाण ने उठकर मुनि के चरणो की वन्दना की । उसने विधि पूर्वक उन्हें अर्घ्य-आसन और चरण प्रक्षालनार्थ जलादि देकर पूजा की तथा बान्धवों सहित वह राज्य और अपने को भी समर्पित करने लगा ।।७२/७६।। स्वयंभी मुनि से कुशल प्रश्न पूछा । नारद जी बोले--दनु वंश के बढ़ाने वालें बढ़ी भुजों वाले दानव श्रेष्ठ राजन् ! बहुत ठीक बहुत अच्छा तुम्हे छोड़कर त्रिलोकी में इस समय दूसरा कौन प्रशंसनीय है । दनु श्रेष्ठ मैं तुम्हारे द्वारा परम उत्तम धन रत्नों से राज्य और तुम्हारे शरीर से भी पूजित हुआ हूं । इस प्रकार दूसरा कौन पूजा करेगा, मुझे भोग से कोई प्रयोजन नहीं, रोग शोक से रहित तुम राज्य का भोग करो । भगवान् शंकर का दर्शन कर मैं तुम्हें देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ सुना है तुम्हारी स्त्री भी सती है । उन्हें देखने की इच्छासे भी भ्रमण करता आ रहा हूँ ।।७७/

८१।। यदि तुम इसे उचित मानते हो तो बिना बिलम्ब किये शीघ्र ही अपनी पत्नी को दिखलाओ। नारद वचन सुनकर अन्तःपुर में रहने वालें हाथ में दण्ड लिये हुए गुणी बृद्ध कञ्चुकी को देख प्रसन्न चित्त राजा ने गम्भीर शब्द से कहा कञ्चुकिन ! तुम शंका रहित होकर अन्तःपुर में रहने वाले सब जनों के साथ महादेवी पटरानी को श्री नारद के दर्शन कराओ। स्वामी की आज्ञा को आगे कर नारद को हाथ से पकड़ कर भीतर प्रवेश कराता हुआ महारानी से निवेदन किया "यह नारद जी आये है" देवी ने नारद को देखकर चरणों की वन्दना कर स्वर्ण निर्मित श्रेष्ठ आसन और अर्घ्य पाद्यादि उन्हें दिया ।।८२/८६।। नारद ने उत्तम आशीर्वाद उसे दिया हे देवी ! तीनों लोकों में भी तुम्हारे समान दूसरी सुन्दरी पतिव्रता शुभ आचरण वाली सत्य और शोच से युक्त नारी नहीं है। जिसके प्रभाव से सदा त्रिपुर चक्र सा घूमता रहता है। नारद के वचन सुनकर धर्म धारियों में श्रेष्ठ रानी ने भक्ति पूर्वक ऋषि से धर्म तत्त्व पूछा। भगवन यह तो बताओ कि मनुष्य लोक में देवता किन व्रतों से प्रसन्न होते है ? कौन दान उत्तम है ? किसका बड़ा फल होता है। विद्वानों ने स्त्री धर्म में जो कुछ उपवास कहे हैं जिनके करने से पुण्य शालिनी स्त्रियाँ स्वर्ग जाती हैं महात्मन ! यह सब यथा विधि कहो मैं सुनना चाहती हूं। नारद जी ने कहा-पटरानी ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा जिसे सुनकर सब स्त्रियों की धर्म वृद्धि हो जाती है। उपवास और दानों से पति-पुत्र दोनों वशवर्ती हो जाते हैं। जिनके करने से बान्धव आदर देते हैं उन कर्मो को मैं तुमसे कहता हूं ।।८७/९४।। स्त्री जिन कर्मों से दुर्भागनी होकर भी सौभाग्य शालिनी होती है और सौभाग्यवती सपुत्रवती हो जाती है। कन्या पति पाती है और कन्या पति बिना ही जीवन बिताती है। ये सभी फल किये न किये कर्मों से होते है। सुन्दरी ! तुम वह सुनो-तिल निर्मित गाय अथवा, तिल सहित गाय, सोना, चाँदी, गौएँ, वस्त्र, जल, भूमिदान, गन्ध धूप का अनुलेपन, पादुका, छत्र, पवित्र व्यन्जन पैरों का अभ्यंग उबटन

शिर में लगाने का तेल आदि स्नान, शय्या, पलंग, गद्दे, तकिया, रजाई आदि आसन ।।९५/९८।। इन वस्तुओं को जो सुपात्र ब्राह्मणों को देते है उन्हें यम के दर्शन नहीं होते । शहद, उड़द, दूध, घृत, नमक, गुड़, औषध, जल वा पेय शर्वत भूमिदान, गन्ने का रस, धान, चावल, पति-पत्नी को ललिता व्रत के दिन में रक्त वस्त्र ये वस्तुएं सदाचारी, रूप सम्पन्न, गुणी, योग्य विद्वान को देने से इस लोक और परलोक में भी सौभाग्य और सुख प्राप्त होते हैं । रानी जिस तिथि में यह देना चाहिए वह मैं तुमसे कहता हूँ । जो स्त्री प्रतिपदा तिथि में पूर्वार्ध दिन के प्रथम भाग में पवित्र नियम वाली होकर 'भगवान अग्नि देव मुझपर प्रसन्न हो' यह कहकर ब्राह्मण को ईधन देती है । राज प्रिये ! उसे फिर जन्म तथा छत्तीस अंग प्रत्यंग सन्धियों में कोई विकार या सन्ताप नहीं होता ।।९९/१०३।। द्वितीया तिथी में जो नारी प्रसन्न होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण को नवनीत देती है वह सुकुमार कोमल शरीर वाली होती है तृतीया में पार्वती मुझ पर प्रसन्न हो, यह कहकर श्रेष्ठ ब्राह्मण को लवण देती है उसका पुण्यफल सुनो । कुमारी श्रेष्ठपति पाकर उसके साथ उमा की भाँति सौभाग्यवती होकर नाना विलास करती है और वह बड़ा यश पाती है । चतुर्थी में भक्त व्रत रात्रि भोजन के नियम से जो स्त्री लड्डू ब्राह्मण को देती है । देवेश मुझ पर प्रसन्न हों ऐसा कहकर मोदक देने वाली नारी को उस फल से सुन्दरी ! सब कार्यों में कोई कहीं विघ्न नहीं होता ।।१०४/१०८।। ऐसा ब्रह्मा ने कहा है । पञ्चमी तिथि में जो नारी ब्राह्मण को तिल देती है वह नारी तिलोत्तमा के समान रूपवती होती है । षष्ठी तिथि में जो नारी मधूक महुआ के फल अग्निपुत्र स्कन्द का स्मरण कर वेदों के पारंगत ब्राह्मण को देती है उसका पुत्र देवों में उत्तम स्कन्द की भाँति होता है और सब लोकों में सम्मानित वह बड़ा राजा होता है । जो नारी सप्तमी तिथि में जगत् के स्वामी देवाधिदेव-सूर्य का चिन्तन कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को सुवर्ण से पूजती है उसका फल जो कहा है वह मैं तुमसे कहता हूँ ।

पतिव्रते ! तुम एकाग्र मन होकर सुनों उस स्त्री के अंगों में पूर्व कर्मों से प्राप्त दाद, कोढ़, शरीर में गोल-गोल चकते या गजकर्ण रोग खुजली आदि रोग नहीं होते ।।१०९/११४।। तथा अष्टमी तिथि में जो नारी भगवान शंकर प्रसन्न हों यह मनन कर सदाचारी ब्राह्मण को कृष्ण को देती है उसका जन्म भर का पाप नष्ट हो जाता है । वह धन सम्पन्न हो जाती है इसमें सन्देह नहीं । क्योंकि यह दान बहुत श्रेष्ठ है । जो नारी ब्राह्मण को गन्ध धूप कात्यानी देवी का विचार कर देती हैं नवमी तिथि के इस दान का फल सुनो । उसका भाई, पिता, पुत्र अथवा पति संग्राम में ज़ाकर भी दुखितः नही होते, वे उस दान से रक्षित रहते हैं । देवी ! दशमीं तिथि में जो नारी गन्ने का रस देती है लोकपाल इन्द्र-वरूण आदि का चिन्तन कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को दिये गये इस दान से वह सदा सब लोकों में सबको प्रिय होती है ऐसा शंकर जी ने कहा है । एकादशी में उपवास कर द्वादशी तिथि में नारायण का चिन्तन कर विष्णु भक्त ब्राह्मण को जल देने वाली नारी सदा अपने स्पर्श तथा भाषण से मनुष्य को द्रवित और सद्भाव से युक्त कर देती है ।।११५/१२२।। महर्लोक में जलदान का अनन्त गुणा फल होता है । किसी कामना का चिन्तन कर त्रयोदशी तिथि में जो नारी बड़ी भक्ति से श्रेष्ठ ब्राह्मण को पैर में लगाने की द्रव्य सामग्री और शिर में लगाने की सामग्री तैल आदि देती हैं वह स्त्री जिस-जिस योनि में मरकर जन्म लेती है उस-उस योनी में वह पति से कभी वियुक्त नहीं होती । इस प्रकार चतुर्दशी तिथि में धर्म का विचार कर ब्राह्मण को छाता और जूते देती है । उसे रोग-शोक रहित लोक प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार पक्ष-पक्ष के अन्त में पूर्णमासी और अमावस्या के श्राद्ध में विद्वान सदाचारी ब्राह्मण को तृप्त करती है उसकी सन्तति की परम्परा कभी टूटती नहीं । इस प्रकार बाण के सम्बन्ध में तुमसे मैंने तिथियों की महिमा बताई ।।१२३/१२७।। अब तुम मुझसे वृक्षों के आराजना की विधि सुनो । जामुन, नीम, तेन्दू, महुआ, आम, आंवला, सेमर, बरगद, पीपल, शमी, वेला,

आमली, केला, गुलाब और अन्य वृक्षों को लगाकर पुण्यवृक्षों का पूजन कर मनुष्य स्वर्ग पाता है ।।१२८/१३०।। नारद जी बोले--जो नारी चैत्र मास में सर्वोत्तम व्रत करती हैं । अन्य व्रत उस व्रत की सोलहवीं कला को भी नहीं पाते । सौभाग्ययुक्ते ! इस व्रत के सुनने मात्र से उसी प्रकार दुर्भाग्य नष्ट होता है जिस प्रकार सूर्य की किरणों को पाकर बर्फ पिघल जाता है । उसी प्रकार दुःखी और खोटा भाग्य भी इस व्रत से नष्ट हो जाता है । जिसमें मधुका नामक ललिता की आराजना होती है । हे सुन्दरी ! सुख देने वाली उस विधि को तुम सुनो-चैत्रमास में शुक्ल पक्ष की तृतीयातिथि में भली-भाँति स्नान किये हुए शुद्ध मनवाली होकर पार्वती के साथ मधु वृक्ष की शिव प्रतिमा बनवाकर विधि-पूर्वक श्रेष्ठ विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित कर सुगन्धित फूलों से धूप और कपूर कुंकुम आदि द्रव्यों से सुन्दरी मन्त्र युक्त विधि से भगवान की पूजा करे 'नमः शिवाय, कहकर पैरों की पूजा करे । मन्मथाव नमः कहकर जननेन्द्रियकी, कालोदराय नमः, से उदर की नीलकण्ठाय नमः कहकर कण्ठकी सर्वात्मने नमः कहकर शिर की पूजा पीछे पार्वती की पूजा करें । दामोदरायै नमः कहकर उदर की सुकण्ठायै नमः कहकर कण्ठ की सौभाग्यदायिन्यै नमः कहकर शिर की पूजाकर अर्ध्य देना चाहिए । हे देवाधिदेव ! ईश ! उमापते ! जगत्पते प्रभो ! तुम्हें प्रणाम है इस अर्ध्य दान से तुम मेरे सब दुर्भाग्य का नाश करो । यह अर्ध्य का मन्त्र है--नमस्ते देव देवेश उमावर जगत्पते । अर्घ्येणानेन मे सर्वे दौर्भाग्यं नाशय प्रभो । इस मन्त्र से अर्ध्य देकर पीछे जल से पूर्ण महुआके पात्र में स्थापित शक्तिपूर्वक स्वर्ण सहित सौभाग्य द्रव्यों से युक्त ललिते देवि ! सौभाग्य आदि के बढ़ाने वाला करवा तुम्हें अर्पित है । करकदान का मन्त्र यह है--करकं वारि सम्पूर्ण दद्यात् करक मुत्तमम् । दत्त तु ललिते तुभ्यं सौभाग्यादि विवर्धनम् । इस मन्त्र से ब्राह्मण को उत्तम करवा दो शुक्ल पक्ष के व्रत में लवण का त्याग अन्य दूसरी तृतीया तक करे । देवी और देवेश से क्षमा प्रार्थना कर स्वयं रात्रि

में हविष्यान्न का भक्षण करे । इस विधि के साथ सात मास में यह वृत सम्पन्न करे । फाल्गुन शुक्ल तृतीया में यह व्रत समाप्त करे । वैसाख में नमक देना चाहिए, ज्यैष्ठ मास में घृत, आषाढ़ में उड़द, श्रावण में दूध, भाद्र पद में मूँग तथा आश्विन में उत्तम धान या चावल, कार्तिक में शर्करा पूर्ण पात्र और रस से पूर्ण करवा, अगहन में कपास रूई व वस्त्र और घृत से पूर्ण करवा, पौष मास में कुम्कुम देना चाहिए । माघ मास में तिल पूर्ण पात्र, फाल्गुन में लड्डुओं से पूर्ण पात्र देना चाहिए । पीछे तृतीया में जो देना हो वह पूर्व तृतीया में ही त्याग करे । रानी ! इन सब तृतीयाओं का विधान तुल्य है । मधु वृक्ष की पूर्व निर्मित प्रतिमा की पूजा करे और वह सब कुछ देय वस्तु आचार्य ब्राह्मण को दे दें । पश्चात् वर्ष के अन्त की उद्यापन विधि को सुनो । बहुत सामग्री लेकर मधु-वृक्ष के पास जाकर उसकी प्रतिमा को बीज में गाड़ दे वहाँ स्थापित पार्वती के साथ संयुक्त शंकर की पूजा करे । पूजा के भेटों सुन्दर मालाओं, पुष्पों से तथा केसर अलसी के फूल के समान सुन्दर कौशेय के दो वस्त्रों से उस प्रतिमा की पूजा करे और सपत्नीक बारह ब्राह्मणों को जूता जोंड़ी, छाता कण्ठ सूत्र और कण्ठी, कटक मुद्रिका इन आभूषणों तथा अच्छे बिस्तरों से युक्त शय्याओं, कुम्कुम से सुन्दर लिप्त अंगों वाले बहुत से पुष्पों से पूजित करे विविध रत्नों से युक्त उस मधूक--महुआ के आवास में स्थिति उन ब्राह्मणों को विविध भक्ष्य पदार्थों का भोजन करावे भोजनोपरान्त उन्हें शय्या में विश्राम कराकर क्षमा प्रार्थना करे । क्योंकि गुरु के अधीन ही सब कुछ है और गुरु शंकर को समझना चाहिए । गुरु के प्रसन्न होने पर सुर-असुर सहित सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होता है । संसार में जो परम प्रिय हो, घर में जो अच्छी वस्तु हो, आत्म कल्याण चाहने वाले पुरुष को वह सब गुरु को देना चाहिए । यह सब धनवान पुरुष के दान करने योग्य विधान कहां अब निर्धन को जो देना है वह सुनो ! उनके लिए पत्नी सहित बारह ब्राह्मण वरण आवश्यक नहीं हैं उन्हें शुभ व्रतों से एक

ब्राह्मण जोड़े का पूजन कर सपत्नीक गुरु का कृपणता त्याग कर यथा शक्ति पूजन करना चाहिए पश्चात् ब्राह्मण तथा गुरु से क्षमा याचना करे और यह कहे ललिता माता जिस प्रकार तुम शंकर से पृथक नहीं होती, उसी प्रकार मुझे भी पति पुत्रों का वियोग न हो। इस विधि से मधु नामक तृतीया का अनुष्ठान करके ही इन्द्राणी ने इन्द्र पति पाया, उत्तम पुत्र पाया। सब लोकों में सौभाग्य सब समृद्धियों का उत्तम सुख पाया। इस विधि से जो कुमारी व्रत का आचरण करती है वह उसी प्रकार उत्तम पति पाती है। जिस प्रकार इन्द्राणी ने इन्द्र को पाया। खोटे भाग्य वाली स्त्री सौभाग्यवती तथा पुत्रवती होती है। पुत्रवाली स्त्री अक्षय सुख और अक्षय लोक पाती है। फिर वह कभी शोक दुःख नहीं देखती उसका अनेक जन्मों का दुर्भाग्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। वह मरने के बाद पार्वती के साथ सुख का उपभोग करती हुई प्रसन्न रहती है। कुछ अधिक सौ करोड़ कल्प पर्यन्त मन चाहे भोगों को भोगकर फिर संसार में जन्म होने पर पार्थिव-शरीर धारी पति को पाती है। सौभाग्य शालिनी रूपवती वह नारी उत्तम पुत्र उत्पन्न करती है। व्रतों में उत्तम यह सब व्रत मैंने तुमसे कहा है। हे सौभाग्य शालिनी! और जो तुम्हारे हृदय में मनोरथ हो वह तुम मुझसे पूछो ॥१३१/१६९॥

इति श्री छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥२६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

त्रिपुर के क्षोभ का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत् ।
प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र गृह्य दानं यथेप्सितम् ॥

सवैया-- तिनके प्रकाश से सब पितर स्वर्ग लोक गये, राजा और रानी ने पुण्य फल पाए हैं।
जो नर रेवा में नित्य दीप प्रवाहित करे, मरनें के बाद तिन परम प्रकाश पाये हैं।

मार्कण्डेय जी बोले--नारद के वचन सुनकर रानी बोली--ब्राह्मण श्रेष्ठ ? प्रसन्न होओ अनुग्रह करो। मन के अनुसार दान ले लो स्वर्ण, मणि, रत्न,

विविध वस्त्रा और जो दुर्लभ वस्तु हो वह सब मैं तुम्हें दूंगी। रानी के वचन सुनकर नारद बोले भद्रे ! जो ब्राह्मण निर्धन है उन्हें दान दीजिए। हम तो सब प्रकार से सम्पन्न है और केवल भक्ति से ही प्रसन्न होने वाले हैं। तब रानी ने वेद वेदांग पारगामी निर्धन ब्राह्मणों को बुलाकर विविध दान दिये तथा सौभाग्य को बढ़ाने वाला जो दान नारद जी ने कहा था वह दान ब्राह्मणों को दिया और कहा इस दान से सदा मुझ पर श्री विष्णु और शंकर प्रसन्न हों। तब उस रानी ने नारद जी से कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुमने जो दान पति की प्रसन्नता के लिए और पति के कर्म सिद्धि के लिए कहा वह मैंने दिया। जन्म जन्मान्तर पर्यन्त मेंरे पति बाण ही हों यदि बाण को छोड़कर मेरा कोई देवता नहीं है तो उस सत्य से मेरे पति सौ वर्ष तक जीवित रहें। जिस प्रकार स्त्रियों का पति देवता होता है वैसे ही अन्य कोई भी धर्म उनका नहीं है। तो भी तुम्हारे वचन से विधि पूर्वक मैंने दान दिया है। मान देने वाले ब्राह्मण ! अपने पति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करूँगी। ब्रम्हर्षे ! तुम अब जाओ और हमें आशीर्वाद दो। राज श्रेष्ठ ! वैसा ही हो ऐसा उस रानी से कहकर नारद सब रानियों के मन को आकर्षित कर अन्यत्र मन की वृत्ति कराकर देवों से पूजित होते हुए वह ब्राह्मण नारद अन्तर्ध्यान हो गये। भरत वंशोत्पन्न ! तब वे सब अपने पति बाण के आकृष्ट मन वाली होती हुई नारद से मोहित होकर उतरी आकृति वाली तथा फीकी कान्ति वाली हुई ।।१/१३।। सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।२७।।

अठाईसवाँ अध्याय

त्रिपुर विनाश जालेश्वर अमरेश्वर तीर्थ वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- एतिस्मन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः ।
क्रीडते ह्युमया सार्द्धं नारदस्तत्र आगतः ।।

सवैया-- महाराजा बलि ने यज्ञ किये नर्मदा तट, वामन रूप धरकर भगवान जहाँ दरसो है।
सुर और असुर केते राजा भये पृथ्वी पर, सबने नर्मदा तट यज्ञ हेतु परखो है।

श्री मार्कण्डेय बोले--इसी बीच नर्मदा के तट पर स्थित श्री शंकर पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। नारद जी वहाँ आ गये उमा के साथ देवाधिदेव शंकर को प्रणाम कर त्रिपुर के साथ जो कुछ वृत्त हुआ था। उसे नारद जी ने निवेदन किया और कहा कि मैं स्वामी की आज्ञा से वाण के आवास त्रिपुर में गया था, न्याय पूर्वक वाण को देखकर उसके विस्तीर्ण अन्तःपुर में गया। वहाँ बुद्धिमान वाण की हजार स्त्रियों को देखकर इच्छानुसार यथा योग्य उस पुर को मोहित कर लौटा हूँ। नारद के वचन सुनकर "बहुत अच्छा बहुत अच्छा।" इन शब्दों से प्रशंसा करते हुए शंकर ने त्रिपुर के भ्रमण का चिन्तन किया ॥१/५॥ समर्थ विष्णु के द्वारा हाथ से छोड़ा गया बड़े वेग वाला और बड़ा चक्र मेरे तेज से जैसे रक्षित हुआ। वह लोक में प्रसिद्ध बाण मेरी भक्ति में तत्पर है और विशेष रूप से ब्राह्मणों की वाणी भी मेरी इच्छा से उसे प्राप्त है। इस प्रकार देव-देव शंकर ने बहुत समय तक सुख पूर्वक कार्य का चिन्तन किया तत्पश्चात् श्री शिव जी ने मन्दिर का ध्यान कर उसे धनुष में स्थापित कर ताँत में पृथिवी को स्थापित कर, बाण में सनातन विष्णु का ध्यान कर, उसके अनुभाग में प्रदीप्त चारों ओर मुख वाले अग्नि को स्थापित कर, पंखों के मध्य में गरुड़ और वेग में वायु का स्थापित कर पृथिवी रूप रथ की रचना कर धुरी के अग्रभाग में दोनों अश्वनीकुमारों को, अक्ष में इन्द्र देव को और आगे के कीले में कुबेर को दाहिनी ओर यम, बाँई ओर बड़े कठोर काल की भावना कर सूर्य-चन्द्र को चक्र रूप में और आरों में गन्धर्वों को, ब्रह्मा को सारथि तथा वेदों को श्रेष्ठ घोड़े बनाकर वेद के अंगों को लगाम आदि के रूप में, रास के रूप में छन्दों की कल्पना की ॥६/१३॥ मुख से उच्चारण करने योग्य ओंकार को चाबुक बनाकर धाता को आगे और विधाता को पीछे कर सब दिशाओं में वायु भेदों तथा उर्ध्व यन्त्र में बड़े-बड़े सर्पों और पिशाचों सिद्ध विद्याधरों को स्थापित कर, गणों और भूत समुदायों को सब अंगों की सन्धियों में जुए

के बीच में मेरु और जुए के नीचे हिमालय, यन्त्र में घोर सर्प, शम्य स्थान विशेष में वरुण और निऋति और रस्सियों के बन्धन स्थान में गायत्री और सावित्री स्थित हुई ।।१४/१७।। रथ के ध्वज में सत्य, शौंच, वन और रक्षा को चारों ओर स्थिर कर रथ को देव मय बनाकर युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए । कवच धारण किये, तलवार लिये हुए, गोह के निर्मित उंगलि रक्षक साधन से युक्त होकर देव-देव शंकर फेंटा कसे हुए, जटा-जूट को दृढ़ता से बाँधकर दिव्य धनुष को सज्जित करते हुए उत्तम रथ को जुतवाकर युधिष्ठिर ! रथ के बीच में स्थित श्री शंकर शोभित हुए । उन्होंने धनुष के तीव्र शब्द से त्रिभुवन को कंपा दिया । उस समय युद्ध के लिए दृढ़ता से वैशाखी का आश्रय लेकर शंकर स्थित हुए । (युद्ध स्थिति में वैशाख आलीढ़ आदि धनुर्धारियों के पाँच स्थान विशेष 'यादव' ने बताये हैं।) बहुत समय तक देखकर क्रोध से लाल नेत्र वाले होकर उत्कृष्ट मन्त्र का ध्यान कर और अपने को रोककर पुर के विनाश की इच्छा से सहसा वाण को छोड़ा । जब वे अन्तरिक्ष में तीनों साथ मिल गये तब थोड़े समय में आधे निमेष में त्रिपुर की एकता को देखकर तीन पोर वाले, तीन शल्य वाले वाण से उन्हें नष्ट कर दिया । भरत श्रेष्ठ ! तब लोग त्रिपुर में बाण के छूटने पर भय से व्याकुल हो गये तब असुरों के विनाश के लिए वे भय जनक काल रूप थे । तब लोग कष्ट रूप वाले अट्टहास कर रहे थे, लिखावट के कर्मों में निमेष उन्मेषण, पलक मूँदने का कामकर रहे थे । लोग निश्चल नेत्र वाले होकर चित्र-लिखित से हो रहे थे । देव मन्दिरों में शब्द कर रहे थे जोर से हँस रहे थे । स्वप्न में लाल वस्त्रों से शोभित अपने को देखते थे ।।१८/२७।। रक्त पुष्पों की मालाओं से युक्त मस्तक वाले होकर कीचड़ के कुण्ड में गिर रहे थे । अपने को तैल उवटन से युक्त मस्तक वाला देख रहे थे । राजश्रेष्ठ ! गधो से जुते हुए वाहन में लोग अपने को चढ़ा देखते थे प्रलय काल के समान सम्वर्तक नामक महावायु ने अनेकों घरों और वृक्षों को उखाड़ डाला ।

घोर शब्द के साथ भूकम्प और हजारों वज्रपात होने लगे। मेघ रक्त की वर्षा कर रहे थे। ब्राह्मणों के अग्नि कुण्डों में भलीभाँति हवन किये हुए अग्नि देव चिनगारियों वाले सधूम जल रहे थे। हाथी मद रहित हो गये। घोड़े निर्बल और गतिहीन हो गये। हजारों बाजे बिना बजाये बजने लगे। बिना वायु के ही ध्वज काँप रहे थे। अनेकों विचित्र छत्र गिर गये ॥२८/३३॥ वृक्ष और पत्ते चारों ओर जलने लगे। हाहाकार से पूर्ण वह सब व्याकुल हो गए। विचित्र सजे हुए उपवनों को अन्धड़ वायु ने तहस नहस कर दिया। उससे प्रेरित सभी पुर स्थित प्राणी जलने लगे। वृक्ष गुल्म लताएँ आदि और घर भी सभी सब ओर से जल गये। अग्नि देव दिशाओं के सब विभागों को लेकर प्रज्वलित हो रहे थे। सम्पूर्ण दृश्य पलाश के पत्र-पुष्प के समान जलता सा दीख रहा था, धुएँ के कारण एक घर से दूसरे घर नहीं जा सकते थे ॥३४/३७॥ त्रिपुर में सभी लोग शंकर की क्रोधाग्नि से जलते हुए विलाप कर रहे थे। दिशाओं में सभी ओर से त्रिपुर प्रज्वलित होकर खूब जल रहा था। भवनों में अग्र-भाग हजारों टूकड़े होकर गिर रहे थे। धुएँ से भरी आग चारों ओर जलती, नाचती हुई सब दिशाओं और देशों में फैलती हुई वनों में दौड़ रही थी। देव मन्दिरों सब घरों तथा अटारियों को जला रही थी। काल से प्रेरित बड़े हुए अग्नि देव शंकर के कोप से बढ़कर सम्पूर्ण प्राणियों के लोकों को जला दिया। राजन् बालकों वृद्धों युक्त पुर सहित, गृह-द्वार सहित वाहन वनों सहित सम्पूर्ण लोक को अग्नि ने जला डाला। कुछ भोजन में तथा कुछ पेय पान में लगे हुए थे। वेश्याएं नृत्य गीत में लगी हुई थीं। अग्नि की लपेटों से पीड़ित वे सब एक दूसरे से लिपट कर जलते हुए अचेतन हो रहे थे। दूसरे सभी दानव वहाँ अग्नि से विमोहित जल रहे थे। धुएँ से व्याकुल मुख वाले दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते थे ॥३८/४५॥ राजन् ! हंस, कारण्डव, पक्षियों से भरी स्वर्ण मय कमलों से युक्त अनेकों बावड़ियाँ और कुएँ भी जलकर नष्ट हो रहे थे। नगर के

बगीचे अग्नि से जले देखे जा रहे थे । सुन्दर कमलों से ढकी आठ-आठ योजन पर्यन्त फैली हुई विशाल बावड़ियाँ और पहाड़ों के समान रत्नों से शोभित भवन अग्नि से जल कर पृथिवी में टुकड़े होकर गिरे हुए दिखाई दे रहे थे । चारों ओर मनुष्य स्त्री, बालक वृद्ध, जल रहे थे । आग की लपटें भयंकर उठ रही थीं । बड़ा हाहाकार हो रहा था राज श्रेष्ठ ! कोई मुख से सोई हुई दूसरी नशे में चूर मतवाली, तीसरी क्रीड़ाकर विशाल शैय्या पर लोटी हुई विशाल नेत्रों वाली सुन्दरी हार से भूषित, धूम से आकुल होकर अग्नि में गिर पड़ी । कोई स्त्री जल रहे उस पुर में पुत्र स्नेह से पूर्ण होती हुई पुत्र को आलिंगन करती हुई अग्नि से जलने लगी । कोई इन्द्र नील मणी से सजी हुई सुवर्ण के समान गौरवर्ण वाली सुन्दरी पति को अग्नि में गिरा देख स्वयं उसके ऊपर गिर गई ॥४६/५१॥ राजन् ! सूर्य के समान वर्णवाली अपने प्रिय पति के ऊपर सोई हुई कोई सुन्दरी अग्नि की लपटों से पीड़ित होकर दृढ़ता से पति के गले से लिपट गई, मेघ के समान वर्ण वाली चञ्चल काञ्ची करधनी वाली ऊपर श्वेत वस्त्र ओढ़े हुई कोई सुन्दरी पृथिवी में गिर गई । कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा के समान वर्णवाली नील रत्नों से सुशोभित कोई सुन्दरी हाथ जोड़कर शिर से अग्नि की प्रार्थना कर रही थी । राजन् ! किसी स्त्री का वस्त्र जल रहा था तो किसी के केश जल रहे थे । लपटों वाले अग्नि के समान जल रहे स्वर्ण पात्रों से कुछ डर रही थी ॥५२/५५॥ दुःख से पीड़ित हो कोई सुन्दरी स्त्री पति को भस्मी भूत देखकर कुक्षरी के समान विलाप करती हुई पति के शरीर का आलिंगन कर सहसा उसके मस्तक पर गिर पड़ी बहुत दुःख से पीड़ित कोई सुन्दरी स्त्री अपने भवन में विलाप कर रही थी तो कोई अपने माता पिता को भस्मी भूत और अचेतन देख घोड़ी की भाँति भूमि में गिरकर काँप रही थी । दोनों ओर से जल रही कोई दूसरी ओर मुख वाली स्थित होकर गोद के बालक को नहीं देख पा रही थी ! कुम्भिल का घर जलकर पृथिवी में गिर चुका

था। कूष्माण्ड, धूम्र, कुहक, वक, विरूप नयन और विरूपाक्ष का भी घर जल चुका था। निष्पाप ! शुम्भ-डिम्भ-रौद्र-प्रह्लाद जो असुरों में श्रेष्ठ हैं, दण्ड पाणी और विपाणी लिहवक्य दुन्दुभाल और सह्नाद डिण्डि और मुण्डि वाण का भाई और वाण क्रव्याद और व्याघ्र व वक्त्र इसी प्रकार जो दूसरे बल में गर्बीले दानव थे, राजन् उनके उनके घरों में भी निर्दय आग जल रही थी। जल रही स्त्रियाँ घर-घर में विलाप कर रही थीं ।।५६/६४।। दीन वचन बोलने वाली अनाथ स्त्रियां शिव के समीप पहुंची और बोली--हे अग्नि देव ! यदि देवों के शत्रु से शत्रुता है तो पुरूषों के उपर ही वह वैर उचित है। गृह के पिंज्जरे की कोयल के समान स्त्रियों का क्या अपराध है तुम बड़े निर्दय और कठोर हो तुम्हारा स्त्री जनों से क्या क्रोध उचित है ? ।।६५/६६।। क्या तुमने यह संसार में नहीं सुना है कि स्त्रियाँ सर्वथा अबध्य याने वध के योग्य नहीं है। पर वायु से प्रेरित होकर जलाने में तुम्हारा गुण है किन्तु स्त्री जनों के प्रति तुम्हारी कोई दया व उदारता नहीं, तुम तो म्लेच्छों के भी म्लेच्छ और नीच कर्म से न हटने वाले अचेतन ही हो भारत ! स्त्रियों को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर भी बड़ी लपटों वाले अग्निदेव सब को जला रहे थे। यह देखकर बाण जलते हुए यह बोला कि शंकर का तिरस्कार करके मैं सरलता से पापी बन गया। मैंने सम्पूर्ण लोकों का विनाश कर दिया। इस लोक तथा परलोक में नित्य ही गौ ब्राह्मणों का वध किया। अन्न, पान, मठ बगीचे और आश्रमों का भी विनाश किया। ऋषियों के आश्रम, देवताओं के कार्य में आने वाले बगीचे सार्वजनिक स्थान भी मेरे द्वारा नष्ट हो चुके हैं। उस पाप से ही मेरे तप और बल का नाश हो चुका है। धन राज्य और अन्तःपुर से भी क्या करूँगा। मूढ़ बुद्धि में शंकर के चरणों की शरण में ही जाता हूँ यही श्रेष्ठ है। सब दुखों के हरने वाले सर्व श्रेष्ठ श्रीशंकर को छोड़कर माता पिता कोई रक्षक नहीं है कोई दूसरा बन्धु नहीं है। अपने द्वारा किया हुआ पाप स्वयं ही भोगा जाता है ।।६७/७६।।

मैं पुनः सब साधु सज्जनों के साथ जल रहा हूँ । ऐसा कह कर शिव लिंग को मस्तक पर रखकर वह बाण अग्नि से दुःखी पसीने से लथपथ होता हुआ घर से शीघ्र ही निकल पड़ा । जगह जगह वह लड़खड़ाते हुए, स्खलित होते हुए वह गद् गद वाणी से शंकर की स्तुति करते हुए उनकी शरण में गया उसने कहा शंकर ! तुम्हारी क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर यदि मैं वध योग्य हूँ तो महादेव ! तुम्हारी कृपा से मेरा आराध्य यह बाण लिंग नष्ट न हो । प्रभो ! यह लिंग मेरे द्वारा पूजित और भक्ति पूर्वक ध्यान किया गया है । इसकी मैंने भक्ति पूर्वक उपासना की है प्राणों से भी यह अत्यन्त प्रिय है । देवाधिदेव ! तुम इसकी रक्षा करने में समर्थ हो । सुरश्रेष्ठ ! यदि मैं तुम्हारा अनुग्रहपात्र हूँ अथवा वध योग्य हूँ तो मैं आपसे यही चाहता हूँ कि प्रत्येक जन्म में तुम्हारे चरणों में मेरी अचल भक्ति हो । महादेव ! अपने कर्मों से पशु पक्षी कीट पतंग तथा नीच तिर्यक् योनियों में पड़े हुए भी आप में मेरी अचल भक्ति हो । राजन् भक्तों में श्रेष्ठ महाभाग्यशाली बाण ने ऐसा कहकर निम्न स्तोत्र से देवाधि देव महादेव की स्तुति की ।।७७/८३।। बाण ने कहा--हे शिव ! शंकर सब के संहार करने वाले तुम्हें नमन है । संसार के भय से डरे हुए प्राणियों के भय का विनाश करने वाले तुम्हें नमन है । कामदेव का विनाश करने वाले सुन्दरियों की प्रिय कामना के पूरक देव ! तुम्हें नमन है । पार्वती प्राणनाथ परमार्थ सारभूत, भयंकर सर्प को हार बनाने वाले ! भगवान् तुम्हारी जय हो । निर्मल भस्म से भूषित शरीर तुम्हारी जय हो । मन्त्रों के फूल स्वरूप, जगत् के सत्पात्र, तुम सबसे श्रेष्ठ हो ।।८४/८५।। सर्पों से लिपटे होने से पीली जटाओं वाले तुम्हारी जय हो भयंकर रूप, पिनाक धनुष को धारण करने वाले तुम सब में उत्कृष्ट हो । त्रिनेत्र, संग दोष से रहित तुम सदा जय शील हो । सबका कल्याण करने वाले शंकर ! गंगा तरंग को धारण करने वाले प्रभो ! तुम्हारी जय हो ।।८५/८६।। भयंकर स्वरूप ! खट्वांग हाथ में लिए हुए तुम जय को प्राप्त हो

जाओ। सम्पूर्ण जगत् में प्रशंशित चन्द्रशेखर ! तुम्हारी जय हो। सुखद ! ईश सुरलोक के सारभूत भगवान् ! तुम्हारी जय हो। प्रज्वलित होने वाले पदार्थों के सारभूत ! तुम्हारी जय हो कीर्तनीय जगत् में पवित्र तुम्हारी जय हो। वृषभध्वज ! और विचित्र चरित्र वाले भगवन् तुम्हारी जय हो नर कपालों की माला वालें तुम जय को प्राप्त हो जाओ। अघासुर के शरीर पञ्जर के काल; नील कण्ठ, सुन्दर नन्दीश्वर पर गमन करने वालें; तुम्हारी जय हो। सम्पूर्ण लोकों के पाप का शमन करने वाले शम्भो ! तुम सर्व श्रेष्ठ हो। सिद्ध सुर असुरों के द्वारा भली-भाँति प्रजित चरण ! तुम्हारी जय हो। बहुत भयंकर संसार समुद्र से तारने वाले रुद्र तुम्हारी जय हो ॥८७/८९॥ गिरीश ! देवराज इन्द्र आदि के भी माननीय शिव ! तुम्हारी जय हो। सूक्ष्म रूप धारण करने वाले ऋषि, मुनियों के द्वारा भली-भाँति ध्यान करने योग्य तुम सर्व श्रेष्ठ हो। त्रिपुर के जलाने वाले विश्वके सूक्ष्म तत्व ! तुम्हारी जय हो ! सम्पूर्ण शास्त्रों के प्रतिपाद्य नित्य परमार्थ सत्य तत्त्व ! तुम हो ॥९०॥ संसार से तारने वाले, दुर्ज्ञेय तत्त्व, तुम्हारी जय हो। घोर कलियुग के पाप समुद्र से उबारनेवाले भगवान ! तुम जय को प्राप्त होओ। सुर-असुर आदि गणों के ईश ! तुम ही सबके जीतने वाले हो। अश्व, वानर, सिंह और हाथी जैसे मुखवाले भगवान तुम्हारी जय हो। बहुत सूक्ष्म-स्थूल और बहुत लम्बे रूप वाले तुम हो। देव गण भी तुम्हें नहीं पा सकते। उपाधि रहित ! अमर तत्व ! तुम्हारे चरणों में मैं सदा दीन भाव से प्रणत हूँ। सुन्दर नेत्रों की कान्ति को चुराने वाले साम्ब ! सदाशिव तुम विजयी बनाओ ॥९१/९२॥ बहुत उन्नति पाकर भी अभिमानी पुरुष तुम्हें न पाकर अपना विनाश कर लेता हैं। तब बड़ा उग्र तप भी बहुत हानिकारक होता है। संकट में अकेले जाने वाले पुरुष के पुत्र बन्धुजन, स्त्री वा अन्य मित्र आदि कोई भी सहायक नहीं होते, केवल किया गया शुभ-अशुभ कर्म ही जो कर्ताके द्वारा होता है वह ही सार्थक होता है और यहाँ से कूच करने वाले के आगे चलता है।

निर्धन मनुष्य को घूमते हुए कोई कहीं से भय नहीं होता पर धन की आसक्ति वाला पुरुष भयों से मुक्त नहीं रहता । उससे मैं धनको ही छोड़ देता हूँ । लोभी पुरुष ही पाप का आचरण करते हैं । शुद्ध अंश वाले तो पाप से दूर रहते हैं । धर्म के सार को सुनकर उसी का निश्चय कर उसे ही ग्रहण करना चाहिए । तुम विष्णु हो, तुम सनातन ब्रह्मस्वरूप जगत् के नाथ हो । तुम्हीं इन्द्र हो । देव-देवेश ! सुरों के नाथ ! तुम्हें सादर नमन हो । तुम पृथिवी और वरुण भी हो । तुम वायु और अग्नि हो । तुम यज्ञकी दीक्षा और यजमान मूर्ति और आकाश तथा चन्द्रमा भी हो ।।९३/९४।। तुम्हीं सूर्य हो, तुम ही कुवेर यम और गुरु भी तुम ही हो । सूर्य से त्रिभुवन की भाँति तुमने सबको व्याप्त कर लिया है । इस बाण कृत स्तोत्र को सुनकर क्रोध को छोड़ प्रसन्न मन हो भगवान शंकर बोले--दानव ! आज से तुम अब मत दुखी हो । स्वर्ण निर्मित भवन में स्थिर रहो अथवा मेरे समीप ही रहो । वत्स ! आज से लेकर तुम पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रों, बान्धवों और स्त्री के साथ सब शत्रुओं से हारने योग्य नहीं होओगे । श्री मार्कण्डेय ने कहा--हे भारत । फिर भी देवाधिदेव शंकर ने उसे वर दिया कि तुम स्वर्ण और मनुष्यलोक तथा पाताल में सुर असुरों से पूजित होकर अविनाशी और अविकारी होकर सुख पूर्वक रहो । तब रुद्रने अग्नि को जलाने से रोका ।।१००/१०५।। भगवान शंकर ने उसके तीसरे पुर की रक्षा की जो सब ज्वालाओं से झुलस कर पृथिवी में गिर चुका था । आधे रूप से भी उसकी ज्वालाएँ आकाश को छू रही थी । वहाँ ऋषिलोग बड़ा हाहाकार कर रहे थे देवता और श्रेष्ठ सिद्ध विद्याधर आदि हाहाकार कर रहे थे । उसका एक खण्ड श्री शैल में गिरा । दूसरा खण्ड प्रज्वलित होते हुए अमरकण्टक पर्वत पर गिरा । ज्वाला युक्त गिरने से वह ज्वालेश्वर नाम से स्मरण किया गया । राजन् ! त्रिपुर के जल चुकने पर उत्तम खण्ड के गिर जाने पर भगवान शंकर वहाँ ज्वाला मालाओं-लपटों के निवारक बनकर स्थित हुए हाहाकार करने वाले ऋषियों की रक्षा के लिए स्वयं मूर्ति धारी होकर पार्वती और नन्दीश्वर से युक्त महादेव वहाँ स्थित

हुए। जो पुरुष भक्तिपूर्ण और मन से अमरकण्टक की स्तुति करता है उसे स्मरण करता है वह चान्द्रायण व्रत से अधिक पुण्य पाता है। भरतश्रेष्ठ! इसमें संशय नहीं है ॥१०६/११२॥ क्योंकि यह अमरकण्टक श्रेष्ठ पर्वत अत्यन्त पुण्य रूप है। राजन् इससे यह नित्य ही सब पापों का क्षय करने वाला है। यह पर्वत नाना वृक्ष लताओं से व्याप्त नाना पुष्पों से शोभित है। अनेको गुच्छों के गुल्मों से पूर्ण और अनेको लताओं से नित्य ही सरस था। वहाँ पर्वत में ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि मुख्य सहस्रों देवों से देवाधिदेव शंकर सेवित हैं। इस अमरकण्टक पर्वत पर जो गिरकर प्राण त्यागता है राजन्! वह पुरुष क्रमशः चौदह लोकों में विलास करता है ॥११३/११७॥ ऐन्द्र, आग्नेय कौवेर, वायव्य, याम्य और नैऋत्य, वारुण, सौम्य, सौर ब्राह्म पद और सुखकारी वैष्णव पद पाता हैं। महाभाग! तदनन्तर उमा रुद्र ईश्वर और फिर जो सबसे परे सदाशिव रूप शान्त, अतीन्द्रिय सूक्ष्म ज्योति है, धीर जितेन्द्रिय पुरुष विधिपूर्वक उसमें लीन होता है इसमें संशय नहीं है ॥११८/१२०॥ युधिष्ठिर बोले--ऋषि श्रेष्ठ! अमरकण्टक में गिरने की कौन विधि बतायी गयी है। महामुने। यह सब तुम मुझसे कहो। मुझे संशय है। श्री मार्कण्डेय बोले--पाण्डुनन्दन। तुम सुनो मैं उस विधि को कहूँगा। पहले नित्य कर्म को कर पश्चात् वहाँ से गमन करे। राजन्! प्रथम तीन कृच्छ चान्द्रायण व्रत कर फिर शिव मन्त्र का दश-लक्ष परिमित जपकर शुद्ध शाक और जो यावक कुल्थी खाकर तीन बार स्नान कर शुद्धान्तःकरण से तीनों समय देवाधिदेव त्रिनेत्र शिव का पूजन करे। राजश्रेष्ठ! वहाँ ही दशांश से हवन करावे ॥१२१/१२४॥ इस प्रकार लाख बार मन्त्र जप करे, गन्ध-मालाओं से पूजा करे। रात्रि में जब स्वप्न में शंकर को विमान स्थित देखे तब अपना पात करे। इस विधान से जो पुरुष अपने को गिराता है। वह स्वर्ग लोक पाकर देवताओं के साथ खेलता है। तीस करोड़ तीस हजार वर्ष पर्यन्त सुन्दर भोगों को भोगकर फिर पृथिवी में आता है। संसार में पूजित होकर एक छत्र वाला होकर पृथिवी के राज्य-सुख को भोगता है और

रोग शोक से रहित होकर सौ वर्ष पर्यन्त जीता है। वह ज्वालेश्वर तीर्थ तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। युधिष्ठिर ! वहाँ शंकर के द्वारा रचित ज्वाला नामक नदी निकली है ॥१२५/१२९॥ यह नदी उस वाणासुर को शान्त कर नर्मदा में मिल गयी। महाराज ! वह वहाँ संगम में विधि पूर्वक तिल मिश्रित जल से पितृ देवताओं का तर्पण करे और पितृ देवों को पिण्ड दान करे। इससे वह ऐसा करने वाला पुरुष उत्तम पुण्डरीक कमल दान का फल पाता है। विष्णुलोक को जाता है राजन् ! उस तीर्थ में जो मनुष्य अनाशक व्रत पूर्वक भगवान् शंकर की आराजना करता है वह सब पापों से छूट जाता है और रुद्र लोक जाता है। वहाँ अमरेश्वर सैकड़ों देवों से सेवित है और सहस्त्रशः ऋषियों से भी सेवित है। अतः यह स्थल बड़ा ही पुण्य जनक है। चारों ओर यह अमरकण्टक तीर्थ योजन-पर्यन्त पुण्य देने वाला है। करोड़ों रुद्र देवों से युक्त है। अतः वह बहुत पुण्यपद है। जो उस पर्वत राज अमरकण्टक की परिक्रमा श्रद्धा पूर्वक करता है मानो उसने सम्पूर्ण पृथिवी की परिक्रमा कर ली। उसका पुण्य प्राप्त कर लिया। इसमें संशय नहीं। इसकी परिक्रमा करने में मनुष्य के कायिक, वाचिक और मानसिक ये तीनों पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा भी शंकर जी ने कहा है राजन् ! अमरेश्वर के समीप शक्रेंश्वर तीर्थ है जिसे वहाँ बड़ा तप कर इन्द्र ने स्थापित किया है। ब्रह्मा के द्वारा स्थापित शुभ कुशावर्त तीर्थ भी वहाँ है उस ब्रह्म कुण्ड भी कहते हैं और दूसरा हंस तीर्थ भी हैं। अम्बरीष का तीर्थ और महाकालेश्वर अनन्तर कावेरी नदी के पूर्व की ओर मातृकेश्वर तीर्थ है। भरत श्रेष्ठ ! ये तीर्थ नर्मदा के दक्षिण भाग में है। वहाँ रहने, दान स्नान में पाप समूह को नष्ट करते हैं। महारानी ! भृगुतुंग में प्रसिद्ध शिव भैरव नामक है, उसके दक्षिण प्रदेश में पत्रेंश्वर तीर्थ है। ये दोनों ही सब दुःखों के हरने वाले है। उन दोनों की पूजाकर और प्रणाम कर मनुष्य तीर्थ यात्रा का फल पाता है। बिना देखे बिना पूजे वे दोनों ही मनुष्यों के विघ्नकारक है ॥१३०/१४२॥

अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥२८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

कावेरी नर्मदा सँगम माहात्म्य वर्णन

युधिष्ठिर उवाच-- कावेरीति च विख्याता त्रिषु लोकेषु सत्तम ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तस्या मार्कण्ड ! तत्त्वतः ।।

सवैया-- तासों नर्मदा तट घाट-घाट यज्ञ-स्थल, शंकर प्रसाद मानो जगह-जगह परसो है ।
बरसो हैं देवता समाज तट में रहने को, पुण्य तीर्थ पाकर मानव समाज हरषो है ।।

युधिष्ठिर बोले--ऋषि श्रेष्ठ ! तीनों लोकों में कावेरी प्रसिद्ध नदी कैसे हुई ? हे मुनिवर्य । मैं उसके यथार्थ माहात्म्य को सुनना चाहता हूँ । उसके दर्शन और स्पर्श । तथा उसमें स्नान एवं तट पर जप करने से अथवा दान और उपवास से क्या फल होता है ? महामुने । कावेंरी संगम में होने वाले सभी फलों को तुम कहो । ब्राह्मण श्रेष्ठ । मैंने सुना है कि धर्म सुनने कहने व करने मात्र से वा अनुमोदन से भी मनुष्य को पवित्र कर देता है । जैसे धर्म के प्रसंग में भी धर्म सिद्ध होता है स्वर्ग और नरक भी क्रिया । भेद से होते हैं ऐसी वैदिक परम्परा है ।।१/५।। मार्कण्डेय जी ने कहा--महाभाग । बहुत अच्छा इस समय तुमने मुझसे जो पूछा है । वह एकाग्रचित होकर कावेरी का उत्तम फल सुनो । कुबेर नामक यक्ष प्रभाव शाली एवं प्रसिद्ध है । राजन् ! वह तीर्थ के प्रभाव से यक्षों के राजा हुए । महाभागा । कावेरी संगम में वह सिद्धि को प्राप्त हुआ । कावेरी और नर्मदा के प्रसिद्ध संगम में सत्य पराक्रम शाली कुबेर ने स्नानकर विधि पूर्वक शास्त्रोक्त प्रकार से नियम कर एकाग्रचित होकर सनातन श्री महादेव की आराधना की ।।६/१०।। कुबेर ने मास पर्यन्त दिन के छठे भाग में एक भोजन व्रत का पालन किया । कुछ समय तक वह पक्ष का उपवास करने लगा । बुद्धिमान कुबेर ने मूल-शाक और कुछ फलों से कुछ समय बिताया । उस तीर्थ में निवास करते हुए कुछ समय सेवार का भोजन किया । मानद । युधिष्ठिर । कुबेर ने पराकव्रत अर्थात् बारह दिन निराहार व्रत को किया । कुछ समय कृच्छ्र व्रत से चान्द्रायण

व्रत करते हुए (पराक कृच्छ-चन्द्रायण आदि का धर्मशास्त्रों में आत्म शुद्धि एवं प्रायश्चित रूप से विधान है) तथा केवल जल पीकर कुछ समय बिताया ॥११/१३॥ राजन्! इस प्रकार वहाँ काम और राग से रहित होकर अपने शरीर को तप से कृश करते हुए वह कुबेर सौ वर्ष से अधिक स्थित रहे। तदनन्तर देवाधि देव महेश्वर कुबेर की परम भक्ति से सन्तुष्ट होते हुए उससे हंसते से बोले--शुद्ध हृदय श्रेष्ठ व्रत धारिन। यक्ष। तुम्हारी भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ वर मांगो। मैं तुम्हें अभीष्ट वर दूँगा ॥१४/१६॥ यक्ष कुबेर ने कहा--देवेश। शंकर! यदि पार्वती के साथ तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो आज से मैं यक्षों का राजा रहूँ। तुम्हारी भक्ति करता हुआ में निरोग और दीर्घायु होकर यक्षराज होऊँ, तथा ईश। मेरी बुद्धि सदा धर्म में स्थित रहे ऐसा वर दो ॥१७/१८॥ श्री शंकर ने कहा-तुमने धर्म का जो फल माँगा है वह सब तुम्हें प्राप्त हो। कुबेर से ऐसा कहकर भगवान शंकर अदृश्य हो गये। वह कुबेर भी वहाँ स्नान कर विधि पूर्वक पितृ देवताओं का तर्पण कर उस तीर्थ को प्रणाम कर कृतकृत्य होकर घर गये। वहाँ अलकापुरी में वह यक्षों द्वारा विधि पूर्वक अभिषेक युक्त होकर विशाल श्रेष्ठ प्रिय राज्य पाकर उसका पालन किया ॥१९/२१॥ हे निष्पाप! वहाँ देवता-सिद्ध-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-अप्सराओं के गण और ऋषि लोग भी उत्तम पुण्य-प्राप्ति के लिए निवास करते हैं। युधिष्ठिर! वह सब स्वर्गों का द्वार स्थान है उस कावेरी संगम में स्नान कर जिसने तिल मिश्रित तेल पितृगण को दिया है वे धन्य हैं वे ही महात्मा है उनका जन्म और जीवन श्रेष्ठ है। प्रिय! उसने अपने माता पिता से दस पीढ़ी पहले एवं पीछे के पितृ पितामह आदि का नरक से उद्धार कर दिया। अतः मनुष्य उत्तम गति की कामना से वहाँ शंकर की प्रेम से पूजा करे। नरश्रेष्ठ! कावेरी संगम में मनुष्य का भक्ति पूर्वक किया हुआ स्नान-दान और पूजन अश्वमेघ यज्ञ से अधिक फल देने वाला है ॥२२/२७॥ हवन से अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति जप से आयु की वृद्धि

और नित्य-ध्यान से शिव कला रूपी दिव्य पद को पाता है। राजन्! जो पुरुष इस कावेरी संगम तीर्थ में अग्नि प्रवेश करता है वह पुरुष प्रलय पर्यन्त अग्नि लोक में निवास करता है। राजन्! उस तीर्थ में जो पुरुष अनशन व्रत करता है। पुरुष श्रेष्ठ। उस पुरुष का जो पुण्य फल होता है उसे तुम सुनो गन्धर्वों अप्सराओं से पूर्ण सूर्य के समान चमकीले विमान में बैठ शिवलोक में जाता है। साठ हजार सौ वर्ष पर्यन्त वह पुरुष रुद्र लोक में स्थित होकर अन्त में वह पृथ्वी पर आता है। वह भोगी और दानी राजा होता है। मानसिक एवं शारीरिक रोग एवं शोक से रहित होकर वह सौ वर्ष जीता है ।।२८/३३।। राजन्! वह कावेरी गुणों से पूर्ण है वह नर्मदा संगम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। कावेरी संगम में जो मनुष्य वाणी, शरीर और मन को जीते हुए और ध्येय ध्यान के योग्य शंकर आदि इष्ट देव के ध्यान में तत्पर है वे पुरुष ही मोक्ष को पाते हैं। राज श्रेष्ठ! तुमसे एक और आश्चर्य जनक बात कहता हूँ तुम उसे सुनो। तीनों लोकों में इस नदी के समान कोई दूसरी नहीं दिखाई पड़ती जिन्होंने नर्मदा का जल पी लिया है और जो उसकी परिक्रमा करते हैं एवं उसका जल पीते हैं वे पुरुष परम पुण्यात्मा है इसमें संशय नहीं ।।३४/३७।। उनकी सन्तान परम्परा का पन्द्रह जन्म तक विच्छेद नहीं होता। सूर्य के उदय से बर्फ की भाँति उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य गंगा यमुना में जो फल पाता है, कावेरी में स्नान करते हुए भी वही फल पाता है। चतुर्दशी मंगलवार के योग में व्यतीपात योग और सूर्य संक्रान्ति में तथा राहु चन्द्र योग अर्थात् चन्द्रग्रहण में वह फल आठ गुना अधिक माना गया है ।।३८/४०।। गंगा यमुना के संगम में अस्सी यव-जौ का प्रमाण विशेष पाया गया है। कावेरी और नर्मदा के संगम में वही आठ गुना अधिक माना गया है। गंगा नदी साठ हजार क्षेत्रफलों से पूजित हैं। उससे आधे अन्य तीर्थों की रक्षा करते हैं इसमें संशय नहीं। अमरेश्वर में जो नदी योग बताये गये है वे सब नदी संगम अस्सीहजार

क्षेत्रफलों द्वारा पूजित एवं रक्षित कहे जाते है। तथा दक्षिण की ओर अमरेश्वर तीर्थ में चपलेश्वर नामक लिंग हैं। दूसरा चण्ड हस्त नामक ये दोनों ही लिंग तीर्थ रक्षक है ।।४१/४४।। कावेरीं के रक्षक शिव के द्वारा स्थापित ये दोनों ही लिंग परम पूज्य है। बहुत कल्पों तक यह नर्मदा लाखों क्षेत्रफलों से रक्षित है। शंकर द्वारा नियुक्त पुरुषों से साठ धनु, से--२४० हाथ प्रमाण से युक्त ॐकार का भूत-वर्तमान और भविष्य के दोषों से हीन यह पर्वत सर्वथा सुरक्षित हैं। सैकड़ों हजारों दिव्य पुरुषों से यह ॐकार पर्वत सुरक्षित है। दूसरे देश का पाप इस क्षेत्र में नष्ट होता है पर इसी तीर्थ में किया गया पाप वज्रलेप की भाँति दृढ़ होता है। प्रिय ! कावेरी नदी के विषय में मैंने तुम्हें बताया। यह रुद्र के शरीर से उत्पन्न है अतः नदियों से भी परम श्रेष्ठ हैं ।।४५/४८।। उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

दारु तीर्थ माहात्म्य वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- नर्मदोत्तरकूले तु दारुतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महाभाग तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमः ।।

सवैया-- पृथ्वी पर सभी जीव मृत्यु को प्राप्त होवत है, वृक्ष भी कुछ दिन में सूखकर ढह जावत है।
देव जो भी आए यहाँ योनिजा कहा ये सब, समय बाद काल के भंवर में समावत है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--नर्मदा के उत्तर तट पर बड़ा उत्तम दारु तीर्थ है। महा भाग ! जहाँ एक उत्तम ब्राह्मण तप कर सिद्ध हो गया। दारुक नाम वाला वह किसका पुत्र था। श्री मार्कण्डेय जी बोले--विस्तीर्ण भार्गव वंश में बुद्धिमान देव शर्मा का पुत्र महाभाग्य शाली वेद वेदान्तादि में पारन्नात दारु नामक पुत्र था। उसने ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वान प्रस्थ और सन्यास धर्म के विचार से विधि पूर्वक तीव्र तप किया। युधिष्ठिर ! उसने निराहर रहकर महादेव का ध्यान करते हुए मृत्यु पर्यन्त उस तीर्थ में निवास किया ।।१/५।। उसके नाम से ही वह तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ विधान से स्नान

कर पितृ देवताओं का पूजन करे । राजन् ! यहाँ यहाँ सत्य बोलने वाला क्रोध को जीते हुए और तब जीवों के कल्याण में तत्पर पुरुष सर्वथा सब कामनाओं को पाता हैं । जो पुरुष इस तीर्थ में सत्य और शुद्धि का पालन करते हुए उपवास करता है बिना विचार किये हुए वह सौभाग्य का फल पाता है । ऋग्वेद के मन्त्रों का जप करने वाला ऋग्वेदी ब्राह्मण, सामवेद में पारंगत सामका, यजुर्वेदी यजुका जपकर उत्तम फल पाता है । जो पुरुष उस तीर्थ में विधि पूर्वक प्राणों को छोड़ता है उसे गति प्राप्त होती है । ऐसा शंकर जी ने कहा है ॥१/१०॥ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

इक्तीसवाँ अध्याय

ब्रम्हावर्त तीर्थ माहात्म्य वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेच्च राजेन्द्र तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
ब्रह्मावर्त्तमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

सवैया-- प्रकृति के साथ ही सरिता को जन्म होत, युग-युग तक बाको यादव अंत नहीं आवत है ।
इसीलिए नर्मदा सरिता रूप में प्रकट भई, सारे जनमानस को सुख पहुंचावत है ।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राज श्रेष्ठ ! तदनन्तर त्रिलोकी में प्रसिद्ध सब पापों के नाशक ब्रह्मा वर्त के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । युधिष्ठिर ! वहाँ ब्रह्मा उस तीर्थ का नित्य सेवन करते हुए हाथों को ऊपर किये हुए बिना आश्रय के ही सदा भ्रमण करते हैं । वह विधि पूर्वक महेश्वर का चिन्तन करते हुए बारह वर्ष तक महाव्रत से युक्त होकर एकाहार में स्थित हुए । राजन् ! इस कारण वह पुन्य तीर्थ ब्रह्मावर्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान कर मनुष्य पितृ देवों का तर्पण करे । भगवान शंकर या भगवान विष्णु का पूजन करे । विधि पूर्वक दक्षिणा वाले सब यज्ञों का जो फल होता है । उस तीर्थ के प्रभाव से वहाँ उस फल को पाता है ॥१/५॥ जिस तीर्थ में जो देव-दानव व ब्राह्मण सिद्ध हुआ है उनके नाम से ही वह तीर्थ संसार में प्रसिद्ध हुआ । 'न जलं न स्थलं नाम क्षेत्र

वा ह्यूषराणि च । पवित्रत्वं लभ्यन्त्येये पौरुषेण बिना नृपाण । सामर्थ्यान्निश्चयाद् धैर्यात् सिद्धयन् पुरुषो नृप ।' मनुष्यों के उद्योग के बिना जल, स्थल, नक्षत्र वा ऊषर ये सभी पवित्रता पाते है । राजन् ! मनुष्य सामर्थ्य से निश्चय से और धैर्य से सिद्ध हो जाते है । उद्योग एवं धर्म निष्ठा में प्रमाद करने से या लोभवश वह निश्चय ही नरक में गिरते है । मननशील मितभाषी पुरुष जहाँ-जहाँ इन्द्रियों और मन को रोक कर निवास करता है । वहाँ-वहाँ ही कुरुक्षेत्र नैमिष और पुष्कर तीर्थ हो जाते हैं । 'सन्निरुध्येन्द्रियग्रामं यत्र यत्र वसेन्मुनिः । तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ।।६/१०।। इकत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।३१।।

बत्तीसवाँ अध्याय

पत्रेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- पत्रेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।
यत्र सिद्धो महाभागश्चित्रसेनसुतो बली ।।

सवैया-- मानुष शरीर से कछु जीवों का भला होत, वृक्ष सों कछु जीव छाँह और फल पाते है ।
देवता बने से कुछ थोड़े ही जीव पूजा करत, कुछ ही वरदान और दरस लाभ पातेहैं ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--दारु तीर्थ के पश्चात् सब पापों के नाशक पत्रेश्वर तीर्थ में गमन करे । जहाँ बलवान चित्रसेन के पुत्र सिद्धि को प्राप्त हुए । युधिष्ठिर ने कहा--ब्रह्मन् ! उस तीर्थ में बड़े तपस्वी कौन थे ? और किसके पुत्र थे ? तप का क्या कारण था यह मैं जानना चाहता हूँ । मार्कण्डेय जी ने कहा--पहले इन्द्र के अत्यन्त प्रिय बड़े तेजस्वी चित्रसेन थे । राजश्रेष्ठ ! उसका पुत्र पत्रेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ वह पत्रेश्वर सुन्दर सौभाग्य शाली सब शत्रुओं को भय देने वाला और इन्द्र को अत्यन्त प्रिय था । वह जय नाम से भी प्रसिद्ध था । वह कभी सभा के बीच सब देवों के समूह में बहुत समय तक मेनकाके नृत्यगान से मोहित हुआ ।।१/५।। मर्यादा को छोड़कर क्षण भर में वह प्राण रहित सा हो गया । तभी सुरेन्द्र इन्द्र ने इन्द्रियों के

वशवर्ती होने से उसे शाप दिया। जिस कारण से स्वर्ग में स्थित होकर भी तुमने मर्त्य धर्म को प्राप्त कर वैसा ही आचरण किया है, इससे मनुष्य लोक में निश्चय ही तुम बहुत समय बिताओगे। देव राज के ऐसा कहने पर चित्रसेन गन्धर्व का पुत्र युवक वह पत्रेश्वर काँपते हुए हाथ जोड़कर इन्द्र से बोला-पत्रेश्वर ने कहा-चित्त और इन्द्रियों को न जीतने वाले मूढ़ पापी ने जो फल पाया है उस पर तुम कृपा करने योग्य हो ॥६/९॥ इन्द्र ने कहा--नर्मदा के तट पर तुम बारह वर्ष तक जितेन्द्रिय होकर शान्त स्वरूप भगवान शिव की आराजना करो तब फिर तुम सद्गति को पावोगे। सत्य और शौच-बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि में तत्पर परम धर्म शील मन इन्द्रियों को वस में किये हुए श्रेष्ठ पुरुषों के लिए ही यह लोक है। पापियों के लिए नहीं, ये ही शास्त्र का निश्चय है। महाराज ! बुद्धिमान् इन्द्र के ऐसा कहने पर बुद्धिमान् गन्धर्व पुत्र पत्रेश्वर उनको प्रणाम कर भूलोक चला गया। नर्मदा के निर्मल जल में ब्रह्मावर्त तीर्थ के पास विधि पूर्वक पूजाकर-वायु-जल-पिण्याक पिन्री फलों पुष्पों और पत्तों से मूलभक्षण और यावक से--कल्याण कुल्थू धान्य विशेष उसने पञ्चाग्नि सेवन द्वारा उग्र तप किया। उसके तपसे भगवान शंकर सन्तुष्ट हो गये। अपने सामने हाथ में पिनाक धनुष लिए हुए वर देने वाले त्रिशूल धारी अन्धक दैत्य के विनाशक अर्धचन्द्र भूषित मस्तक वाले गज चर्म रूपी वस्त्र वाले उमापति शंकर को देखकर वह चरणों में पड़ गया ॥१०/१५॥ श्री शंकर ने कहा--निष्पाप ! तुम वर माँग लो। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देने वाला हूँ। तुम जो चाहो वह आज मैं देता हूँ। इस विषय में तुम विचार न करो। पत्रेश्वर ने कहा--देवाधिदेव ! यदि तुम सन्तुष्ट हो और यदि मुझे वर देना है तो प्रभो ! यहाँ इस तीर्थ में निरन्तर मेरे नाम से तुम निवास करो। यह सुनकर महादेव शंकर हर्ष से गद्गद् वाणी से 'वैसा ही हो' ऐसा कहकर प्रसन्न होकर पार्वती के साथ वहाँ से चले गये। भगवान् शंकर के वहाँ से चले जाने पर उसने भी उस

तीर्थ में डुबकी लगा के स्नान कर जप के विधान से शुद्ध होकर फिर पितृदेवों का तर्पण करके विधि पूर्वक वहाँ शिव को स्थापित किया। भरतवंशोत्पन्न राजन् ! तीनों लोकों में वह पत्रेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१६/२०॥ राजन् ! वह भी शाप से मुक्त होकर परम प्रसन्न और जय शब्द आदि मंगल बचनों के साथ इन्द्रलोक गया। युधिष्ठिर ! जो तुमने पूँछा था उसका यह उत्तर हुआ। वहाँ एक स्नान से ही मनुष्य सर्व पापों से मुक्त हो जाता है। युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जो शंकर को पूजता है वहाँ स्नान कर पितृ गणों एवं देवों के पूजन के साथ शिव के पूजन से वह अश्वमेघ का फल पाता है। मृत्यु के पश्चात् शिवपुर में कुछ अधिक सो वर्ष क्रीड़ा सुख भोगकर पश्चात् मनुष्य लोक में राजा व राजा के तुल्य होकर जन्म लेता है। वेदों वेदांगों के तत्व के जानने वाले राजन् ! रोग शोक से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है और उस पवित्र तीर्थ-जल का स्मरण करता है ॥२१/२५॥ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

तैतीसवाँ अध्याय

अग्नि तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेतु राजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सन्निहितो ह्यग्निर्गतः कामेन मोहितः ॥

सवैया-- सरिता के बीच अनगिनत जीव आश्रय पात, अनगिनत जीव स्नानकर पुण्य कमाते है।
एक ठौर नहीं अनगिनत ठौर लाखों लोग, नर्मदा माता सों मोक्ष लाभ पाते हैं ॥

मार्कण्डेय जी बोले--राजश्रेष्ठ ! तदनन्तर उत्तम अग्नि तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। जहाँ काम से मोहित होकर अग्नि देव गये और स्थित हुए। युधिष्ठिर ने कहा--जगत् को धारण करने वाले अग्निदेव कैसे कामदेव से पीड़ित हुए और नित्य ही उसका एक स्थान-निवास कैसे रहता है। सम्पूर्ण लोकों में बहुत बड़ा आश्चर्य है। महाभाग ! तुम कहो मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। मार्कण्डेय जी बोले श्रेष्ठ बुद्धिवाले निष्पाप राजन् ! तुमने बहुत सुन्दर

प्रश्न किया । भगवान् शंकर से पहले जैसा मैंने सुना है वह कहता हूँ । सत्ययुग में हाथी घोड़े रथ से पूर्ण पृथिवी का रक्षक एक दुर्योधन नामक श्रेष्ठराजा था ।।१/५।। रूप युवावस्था से सम्पन्न दिव्य भोगों युक्त उस राजा को देखकर नर्मदा ने उसकी प्रार्थना की । राजन् ! माहिष्मती के राजा उस दुर्योधन ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अन्य सुन्दरियों को छोड़कर उसे ही चाहा । राज्यश्रेष्ठ ! योग्य समंय नेत्रों वाली कन्या को उत्पन्न किया । वह अंग प्रत्यंगों से सम्पन्न होने से संसार में प्रसिद्ध थी पिता माता का उसमें बड़ा स्नेह था । बहुत समय से युवावस्था में स्थित वह सुन्दरी कुमारी अनेकों राजाओं द्वारा प्रार्थित हुई । राजन् ! इस अवस्था में भी उसने अपने को देना नहीं चाहा ।।६/१०।। तदनन्तर दूसरे समय महातपस्वी ब्राह्मण वेष धारी अग्नि देव ने धीरे-धीरे एकान्त में राजा से प्रार्थना की । रघुकुल श्रेष्ठ ! मैं असहाय निर्धन ब्राह्मण हूँ । पत्नी के हेतु तुम्हारी कन्या का वरण करना चाह रहा हूँ । पृथ्वी में अनुपम रूप वाली सुदर्शन कन्या तुम्हारे भवन में वृद्धि को प्राप्त हो रही है । राजन् ! तुम उसे मुझे दो । मैं अकेला हूँ ब्रह्मचर्य से ऊब गया हूँ । काम से पीड़ित हूँ । प्रिय राजन् ! याचना करने वाले मुझ पर कृपा करने योग्य हो ।।७/१४।। राजा ने कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं द्रव्य से रहित अपने वर्ण से भिन्न किसी को अपनी सुन्दर कन्या नहीं दूँगा । आप जाइये ।।१/१५।। ऐसा कहे जाने पर उस समय अग्नि देव बड़ी पीड़ा को प्राप्त हुए । वह राजा से कुछ न कहकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये । ब्राह्मण के अन्तर्धान होने पर कुछ समय के पश्चात् राजा ने मन्त्रियों और पुरोहितों से विचार कर उचित समय पर प्रसन्न हो यज्ञ करना प्रारम्भ किया । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! यज्ञ में ब्राह्मणों के साथ भक्ति से पूजन (हवन) करते हुए राजा एवं सबके देखते ही अग्नि देव अदृश्य हो गये । ब्राह्मण दुःखित मनवाले होकर राजभवन में पहुंचे और राजा से अग्नि के अदृश्य होने की बात कही । इससे प्रतीत होता है कि राजा अग्नि देव के अदृश्य होने से

पूर्व चले जा चुके थे वहाँ नहीं थे ।।१५/१९।। ब्राह्मणों ने कहा--महाराज ! दुर्योधन बड़े आश्चर्य की बात सुनिये । राजश्रेष्ठ ऐसा आश्चर्य न देखा न सुना गया है । राजन् ! विधि पूर्वक अग्नि कार्य में प्रवृत्त हम लोगों के समक्ष न तो अग्निदेव हिलते है न जलते है । ब्राह्मणों के मुख राजा उस विचित्र अप्रिय वचन को सुनकर कटे मूल वाले वृक्ष की भाँति आसनसे पृथ्वी पर गिर गया । थोड़े समय में आश्वासन पाकर धैर्य का धारण कर वह तब मतवाला सा रोता हुआ सम्पूर्ण दिशाओं को देखकर यह वचन बोला । मान्य ब्राह्मणों ! वह बड़ा आश्चर्य कैसे हुआ । शास्त्र दृष्टि से विचार कर आप सब कारण कहें । क्या मेरा कोई पाप व त्रुटि है अथवा आप लोगों से कोई भूल-त्रुटि हो गई है जिस कारण से अग्नि शाला से अग्नि अदृश्य हो गये क्या कारण है ? मन्त्र दोष अथवा कोई अन्य दोष बिना दक्षिणा का कोई कर्म भी नहीं हुआ क्रिया से हीन भी कुछ नहीं हुआ फिर किस कारण से अग्नि अदृश्य हो गये । अन्नदान से रहित यज्ञ देश को जल देता हैं । मन्त्रों से हीन व अशुद्ध यज्ञ ऋत्विजों--होताओं को नष्ट कर देता हैं । दक्षिणा से रहित यज्ञ दाता को नष्ट करता हैं अतः यज्ञ के समान कोई शत्रु भी नहीं है । 'अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तुऋत्विजः । दातारं दक्षिणा हीनो नास्ति यज्ञ समो रिपुः' ।।२०/२७।। ब्राह्मणों ने कहा--राजन् ! हम लोग मन्त्रों और व्रतों से रहित नहीं हैं । तुम भी धन से हीन नहीं हो । अतः कोई दूसरा कारण ही सोचना चाहिए । राजा ने कहा--तो भी तुम लोग मिलकर उपाय का चिन्तन करो जिससे इस लोक और परलोक में हमारा कल्याण हो । ऐसा कहे गये सभी ब्राह्मण दृढ़ निश्चय वाले और निराहार होकर जहाँ अग्नि देव अदृश्य हुए थे वहाँ ही रहे । पश्चात स्वप्न में परम तेजस्वी अग्नि देव तब ब्राह्मणों से बोले--तुम सब लोग मेरे अदृश्य होने का कारण सुनो । मेरें द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी वह राजा अपनी पुत्री नहीं देना चाहता इस कारण से श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! मैं अग्नि शाला से अदृश्य

हो गया हूँ ॥२८/३२॥ यदि राजा मुझे अपनी, अलंकृत कन्या देता है तब मैं इसके भवन में प्रज्वलित होकर रहूंगा अन्यथा नहीं । अग्नि से निकले उस वचन को सुनकर आश्चर्य से खिले नेत्र वाले ब्राह्मण राजा से यह बोले । आपका मत जानकर हम सब अग्नि शाला में जाकर वही निराहार रहकर अग्नि देव को रात्रि में स्थित हुए देखते रहे । तब उस अग्नि ने हम से कहा--यदि राजा मुझे अपनी कन्या देना चाहे तब मैं फिर भी इसके घर में प्रज्वलित होऊँगा अन्यथा नहीं । महाराज ! ऐसा जानकर तुम अग्नि देव को अपनी पुत्री देने योग्य हो ॥३३/३७॥ राजा ने कहा ब्राह्मण ! आपका अथवा उन अग्निदेव का वचन हृदय में रखकर कन्यादान के विषयमें एक श्रेष्ठं शर्त करना चाहता हूँ । मेरे घर में यदि नित्य रहें तो मैं कन्या दूँगा इस प्रकार उन ब्राह्मणों ने राजा की बात सुनकर शीघ्र ही अग्नि के पास पहुंचे । उनसे सब कहकर शीघ्र ही विवाह से युक्त किया । युधिष्ठिर ! सुन्दरी सुदर्शना के मिलने से अग्नि देव सन्तुष्ट होकर नित्य ही माहिष्मती में उसके समीप ही प्रज्वलित हुए । तभी से उस तीर्थ को अग्नि तीर्थ कहते हैं । आजकल माहिष्मती को महेश्वर कहते हैं । जो लोग वहाँ पक्ष सन्धि अर्थात् अमावास्या व पूर्णमासी में स्नान और दान की भावना से युक्त होकर पितृ देवों का तर्पण करते हैं वे अश्वमेध के फलों से युक्त होते हैं । राजन् ! जो लोग उस तीर्थ में सुवर्ण दान करते हैं । उन्हें पृथ्वी के दान का फल मिलता है । वह मर कर देवों से पूजित होकर अग्नि लोक में क्रीड़ा करता है । यह मैंने तुमने अग्नि तीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन किया मनुष्य श्रेष्ठ ! यह वर्णन सुनने मात्र से सब पापों का विनाशक पुण्य प्रद और धन देने वाला होता है ऐसा शंकर जी ने कहा है ॥३८/४६॥ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

रवि तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- तत्रैव तु भवेदन्यदादित्यस्य महात्मनः ।
कीर्त्तयामि नरश्रेष्ठ । यदि ते श्रवणो मतिः ।।

सवैया-- सुन्दर सलोनीं श्वेत चार भुजाधारी मूर्ति, चित्रकार अपनी कल्पना में बनावत है ।
घाट-घाट, मन्दिर में, पेड़न में, झाड़िन में भक्तन हित अनेक रूप नर्मदा प्रगटावत है ।

श्री मार्कण्डेय बोले--वहाँ ही दूसरा तीर्थ भगवान सूर्य का है । नर श्रेष्ठ ! यदि तुम्हारी सुनने की इच्छा हो तो मैं कहता हूँ । युधिष्ठिर ने कहा कि--मुनि श्रेष्ठ ! तुम्हारे मुख से निकले अनुपम आश्चर्य को सुनकर विस्मय से मैं रोमाञ्चित हो गया हूँ । सहस्त्र किरण सूर्य देव उपाधि रहित होकर भी सबके संहारक और रचना करने वाले हैं । वह भगवान पुरुष रूप वाले स्वतः ही हैं अथवा तप के फल से, किसके वंश में उत्पन्न हुए अथवा किसकी भक्ति के करने से वलवती हुए । मार्कण्डेय जी बोले--कुलिका के वंश में उत्पन्न एक भक्त सदाचारी ब्राह्मण 'मैं सूर्य को देखूँगा' ऐसा कह उस तीर्थ में यात्रा के लिए उद्योगी हुआ ।।१/५।। आहार छोड़ निर्जल व्रत लिए हुए वह सूर्य के दर्शन के लिए--कुछ अधिक सौ योजन पर्यन्त चला । वहाँ भगवान ने उसे स्वप्न के बीच रोका और कहा । मुने ! आत्म शक्ति सम्पन्न ! तुम्हारे इस व्रत से बस तुम स्थावर और जंगम रूप से सब में पूर्ण होकर स्थित मुझे देखो । मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ फिर वर्षा से खींचता हूँ और वर्षाता भी हूँ अमृत और मृत्यु रूप में मैं स्थित हूँ मुझे जो देखता है । वह ही देखता है । तुम वर माँग लो तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें जो इष्ट हो वह ले लो । ब्राह्मण ने कहा देव ! तुम यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो यदि मुझे आप वर देना चाहते हैं तो नर्मदा के उत्तर तट पर तुम सदा स्थित रहो । देव ! सौ योजन दूर स्थित भी जो पुरुष परमभक्ति से जितेन्द्रिय होकर तुम्हारा चिन्तन करेंगे

उन्हें तुम वर दो। कुबड़े, अन्धे, बहरे मूक और जो इन्द्रिय रहित कोई तुम्हारे चरण में नमन करे उन्हें तुम वर दो। घ्राण शक्ति से रहित निर्बुद्धि जो हड्डी और चर्म मात्र से बचे हुए हैं हे देव। तुम उन पर शीघ्र ही दया करो ॥६/१३॥ और जो प्रति दिन नर्मदा के जल में स्नान कर वहाँ तुम्हारी पूजा करे जगन्नाथ ! तुम उन्हें इष्ट वर दो। भगवान ! प्रातः काल जो पुरुष वेद में तथा लोक में होने वाली स्तुतियों से तुम्हारी स्तुति करे अच्युत। देव ! तुम उनके मनचाहे वरों को देने वालो होओ। देव ! पृथिवी पर जो मनुष्य हमारे आगे और कर्म करायेंगे--स्वामिन् ! तुम उन्हें वर दो यह ही मेरा वर है। राजेन्द्र। ऐसा ही हो ऐसा उन मुनि से दया वश कहकर वहाँ सौवें भाग से स्थित होकर अदर्शन को प्राप्त हुए। जो मनुष्य उस तीर्थ में भक्ति पूर्वक जाकर प्रेम से स्नान करता है। पितृदेवों का तर्पण करता है। वह अग्निष्टोम का फल पाता है। राजन् ! उस तीर्थ में जो पुरुष अग्नि प्रवेश करता है सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ वह अग्नि लोक जाता है ॥१४/१९॥ जो पुरुष उस तीर्थ में पहुँचकर वहाँ शरीर छोड़ता है वह वरुण लोक में जाता है। ऐसा शंकर ने कहा है। उस तीर्थ में जो पुरुष सन्यास से शरीर छोड़ता है वह पुरुष साठ हजार वर्ष स्वर्ग लोक में पूजित होता है। अप्सराओं से भरे हुए दिव्य संगीत शब्दों से शब्दायमान स्वर्ग में निवास कर फिर मनुष्य लोक में वह वेद वेदांगों का जानने वाला होता है। रोग-शोक से रहित होकर वह बड़ा सम्पन्न होता है। पुत्र - स्त्री युक्त होकर वह सौ वर्षपर्यन्त जीवित रहता है। वहां प्रातः काल उठकर जो भास्कर का स्मरण करता हैं। जन्म से होने वाले पापों से वह मुक्त हो जाता है। इसमें संसय नहीं ॥२०/२४॥ चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३४॥

पैतीसवाँ अध्याय

मेघनाद तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

जलमध्ये महादेव केन तिष्टति हेतुना ।
उत्तरं दक्षिणां कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ।।

सवैया-- किसी को क्वांरी कन्या, किसी को बूढ़ी माँ, भूले हुए पथिकों को राह बतलावत है ।
माँ तेरे कलेवर का कैसे मैं वर्णन करूँ, ध्यान करत चरणों में सीश झुक जावत है ।

युधिष्ठिर बोले--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! भगवान शंकर नर्मदा के उत्तर और दक्षिण तट को छोड़कर जल के भीतर क्यों स्थित है ? श्री मार्कण्डेय ने कहा--वह आख्यान अनुपम पुण्य देने वाला कानों को सुख देने वाला है । पुत्र ! पुराणों में जो मैंने सुना है वह सब मैं तुमसे कहूँगा । महाभाग ! त्रेता युग में देवों का परम शत्रु त्रिलोक विजयी सुर-असुरों को भय देने वाला निर्दय स्वभाव रावण था । वह देव दानव गन्धर्वों तपस्वी ऋषियों से अवध्य होकर विमान से एक समय पृथिवी में भ्रमण कर रहा था । उसी समय विन्ध्याचल के बीच में बल से गर्वित मय नाम से प्रसिद्ध दानव गुहा में रहते हुए तपकर रहा था ।।१/५।। राक्षस रावण उसके पास जाकर नम्रता को प्राप्त हुआ । दान सम्मान से सत्कृत होने पर उसने यह वचन कहा । महाराज ! कमल दल के समान नेत्रों वाली पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली यह किसकी पुत्री है ? मय ने कहा मैं दानवों का श्रेष्ठ स्वामी नाम से 'मय' हूँ । मेरी पत्नी तेजोवती है उसकी यह कल्याणी पुत्री है । मन्दोदरी के नाम से प्रसिद्ध है । पति के कारण पार्वती के प्रियपति शंकर की आराजना कर रही है मय दानव के उस वचन को सुनकर मद से मोहित रावण पास जाकर प्रणत होकर मय से बोला ।।६/१०।। महामान्यं ! देव दानवों के गर्व को चूर करने वाला पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न मैं दसकन्ध आपसे प्रार्थना करता हूँ । तुम मुझे पुत्री देने योग्य हो । महात्मा मय ने भी पितामह के व्रत को जानकर विधि पूर्व पूजा सत्कार कर रावण को पुत्री दे दी । वह रावण राक्षस

उसे लेकर तब राक्षसों से पूजित होकर देवताओं के उपवनों में उस मन्दोदरी के साथ विमानों में क्रीड़ा करने लगा। भरत वंशोत्पन्न राजन् ! पुत्रवानों में श्रेष्ठ संसार को पीड़ा देने वाले रावण ने कुछ समय के अन्तर पुत्र को उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही उस महावलशाली ने संवर्तक मेघ की गर्जना की उससे सारे लोक जड़ से हो गये ॥११/१५॥ लोक पितामह ब्रह्मा ने उसका भयंकर नाद सुनकर नाम करण कर कहा यह 'मेघनाद' होगा। इस नाम वाले श्रेष्ठव्रत में स्थित उसने भी उमा के साथ-साथ देवाधिदेव उमापति को सन्तुष्ट किया। वह मेघनाद व्रतों से नियमों से दानों से हवन और जप के विधान से कृच्छ चान्द्रायण आदि से नित्य अपने शरीर को दुर्बल कर रहा था। प्रिय ! इस प्रकार वह एक दिन कैलास पर्वत में पहुंचकर वहाँ से दो लिंग लेकर दक्षिण की ओर चल पड़ा राजन् ! नर्मदा के तट पर पहुंच कर स्नान की इच्छा से लिंग रखकर जप सम्पन्न कर शंकर की पूजा करने लगा ॥१६/२०॥ उस स्थान में निवास करने से स्नान और अग्नि में हवन कर वह मेघनाद अपने को कृतार्थ सा मानकर आकाश मार्ग से लंका जाने को उद्यत हुआ। राज श्रेष्ठ ! मेघनाद जब विशेष नत होकर बाँये हाथ से एक लिंग को उठाकर भक्तिपूर्वक दूसरे हाथ से दूसरा लिंग उठाने लगा तभी वह विशाल लिंग नर्मदा के जल में गिर गया। जाओ ऐसा कहकर वह लिंग जल के भीतर स्थित हो गया। रावण पुत्र प्रणाम कर निशाचरों से पूजित होकर आकाश मार्ग से चला गया। उस समय से वह तीर्थ मेघनाद से प्रसिद्ध हुआ ॥२१/२५॥ पहले तो गर्जन ही सब पापों का विनाशक है। राजश्रेष्ठ ! उस तीर्थ में दिन-रात्रि जो निवास करते हुए स्नान करता है वह अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है। राजन् ! उस तीर्थ में जो पिण्ड दान करता हैं उसको सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं। (सत्र यज्ञ बारह वर्षों में पूर्ण होता हैं।) उसके आने से ही उसके द्वारा बारह वर्ष तक पितृ गण तृप्त हो गये। भरत वंशोत्पन्न। जो पुरुष ब्राह्मण को रस से पूर्ण अन्त

से भोजन कराता है। नर श्रेष्ठ ! उस तीर्थ के प्रभाव से वह अक्षय पुण्य पाता है। शुद्ध मन शुद्ध भाववाला होकर जो वहाँ प्राणों का त्याग करता है वह प्रलय पर्यन्त शिव लोक में बसता हैं। नरश्रेष्ठ। यह गर्जन तीर्थ की उत्तम उत्पत्ति मैंने तुम्हें स्नेह से बताई है। यह सब पापों का विनाश करने वाली है ॥२६/३१॥ पैतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

दारुक तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेच्च दारुतीर्थमनुत्तमम् ।
दारुको यत्रसंसिद्ध इन्द्रस्य दीप्तिः पुरा ॥

सवैया-- बनस्पति भंडारभरो है नर्मदा अमरकंटक, तासे ऋषि नर्मदा जलको भेष बताते हैं ।
शारीरिक रोग स्नान करत दूर होत, पान करत जल को सब मानस रोग नासते है ॥

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राजश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर भक्त सर्व श्रेष्ठ दारुक तीर्थ की यात्रा करे जहाँ पहले इन्द्र के प्रिय दारुक ने सिद्धि प्राप्त की। युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य निष्पाप महर्षे। दारुक ने वहाँ कैसे तप किया ? ब्राह्मणश्रेष्ठ। तुमसे तपके उस विधान को मैं सुनना चाहता हूँ। श्री मार्कण्डेय ने कहा--बड़े हर्ष की बात है स्वर्ग में सभा के मध्य शुद्ध मन वाले ऋषियों का प्राचीन विचित्र जो वृत्तान्त है उसे मैं कहूंगा। इन्द्र के प्रिय मातलि नामक सारथि थे। उसने किसी कारण वश पहिले अपने पुत्र को शाप दिया भरत वंशोत्पन्न राजन्। शाप से पीड़ित कांपते हुए वह इन्द्र के कल्याण मय चरणों को पकड़ कर बोला--किस कर्म से मेरे घोर शाप का अन्त होगा ॥१/५॥ इन्द्र ने शाप पाये हुए उस अनाथ से कहा--युग की समाप्ति तक नर्मदा के तट का आश्रय लेकर तुम वहाँ स्थिर रहो, तुम फिर जन्म पाओगे। फिर जन्मपाकर पवित्र होकर दारुकनाम से प्रसिद्ध होगे। मनुष्य रूप पाकर शंख-चक्र-गदा वाले भगवान की पवित्र सेवा कर फिर तुम सिद्धि पावोगे। बुद्धिमान इन्द्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर फिर से प्रणाम कर अचेतन होकर

भूमि में गिर गया। फिर नर्मदा के तट पर पहुंच कर व्रत-उपवास से अपने शरीर को कृश करते हुए सदा जप-तप में लगते हुए बड़ी भक्ति से राजन् ! प्रलय पर्यन्त महात्मा वरद-शूल-हस्त-महादेव शंकर की आराजना करता रहा ॥६/११॥ इसके पश्चात् विष्णु के अंशावतरण से प्रकट हुए श्री कृष्ण के बुद्धिमान् सारथि होकर भगवान को प्रसन्न किया। उससे वह सद्‌गति को प्राप्त हुआ। सुव्रत ! यह दारुक तीर्थ की उत्पत्ति पहले जैसें मुझसे श्री शंकर ने कही थी मैंने तुमसे कही। तब युधिष्ठिर सुनकर बड़े विस्मित हुए। रोमांचित होकर बारम्बार उन्होंने भाइयों को देखा। श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! इस तीर्थ में जो पुरुष विधि पूर्वक स्नान कर सन्ध्योपासन पूर्ण कर देवाधिदेव श्री शंकर की पूजा करते है और सावधान होकर पुरुष वहाँ ही वेदों का अभ्यास करता है राजन् ! वह पुरुष अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है इसमे संशय नहीं। उस तीर्थ में जो पुरुष भक्ति पूर्वक पवित्र होकर ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह पुरूष हजारों ब्राह्मणों के भोजन से होने वाले उत्तम फल को पाता है। स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देव पूजन आदि सभी कुछ जो शुद्ध भाव से किया जाता वह सब सफल होता है ॥१२/१०॥ छत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३६॥

सैतीसवां अध्याय

देव तीर्थ का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र देवतीर्थमनुत्तमम् ।
येन देवस्त्रयस्त्रिंशत्स्नात्वा सिद्धिं परांगता ॥

सवैया-- दर्शन कर प्राणि- भववारिधि से पार होत, कंटक से जीवन के कंटक विनाशे हैं।
एक बार प्राणी जो अमर कंटक पहुंच जात, जन्म जन्मों के ताके कर्म कंटक नाशे है।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजेन्द्र ! तदन्तर श्रेष्ठ देव तीर्थ जाना चाहिए। जिस तीर्थ के प्रभाव से तैंतीस करोड़ देवता स्नानकर परम सिद्धि को प्राप्त हुए। युधिष्ठिर ने कहा पूज्य बड़े बलवान दानवों के द्वारा सब देवगण कैसे

पराजित हुए और उस तीर्थ में स्नान कर कैसे सिद्धि को प्राप्त हुए ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! पहले युद्ध में अत्यन्त बलवान भयंकर दैत्यों ने देवगणों के साथ इन्द्र को अपने स्वर्ग राज्य से गिरा दिया । हाथी, घोड़े, रथ आदि से दैत्यों ने देव सेना का मर्दन कर दिया । वे देव प्रहारों से जर्जर होकर बड़े दुःखित होते हुए नाना दिशाओं की ओर चले गये । देवगण जम्भ, शुम्भ, निशुम्भ, कूष्माण्ड कुहक आदि दैत्यों से पीड़ित होकर काँपते हुए ब्रह्मा के समीप उपस्थित हुए ॥१/५॥ वहाँ अग्नि आदि देवों ने पूज्य देव ब्रह्मा को शिर से प्रणाम कर निवेदन किया । महाभाग ! देखो, देखो ! दानवों के द्वारा खण्ड किये गये पुत्रों स्त्रियों से पृथक किये गये हम देवता तुम्हारी शरण को प्राप्त है । सब लोकों के पितामह ! देवेश ! रक्षा करो । परमेश्वर ! देव प्रभो ! तुमको छोड़कर हमारी कोई अन्य गति नहीं है ! ब्रह्मा जी ने कहा--देवों ! तुम सब लोग दानवों के विनाश के लिए नर्मदा पर स्थित होकर तप करो । स्वस्थ होओ । तप ही सबसे श्रेष्ठ बल है । मेरे मत से कोई अन्य उपाय नहीं है । कोई मन्त्र नहीं; कोई क्रिया भी नहीं । पापों के क्षय करने वाले नर्मदा के जल को छोड़कर कोई पुण्यमय नहीं है । दरिद्रता रोग मरण बन्धन और अनेकों वहा संकट ये सभी पाप के फल हैं ऐसी मेरी बुद्धि है । 'दारिद्र' व्याधिमरणं बन्धनं व्यसनानि च । एतानि चैव पापस्य फलानीति मतिर्मम' ॥६/११॥ ऐसा समझ कर तुम लोग कठिन तप करो । परमेष्ठी ब्रह्मा के उस यथार्थ वचन को सुनकर अग्नि आदि सभी देव नर्मदा तट पर पहुँचे वहाँ देवों ने तीव्र तप किया उससे उन्होंने सिद्धि पायी । तब से ही वह तीर्थ श्रेष्ठ देव तीर्थ प्रसिद्ध हुआ । सब पापों का विनाशक वह तीर्थ तीनों लोकों में प्रशंसित है । जो पुरुष वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक स्नान करता है वह पुरुष मुक्ति फल को पाता है । राजन् ! उस तीर्थ में जो पुरुष ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह पुरुष श्रेष्ठ सुपात्र सहस्त्र ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल पाता है । वहाँ बहुत पुण्य बढ़ाने वाली रमणीय देव शिला

है ।।१२/१७।। जो पुरुष सन्यास से मृत्यु पाते हैं उनकी अक्षय गति होती है । राजन् ! जो पुरुष उस तीर्थ में अग्नि प्रवेश करता है वह सीधा शिवलोक को जाता है । इसी प्रकार स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, देव पूजन पुण्य-पाप भी उसी तीर्थ में अक्षय हो जाता है । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! इस तीर्थ की यह विधि और उत्पत्ति भी मैंने बतायी । देव तीर्थ की महिमा जैसी शंकर से सुनी है वैसी ही वर्णन की । सब दुःखों से छुड़ाने वाले पापों के नाशक देव तीर्थ के चरित्र को जो लोग सुनते हैं वे देव लोक जाते हैं ।।१८/२२।। सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

अड़तीसवाँ अध्याय

नर्मदेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गुहावासीति चोत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महादेवो गुहावासी समर्बुदम् ।।

सवैया--चकवा और चकवी जैसें जल में किलोल करत, माया और ब्रह्म ऐंसे भवसागर वास है
तीर-तीर अमराई पथिकन को आश्रय देत, कोयल की कुहुक देती मन को हुलास है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राज श्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम गुहावासी क्षेत्र की यात्रा करे । जहाँ गुहावासी महादेव बहुत वर्षों में सिद्ध हुए । युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य ! ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जगद् गुरु महादेव ने किस कार्य से बहुत समय गुहा में बिताया हे निष्पाप ! यह विस्तार से वृत्तान्त मुझसे कहो मैं सब सुनना चाहता हूँ मुझे बड़ी उत्कण्ठा है । श्री मार्कण्डेय बोले--महाराज ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया इसका वर्णन बहुत समय में सम्भव है ! मैं वृद्ध हूँ तुम ध्यान से सुनो ।।१/५।। प्राचीन समय में सत्ययुग में अनेकों वृक्ष लताओं से पूर्ण अनेक बल्लियों से सुशोभित विशाल दारु बन था वह बन सिंह, व्याघ्र, सूकर, हाथियों और खंगों--पशु विशेष से सेवित है । बहुत से पक्षियों से युक्त दिव्य चैत्ररथ की भाँति वह है । वहाँ तीक्ष्ण व्रत वाले बड़ी भक्ति से चारों आश्रम की भावना वाले बड़े बुद्धिमान पुरुष निवास करते

हैं ।।६/८।। ब्रह्मचारी ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी ये सभी अपने धर्म में लगे हुए परम पद को चाहते हुए वहाँ रहते थे । तभी वसन्त समय में किसी कारण विशेष से उमा के साथ विमान में स्थित भगवान् शंकर वहाँ से जा रहे थे । उनने जल में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मन्त्रों से प्रतिध्वनित अलक्षित मार्ग वाले सर्व पाप नाशक एक स्थान देखा । उस आश्रय को देखकर प्रसन्न हुई देवी पार्वती ने हर्ष-पूर्वक गद्गद् वाणी से देवाधिदेव चन्द्रभूषण महेश से पूछा ।।९/१२।। देवी ने कहा--हे देव ! वेद ध्वनि से गुञ्जारित यह आश्रम किसका है । जिसे देखकर मनुष्य भूख-प्यास आदि श्रमों से भी रहित हो जाता है । शंकर जी ने कहा--हे देवी ! क्या तुमने विशाल महा दारुवन को नहीं सुना ? जहाँ बहुत ब्राह्मण गृहस्थ धर्म में निवास करते हैं । यहाँ सभी स्त्रियाँ पति सेवा में लगी हुई है । पर्वत पुत्री ! उनका कोई दूसरा देव नहीं है और न अन्य धर्म ज्ञात होता है । श्री शंकर के इन श्रेष्ठ वचनों को सुनकर बड़ी उत्कण्ठा वाली देवी श्री शंकर से पुनः बोली । महादेव ! यहाँ की सब स्त्रियाँ पति धर्म में अत्यन्त परायण हैं ऐसा जो आपने कहा है प्रभो ! आप कामदेव वन कर उनके चरित्र को क्षोभ युक्त--व्याकुल करके देखें ।।१३/१७।। भगवान् शंकर ने कहा--प्रिये ! तुमने जो वचन कहा है वह मुझे रुचता नहीं । निश्चय ही ब्राह्मण बड़े प्रभाव शाली है उनका अप्रिय न करना चाहिए । ब्राह्मण क्रोध-रूपी हथियार वाले हैं और विष्णु चक्र रूपी अस्त्र वाले हैं । चक्र में क्रोध अधिक कठोर हैं इससे ब्राह्मण को कुपित न करें । तीनों लोकों में वे देवता नहीं, मनुज नहीं सर्प और असुर नहीं दिखाई देंते जो कुपित ब्राह्मणों को देखने मात्र से नष्ट न हुए हों । जिन पर पृथ्वी के देवता महाभाग्य शाली ब्राह्मण सन्तुष्ट हैं उन्हें मोक्ष और स्वर्ग भूमि और मनुष्य लोक के अन्य फल मिलते हैं । देवी ! ऐसा समझ कर तुम दुराग्रह छोड़ दो वहाँ यह ठीक नहीं है जिससे ब्राह्मण क्रोधित हों ।।१८/२२।। देवी पार्वती ने कहा--देव ! देवों से बहुत पूजित उन

ब्राह्मणियों का मान जब तक आप नीचा नहीं कर देते तब तक मैं आप की प्रीति पात्र तथा तुम्हारे वश में रहने वाली नहीं हूँ। सर्व समर्थ ! महादेव ! सभी देवों में तुम्हें कुछ भी अशक्य नहीं। तुम क्या नहीं कर सकते। सुर श्रेष्ठ ! मेरा यह एक कार्य पूर्ण कर दो। देवी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवी के वचन में और कल्याण में तत्पर श्री शंकर कापालिक का वेश बनाकर दारुवन पहुंचे। बड़े जटा जूट को बाँधकर चन्द्रमा को भूषण के रूप में धारण कर, गले में सर्प को धारण किये कानों में कुण्डल पहिन कर, व्याघ्र चर्म को पहने हुए मेखला के हार से शोभित, चरणों के भूषण से होने वाले शब्दों से पृथिवी को कँपाते हुए, बड़ी ऊर्ध्वजटाओं के समूह वाले, व्याघ्र चर्म और भस्म का लेपन किये हुए महात्मा ब्रह्मा के मस्तक को हाथ में रख कर बड़े डमरू के निनाद से पृथ्वी को हिलाते हुए प्रातः काल विशाल दारुक में पहुंचे ।।२२/२९।। तब वहाँ फूल-पत्र-फल को चाहते हुए सभी पुण्य जनों के साथ चारों ओर भ्रमण करने लगे। भरत वंशोत्पन्न ! देव शंकर के अत्यन्त विशाल आश्चर्य जनक रूप को देखकर उन सुन्दरियों का मन काम से कलुषित हो उठा दारु वन की सम्पूर्ण सुन्दरी स्त्रियाँ उस श्रेष्ठ सुन्दर पुरुष को देखकर हर्ष से सरस हो गई। नर श्रेष्ठ ! अत्यन्त आश्चर्य जनक देव को देखकर उन ब्राह्मण स्त्रियों में बहुत विकार उत्पन्न हुए। कुछ सुन्दरी स्त्रियाँ उन्हें देखकर वस्त्रों को पहनना भूल गई। बड़े अनुराग से युक्त कुछ अन्य सुन्दरियाँ उत्तरीया--ओढ़नी को भूल बैठी ।।३०/३४।। बिखरे केशोंवाली आसन से उठी हुई कोई स्त्री शिक्षा देने की इच्छा वाली होकर भी चेष्टा में असमर्थ हुई। रूप और यौवन से गर्वीली कोई स्त्री महादेव को देखकर गोद में स्थित बालक की स्तन पिलाना भी भूल गई। काम के वाणों से पीड़ित दूसरी सुन्दरी अपने हाथों से सुन्दर स्तनों का मर्दन कर गरम श्वास लेती हुई कुछ न बोल सकी। इस प्रकार श्री शंकर उन स्त्रियों में अत्यन्त अद्‌भुत् क्षोभ-सा पैदाकर वहाँ से चले गये। तभी पुरुष फल के लिये बाहर वन गये हुए वे ब्राह्मण

सम्पूर्ण वन घूमकर अपने घरों को जब लौटे और तेज से रहित अपनी स्त्रियों को देखा। जिनकी पहले पातिव्रत्य में पतियों के प्रति अनन्य भक्ति थी उनकी अपने व्रत से चालित जानकर शीघ्र ही वे श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ से निकल गये ।।३५/४०।। परस्पर परामर्श कर उन स्त्रियों के मन को व्याकुल कर अदर्श को प्राप्त देव शंकर को समझकर कोई ब्राह्मण क्रोध में भरकर दण्ड उठाकर दौड़ा। दूसरे लोग विचित्र वर्ण वाली लाठी लेकर अन्य कुशमिष्टि लेकर दौड़े। राजन्! वे सब इधर उधर वन में विचरकर एकत्रित होकर उन महात्माओं ने क्रोध से ये वचन कहे। कि जो कुछ यह हमने हवन किया है और गुरुजन यदि हमारी सेवा से सन्तुष्ट हुए हैं तो उस सत्य से देव शंकर का श्रेष्ठ लिंग गिर जाय। विधि के क्रम से हम सब एक आश्रम से दूसरे आश्रम को नहीं छोड़ते। उस सत्य से देव का लिंग पृथ्वी में गिर पड़े ।।४१/४५।। इस प्रकार सत्य के प्रभाव से ब्राह्मणों के तीन बार कहने से शिव जी देखते देखते ही लिंग पृथ्वी में गिर गया। भरत वन्शोत्पन्न! सभी लोगों में बड़ा हाहाकार हुआ। भगवान शंकर के लिंग के गिरजाने पर जगत का बड़ा भय उपस्थित होने पर सर्वत्र हाहाकार मच गया। लिंग के गिरते हुए बड़ा भयंकर शब्द हुआ। दिशाओं में उल्कापात ज्वालाओं का पतन हाहाकार और कठोर भूकम्प होने लगे। पर्वतों के शिखर गिरने लगे समुद्र सूखने लगे। देव का लिंग गिरने पर देवता उदासीन मन वाले हो गये। सब मिलकर हाथ जोड़े हुए सभी भगवान ब्रह्मा की विविध स्तुतियों से स्तुति करने लगे। तदनन्तर प्रसन्न भगवान चतुर्भुज ब्रह्मा ने दुःखी सारे देवों ने कहा--तुम दुःखी न होओ। वह देवाधिदेव शंकर ब्राह्मणों के शाप से कुछ दबे हुए हैं। उन तपस्वीजनों के प्रसन्न होने पर फिर छुटकारा पायेगे ।।४६/५२।। शत्रु नाशक! यह सुनकर सम्पूर्ण देव जैसे आये थे वैसे ही चले गये। भरत वन्शोत्पन्न। तब सब मुनियों ने भावना कर विश्वामित्र, वरिष्ठ आदि जाबालि कश्यप ये सभी मिल कर शंकर के पास जाकर बोले--देवाधिदेव। ब्राह्मणों

का ब्रह्मतेज सर्व समर्थ है। तुम क्षमा शील होकर और तप कर दुःख रहित होओ। ऋषियों के क्षोभ से ही वह तुम्हारा लिंग गिरा है। महादेव। वह पूज्य होगा। अग्निहोत्र से व अग्निष्टोम से भी वह कल्याण नहीं मिलता मनुष्य लिंग के पूजन से कल्याण पाते हैं। देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व सर्प, राक्षस और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के वचन से यह पूज्य होगा ॥५३/५८॥ यह लिंग ब्रह्मा विष्णु, इन्द्र और चन्द्रमा का भी यह पूज्य होगा। इस लोक परलोक में जो फल तुम्हारे लिंग पूजन से होता है उसे कौन कह सकता है। ऐसा कहे जाने पर भगवान श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम कर परम प्रसन्न और हाथ जोड़े हुए बोले। ब्राह्मण बिना जल के भी सब कामनाओं के पूरक सदा से चलते फिरते तीर्थ है। जिनके वचनरूपी जल से ही पापी पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। वह क्षेत्र नहीं है और वह तीर्थ भी नहीं है वह ऊपर भी समर्थ नहीं कि ब्राह्मण को क्रोधित कर पुनः जहाँ जाकर मनुष्य शुद्ध हो जाय। वह शास्त्र नहीं है जो ब्राह्मण रचित न हो। वह दान भी नहीं है जो ब्राह्मण के देने योग्य न हो। ब्राह्मण सबके पात्र हैं। वह कोई दुख नहीं है जो ब्राह्मणों के क्रोध से न होता हो। पृथ्वी में जितने तीर्थ और गंगा आदि पवित्र नदियाँ हैं वे सभी ब्राह्मण के एक वाक्य की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है ॥५९/६४॥ सब ब्राह्मणों का अभिनन्दन कर और महर्षियों से आज्ञा पाकर तब देव शंकर श्रेष्ठ नर्मदा तट पहुंचे। वहाँ गुप्त रूप से निवास करते हुए बड़े व्रत का नियम लेकर हजारों वर्षों तक श्री शंकर सदा जप स्नान में लगे हुए तप करने लगे। प्रिय ! नियम समाप्त होने पर महेश्वर की स्थापना कर देवों से वन्दित होकर देवों के साथ वह प्रभु कैलास गये। उन्होंने नर्मदा के तट पर शंकर की स्थापना की थी उस कारण से ही वह नर्मदेश्वर कहे जाते हैं। जो पुरुष त्यागी तथा जितेन्द्रिय होकर नर्मदा में स्नान कर नर्मदेश्वर महादेव की पूजा करता है वह, अश्वमेध का फल पाता है। वहाँ स्नान कर जो पुरुष पितृगण को तिल पुष्प युक्त जल देता है।

पाण्डव ! उसके पहले के इक्कीस पूर्वज पीढ़ियाँ स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं ||६५/७०|| राजन् ! उस तीर्थ से जो पुरुष योग्य ब्राह्मणों को घी से युक्त खीर खिलाता है वह पुरुष करोड़ गुना फल पाता है । युधिष्ठिर ! जो पुरुष जल के मध्य में स्थित होकर उत्तम ब्राह्मणों को सोना अथवा चाँदी देता है वह पुरुष अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है । जो पुरुष नर्मदेश्वर के समीप पहुँचकर अष्टमी व चतुर्दशी में निराहार रहकर निवास करता है वह जन्म का उत्तम फल पाता है ||७१/७३|| राजन् ! जो पुरुष उस तीर्थ में अनशन व्रत से प्राण त्याग करता है व अनशन व्रत करता है व्रत पालन की दृष्टि से प्रजापत्य परक शान्त मन आदि व्रतों का यह धर्म शास्त्रीय विधान है । उसकी रुद्र लोक में अनिवर्तिका नहीं लौटने वाली गति होती है । राजन् ! तुमसे नर्मदेश्वर की उत्पत्ति मैंने बताई । प्रिय । पुराणों में उसका विस्तार से वर्णन है । इस प्रकार जो पुरुष नर्मदेश्वर की उत्पत्ति का कथन करता है और जो ध्यान पूर्वक सुनता है वह पुरुष भी स्नान का फल पाता है ||७४/७७|| अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ||३८||

उन्तालिसवाँ अध्याय

कपिलातीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् ।
स्नानमात्रान्नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

सवैया--सुन्दर सलोने पक्षियों के मीठे बोल देखो, पथकिन के मन में आनन्द सरसात है ।
प्रकृति की ऐसी सुषमा स्वर्ग में नहीं है व्यास, सभी देवतान को नर्मदा तट सुहात है ।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम कपिला तीर्थ का गमन करे । वहाँ मनुष्य भक्ति पूर्वक स्नान मात्र से सब पापों से मुक्त हो जाता है । युधिष्ठिर जी बोले--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! लोकों में आश्चर्य के समान नर्मदा नर्मदेश्वर का माहात्म्य आपने बताया । अब कपिला तीर्थ का माहात्म्य भी कहिये । यह उत्तम तीर्थ जिस समय और जिस सम्बन्ध से उत्पन्न और

प्रसिद्ध हुआ । स्वामिन् ! वह सब पापों का नाशक और पुण्य तीर्थ कैसे हुआ । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! सुनो उत्तम कपिलातीर्थ की महिमा आज मैं तुमसे कहूंगा । भरत ! जिसे सुनकर तुम्हारा सब विस्मय हट जायगा ।।१/४।। पहले सत्ययुग के आदि में लोक पितामह ब्रह्मा सम्पूर्ण चार प्रकार वाले प्राणि समूह को उत्पन्न कर भक्ति से जप हवन में तत्पर होकर चिन्तन करते हुए स्थित थे । तभी जलते हुए कुण्ड से कपिला निकली अग्नि की ज्वाला से प्रकाश मान सींगों से युक्त तीन नेत्रों वाली दुधारू अग्नि तत्व से पूर्ण अग्नि-मुख वाली अग्नि युक्त नासिका वाली और अग्नि से जल रहे नेत्रों वाली, अग्नि मय खुरों वाली एवं अग्नि से युक्त पृष्ठ भाग वाली और सब अंगों में अग्नि की स्थितिवाली, सब लक्षणों से शोभित घण्टा से सुन्दर शब्द वाली परम तेजस्वनी कुण्ड के मध्य में स्थित कपिला को देखकर प्रिय युधिष्ठिर ! लोक गुरु ब्रह्मा उसे प्रणाम कर यह बोले--सब लोक में पूजित पुण्य रूप धारण करने वाली कपिले ! तुम्हें नमस्कार हैं । 'मंगल दायिनी मंगल रूपे ! देवी । तुम तीनों लोकों में उपमा रहित हो तुम्हें प्रणाम है ।।५/१०।। सुन्दर मुख वाली देवि । तुम्ही लक्ष्मी हो तुम स्मृति रूप वाली हो । उमा देवी के नाम से प्रसिद्ध तुम्हीं सती हो इसमें संशय नहीं । सुमुखि । तुम ही वैष्णवी और महादेवी तथा ब्राह्मणी भी हो । तुम कुमारी और भक्ति तथा श्रद्धा भी हो । महाभागे । तुम भूतों की कालरात्रि और कुमारी परमेश्वरी हो । तुम्हीं लक्ष-त्रुटि-मुहूर्त और लक्ष रूप से स्थित हो । तुम सम्वत्सर मास काल और क्षण रूपवाली हो । चराचर सहित त्रिभुवन में तुम्हारे बिना कुछ भी नहीं है । इस प्रकार ब्रह्मा ने जब सत्कार पूर्वक कपिला की स्तुति की तब वह महा भाग्यशाली ब्रह्मा से प्रसन्न होकर बोली । हे देव ! जगद्गुरो ! तुम्हारे वचन से मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा आज मैं क्या प्रिय करूँ । पितामह तुम कहो ।।११/१६।। ब्रह्माजी ने कहा--परमेश्वरि संसार के कल्याण के लिये मैंने तुम्हें उत्पन्न किया है उससे सबके कल्याण की कामना से तुम स्वर्ग से

मनुष्य लोक जाओ । तुम सर्वदेव स्वरूप और सर्वलोक स्वरूप हो जो विधि पूर्वक तुम्हें योग्य पात्रों को देंगे उनका निवास स्वर्ग लोक में होगा । तदनन्तर परमेश्वरी देवी वह कपिला ब्रह्मा से ऐसा कहकर देवी सिद्धों से वन्दित होकर पृथ्वी में आई । युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य ! जब वह कपिला ब्रह्मा के वचन से इस लोक में आई तब सारे देव और लोक कपिला के अंगों में कैसे स्थित हुए ।।१७/२०।। ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह कपिला यहाँ आकर किस तीर्थ अथवा क्षेत्र में स्थित हुई यह मुझसे कहो । श्री मार्कण्डेय जी बोले-भरत ! प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा कहे जाने पर तब वह कपिला ब्रह्म लोक से संसार को पवित्र करने वाली पुण्यदायिनी नर्मदा तट पर पहुँची । नर्मदा के तट पर निवास करते हुए उसने बड़ा तप ओर पर्वत वन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण किया । राज श्रेष्ठ ! तप से यह उत्तम कपिला तीर्थ सबपापों का नाशक प्रसिद्ध और ऋषियों से सेवित है । जो पुरुष विधि पूर्वक उन तीर्थ में स्नान कर कपिला गौ का दान करता है उसने सम्पूर्ण पृथ्वी का दान किया है ऐसा समझो ।।२१/२५।। जो पुरुष भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को दी जा रही गैया को देखता है उसका सौ वर्ष का पाप नष्ट हो जाता है । इसमें संशय नहीं । राजश्रेष्ठ ! भूर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, सत्यलोक, तपोलोक ये सभी लोक कपिला के पृष्ठ भाग पर स्थित है । मुख में अग्नि, दाँतों में सर्प, ओष्ठों में धाता विधाता और जिह्वा में सरस्वती, उसके नेत्रों में सहस्त्र किरण वाले देव चन्द्रमा और सूर्य स्थित है । राज श्रेष्ठ ! नाक के बीच में स्थित वायुदेव है । मस्तक में महादेव, कानों में अश्वनी कुमार स्थित है । सींगों में नारायण और शंकर, और सींगों के मध्य में पितामह ब्रम्हा, गलकम्बल में पाशधारी वरुण और अरुण यह उदर का आश्रय लेकर स्थिर है । खुरों में सर्प पूँछ के अग्रभाग में सूर्य की किरण राजन् ! ऐसी सर्व रूपिणी कपिला गाय को घर में रखते है वे धन्य है । इसमें संशय नहीं हैं । प्रातः काल जो पुरुष उठकर उसकी परिक्रमा करता है, उसने पर्वत वन सहित पृथ्वी की परिक्रमा करली ।।२६/

३३।। जो पुरुष कपिला के पञ्चगव्य--दूध, घी, गोमूत्र, गोबर से श्री शंकर को स्नान कराता है, वह परम उत्तम गति पाता हैं । राजन् ! जो पुरुष उस तीर्थ में उपवास करता हैं, स्नान कर कही गई विधि से पितृ देवताओं का तर्पण करता है उसकी पहले की दस पीढ़ियाँ इसके मनोरथों का चिन्तन करती हुई तृप्त होकर स्वर्ग में जाती हैं । इसमें संशय नहीं । राजश्रेष्ठ ! तुमसे इस तीर्थ की विधि और उसकी उत्पत्ति तथा तीर्थ का पुण्यफल मैंने कहा और क्या पूंछना चाहते हो । यह तीर्थ का वर्णन धन देने वाला सब दुखों का विनाशक और उत्तम है जिसे सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं हैं ।३८/४०। उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

चालीसवाँ अध्याय

करन्जेश्वरतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्रीमार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! करञ्जेश्वरमुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महाभागो दैत्यो लोकेषु विश्रुतः ।।

सवैया--गरम-गरम भस्मी रमाए सारे अंग में, कानों में बिछुआ को कुण्डल लटकायो है ।
माथे के नेत्र में अग्निज्वाला सी बरष रही, गहनो हैं भुजंग जाके अंग-अंग विष छायो है ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजेन्द्र ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम करन्जेश्वर की यात्रा करे । जहाँ जहाँ महा प्रतापी दैत्य करन्ज संसार में प्रसिद्ध और सिद्ध हुआ । युधिष्ठिर ने पूछा महाभाग ! उस तीर्थ में तपस्वी सिद्धि प्राप्त हुआ ब्राह्मण वह किसका पुत्र था और कब सिद्ध हुआ यह तुम कहो । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--पहले सत्य युग में ब्रह्मा के मानस पुत्र वेद वेदान्तों के तत्व जानने वाले मरीचि नामके थे । निष्पाप राजन् ! परम तपस्वी उस मरीचि के भी चिरकाल में मानस पुत्र हुआ जो साक्षात् ब्रह्मा के समान था । भारत ! क्षमा, दया, दम, दान, सत्य, शुद्धि और नम्रता मरीचि महर्षि के वे सभी गुण उसमें भी थे । ऐसे गुणों से पूर्ण ब्राह्मण श्रेष्ठ को ! अदिति, दिति और दनु और दश दूसरी कन्यायें दी जिनके पुत्र पौत्र बहुत हुए ।

महाबाहो ! अदिति देवी ने उन प्रजापति कश्यप से इन्द्र आदि देवों को उत्पन्न किया। जिनसे स्थावर जंगम रूपवाले तीनों लोक पूर्ण हो गये। और दूसरी पत्नी दनु से महा प्रतापी सब लक्षणों से सम्पन्न 'करन्ड' नामक पुत्र हुआ। राजन् वाल्यावस्था में ही उसने बड़ा तप किया। राजन् ! उसने नर्मदा तट पर निवास कर अत्यन्तघोर बहुत श्रेष्ठ दिव्य हजार वर्ष तक कृच्छ चान्द्रायण किया। उसका आहार शाक-फल-मूल ही था। वह सदा स्नान हवन में लगा रहता था। तब प्रसन्न होकर त्रिपुरा के मारने वाले भगवान शंकर पार्वती के साथ प्रकट होकर उससे वर लेने का अनुरोध करने लगे ॥१/१४॥ करन्ज ने कहा--हे देव ! यदि तुम मेरे ऊपर सन्तुष्ट हो। और यदि तुम मुझे वर देना चाहते हो, तो मेरे पुत्र पौत्र धर्म शाली हों। 'वैसा ही हो' ऐसा कहकर पार्वती के साथ श्री शंकर वहीं नन्दीश्वर पर चढ़कर गणों के साथ अन्तर्धान हो गये। अन्तर्धान होने पर हर्षित होकर वह दैत्य करञ्ज भी अपने नाम से शंकर की स्थापना कर घर चला गया। तबसे वह तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ हुआ। वहाँ स्नान मात्र से सभी मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। उस तीर्थ में जो मनुष्य स्नानकर पितृदेवों का तर्पण करता है, वह पुरुष निश्चय ही अग्निष्टोम यज्ञ का फल पा लेता है। राजन् ! वहाँ तीर्थ में जो मनुष्य अनसन व्रत करता है वह पुरुष मरकर ऐसी उत्तम गति पाता है जहाँ से वह लौटता नहीं वह रुद्र लोक जाता है ॥१५/२०॥ धर्म नन्दन ! अथवा जो पुरुष वहाँ अग्नि या जल में अपने प्राणों को छोड़ता है वह पुरुष सिव लोक में बीस हजार वर्ष निवास करता है। उसके अनन्तर विसेष पुण्य का क्षय हो जाने पर वेद वेदांगों के तत्व का जानकार सब शास्त्रों में कुशल निर्मल कुल में जन्म लेता है। वह राजा व राजकुमार होकर पुत्र पौत्रों से युक्त रहता हुआ सब रोगों से रहित होकर सौ वर्ष जीता है। निष्पाप ! भरत श्रेष्ठ ! इस प्रकार तीर्थ में स्नान दान का फल जो तुमने पूछाँ वह सब मैंने तुमसे कहा। यह पुण्य देने वाला पाप नाशक धन देने वाला और दुःस्वप्न नाशक भी है। जो तीर्थ के माहात्म्य को पढ़ते और सुनते है उनके

सब मनोरथ पूर्ण होते है । और पितृ भक्त जो पुरुष श्रद्धा से इसे सुनता है उसका पुण्य अक्षय हो जाता है ऐसा भी शंकर ने कहा है ।।२१/२६।। चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४०।।

इक्तालीसवाँ अध्याय

कुण्डलेश्वर तीर्थ महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेच्च राजेन्द्र । कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महायक्षः कुण्डधारी नृपोतम ।

सवैया--चारों तरफ अग्नि की ज्वाला सी जरत जान, अपने जटा जूटन में गंग भरमायो है ।।
शांति को सदन और अग्नि को शमन जान, शिव ने अपनी गोदमें मेकल सुता को बिठायो है ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! पश्चात् उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । यहाँ महा यक्ष कुण्डधार सिद्ध हुआ । सुर असुरों से बढ़कर उग्र तप करके वह सिद्ध होकर विश्राम के भवन में क्रीड़ा का अधिकारी हुआ । युधिष्ठिर बोले--यह कुण्डधार किस युग में उत्पन्न हुआ किसका पुत्र था ? बड़ा उग्र तप कर जिसने भगवान् शंकर को सन्तुष्ट किया । निर्दोष स्वभाव वान् ! पूज्य मुने ! इसे विस्तार से तुम कहो । इस श्रेष्ठ कथामृत को सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं है । श्री मार्कण्डेय जी बोले--त्रेंतायुग में ब्रह्मा के समान पुलस्त्य पुत्र भरद्वाज की पुत्री से उत्पन्न विश्राम ने परम उग्र तप कर पत्नी के द्वारा तीव्र भक्ति से प्रार्थित होकर सब लक्षणों से युक्त 'कुवेर' नामक पुत्र पैदा किया ।।१/६।। लोक पितामह ब्रह्मा ने उत्पन्न हुआ उसे जानकर ऋषियों और देवों सहित प्रसन्न होकर उसका नाम करण किया । जोकि तुम विश्वश्रवा से उत्पन्न होकर मेरे पौत्र भाव को प्राप्त हो इससे हे निष्पाप ! मैंने तुम्हारा नाम 'वैश्रवण' रखा है । तुम सब देवों के धन के रक्षक हो जाओगे । लोक पालों के क्रम से चौथे और पृथ्वी में अत्यन्त प्रतापी होओगे । महाराज ! उनकी पत्नी 'ईश्वरी' के नाम से प्रसिद्ध हुई । उसका पुत्र यक्षों का स्वामी कुण्ड हुआ । जो श्रेष्ठ स्वभाव वाला था उसने सुन्दर

रूपपाकर माता पिता की आज्ञा से नर्मदा के तट पर निवास कर उग्र तप किया । ग्रीष्म में पञ्चाग्नि तप कर वर्षा ऋतु में मैदान में रहने वाला हेमन्त में जल के बीच में स्थिर होकर वह सौ वर्ष पर्यन्त वायु पीकर रहा ॥७/१२॥ राजन् ! इस प्रकार सौ वर्ष पूर्ण होने पर वह एक अंगूठे के सहारे खड़ा रहा । भरत श्रेष्ठ ! उसने श्वासों को रोककर तपकिया । चार सौ वर्ष पूर्ण होने पर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए । वत्स ! जो तुम्हारे मन हो वह वर तुम मुझसे माँग लो । मैं तुम्हें दूँगा इसमें सन्देहनहीं, हैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ । कुण्डल ने कहा--यक्षेश्वर कुवेर की कृपा से उनके ही पुर में उनका अनुचर होकर सब शत्रुओं में अवध्य होकर यथेच्छ विचरण करूँ । ऐसा ही हो ऐसा कहकर सब लोकों में नमस्कृत होकर शंकर आकाश मार्ग से पर्वत कैलाश में प्रविष्ट होकर अन्तर्हित हुए ॥१३/१८॥ तब परम प्रसन्न उस यक्ष ने वहाँ उत्तम देवेश कुण्डेश्वर की स्थापना की । पुष्प-धूप-चन्दन लेप से विमान और चामरों छत्रों से पूजन की सामग्रियों से लिंग को अलंकृत कर जगन्नाथ को प्रणाम कर अन्न-पान आदि सामग्री से ब्राह्मणों को तृप्त कर शंकर को प्रसन्नकर अपने भवन गया । तब से ही वह तीर्थ तीनों लोकों में परम पुण्य-दायक श्रेष्ठ कुण्डेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस तीर्थ में जो कोई उपवास करते हुए भगवान शंकर की पूजा करता है वह सब पापों से छूट जाता है । जो पुरुष ब्राह्मणों को सुवर्ण, चाँदी, मणि मोती और भोज्य पदार्थ देता है वह स्वर्ग में सुखी होता है । उस तीर्थ में पुरुष स्नान कर ऋग्वेद सामवेद का गायन करने वाला होकर एक ऋक्का जपकर सम्पूर्ण फल पा लेता है ॥१९/२५॥ पाण्डुनन्दन ! जो पुरुष उस तीर्थ में ब्राह्मणों को उत्तम गाय देता है तुम उसका फल सुनो । उसके और उनकी सन्तति के जितने रोम है, उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्ग लोक में पूजित होता है । पुत्र पोत्रों के साथ वह सुखी रहता है । महा प्रतापी वह पुरुष पुत्र-पौत्रों के साथ उतने वर्ष स्वर्ग में वास करता है । उस तीर्थ में अन्न देने वाला पुरुष असंख्य वर्ष

पर्यन्त शिव लोक में निवास करता है । वह पुरुष गन्धर्व सिद्ध अप्सराओं से पूर्ण मधुर शब्द वाले स्वर्ग लोक में सुखी होता है । धर्म नन्दन ! इस प्रकार उस तीर्थ का प्रभाव मैंने तुमसे सब क़हा । इसको सुनकर मनुष्य स्तुति करते हुए उसके प्रभाव से सब पापों से छूट जाता है ।।२५/२९।। इक्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

बयालीसवाँ अध्याय

पिप्पलेश्वरतीर्थ का माहात्म्य वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेतु राजेन्द्र पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महायोगी पिप्पलादो महातपाः ।।

सवैया--कलि के दुरुह पाप गंगा में कटे नहीं, कौने उपाय करों शिव के मन भाको है ।
पाप के पहाड़ दूर ही से देख क्षार होत, सोच में पड़े है शिव ऐसो सलिल काको हैं ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राज श्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य श्रेष्ठ पिप्पलेश्वर की यात्रा करे । जहाँ महातपस्वी पिप्पलाद सिद्धि को प्राप्त हुए, युधिष्ठिर ने कहा--भगवन ! मैं पिप्पलाद का चरित्र और उस तीर्थ का महात्म्य भी सुनना चाहता हूँ जहाँ वह महातपस्वी सिद्ध हुए । महामान्य ! वह पिप्पलाद किसके पुत्र थे और किस लिए तप किया निष्पाप मुने । यह सब मुझे विस्तार से बताओं । मार्कण्डेय ने कहा--प्रिय युधिष्ठिर महातेजस्वी वेद वेदांगों में पारंगत याज्ञवल्क्य महर्षिने मिथिला में रहते हुए पहले बड़ा तप किया । उन बुद्धिमान याज्ञवल्क्य की तपस्विनी बहिन ने दैव वंश सप्तम वर्ष में ही वैधव्य पाया ।।१/५।। पूर्व कर्मो के परिणाम से वह माता पिता से हीन हुई, उसके पिता पक्ष में भी कोई नहीं था इससे वह अकेली ही थी । भूतलपर भ्रमती हुई वह धीरे-धीरे भाई के पास आ पहुंची जहां वह परलोक के सुख की इच्छा से तप कर रहे थे । वह भी वहाँ स्थित होकर सेवा करती हुई बड़ा तप करने लगी । किसी समय वह रजस्वला होकर दिन में स्नान किये हुए एकान्त में पड़े कपड़े को देखकर भीतरी वस्त्र के रूप में उसे धारण

किया था। याज्ञवल्क्य ने दैववश उस रात्रि में जहाँ एकान्त में सोये थे कामुक स्वप्न स्वप्नदोष देखकर लंगोटी में रक्त बिन्दु के समान वीर्य का त्याग किया था। तप से प्रकाशित वह वीर्य सिद्ध अग्नि के समान कान्ति वाला था ॥६/१०॥ तब जागकर उस ब्राह्मण ने उस वस्त्र को अशुद्ध देखा तब उसे दूर फेंक दिया। विधिपूर्वक शुद्धि सम्पादित कर रात्रि में स्नान को निषिद्ध समझकर वह याज्ञवल्क्य ब्राह्मण पुनः सो गये। उस बहिन ने भी आधी रात में ही उस वस्त्र को जिसे याज्ञवल्क्य ने वीर्य पात से दूर फेंक दिया था उसे योनि का आवरण बना लिया। प्रातः काल मुनि ने उस फेंके वस्त्र को इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा तब उस ब्राह्मणी ने कहा--माननीय। तुम क्या खोज रहे हो और किस वस्तु की तुम्हें अपेक्षा हुई है ? मुझसे यथार्थ कहो। याज्ञवल्क्य जी बोले--भद्रे ! मैंने आज रात्रि में अपवित्र स्वप्न देखा था। शुक्रपात सहित एक वस्त्र मैंने फेंका था। वह नहीं दिखाई पड़ता। राजन् ! ब्राह्मणी वह वचन सुनकर डरती हुई बोली। भ्रातः ! वह वस्त्र मैंने स्नान कर भीतर डालदिया है ॥११/१५॥ उसकी वह बात सुनकर मुनि ने 'हाहा' ऐसा कहते हुए कटे मूल वाले वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर गये। तब यह क्या ? ऐसा कहकर आकाश के समान निर्मल वह उस भाई को आश्वासन देती हुई उनसे आदरपूर्वक बोली। हे तात ! अत्यन्त छिपा कारण भी तुम मुझसे कहो जिससे शीघ्र ही विचार कर इसका कोई उपाय किया जाय ॥१६/१८॥ तदंनन्तर उन महर्षि याज्ञवल्क्य ने बहुत समय तक विचार कर पश्चात् क्षर-भर में ही वाणी की शक्ति पाकर भय युक्त मन वाले होकर जो कहा राजन् ! वह तुम सुनो। शुभ व्रत वाली बहिन ! तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है और मेरा भी कोई दोष नहीं है। तुम्हारे पेट में जो गर्भ धारण हो गया है उसमें देव ही कारण हैं। तुम सदा ही उसकी सावधान होकर रक्षा करो। पूर्ण समय तक वह विनष्ट न हो। लज्जित होकर दुःखित चित से उस साध्वी ने वैसा ही हो ऐसा कहा। पुत्रोत्पत्ति पर्यन्त उस गर्भ

की रक्षा की । उत्पन्न होते ही उस गर्भ को लेकर उस ब्राह्मणी ने पीपल की छाया का आश्रय लेकर वहाँ ही उसे छोड़कर यह वचन बोली । संसार में सभी स्थावर और चर प्राणी मेरे द्वारा छोड़े गये इस बालक की रक्षा करे । श्रेष्ठ राजन् ! वह ब्राह्मणी ऐसा कह कर चली गयी । उस अवस्था में पड़ा हुआ वह बालक वहाँ थोड़ी देर चुपचाप स्थित होकर हाथ पैरों को फेंककर और सुन्दर नेत्रों को बन्द कर मुख को फैलाकर विकृत स्वर से रोने लगा ।।१९/२६।। उस बालक के उस रोने के शब्द से स्थावर जंगम सभी व्याकुल हो गये । बड़े उत्पातों से सभी पर्वत-वन आदि कम्पित हो गये । तदनन्तर भूखे श्रेष्ठ ब्राह्मण बालक को महाशक्ति शाली समझ कर जीने के लिए व्यवस्था की । वृक्ष ने छाया नहीं छोड़ी । भरत श्रेष्ठ ! उस वृक्ष से बचे हुए अमृत को उसने पिया । इस प्रकार पालित होकर उस कुमार ने विश्वस्त होकर अपने चित्त में यह विचार किया कि मेरे क्या अनिष्ट ग्रह का यह विषय है, है तो किस क्रूर ग्रह का विषय है ? किसी ग्रह के द्वारा मैं क्रूरता पूर्वक देखा गया हूँ । इस अवस्था में हो शनेश्चर शनैः शनैः चलता हुआ भूमि में सहसा गिर पड़ा । तब हाथ जोड़कर डरते हुए उसने कहा । महामुने ! ब्राह्मण पिप्पलाद । मैंने आपका क्या अपकार किया है । जिससे मैं घूमते हुए आकाश से पृथिवी में गिरा दिया गया हूँ । शनैश्चर ने इस प्रकार महामुनि पिप्पलाद से कहा । तब क्रोधित होकर उसने जो वचन कहा राजन् । वह तुम सुनो । दुर्बुद्धी मैं माता-पिता से रहित बालक हूँ । शनैश्चर ! तुम सम्पूर्ण रूप से कहो लोगों को पीड़ा क्यों देते हो ? ।।२७/३३।। शनि ने कहा--मैं स्वभावतः ही क्रूर स्वभाव वाला हूँ मेरी दृष्टि ही ऐसी है । तुम मुझे छोड़ दो जो तुम कहते हो मैं वैसा ही करूँगा । इसमें संशय नहीं । पिप्पलाद ने कहा--ग्रह देव ! आज से लेकर सोलहवर्ष पर्यन्त तुम बालकों को पीड़ा न देना यह ही हमारा करार है । ऐसा ही हो--ऐसा कहकर धीरे से चलने वाले वह ऋषि श्रेष्ठ पिप्पलाद को प्रणाम कर देव मार्ग आकाश में चला

गया। उसके अदृष्ट हो जाने पर बड़े आग्रह वाले हठीले उस बालक ने पिता का चिन्तन करते हुए क्रोध से मलिन होकर अग्नि के स्वरूप का ध्यान कर अग्नितत्त्व के सम्बन्ध से अग्नि को प्रकट कर दिया और उस अग्नि में कृत्या मन्त्रों से अभिचारिक हवन कर 'कृत्या' उत्पन्न हो यह कहा। तब शीघ्र ही ज्वालाओं से प्रकाशवान अग्नि के समान आकार वाली कृत्या प्रकट हुई। उस कन्या ने "मैं क्या करूँ" ? ऐसा कहा ।।३४/३९।। क्या मैं समुद्रों को सुखा दूँ ? क्या पर्वतों को चूर्णित कर दूँ ? पृथिवी को लपेट दूँ। अथवा आकाश को गिरा दूँ ? ब्राह्मण ! मैं किसके मस्तक में गिरूँ ? और किसे समाप्त कर दूँ ? मुझे कार्य की आज्ञा दीजिये--मेरे समय का विनाश न हो। उस कृत्या के वचन सुनकर महातपस्वी पिप्लाद जी क्रोध से अत्यन्त लाल नेत्र वाले होकर यह वचन बोले। शुभे ! मैंने बड़े क्रोध के वेग से तुम्हारा चिन्तन किया है। मेरे पिता याज्ञवल्क्य हैं तुम उन पर शीघ्र ही गिरो। ऐसा ही हो यह कहकर आकाश को फोड़ती हुई शीघ्र ही वह चली। महतपस्वी उत्तम मन वाले याज्ञवल्क्य मिथिला में तप कर रहे थे। जब महा तपस्वी याज्ञवल्क्य ने महा शक्ति शाली अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी जीव को अपनी ओर आते देखा ।।४०/४५।। सहसा आते हुए उसे देखकर वे बहुत डरे हुए महामुनि उस जीव से घिरे हुए राजा जनक के पास पहुँचे। राज श्रेष्ठ ! तुम मुझे शरण में आया हुआ समझो। राजन् ! तुम यदि समर्थ हो तो तुम मेरी इस महाभूत के भय से रक्षा करो, 'तब यह भूत ब्राह्मण के तेज से उत्पन्न हैं, यह भयंकर ओर रोकने के योग्य नहीं है। मैं रक्षा करने में असमर्थ हूँ' जनक राजा ने कहा, तदनन्तर महतपस्वी वह याज्ञवल्क्य शरणार्थी होकर दूसरे राजा के पास गये। उसके भी निषेध करने पर वे भय से इन्द्र के भवन जा पहुँचे ।।४६/४९।। राजन् ! महाभूत कृत्या के भय से काँपते हुए ब्राह्मण ने देवराज तुम्हें नमन हो तुम मेरी रक्षा करो ऐसा बार बार कहा। ब्राह्मण के वचन सुनकर देवराज ने यह कहा मुने। मैं

ब्राह्मण के क्रोध से तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हूँ। तदनन्तर वह ब्राह्मण बड़े ब्रह्म ज्ञानी याज्ञवल्क्य ब्रह्म लोक और विष्णु लोक भी गये और वहाँ भी वही उत्तर मिला। राजन्! तब वह मुनि जीवन से निराश और व्याकुल होकर 'भूत' से पीछा किये जाते हुए भगवान शंकर के लोक में गये ॥५०/५३॥ पाण्डुनन्दन! योगबल से सम्पन्न याज्ञवल्क्य उन शंकर के नखों के माँस के भीतर छिप गये जिस प्रकार देव भी न देख सके। उसी बीच अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी वह 'महाभूत' वहाँ गया। 'छोड़ दो उसे छोड़ दो' ऐसा उस कृत्या ने देवाधिदेव शंकर से कहा। भरत श्रेष्ठ! उस भूत से ऐसा कहे जाने पर महादेव ने तब योगिराज याज्ञवल्क्य को नखों के मांस के भीतर उसे दिखाया। भूतेश्वर श्री शंकर ने कृत्या को दूर स्थापित कर बड़ी आपत्ति में पड़े हुए मुनि से कहा--ब्राह्मण! तुम मत डरो। महामुने! तुम निकलो। पश्चात् अत्यन्त सूक्ष्म शरीर में स्थित उन कृत्या नामक भूत को देखकर शंकर उससे यह बोले। महाभूत! तुम इन मुनि का क्या करोगे मुझसे कहो ॥५४/५८॥ कृत्या ने कहा--देवेश! क्रोध में भरे हुए ऋषि पिप्पलाद ने मेरा चिन्तन किया है। मैं इसके शरीर को नष्ट करूँगी। प्रभो! मुझे तुम हिंसा के लिए आयी समझो। उस भूत के मुख से निकले इस वचन को सुनकर कमर में स्थित याज्ञवल्क्य से मन्त्रों के जानकार शंकर ने विचार किया। युधिष्ठिर। उस समय ब्राह्मण का योगीश्वर ऐसा नाम रखकर और उसे वहीं छोड़कर शंकर जी अन्तर्हित हो गये। वह भूत यह सब देख वहाँ से हट गया। उस भूत को भेज कर दुःखित मन वाले पिप्पलाद ने भी पिता माता के अभाव के कारण व्याकुल होकर नर्मदा तट पर ही निवास किया। एक अंगूठे के बल पर स्थित होकर पिप्पलाद ने राजन्! निराहार रहते हुए सोलह वर्ष में ही देवेश शंकर को पार्वती के सहित प्रसन्न कर लिया। तब पिप्पलाद के तप से सन्तुष्ट होकर शंकर ने यह वचन कहा ॥५९/६४॥ भगवान शंकर ने कहा--श्रेष्ठव्रत वाले ब्राह्मण। तुम्हारे इस तप से मैं परम

प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो मैं तुम्हारे मन से अभीष्ट वर देता हूँ । पिप्पलाद ने कहा--यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो हे देवेश शम्भो । इस तीर्थ में तुम सदा स्थिर रहो । पिप्पलाद के द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान शंकर महामुनि पिप्पलाद ने "वैसा ही हो" यह कहकर गणों के साथ अदृश्य हो गये । भगवान शंकर के चले जाने पर पिप्पलाद वहीं नर्मदा तट पर स्नान कर शंकर की स्थापना कर पश्चात् उत्तर पर्वत पर चले गये । राजन् ! उस तीर्थ में मनुष्य भक्ति पूर्वक मन्त्रों से स्नान कर पितृ देवों का तर्पण कर शंकर की पूजा करें ।।६५/६९।। ऐसा करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के उत्तम फल को पाता है और मरकर शिवलोक जाता है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए । भरत वंश श्रेष्ठ ! और जो मनुष्य पितृ गणों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को वहाँ भोजन कराता है उसके पितृ गण तृप्त होकर स्वर्ग में बारह वर्ष तक प्रसन्न रहते हैं । जो पुरुष सन्यास दीक्षा लेकर उस तीर्थ में शरीर छोड़ता है कभी उसको रुद्र लोक से लौटना नहीं होता । निष्पाप ! तुमने जो पूछा वह सब मैंने तुमसे कहा । पिप्पलाद तीर्थ का माहात्म्य और उत्पत्ति भी बताई । यह आख्यान पुण्यदायी पापहारी धन बढ़ाने वाला और दुःस्वप्न का नाशक है । इसके पढ़ने सुनने वाले पुरुषों के सब पापों का निवारण होता है ।।७०/७४।। बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

तेतालीसवाँ अध्याय

विमलेश्वर तीर्थ माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र देवशिला रम्या स्वयं देवैर्विनिर्मिता ।।

सवैया--शारद और शेष जाकी महिमा बखान करें, वेद और पुराणन में जाको जस भाखो है ।
चारों ओर दावानल पापों को जरत जान, शिव ने निज वास मेकल सुता बीच राखो है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--तदनन्तर पुरुष श्रेष्ठ विमलेश्वर तीर्थ की यात्रा करे वहाँ स्वयं देवों से निर्मित सुन्दर देवशिला है । राजन् ! जो पुरुष वहाँ

स्नान कर भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करता है एवं थोड़े दान से ही उन्हें प्रसन्न करता है उसका अन्त नहीं होता। युधिष्ठिर ने कहा--श्रेष्ठ ब्राह्मण। पृथिवी में कौन-कौन से दान श्रेष्ठ माने गये हैं। मनुष्य भक्ति पूर्वक जिन दानों को देकर सब पापों से छूट जाता है। श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--सोना, चाँदी, ताँबा, मणि, मोती और भूमि दान ये सभी मनुष्य को पापों से छुड़ा देते हैं। उस तीर्थ में जो मनुष्य प्राणों को छोड़ता है वह प्रलयपर्यन्त रुद्रलोक में निवास करता है ।।१/५।। पश्चात् सब पापों को भय देने वाली पुष्करिणी की यात्रा करे। वहाँ स्नान कर भगवान सूर्य का पूजन करे। सामवेद के एक मन्त्र जप से सामवेद का फल पा लेता है। इसी प्रकार यजुर्वेद के मन्त्र जप से भी उत्तम फल की प्राप्ति होती है। मनुष्य सूर्य नारायण का ध्यान करते हुए एक अक्षर स्वरूप मन्त्र का जप करे। आदित्य हृदय स्तोत्र का जप कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। उस तीर्थ में जो स्नान कर ब्राह्मणों की पूजा विधिपूर्वक करता है उसे करोड़ों गुना पुण्य होता है। इसमें संशय नहीं। और जो मनुष्य उस तीर्थ में अनशन व्रत से अथवा अग्नि से भस्म होकर वा जल में शरीर पात से मृत्यु को वरण करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है। राज श्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो कोई शास्त्र विहित कर्म करते हुए मरते हैं वे उत्तम गति को पाते हैं ।।६/११।। युधिष्ठिर ने कहा पूज्य ब्राह्मण ! ब्राह्मण आदि सभी वर्ण रोग-वलक्षय और मोह के स्वरूप का ज्ञान रखकर किस उपायों से पापों से छूट जाते हैं वह साधन बतलाएँ ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तिल सहित जल का पान करने वाला तिल-मिश्रित जल से स्नान करने वाला, काम क्रोध से रहित ब्राह्मण अनशन से प्राणों को छोड़ता है वह उत्तमगति को पाता है। प्रिय युधिष्ठिर ! क्षत्रिय संग्राम में मृत्यु से उत्तमगति पाता है। महाप्राज्ञ ! उसके अभाव में युद्ध में मृत्यु न होने पर राज्य सुख का सेवन करते हुए उत्तमगति पाता है। व्याधि से ग्रस्त दुष्ट ग्रह से पीड़ित वृद्धा वस्था से असमर्थ होकर अथवा इन्द्रिय

विकलता वश अन्ध आदि की स्थिति में अपने को अग्नि में विधिपूर्वक जलाकर उत्तमगति पाता है । वैश्य भी अशक्त अवस्था में इस तीर्थ में प्राणों को छोड़ते हुए उत्तम कल्याण प्राप्त करता है । अथवा शुद्ध भाव से जलमें प्राणों को छोड़कर शिवरूप होता है ॥१२/१६॥ शूद्र भी ब्राह्मणों की सेवा करते हुए शंकर को सन्तुष्ट कर मुक्त हो जाता है । अन्यथा मनमाना आचरण करते हुए निश्चय ही नरक में गिरता हैं । अथवा ब्राह्मणों और गुरुजनों की सेवा में असमर्थ होकर वह विद्वान ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर पञ्चाग्नि में शरीर को सुखा दे । शान्त इन्द्रियों का दमन करने वाले क्रोध को जीते हुए शास्त्रज्ञ और क्रिया कुशल विद्वान ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर उनके उपदेश से ही जंगली कुण्ड की अग्नि को स्वदाहार्थ स्वीकार करे । इस प्रकार सभी वर्ण उत्तमगति पाते है । इसके विपरीत अविवेकी अहंकार से मोहित होने वाले वे अन्धे-पुरुष जैसे पहाड़ी गुफा में गिरता है इसी प्रकार घोर नरक में गिरते है । जो पुरुष शास्त्र के विधान को छोड़कर इच्छानुसार आचरण करते है वे मर कर कीड़े की योनि पाते हैं उनका पिण्ड दान वा क्रिया कर्म भी नहीं होता । वेद शास्त्रों में बताये गये धर्म को छोड़कर इच्छानुसार करने वाले पुरुष को युधिष्ठिर ! अट्ठाईस करोड़ नरकों की प्राप्ति होती है ॥१७/ २२॥ अथवा नरक रूपी सागर में डूबे हुए वे प्रत्येक नरक में गिरते पड़ते हैं । राजन् ! यह मनुष्य जन्म बहुत धर्मों से प्राप्त होकर भी बहुत दुर्लभ है । जो मनुष्य उस जन्म को पाकर मद और ईर्ष्या को छोड़ता हैं सदा अपने मन को वश में रखकर ज्ञान रूपी नेत्र वाला होता है वही श्रेष्ठ पुरुष है । अज्ञान रूपी अन्धकार से ढके हुए जिस पुरुष की आँख ज्ञानरूपी अन्जन शलाई से खुली नहीं वह पुरुष जन्म से ही अन्धा हैं । श्रेष्ठ राजन् ! तुमने जो पूछा था वह सब मैंने तुमसे कहा । बड़े पापियों को लेकर श्री शंकर का वचन है । नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा शंकर जी के शरीर से निकली है । वह समस्त जीवों स्थावर जंगमों को तारने में समर्थ हैं । सब देवों के पूज्य भगवान् शंकर के द्वारा

सबके कल्याण के लिए महापुण्य देने वाली यह नर्मदा यहाँ उतारी गयी है । स्नान से मनुष्य का मानसिक, वाचिक और कर्म से होने वाला शारीरिक पाप भी नष्ट हो जाता है ।।२३/२९।। यह नर्मदा शंकर के शरीर से उत्पन्न है । अतः वह अत्यन्त पुण्य दायिनी है । प्रातः काल उठकर जो पुरुष नित्य ही भक्ति पूर्वक भूमि में स्थित होकर इस मन्त्र का जप करता है । प्रिय राजन् ! वह पुरुष स्नान का फल प्राप्त करता है । पुण्य जलवाली हे देवी ! तुम्हें नमन है । समुद्र गामिनि ! तुम्हें मेरा प्रणाम है । श्रेष्ठ ऋषियों से पूजित देवि ! तुम्हें नमन है । शंकर के शरीर से निकली हुई नर्मदे ! तुम्हें मेरा प्रणाम है । पुण्यात्मा से पूजित तुम्हें मेरा बारम्बार प्रणाम है और पुण्य शील जनों को सदा पवित्र करने वाली वर दायिनि ! माता तुम्हें मेरा सर्वदा प्रणाम हो ।।३०/३३।। तेतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

चुम्बालीसवाँ अध्याय

शूलभेद की प्रशंसा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--तीर्थानां परमं तीर्थं तच्छृणुष्व नराधिप ।
रेवाया दक्षिणेकूले निर्मितं शूलपाणिना, मोक्षार्थं मानवेन्द्राणां निर्मितं नृपसत्तमम् ।
सवैया-- कालकूट पान करत-महाकाल भयो, जगत को जाल जाके नाम लेत नास्यो है ।
भवसागर अगम अगाध आगे भरो देख, भक्तन हित राम नाम नौका ही राख्यो है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राजन् ! नर्मदा के तट पर भगवान् शंकर के द्वारा रचित तीर्थों में परम श्रेष्ठ एक तीर्थ है तुम उसे सुनो--राजश्रेष्ठ ! वह उत्तम मनुष्यों के मोक्ष के लिए स्थापित है । युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य ब्राह्मण ! मैंने आपकी कृपा से अनेक धरम अनेक तीर्थ और सम्पूर्ण दान धर्म के प्रसंगों को सुना है । अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि मनुष्य को संसार से छुटकारा कैसे मिलता है जिस प्रकार फिर यहाँ आवागमन नहीं होता मोक्ष की प्राप्ति होती है ? ब्राह्मण श्रेष्ठ ! प्रसन्नता पूर्वक यह मुझसे कहिये । मार्कण्डेय जी ने कहा--तुम एकाग्र चित्त होकर परम पवित्र तीर्थ की महिमा सुनो जिसकी

कथा सुन लेने पर मनुष्य सालभर के पापों से छूट जाता है ।।१/५।। मनुष्य उस तीर्थ के माहात्म्य के श्रवण में वाणी मन और शरीर के सब पापों से विशेष रूप से मुक्त हो जाता है । राजन् ! वह पाँच कोसों में परिमित है । पापात्मा प्राणियों को भी भोग और मोक्ष देने वाला दिव्य तीर्थ है । नर्मदा के दक्षिण तट पर भृगु नामक पर्वत है उस भृगु पर्वत के शिखर पर भगवान् शंकर ने वह तीर्थ स्थापित किया । राजन् ! तीनों लोकों में वह शूलभेद नाम से प्रसिद्ध है । तीर्थ के चारों ओर वहाँ जो वृक्ष है वे भी गिरकर शिव के वचन के अनुसार शिव लोक जाते हैं इसमें संशय नहीं । वहाँ भूमि में जो पक्षी ब जीव मरते हैं वे उत्तम लोक को पाते हैं ।।६/१०।। पाताल से भोगवती नामक जो गंगा निकली है वही सब पापों का विनाश करने वाली है दूसरी वहाँ शूलभेद में निकली है । जो वह पुण्यदायिनी गीर्वाण नाम वाली दूसरी महानदी जहाँ शंकर जी ने पृथ्वी का भेदन किया है उस कुण्ड के बीच में गिरी है । प्रिय युधिष्ठिर ! पहले श्री शंकर से सरस्वती नदी उत्पन्न होकर बड़े से बड़े पापों से छुड़ाने वाली है हे राजन् ! वह भी वहाँ गिरी है । प्रभामयी नर्मदा के साथ मिली है जहाँ गीर्वाण नामक शिला है । उसी तीर्थ में वह परम पवित्र तीर्थ है वैसा तीर्थ न हुआ न होगा केदार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र और गया अथवा अन्य तीर्थ उसकी सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकते । जो तीर्थ पृथक होकर पाँच स्थानों के रूप में स्थित है ।।१०/१६।। उन्हें संक्षेप में अलग कहूँगा । जिस प्रकार नाभि अर्थात् मध्यक्षेत्र में गया पुण्य प्रद है; चक्रतीर्थ भी उसके समान है । धर्मारण्य में कूप स्थल की भाँति शूल भेद क्षेत्र भी परम पुण्यदायक है । जैसे ब्रह्मयूथ पुण्यक्षेत्र हैं उसी प्रकार देव नदी का क्षेत्र भी पुण्यदायक है । जैसे गंगाशिर और देव शिला पुण्य प्रद है जैसे पुष्कर क्षेत्र और मार्कण्डेय कुण्ड कहाँ है । वहाँ पितृगणों के निमित्त दिया गया पिण्डदान और तर्पण अक्षय होता है । जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करता है और नित्य ही जल पीता है वह सब पापों से वैसे ही छूट जाता है जिस

प्रकार केंचुली से सर्प । पाखंड क्रोध से रहित श्रेष्ठ सुपात्र ब्राह्मणों की पूजा करे । भगवान् गणेश को पूजित देखकर तेरह दिनों वाला दान तेरह गुना होता है । सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं । कम्बल क्षेत्रपाल को देखकर मनुष्य परमभक्ति से भगवान् श्री शंकर की पूजा करे ।।१७/२२।। भगवान शंकर के पूर्व भाग में बड़ी श्रद्धा से भगवती पार्वती की पूजा करे पश्चात् गुहा में निवास करने वाले मार्कण्डेयश की पूजा करे । भक्ति-पूर्वक ऐसा करने से मनुष्य अज्ञान और ज्ञानपूर्वक किये गये सब पापों से छूट जाते हैं । गुहा के बीच में प्रवेश कर मनुष्य तीन अक्षर वाले ओंकार का या उसमें उपलक्षित ब्रह्म अर्थात् वेद के सूक्तों का जप करे । इस नील पर्वत में उत्पन्न नदी पर्वत को वह छठे अंश में पा लेता है । वहाँ त्रिनर अर्थात् दोनों देव आदित्य गणों के साथ सदैव निवास करते हैं । वहाँ सर्वश्रेष्ठ कोटिलिंग नामक स्थान भी सब देवों से युक्त हैं । जिस प्रकार सम्पूर्ण नदी-नद समुद्र में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार शूलभेद के दर्शन से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।।२३/२८।। राजन् ! वहाँ आज भी यह प्रतीति प्रत्यक्ष होती है कि स्नान के सम्बन्ध में लिंग के बीच में चिनगारियाँ सी निकलती है और दूसरी अनुभव यह होता है कि तैल के बिन्दु फैलते नहीं । इस प्रकार शूल भेद के प्रभाव से यह प्रत्यक्ष होता है जो पुरुष नित्य ही तीनों समय शूल भेद का स्मरण करता है । राजन् ! वह पुरुष बाहर भीतर दोनों प्रकार से प्रत्यक्ष शुद्ध हो जाता है । देवों के भी पूछने पर मैंने इसका कथन किसी से नहीं किया । मैंने सदा इसे अत्यन्त गोपनीय छिपाने योग्य रखा है । यह सब पापों का नाशक पुण्य दायक और सब दोषों को नष्ट करने वाला अतएव उत्तम है । राजन् ! यह तीर्थ सर्व तीर्थ मय है जिसका प्रभाव सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । प्रिय युधिष्ठिर । मैंने तुमसे शूल भेद की महिमा संक्षेप से कही है-- जो मनुष्य प्रेम से इसे सुनता है वह भी सब पापों से मुक्त हो जाता है ।।२९/३४।। चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

पैंतालीसवाँ अध्याय

शूलभेद के कथन में अन्धक की प्रशँसा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- एष एव पुरा प्रश्नः परिपृष्टो महेश्वरम् ।
राज्ञा चोत्तानपादेन ऋषिदेवसमागमे ॥

सवैया--काम, क्रोध, लोभ, मोह मत्सर भयंकर रोग, व्याप रहो जग में जासों जन मानस काँप्यो है ।
राम नाम भेषज को वेग जासे असर होत, तासे शिव नर्मदा जल अनूपान राख्यो है ॥

श्री मार्कण्डेय जी बोले--ऋषि देवों के समागम में राजा उत्तानपाद ने इसी प्रश्न को श्री शंकर से पूछा था । उन्होंने पूछा यह तीर्थ बड़े पुण्यों को देने वाला श्रेष्ठ और सर्वदेव रूपमय सुना है । हे सुखकारी शंकर ! यह स्थान अत्यन्त गुप्त है यह देखा और सुना भी नहीं जाता । शूल भेद कैसे हुआ पहले इसे किसने उत्पन्न किया । भगवन् ! मुझसे इस तीर्थ का माहात्म्य आप विस्तार से कहें । श्री शंकर ने कहा पहिले एक महा पराक्रमी बहुत बल से गर्वित दानव था । मनुष्य लोक में पराक्रम और शक्ति में उसके समान कोई नहीं था । यह ब्रह्मा के पुत्र का पुत्र मदान्ध नामक अन्धक नाम वाला था । अकण्टक राज्य करते हुए अपने स्थान में स्थित प्रसन्न और पुष्ट था ॥१/५॥ उसका देवगण भी तिरस्कार नहीं कर सकते थे । उसका भवन अग्नि देव के उद्यान के समान प्रकाशमान था । भारत । तभी अन्धक ने विचार किया । मैं शंकर को प्रसन्न करूँ जिससे वह मुझ पर दयालु हो जायें उनसे मैं दिव्य वर मागूँगा जो मेरे मन में है । यह निश्चय कर वह अन्धक घर से अकेला निकल पड़ा । नर्मदा के तट पर पहुँच कर वह दानव तप में लग गया । उसने बड़ा कठोर तप किया । तब वह दिव्य हजार वर्ष तक निराहार ही रहा । पश्चात् दुबारा हजार वर्ष तक वह जल मात्र पीता रहा ॥६/१०॥ तीसरे बार हजार वर्ष पर्यन्त वह केवल धूम पीकर फिर चौथे बार हजार वर्ष तक वह योगाभ्यास में स्थित हुआ । इतना उग्र तप यहाँ किसी ने नहीं किया । भारत वंश श्रेष्ठ ! जब वह हड्डी चमड़ा मात्र ही

शेष रहा तब उसके मस्तक से निकली हुई धुएँ की वर्तिका स्वर्ग को लाँघकर कैलाश में स्थित हुई । तब भगवान शंकर के समीप में स्थित पार्वती भी उनसे बोली--मनुष्य लोक में यह कौन उग्र तप में स्थित हो रहा है । चार हजार वर्ष बीत गये है किसी ने ऐसा तप किया न ऐसा तप किसी ने देखा और सुना ।।११/१५।। नियमों से युक्त इस तपस्वी में हे देव ! तुम उपेक्षा क्यों दिखाते हो । हे ईश ! सबको तो तुम थोड़े तप से शीघ्र फल दे देते हो । हे महेश्वर ! मैं आपके साथ आज अक्ष क्रीड़ा नहीं करूँगी । भक्त वत्सल ! जब तक इस दानव को नहीं उठाते । श्री शंकर ने कहा--सब लक्षणों से सम्पन्न महादेवि ! बहुत अच्छा--मैं क्लेश पाते हुए तप कर रहे उस दानव को नहीं जान सका । उस पर मेरा ध्यान नहीं गया । भद्रे ! उस अपने परम प्रभू का चिन्तन करते हुए मैं योगाभ्यास में स्थित था । तो आगे मेरे साथ तुम चलो जहाँ वह दानव तप कर रहा है । तब पार्वती के साथ महादेव शंकर गये । भगवान शंकर ने अस्थि चर्मावशिष्ट उसे देखा ।।१६/२०।। देवाधिदेव आशुतोष प्रसन्न होकर बोले--हे दानव श्रेष्ठ ! तुमने भयंकर रोमाञ्चित या कंपाने वाला तप किया है । वत्स ! बतलाओ तुमने ऐसा घोर तप क्यों किया ? बेटा । जो तुम्हारे मन में हो कहो वह वर मैं तुम्हें दूँगा । अन्धक ने कहा हे शम्भो ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो और वर देना चाहते हो तो हे महेश्वर । मैं सब देवों को जीत लूँ यही दो । शंकर जी ये कहा स्वप्न में भी तुम कभी देवों से युद्ध न करना । जो असम्भव हो और जो मन को न रुचे वह कहना भी न चाहिए अतः अन्य कुछ तुम्हारे मन में जो वह तुम मांगो । स्वर्ग में पाताल में मनुष्य लोक में स्थित मन चाहे विविध भोगों को भोगो ।।२१/२५।। स्वर्ग में इन्द्र की भाँति तुम निष्कण्टक राज्य करो । शंकर के वचन सुनकर वह अन्धक अनमना हो गया । मैंने व्यर्थ ही कष्ट उठाया । मैं कुछ न सिद्ध कर पाया । लम्बा साँस छोड़कर पृथ्वी में गिर गया । जड़ से कटे वृक्ष की भाँति तब वह श्वास रहित निर्जीव सा

हो गया। देवी ने उसे मूर्छित देख कर कहा--सदाशिव यह जो मनोरथ करता है वही इसे दो। भक्तों की उपेक्षा करने से तुम्हारी अकीर्ति होगी ।।२६/३०।। शंकर जी ने कहा--देवी। यदि मैं इसकी इच्छानुसार वर दूँगा तो वह विष्णु, ब्रह्मा और मुझे भी नहीं मानेगा। देवेश्वरि। उच्चता पाकर यह दूसरे देवों असुरों का भी तिरस्कार करेगा। देवी ने कहा--भगवन ! किसी भी उपाय से इसे उठाओ ! विष्णु को छोड़कर तुम सब देवों को जीत लो यह वर कहो। महादेव बोले--देवि ! जो मेरे मन में है और जो तुमने भी कहा यह उपाय अच्छा है इसे वही वर दूँगा ।।३१/३४।। तब यह अमृत से सिक्त किये जाने पर उसी समय स्वस्थ हो गया। फिर वह सब अवयवों से शोभित होकर नया हो गया। तुम एकाग्र चित्त होकर मेरी बात सुनो। उत्तम वर ले लो शंकर ने उससे कहा। विष्णु को छोड़कर और जो कुछ तुम्हें इष्ट हो वह वर रूप में मैं तुम्हें दूंगा। तुम सब कार्यों में सफल होओ। तुम्हारा धर्म विपरीत न हो। असुर ! तुम यदि यह उचित मानते हो तो मैं तुम्हें यह वर देता हूँ। तुम विष्णु और मुझे छोड़कर सब देवों में विजयी होओगे। अन्धक बोला--अपने बल का आश्रय लेकर 'ऐसा ही हो' यह उसने कहा-हे शंकर ! मैं अपने बल से विष्णु को छोड़कर सब को जीत लूँ। निश्चय ही अब मैं कृतार्थ हो गया। ऐसा कहकर चरणों में गिर गया। भगवान शंकर उसे ऐसा वरदान देकर पार्वती के साथ नन्दीश्वर पर चढ़कर वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये ।।३५/४१।। पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

छियालीसवाँ अध्याय

शची हरण वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- स दानवो वरं लब्ध्वा जगाम स्वपुरं प्रति।
ददर्श स्वपुरं राजच्छोभितं चित्रचत्वरैः ।।

सवैया--अमृत के पान से जगत के प्राणी अमर होत, सुना है बहुत नजर नहीं आता है।
आत्मा अमर है वेद और पुराण सभी कहत, तब फिर अमृत से उसका क्या नाता है।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--वह अन्धक दानव वर पाकर अपने पुर पहुँचा। राजन् ! उसने विचित्र प्रागंणों से शोभित अपने नगर को देखा। अनेकों फल दायी फलों के वनों से पूर्ण उद्यानों से युक्त कटहल, बबुल, आम्रातक, आम, चम्पा, अशोक, नारियल अनार और मातुलिंग आदि अनेक वृक्षों से शोभा सम्पन्न, तालाबों तथा ध्वज पताकाओं से सुशोभित, दिव्य देव मन्दिरों से युक्त और मांगलिक स्वस्तिवाचन वेद मन्त्र घोषों से प्रति ध्वनित उसका वह नगर था। उस समय वह सोने की मालाओं से शोभाय मान सुवर्ण मय दिव्य भवन में प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने पुत्रों, स्त्री, मन्त्री, दासो और भृत्यों को देखा ॥१/८॥ जय बोलने वाले इधर उधर बड़ी बड़ी फहरा रही पताकाओं से मन के उल्लास को प्रगट कर रहे उन सब बीरों को देखा। कुछ ने तोरण बन्धन किया। कुछ ने फूलों को बिखेरा। दूसरे विजोरा नीबू हाथ में लिए हुए अन्धक के पास पहुंचे। उस नगर में अन्नपूर्ण पात्रों से पूर्ण हाथों वाले बहुत लोग दिखाई दे रहे थे। वहाँ हजारों स्त्रियाँ अक्षय पात्र हाथ में लिए खड़ी थीं। मन्त्री और सेवक हाथियों को दीर्घ शब्दों के साथ उन्हें आगे बढ़ा रहे थे। अन्य नगरवासी जन उनकी आयु वृद्धि की कामना कर रहे थे। परम प्रसन्न हुए अन्धक ने वहाँ निवास करते हुई जीव जगत् को घोड़ों पैदल सैनिकों को भी देखा। उसी प्रकार अनेक खजानों को जो सुवर्ण से पूर्ण थे। भैंसों, गौओ, बैलो और विचित्र छत्रों को भी देखा इस प्रकार अन्धक वहाँ मनुष्य लोक में बहुत प्रसन्नता पूर्वक कुछ समय रहा। देवगण उसको पराजित न कर सके। स्वर्ग में रहने वाले देव उसे वर पाया जानकर शंकित हुए। वे सभी एकत्रित होकर इन्द्र की शरण गये ॥९/१४॥ इन्द्र ने कहा-आज यहाँ सभी देवों के आगमन का कारण क्या हैं ? तुम्हें कहीं से भय प्राप्त हुआ है ? कैशे शरणागत हुए हो तब उन देवों ने इन्द्र से कहा--देवेश ! श्री शंकर के वरदान से बलवान अन्धक दैत्य सब देवों से अजेय है इससे बढ़कर क्या कार्य हैं ? इससे तुम विचार करो कि क्या हमें करना चाहिए ?

विचार में लगे हुए वे देव इन्द्र के आगे ऐसा कह रहे थे ।।१५/१८।। जब वे दोनों से ऐसी मन्त्रणा कर रहे थे तब दूतों के मुख से इस वृतान्त को सुना--कि वहाँ देव समूह उपस्थित हुआ है ऐसा जानकर वह दानव अन्धक घर से तुरन्त निकल पड़ा । राजन् ! अकेला रथ पर चढ़ा हुआ बहुत हाथियों के बल से युक्त वह अनायास ही दुर्गम मेरु पर्वत के ऊपर पहुंच गया ।।१५/२०।। राज श्रेष्ठ ! सोने के परकोटी से युक्त अनेकों विचित्र आश्रमों से सुशोभित शत्रुओं के लिए दुर्गम उस स्थान पर वह अपने घर की भाँति अनायास ही प्रविष्ट हो गया । उसे देखकर इन्द्र डर गया और अपना आसन उसे दे दिया । वहाँ इन्द्र के सुन्दर आसन पर बैठे हुए अन्धक ने चारों ओर से घिरे हुए मंडप को समझ लिया । इन्द्र ने कहा--तुम्हारा आगमन यहाँ कैसे हुआ ? दानव श्रेष्ठ ! तुम अपना कार्य बताओ । जो हमारे पास धन है वह तुम्हें मैं दूँगा ।।२१/२४।। अन्धक ने कहा--देवराज ! मैं खजाना और हाथियों को भी नहीं चाहता । तुम शृंगारों से भूषित आज अपना स्वर्ग दिखाओ । स्वर्गाध्यक्ष ! मुझे तुम उस ऐरावत महागज, उच्चैः श्रवा अश्व, उर्वशी आदि रत्नों को दिखलाओ, इन्द्राणी के प्रतिष्ठित पारिजात के पुष्प और वहाँ के अनेकों वृक्षों एवं सब बाजों को दिखलाएँ । उसके इस वचन को सुनकर इन्द्र ने मन में यह विचार किया जो इस पापी को मार सके उस पुरुष को मैं नहीं देख पा रहा हूँ । दुःख मैं पड़े आज देव लोक का कोई रक्षक नहीं है । भय से व्याकुल इन्द्र ने सब वस्तुएं दे दी । रंगशाला में बैठकर नृत्य कराया । यम-वायु अग्नि ये सभी देव वहाँ बैठे थे । राजन् ! उर्वशी आदि सभी अप्सराएँ गाने बजाने के साथ उसके सामने आ-आ कर एक-एक कर नृत्य करने लगी ।।२५/३१।। उन अप्सराओं को देखकर उसका मन शान्त नहीं हुआ । राजन् ! उसका मन इन्द्राणी में कामातुर हो गया । वह इन्द्राणी को लेकर अपने पुर चलने लगा । तब अन्धक का देवों के साथ युद्ध होने लगा । श्रेष्ठ राजन् ! उसके द्वारा संग्राम में विविध शस्त्रों चक्र-वज्र

आदि से सभी देव पराजित हो गये। वे सभी देवता-वायु आदि संग्राम में उससे दुखित हो गये। जिस प्रकार सिंह सारे हाथियों को जीतकर वन में निर्भय विचरे उसी प्रकार सभी देव उससे परांगमुख हो पराजित हुए। जिस प्रकार अबोध राजा ग्राम में अपनी इच्छा से लोगों को पीड़ा देता हो। बार बार आक्रमण कर मनमाने धन-वस्त्र आदि लोगों के हर लेता है। प्रजाओं के दुःख देने से अपने विनाश को नहीं देखता, वह देवों में अनुभव किया। इन्द्राणी को लेकर वह दानव अन्धक वहाँ से तुरन्त चला गया ॥३३/३८॥ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४६॥

सैंतालीसवां अध्याय

श्रीविष्णु की स्तुति के अनन्तर ब्रह्मा और देवों का स्वलोक गमन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- गीर्वाणश्च ततः सर्वे ब्राह्मणं शरणं गताः।
गजैर्गिरिवराकारैर्हयैश्चैव गजोपमैः ॥

सवैया--जाके सलिल नहाय कलि कलुष दूर होत, आत्मा राम नाम अमृत फल पाता है।
जन्म अमित जन्मों के कर्मों का क्षय होत, शिव को नर्मदा जल अमृत समान भाता है।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर सभी देव ब्रह्मा की शरण में आये। पर्वता कार हाथियों और हाथियों के समान घोड़ों से बहुत रथों से जिनमें सिंह और व्याघ्र जुते हुए थे, कछुआ, भैंस मकर आदि वाहनों से इन्द्र आदि देव ब्रह्म लोक पहुंचे। देवगण, भगवान ब्रह्मा को देखकर साष्टांग चरणों में गिर गये। देव बोले--हे जगत पूज्य ! तुम्हारी जय हो, सृष्टि करने वाले देव तुम्हारी जय हो। कमलयोने ! सुरो में श्रेष्ठ ! हम सब तुम्हारी शरण में आये हैं। शुद्ध हृदय देवों का घबराहट के साथ भाषण सुनकर मेघ के समान गम्भीर वाणीं से ब्रह्मा जी इन्द्र से बोले--देवगण। यहाँ तुम्हारा आगमन किस लिए हुआ। तुम्हारी मलिनता का क्या कारण है ? तुम सब किससे

तिरस्कृत हो गये । शीघ्र बतलाओ ।।१/६।। देवगण बोले--ब्रह्मन् ! महादैत्य अन्धक बड़ा बलवान है उसने सब देवों को रत्न विहीन कर दिया । तलवार, चक्र, फरसे आदि से देवों को जीत कर वह दानव बल पूर्वक इन्द्राणी को लेकर चला गया । राज्य श्रेष्ठ ! देवों के वचन सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने दानव के वध का विचार किया । तुम सभी देवों द्वारा वह पापी दानव वध के योग्य नहीं । जगत का एकमात्र रक्षक वह ही रक्षा करने में समर्थ है दूसरा कोई नहीं ।।७/१०।। ब्रह्मा के ऐसे कहने पर सारे देवगण उनको आगे कर जहाँ भगवान विष्णु थे वहाँ ब्रह्मा आदि देवों ने विविध स्तोत्रों से श्री विष्णु की स्तुति की । देव बोले--हे देवेश ! वक्षः स्थल आपका लक्ष्मी से आश्रित है तुम्हारी जय हो । सर्वेश ! असुरक्षयकारक ! हम सब तुम्हारी शरण में आये हैं ब्रह्मा आदि सभी सुरों से स्तुति किये जाने पर भगवान विष्णु परम प्रसन्न चित्त वाले होकर देवों से बोले--देवो और ब्राह्मणों का स्वागत है आज की रात्रि सुन्दर प्रातः कालवाली है । क्या कार्य है शीघ्र ही बतलाओ आज देवगण किसके ऊपर क्रोधित है ? क्या दुःख है ? सन्ताप क्या है ? तुम्हें कौन सा भय है ? महा भाग्यशाली देव वृन्द ! जो तुम्हारे मन में हो वह कहो । जिससे तुम्हारा तिरस्कार हुआ है वह आज यमलोक जायेगा । कृष्ण के ऐसा कहने पर देवों ने भगवान से वह सब वृत्तान्त कहा ।।११/१६।। अपने शरीर को दिखाते हुए नीचे मुख को किये लज्जित होने से बोले--प्रभो ! अन्धक ने हमारा राज्य हर लिया है उसी के द्वारा हम तेज विहीन हो गये । हे देव अब तुम्हीं पुत्र के समान हमारी रक्षा करो । अब पुत्र पौत्रों के सहित उस इन्द्र के शत्रु अन्धक नामक असुरों को मारो । ब्रह्मा और सुर एवं असुरों के द्वारा वन्दित चरण कमल वाले श्रीविष्णु ने कहा--कि ऐसा ही हो । भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा एवं धनुष ग्रहण कर देवों के सम्मुख शेषनाग रूपी पलंग से उठ पड़े । श्री वासुदेव बोले- "जिसने देवों को दुःख दिया वह चाहे पाताल, मृत्यु अथवा स्वर्ग लोक में

कहीं भी होगा मैं उस पापी को अवश्य मारूँगा। देवगण प्रसन्न एवं धैर्य युक्त होकर अपने-अपने स्थान को जायें। श्री विष्णु के वचन श्रवण कर सभी देव इन्द्र सहित मन में प्रसन्न होकर अपने अपने विमानों से स्वर्ग पहुँचे ॥१७/२२॥ सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

अन्धक का वध एवं वर प्रदान वर्णन

उत्तानपाद उवाच--कस्मिन्स्थानेऽवसद् देव सोऽन्धको दैत्यपुंगवः।
सर्वान्देवांश्च निर्जित्य कस्मिन्स्थाने समास्थितः॥

सवैया--विष जब निकलौ तो सारी सृष्टि जलने लगी, सारे देव दानवों ने शिव को पुकारा है।
राम कौ नाम लेकर शिव ने तुरन्त विषपान कियौ, सृष्टि को बचाया और विश्व को उबारा है।

उत्तानपाद ने पूछा--देव ! सब देवों को विजय कर अन्धक महाबली कहाँ रहता था ? श्री शंकर ने कहा--राजन् ! जहाँ रहकर वह दानव जो करता था वह मैं कहता हूँ सुनो। वह पाताल लोक का आश्रय लेकर कन्याओं का विनाश करता था। भगवान विष्णु नें उसे वहाँ पाकर आग्नेय अस्त्र छोड़ा जिससे वह जल जाये। तब अन्धक ने आग्नेय को देखकर वारुण अस्त्र छोड़ा जिससे आग्नेय शान्त हो गया ॥१/४॥ तदन्तर दैत्य ने मन में विचार किया कि किसने इस बाण का प्रयोग किया है; वह अवश्य ही यमलोक जायेगा। संग्राम के लिए तैयार होकर वह अन्धक बाण के मार्ग में आगे बढ़ा। बाण के मार्ग में विष्णु को देखकर बोला--तुम अब मुझे बचकर नहीं जा सकते। जैसे सिंह के देखे जाने पर हाथी नहीं जा सकता और चूहा विलाव के उसी प्रकार तुम भी भाग नहीं सकते। तुम्हें मैं कठोर यमलोक पहुँचाऊँगा। केशव ! काफी समय के बाद तुम्हीं अब संग्राम में प्राप्त हुए। तुमने जिन दानवों का जीता था वे पुरुष नहीं स्त्रियाँ थी। परन्तु मैं तुम्हारे साथ शस्त्रों का युद्ध नहीं करूंगा ॥६/११॥ दानव राजा के कठोर वचन सुनकर भी विष्णु क्रोधित नहीं हुए। विष्णु को युद्ध में तत्पर न देख दानव ने द्वन्द्व युद्ध का विचार

किया । राजन् ! ऐसा निश्चय कर वह युद्ध करने लगा । उसी समय श्री कृष्ण के द्वारा चरणों के प्रहार से दंडित होकर पृथिवी में गिर पड़ा । थोड़े समय में शान्त होकर मन में विचार किया कि मैं द्वन्द्व युद्ध में असमर्थ हूँ । अतः अन्य उपाय करना चाहिए । उसने दोनों हाथ जोड़ शुद्ध होकर प्रणाम किया ।।१२/१४।। अन्धक बोला--भगवन् ! तुम सबसे श्रेष्ठ हो कृष्ण--सबको अपनी ओर खीचने वाले हो हरि--सब पापों के नाशक विष्णु--व्यापक विष्णु जयशील तुम्हें प्रणाम है । हृषीकेश ! इन्द्रियों के सञ्चालक जगत् के धारण करने वाले महान् स्वरूप ! अच्युत् ! अपने भाव से कभी न हटने वाले तुम्हें प्रणाम है । कमलनाथ ! तुम्हें प्रणाम है । कमल की माला धारण करने वाले जनार्दन, श्रीपते ! पीताम्बर धारी ! गोविन्द ! क्षीर समुन्द्र में शयन करने वाले ! भयंकर मुख वाले नृसिंह । शाङ्‌र्ग धनुष को धारण करने वाले । श्वेत वर्ण वाले । शंख, चक्र, गदाधारी । वामन रूपधारी । यक्ष स्वरूप । वराह रूप धारी । एवं तीनों लोकों को मापने वाले सम्पूर्ण दिशाओं के छोरों में व्याप्त हे केशव । तुम्हें नमस्कार है ।।१५/१९।। वासुदेव ! वसुदेव के पुत्र रूप से होने वाले कैटभ के विनाशक । लक्ष्मी के एक मात्र स्थान । देव श्रेष्ठ ! देव प्रभो । देवाधि देव श्री विष्णु की जो भक्ति करते हैं एवं जो सबके रचयिता ब्रह्मा को प्रणाम करते हैं मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । सम्पूर्ण [illegible]ों के आराध्य बुद्धिशाली श्री वासुदेव को जो प्रणाम करते हैं मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । उस अपरिमित तेजस्वी यश स्वरूप सूकर श्री विष्णु को जो प्रणाम करते हैं मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । गुणों के एकमात्र निधिस्वरूप ! तुम्हें बार बार मेरा प्रणाम है । दया सागर ! देव ! सबकी भक्ति के प्रिय ! भक्ति फलद ! तुम्हें मेरा नमन हो । श्री विष्णु बोले-दानव राज ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, इच्छानुसार वर माँगो । तुम्हें त्रिलोकी का दुर्लभ वर मैं निश्चय दूँगा ।।२०/२५।। अन्धक ने कहा देव ! यदि तुम मुझ पर सन्तुष्ट हो एवं वर देना चाहते है तो देव ! मुझे उत्तम युद्ध प्रदान करो जिससे मैं आपके द्वारा उत्तम पद

को प्राप्त होऊँ। श्री भगवान ने कहा तुमने तो मुझे प्रसन्न कर लिया अब मैं तुमसे कैसे युद्ध करूँ ? तुम्हारे प्रति क्रोध कैसे होगा ? एवं बिना क्रोध युद्ध असम्भव है। यदि तुम्हारी युद्ध की बड़ी उत्कण्ठा है तो युद्ध के लिए तुम भगवान् शंकर के पास जाओ। अन्धक बोला--शंकर से हमारा कार्य सिद्ध नहीं होगा। श्री विष्णु बोले--"पुत्र ! तुम वहाँ जाकर कैलाश पर्वत के शिखर को बल पूर्वक हिला दो ।।२६/३०।। उस शैल शृंग के कम्पित होने पर वहाँ देवेश शंकर भयंकर क्रोध करेंगे। दानव श्रेष्ठ ! शंकर कुपित होने पर तुम्हें युद्ध देंगे। तब वह पापी दानव उनके वचन सुन श्री शंकर के कैलाश पर जा पहुँचा और वहाँ के श्रृंग को बारम्बार हिलाया ।।३१/३२।। उसके शिखर के कम्पन से तीनों लोक काँप गये। कई शिखर के अग्र भाग खण्डित हो गये। हे राजन् ! वज्रपात एवं उल्कापात से कई वृक्ष गिर गये। श्री पार्वती ने शंकर जी को दृढ़ता से पकड़ लिया। एवं बोली हे नाथ यह मृत्यु, पाताल एवं नागलोक क्यों कम्पायमान हो रहे हैं ? क्या युगों का क्षय होने वाला है ।।३३/३९।। श्री शंकर ने कहा--किसकी मति भ्रष्ट हुई है ? किसने साँप के मुख में हाथ डाला है ? किसको काल पुकारता है ? कौन है किसने कैलाश में निवास बनाकर मुझे सोते से जगाया है ? सम्मुख होने पर वह निःसन्देह मारा जावेगा। श्री शिव ने विचारा कि अन्धक के सिवाय और कोई नहीं हो सकता। इसी क्षण उसको मार डालूँगा। उसी समय वहाँ ब्रह्मा, इन्द्रादिक सभी देवों के सहित सब शुभ लक्षणों से युक्त एक दिव्य रथ को बना कर लाये थे कुछ देव चक्र में, अग्रभाग में, कुछ नाभि एवं अगल-बगल में स्थित थे ।।३७/४१।। कुछ धुरे में, निश्चल होकर स्थित थे और कुछ यूपों में दूसरे स्तम्भों में स्थित थे एवं कुछ रथ को चारों ओर घेरे हुए थे। अन्य रथ के आवरण में दूसरे रथ के कलश में स्थित थे। लताओं का तथा मालाओं से सुशोभित शत्रुओं को भय देने वाले दिव्य रथ को देव मय बनाकर भगवान् शिव शंकर उसमें चढ़कर क्रोध से व्याप्त हो जहाँ दानव

अन्धक था वहीं जा पहुँचे। 'खड़ा रह खड़ा रह' ऐसा कहते हुए शिव जी ने बाणों द्वारा प्रहार किया जिससे अन्धक उन वाणों की वर्षा से ढक गया। वहाँ सूर्य, आकाश, चन्द्रमा, कोई भी दिखाई नहीं देता था। तब दानव ने भी शंकर पर आग्नेय अस्त्र को फेंका। जिससे सारे देव गण बाण के अंगारों से व्याकुल 'महादेव जी रक्षा करो' कहने लगे ।।४२/४९।। तब भगवान शिव ने वारुणास्त्र का सन्धान किया जिससे आग्नेय अस्त्र का विनाश कर दिया। तब दानव ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। प्रिय ! उस अस्त्र से नष्ट होकर वारुणास्त्र लुप्त हो गया क्रोध चित्त होकर शंकर ने नागास्त्र का प्रयोग किया, जिसके कारण वायव्यअस्त्र का विनाश हो गया। नागास्त्र को देख दानव ने गारुड़ अस्त्र को छोड़ा जिसको देखकर सर्पास्त्र लुप्त हो गया। तब शिव ने गारुड़ अस्त्र को शान्त करने के लिए नारसिंह अस्त्र छोड़ा। इसी प्रकार सभी अस्त्र-शस्त्र शान्त हो जाते थे जिससे कोई भी बाधा नहीं पा रहा था। वत्स ! देव-असुरों को भयभीत करने वाला बड़ा घोर युद्ध हुआ। चक्र, नालीक, तोमर खंग, मुग्दर, वत्सवन्त एवं भालों तथा कर्णिकार नामक शस्त्रों से भी युद्ध हो रहा था ।।५०/५५।। इस प्रकार वह दानव अनेक अस्त्रों से भी न मारा जा सका। तब भगवान वृषध्वज शंकर ने ज्वालाओं से तलवार, बाण और तोमर अस्त्रों का प्रयोग किया। गौड़ देश की सुन्दरी के समान वे उसके शरीर को नहीं छू रहे थे। तब शिव और अन्धक मल्ह युद्ध करने लगे मुष्टि प्रहार आदि अनेक विधियों से युद्ध करने लगे। श्री मार्कण्डेय जी बोले--उसी समय भगवान शंकर ने अन्धक के विनाश का विचार कर उसे क्रोध में भरकर पृथ्वी पर फेंका जिससे वह हाथ ऊपर और मुख नीचे किये गिरा ।।५६/६०।। तब क्रोधित होकर अन्धक ने भी नीले शंकर को बगल में बान्ध के जकड़ कर पीड़ित किया। जिससे वे चेष्टा रहित मूर्च्छित से हो गये। दानव ने मूर्च्छित देखकर विचारा कि मुझ पापी से बड़ा पाप हो गया। मैं क्या करूँ ? गोद में लिए शंकर को कैलाश पर्वत पर गया।

वहां शैय्या में शिव को रख वह दैत्यराज वहाँ से निकल गया ।।६१/६४।। वेदना से पीड़ित अपने आपको शंकर ने उस दुष्ट ने कैसे मेरा पराभव किया ऐसा सोच वह क्रोधित हो फिर दानव की ओर चल पड़े । उस दानव को देखकर भगवान ने सहस्र भार वाली लोहे की यष्टि से उसके मस्तक पर प्रहार किया । दानव ने भी युद्ध में हँसते हुए खंग से श्री शिवभोले पर वार किया उस भीषण संग्राम में श्री शंकर ने कौच्छेर नामक अस्त्र का स्मरण किया एवं उस प्रकाश मान अस्त्र को फेंक कर मारा । उस अस्त्र के प्रहार से वह रक्त वमन करते हुए नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा । तदनन्तर श्री शिव ने शूल के प्रहार से उसके दो टुकड़ें कर दिये ।।६५/७०।। वह पापी शूल के अग्र भाग में स्थितचक्र के समान भ्रमण करने लगा । उसके शरीर से जितने रक्त बिन्दु पृथ्वी पर गिरे वे सभी शस्त्र लिए दानवों के रूप में उठ खड़े हुए । तब उस वेगशाली दानव से देव शंकर व्याकुल हो गये । भगवान शंकर ने तब दुर्गा का स्मरण किया । वहाँ वह चामुण्डा भयंकर मुख वाली अनेकों शस्त्रों से शोभित भीषण आकार धारण किये बड़ी दाढ़ों वाली, विशाल शरीर वाली, पीले नेत्रों वाली एवं लम्बे कानों वाली देवी उपस्थित हुई । देवी बोली--देव ! आज्ञा दीजिये किसे यमलोक भेजा जाय । भगवान शंकर ने कहा-भद्रे ! इस दानव का रक्त पान करो ।।७१/७५।। ऐसा सुन दुर्गा ने रक्त पीना आरम्भ किया । श्री शंकर ने सहस्त्रों दानवों को मार गिराया । अन्धक ने वहाँ पृथ्वी में पड़े हुए उन दानवों को देखकर उत्तम वाणी से देवाधिदेव श्री शंकर की स्तुति की ।।७६/७७।। अन्धक ने कहा--देवाधिदेव ! महेश ! अर्धनारीश्वर नटेश्वर ! महादेव ! शिव! सर्व स्वरूप ! त्रिगुणात्मक ! नन्दीश्वर पर चढ़े हुए भालचन्द्र को धारण करने वाले ! हाथ में खंग लिये हुए गंगाधर ! तुम्हें मेरा नमन हो । डमरू हाथ में लिए हुए । कपालों की माला धारण किये कामदेव के शरीर नाशक महेश्वर देव ! पूषा के दाँतों को गिराने वाले, वर्णों के स्वामी ! स्वरूपभूत देह वाले रूप रहित होकर भी बहुत रूप वाले तुम्हें

मेरा प्रणाम है । हे शंकर ! ब्रह्मा के भी मस्तक को मरोड़ने वाले, सदा श्मशान में निवास करने वाले, नित्य भयंकर रूप धारण करने वाले । सर्व व्यापक, तुम ही सबके कर्त्ता एवं संहारक हो तुम भूमि, तुम दिशा, तुम वृहस्पति, तुम शुक्राचार्य, तुम ही सूर्यपुत्र शनि हो । हे देवेश ! तुम्हीं भूमि के पुत्र मंगल एवं नक्षत्र ग्रह आदि सभी तुम्हीं हो ।।७८/८४।। उस दानव ने भगवान शंकर की ऐसी स्तुति कर हाथ जोड़, शीश नवाय श्री शंकर को प्रणाम किया । शंकर ने कहा--परम शक्तिशाली दानव मैं प्रसन्न हूँ वर माँगो । अन्धक ने कहा--देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो तो ऐसा वर दीजिये कि मैं तुम्हारे समान भस्मधारी, जटाधारी, त्रिनेत्र और त्रिसूलधारी, चार भुजा वाला व्याघ्र चर्म पहने एवं नाग यज्ञोपवीत धारी होना चाहता हूँ । भगवान शंकर ने कहा--'निष्पाप ! आज मैं तुम्हें वर देता हूँ जो तुमने माँगा है । पुत्र ! तुम मेरे गणों में "भृंगीश" नामक गण प्रतिष्ठित होओ ।।८५/९०।।

अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।

उन्चासवाँ अध्याय

शूलभेद की उत्पत्ति की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- अन्धकं निहत्याय देवदेवो महेश्वरः ।
उमया सहितो रुद्रः कैलासमगमत्रगम् ।।

सवैया--अमृत जब निकला तो शिव को तृष्णा नहीं रही, राम नाम अमृत को हृदय बीच धारा है
जाने अपने भाल बीच चंद्रामृत धारण कियो, पै नर्मदामृत-गंगामृत शिव को सहारा है

श्री मार्कण्डेय ने कहा--देवेश शंकर अन्धक का वध कर पार्वती सहित कैलाश पर पहुंचे । तब ब्रह्मा इन्द्रादिक देवों ने सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर श्री भवानी शंकर को प्रणाम किया । भगवान् शंकर बोले-आये हुए सभी देव बैठ जायें । हे पितामह ! सभी देवों के सुख के लिए मैंने इस दानव को मारा है । शुभ व्रत, तप, जप आदि में लगे हुए दानव को मारने से मेरा यह शूल निर्मल नहीं हो रहा है अतः मैं तीर्थ यात्रा करना चाहता हूँ ।

तुम सभी मेरे साथ चलो ।।१/५।। सर्व प्रथम देवेश शंकर प्रभास क्षेत्र पहुंचे । प्रभास तीर्थ से गंगासागर के मध्य में स्थित सभी तीर्थो में स्नान करने पर भी निर्मलता प्राप्त नहीं हुई । तब देवों के साथ श्रीनर्मदा जी में पहुंच कर ब्रतों के प्रेमी श्री शंकर ने उत्तर दक्षिण तट पर आवाहन किया । वहाँ से वह नर्मदा के दक्षिण तट पर पर्वत स्थित भृगुसंज्ञक तीर्थ पर गये । राजन् ! सभी देवों के साथ महादेव ने थकित होकर वहीं विश्राम किया ।।६/१०।। वह स्थान सभी देवों को आकर्षित करने वाला था । अतः उसे विशिष्ट तीर्थ मानकर भगवान् शंकर वहां ही स्थित हुए । वहाँ शंकर ने अपने शूल से सर्वथा निर्मूल हो गए । अब उसमें कहीं लेषमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता था । वहाँ देवों के द्वारा बुलाई गई पुण्य शालिनी सरस्वती पर्वत से प्रकट हुई । त्रिवेणी में गंगा यमुना के संगम की भाँति वहां दूसरा सरस्वती संगम हुआ । वहाँ साक्षात् देव ब्रह्मा ने 'ब्रह्मेश' नामक लिंग की स्थापना की । वह लिंग पुण्य प्रद एवं सर्व दुःखों का विनाशक है । उसके दक्षिण की ओर स्वयं भगवान् विष्णु एवं चरणों के अग्र भाग में गंगा सदा निवास करती है । कुण्ड के मध्य से स्थित जल का कोई मार्ग नहीं है । श्री शंकर ने शूल के अग्र भागसे देखा कि हे राजन् ! तब जल बढ़ा ? वह जल बढ़कर वहाँ गया जहाँ महानदी नर्मदा थी । राज श्रेष्ठ ! बहुत पुण्य देने वाला जल मय लिंग चक्र तीर्थ है उस शूल भेद तीर्थ में विधि पूर्वक शिव ने स्नान किया ।।११/१७।। स्नान करने पर शकंर ने अपने को शुद्ध एवं निर्मल जाना । उसके उत्तर की ओर स्वयं देवाधि देव जगद्‌गुरु शूल पाणि भगवान् शंकर प्रतिष्ठित है । वह तीर्थ सब तीर्थों में परम श्रेष्ठ एवं सर्व देव मय है । वह सब पापों का विनाशक एवं सर्व दुःखों को नष्ट करने वाला उत्तम पुण्य प्रद उस तीर्थ में जगद्‌गुरु ने देवेश ! शंकर को प्रतिष्ठित कर पश्चात् सौ रक्षकों को रखकर आठ विनायकों को भी नियुक्त किया । प्रयत्न पूर्वक एक सौ आठ क्षेत्रपाल उसकी रक्षा करते हैं ।।१८/२१।। जो श्रद्धारहित होकर वहाँ

टिकना चाहता है उसे अनेकों विघ्न होते है । संसार में लोग कुटुम्ब की; कृषि कार्य की तो कुछ सभाओं की योजनाओं में, एवं कुछ धन के अर्जन में लगे हुए है । कुछ लोग परोक्ष वार्त्ता में; तो कुछ लोग हिंसा परायण हुए हैं । कुछ लोग पर स्त्री में आसक्त हैं । और अन्य दूसरे की जीविका के विघातक बने हैं । कुछ लोग तीर्थ यात्रा में जाने से क्या लाभ है ? ऐसा सोचते हैं । भूख से पति-पीड़ित, पुत्र, सेवन आदि की चिन्ताओं के ही मोह पाश में, मनुष्य को, चैन नहीं मिलता ।।२२/२६।। जो पवित्र आचरण वाले पापों से रहित पुण्यात्मा है वे धन्य है उन्हें ही सरस्वती, भोगवती एवं विशेष कर देव नदी गंगा का स्नान मिलता है । त्रिवेणी में गंगा, यमुना के संगम की भाँति यह संगम भी बड़ा पुण्य दायक है । उस तीर्थ को देखकर वे सब देव प्रसन्न चित्त हो गये । वे सब शंकर के पास जाकर बोले--देवेश ! तुम्हारा यह तीर्थ गयातीर्थ से भी उत्तम है ।।२३/२६।। यह तीर्थ बहुत ही छिपा हुआ परम पुण्य दायक है ऐसा तीर्थ न हुआ ओर न होगा । यक्ष, किन्नर गन्धर्व, दिक्पाल, लोकपाल, इन्द्र आदि देवताओं ने नृत्य, गीत एवं स्तोत्रों से वह नटेश्वर शूल हाथ में लिये सुर-असुरों, गणों और सिद्धों, नागों से विधिपूर्वक पूजित हुए यहाँ प्रतिष्ठापित हुए हैं । राजन् ! श्री शंकर ने शूल के अग्र भाग से जहाँ भेदन किया ।।२७/३२।। वहाँ आज भी देवों से पूजित तीन प्रकार के आवर्त्त देखे जाते हैं । राजश्रेष्ठ ! बहुत शब्द वाले जहाँ तीन कुण्ड हैं वे सब पापों के विनाशक सब दुःखों से छुड़ाने वाले उत्तम हैं । उपवास में लगा हुआ जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करता है । दीक्षा रहित और मन्त्र से रहित हुआ भी वह एक वर्ष में पाप से छूट जाता है । जो लोग पाँच मंत्रों से विधिपूर्वक नहाते हैं वेदोक्त 'वामदेवाय' 'अघोरेभ्यो' 'तत्पुरुषाय' 'ईशानः सर्व विद्यानाम्' इन पाँच मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक अथवा दस अक्षर वाले मन्त्र से अथवा 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्र से अथवा 'ॐ शिव' इस त्र्यक्षर मन्त्र वा श्री शिव इस तीन अक्षर वाले मन्त्र से ।।३३/३६।। उस

तीर्थ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनों को स्नान करना चाहिए। स्त्री एवं शूद्रों को विधिपूर्वक तीन देवों का ध्यान करना चाहिए। जो मनुष्य 'ॐ नमो भगवते शिवाय' इस दशाक्षर मन्त्र से जपते हैं वे पुण्यात्मा जहाँ श्री शंकर हैं उस लोक को जाते हैं। केदार क्षेत्र और रुद्र कुण्ड में भी इस प्रकार पिये गये जल की महिमा है। पाँच रेफों से युक्त ओंकार से मिश्रित 'मन्त्रः' ॐ त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षोय-माऽमृतात्। अथवा 'ॐ क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः ॐ क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रः ॐ से युक्त इन्द्र आदि देवों से पूजित यह मन्त्र बहुत समझने के योग्य बताया गया है। जो पुरुष वहाँ शूलभेद तीर्थ में इन्द्रियों को जीतकर विधि पूर्वक स्नान कर तिलमिश्रित जल से पितृ देवताओं का तर्पण करता है, उसके दस पहले की और दस पीछे की पीढ़ियां तर जाती हैं। जो पुरुष गया आदि पाँच स्थानों में श्राद्ध करता है उसे जो फल मिलता है वह ही फल वह शूल भेद में पा लेता है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक विधि से युक्त होकर वहाँ दान देता है उसके पुण्य-पाप का फल सर्वदा पितृ कार्यों में गया शिर की भाँति अक्षय होता है ॥३७/४४॥ पितृ-कार्य में सदा जिस प्रकार गया शिर पुण्य दायक है उसी प्रकार स्नान दान-तर्पण आदि कार्यों से शूल भेद तीर्थ भी पुण्यप्रद माना गया है। जो पुरुष वहां भक्तिपूर्वक सुवर्ण, गाय, पृथिवी, तिल देता है और जो क्षत्रिय आसन, जूते, शय्या, सुन्दर श्रेष्ठ घोड़े, जोड़ीदार वस्त्र, अन्न, सामग्री से पूर्ण घर, रस्सी आदि से युक्त हल, जुती हुई पृथिवी आदि को वेदों के पारंगत विद्वान को देता है वेदपाठी श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न पवित्र जितेन्द्रिय शास्त्रों के अध्ययन से सम्पन्न पाखण्ड से रहित ऐसे कर्मकाण्डी विद्वान् ब्राह्मण को दिये गये ये दान तेरह दिनों में एक एक कर तेरह गुने हो जाते हैं ॥४५/४८॥ उड़नचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४९॥

पचासवाँ अध्याय

पात्र-अपात्र परीक्षा दान के नियमों का वर्णन

उत्तानपाद उवाच--द्विजाश्च कीदृशाः पूज्या अपूज्या कीदृशाः स्मृताः ।
श्राद्धे वैवाहिके कार्ये दाने चैव विशेषतः ॥

सवैया--माया में भूलौ जीव भटको अनेक तीरथ, पायो न राम नहीं शंकर सुख रासी हैं ।
भटकत जगत में जाय पहुंचे नर्मदा के तट, देखौ हर कंकर में शंकर निवासी हैं ॥

उत्तानपाद ने कहा--श्राद्ध में और वैवाहिक कार्य में विशेषरूप से दान में कैसे ब्राह्मण पूज्य हैं और कैसे अपूज्य हैं कहें । यदि दैवयोग से श्राद्ध आदि शास्त्रीय विधि में मनुष्य की श्रद्धा हो जाय तो तुम बताओ देव ! कि दान किसे देना चाहिए । शंकर जी ने कहा जिस प्रकार काठ का बना हाथी, चमड़े का बना मृग है उसी प्रकार न पढ़े हुए ब्राह्मण ये तीनों ही केवल नाम धारण किये हुए हैं । कार्य में ये निष्फल हैं जिस प्रकार स्त्रियों में नपुंसक निष्फल है और जैसे गाय से गाय गर्भाधान की दृष्टि से निष्फल है । और जिस प्रकार मूर्ख को दान व्यर्थ है उसी प्रकार मन्त्र ज्ञान से रहित वेद पाठ और अर्थ ज्ञान से रहित ब्राह्मण भी निष्फल है । जैसे ऊषर में बीज बोकर बोने वाला फल नहीं पाता उसी प्रकार वेद मन्त्रों से रहित ब्राह्मण को हवि भोजन देकर दाता फल नहीं पाता ॥१/५॥ असाध्य रोगी, कम व अधिक अंगों वाला, आँख से रहित, काना विधवा का पुत्र, व्रत से पतित, काले दाँतों वाला, सब भक्ष्य-अभक्ष्य खाने वाला, शूद्र जातीया स्त्री का पति, मित्र, द्रोही, नित्य ही ब्राह्मणों का निन्दक और शूद्र के अन्न को जो मन्त्र संयुक्त कर खाता है राजन् ! वह पुरुष कर्म से चाण्डाल अस्पृश्य है । मनुष्य उसका स्पर्श कर स्नान करे । तब शुद्ध होता है ॥६/८॥ मलिन, कुलक्षण नखवाला धर्म नाशक, शूद्र स्त्रींका संग करने वाला चोर, बहुत सूद लेकर जीविका चलाने, जीवित पति वाली स्त्री से व्यभिचार से उत्पन्न गोलक, निन्दित दान लेने वाला, और आत्महत्या मैं उद्यत, बड़ा अज्ञानी वेतन लेकर सदा अध्यापन

करने वाला, नपुंसक, कन्या को दूषित करने वाला, और निन्दित स्वभाव वाले, इन सभी ब्राह्मणों का विचार कर प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए। दान लेकर जो व्यापार करता है। उसे दान नहीं देना चाहिए। उसको दिया दान व्यर्थ होता है ॥८/११॥ जो ब्राह्मण शास्त्रों के अध्ययन और श्रवण से सम्पन्न हैं सदाचारी है उन्हें जो दान दिया जाता है वह अक्षय भावको प्राप्त होता हैं। राजन् ! तुम दीन-हीन-निर्धन-दुःखी जीवों का भरण पोषण करो। सम्पन्न पुरुषों को मत दो औषध रोगी पुरुष को हितकर है रोग रहित को औषधियों से क्या प्रयोजन ? उत्तानपाद ने कहा--इस विषय में कैसी विधी हैं। तीर्थ श्राद्ध की क्या क्रिया है ? हे शंकर ! आप मुझसे सब कहें। श्री शंकर ने कहा--मनुष्य पवित्र और जितेन्द्रिय होकर भक्तिपूर्वक घर में श्राद्ध करे। गुरु को भोजन कराके उनकी परिक्रमा कर मौन धारण करते हुए सीमा के लाँघने तक उनका अनुगमन करे पीछे चले। तदनन्तर शूलभेद जाकर विधि पूर्वक स्नान करे। जो पुरुष क्रमशः हव्य-कव्य आदि पाँच स्थानों में देव-पित्र-कार्य करता है। खीर तथा शहद और घृत से पिण्ड दान करता है ॥१२/१७॥ उसके पितृगण बहुत वर्ष पर्यन्त तृप्त रहते हैं जो पुरुष अक्षत, बेर, बेल, इंगुदी फल, शहद और घृत से पिण्ड दान करता है। इस तीर्थ में वह भी उसी पूर्वोक्त फल को पाता है। इसमें संशय नहीं। वह स्वर्ग पाता है। जो पुरुष सुपात्र विद्वान ब्राह्मणको शय्या, घोड़ा तथा विशेष रूपसे छाता देता है। वह पुरुष विमान पर चढ़कर अप्सराओं से घिरा हुआ स्वर्ग पाता है। सात अन्नों से युक्त घर को जो दान करता है वह पुरुष अपनी इच्छा से मेरे लोक में सुवर्ण के भवन में निवास करता है। जो पुरुष वस्त्र से आच्छादित सवत्सा तिल निर्मित गाय अथवा तिलों के साथ श्रेष्ठ गाय देता है वह पुरुष प्रलय पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। राजन् ! घर में अथवा वन में अथवा तीर्थ के मार्ग में जो पुरुष सुपात्र को जल-अन्न देता हैं वह यमलोक नहीं देखता। सब दानों के देने का फल वह पाता है ॥१८/२४॥

जल का दान, अन्न दान और अभय दान भी देना चाहिए अन्न दान से बढ़कर कोई दान न हुआ है और न होगा। जो पुरुष कन्या दान करता है अथवा बृष--सांड को छोड़ता है उस पुरुष का निवास जहाँ मैं करता हूँ वहाँ वह आकर रहता है। इसमें संशय नहीं। उत्तानपाद ने पूछा--प्रभो ! धार्मिक मनुष्यों को कन्या दान कैसे करना चाहिए स्त्री-पुत्र आदि का पालन तथा कन्या का विवाह कैसे कर्तव्य हैं। देवेश ! मैं यह पूछता हूँ कि कन्या किसे नहीं देनी चाहिए ? देव ! किसे दिया गया दान अक्षय होता है ? प्रभो ! दान का स्वरूप उत्तम, मध्यम और अधम कैसे हो जाता हैं और वह रजोगुणी, तमोगुणी और कल्याण करने वाला सात्विक कैसे होता है कहें ? महादेव जी ने कहा। सब दानों में कन्यादान बढ़कर है। जो पुरुष बड़ी भक्ति से अपनी पुत्री को कुलीन, सुन्दर, गुणी विद्वान को श्रेष्ठ लगनों में अच्छे मुहूर्त में दान देता है। इस कन्या दान के समय जो अपनी शक्ति से घोड़े, हाथी और वस्त्र देता है उस पुरुष का निवास सब दुःखों से रहित उत्तम लोक में होता है ॥२५/३२॥ जिस पुरुष ने अपने प्राणों से भी अत्यन्त प्रिय लड़की दे दी। उस पुरुष ने चराचर सहित यह त्रिभुवन तीनों लोक दे डाला जो पुरुष कन्या रूपी दान पाकर भी कन्या के पिता से धन को चाहता है, माँगता है वह पुरुष कर्मो से चण्डाल है वह मर कर काठ को फोड़ने वाला पक्षी होता है अथवा जो पुरुष कन्या के लिए धन पाकर भी कन्या विक्रयार्थ और धन माँगता है। वह पुरुष चण्डाल है वह मर कर नीच योनि को पाता है। उस पुरुष के घर में जो जिह्वा की चंचलता से किसी प्रकार खाता पीता है। वह पुरुष चान्द्रायण से अथवा तप्त कृच्छ् से शुद्ध होता है ॥३३/३५॥ उत्तानपाद ने कहा--जिसके घर में धन नहीं है केवल कन्या ही है यदि वह पुरुष याचना न करे तो कन्या का विवाह कैसे हो ? श्री शंकर ने कहा--राजन् ! धन के बिना ही कन्या का नाम लेकर कन्या का विवाह संस्कार करना चाहिए वह दोषजनक नहीं है। जो पास जाकर दिया गया है वह उत्तम हैं। युग

का अन्त होता है पर उस दान का अन्त नहीं होता। पास जाकर दिया गया दान उत्तम है। बुलाकर दिया गया दान मध्यम है माँगने पर दिया गया दान साधारण है। दो-दो ऐसा बारबार करने पर दिया गया दान निकृष्ट है जिस प्रकार पत्थर बाँधकर जल के बीच में डाल दिया जाय तो वे दोनों ही डूब जाते हैं उसी प्रकार अपात्र को दिया गया दान नष्ट हो जाता है सफल नहीं होता। अतः अयोग्य पुरुष को कभी दान न देना चाहिए। अयोग्य पुरुष को दिया गया दान, देने वाले और लेने वाले दोनों को ही नीचे ले जाता है ॥३६/४१॥ जिस प्रकार जल में सूखाकाठ पार लगा देता है वैसे ही योग्य पुरुष अपने और देने वाले दोनों को ही पार लगा देता है। नौका के समान ही विद्वान ब्राह्मण मनुष्य को भवसागर से पार कर देता है। जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्रों का दान लेता है वह पुरुष जन्म में शूद्र के समान होकर मर कर कुत्ता होता है अतः पुरुष का दान लेते हुए अग्निहोत्री ब्राह्मण को व्यर्थ ही दुःख होता हैं। नीच का छिपा कार्य भी निन्दित है वह मनुष्य भोजन कराने योग्य नहीं हैं। वह कण्डेकी आगसे मानो जलता है। पीछे वह सात जन्म तक चटाई बनाने वाली नीच योनि में जन्म लेता हैं लज्जावश अथवा प्रसिद्धि वा उदारता के लोभ से या दबाव से और सेवकों को दिया गया दान निष्फल माना गया है ॥३७/४६॥ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥५०॥

इक्यावनवां अध्याय

दान धर्म की प्रशंसा का वर्णन

उत्तानपाद उवाच--काले तत्क्रियते कस्मिच्छ्राद्धं दानं तपेश्वर ।
यात्रा तत्र प्रकर्त्तव्या तिथौ यस्यां वदाऽशु तत् ॥

सवैया--कंकर बीच शंकर देखो तो राम के दरश भये, देखी अयोध्या और मुक्तिधाम काशी है
राम के दरश सों सब माया मोह दूर भयो, नर्मदा नहाये सों कट गई जग की फाँसी है।

उत्तानपाद ने कहा--भगवान्! किस समय वह श्राद्ध और श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिए और जिस तिथि में उस निमित्त से यात्रा करना हो वह

भी आप बतलाएं । सदाशिव ने कहा--जिस प्रकार सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले पुण्य दायक पितृ तीर्थ है वैसा ही तीर्थ शूल भेद भी स्नान-दान-तर्पण से अत्याधिक पुण्य देने वाला है । विशेष रूप से मनुष्य सब युगों की आदि तिथियों में श्राद्ध करे । वत्स ! मन्वन्तर चौदह आदि काल भी तुम मुझसे सुनो । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी १, कार्तिक मास की द्वादशी २, चैत्र मास की तृतीया ३, और भाद्रपद मास की तृतीया ४, आषाढ़ मास की दशमी ५, माघ मास की सप्तमी ६, श्रावण मास की कृष्णाष्टमी ७ तथा आषाढ़ मास की पूर्णमासी ८, फाल्गुन मास की अमावास्या ९, पौष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी १०, कार्तिक, फाल्गुन, चैत तथा ज्येष्ठ की पूर्णमासी (११-१२-१३-१४) मन्वन्तर के आकस्मिक समय अनन्त फल देने वाले माने हैं । राजन् ! दोनों अयन में उत्तरायण दक्षिणायन के प्रारम्भ में भी श्रद्धा करे ।।१/७।। कार्तिक मास की पौर्णमासी, माघी पौर्णमासी, वैशाख की तृतीया, चैत और ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा चारों अष्टकाओं में (अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन की कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथियों में) संक्रान्ति में व्यतीपात के योग में पितृ श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । ये सभी श्राद्ध के विहित समय हैं । इनमें दिया गया दान अक्षय माना गया है । चैत्र मास के शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास कर भगवान के चरणों के समीप स्थिर होकर रात्रि में भगवान का चिन्तन करते हुए जागरण करना चाहिए । धूप दीप नैवेद्य माला अगर चन्दन आदि पूजा सामग्री से श्री विष्णु की जो पूजा करते हैं और उससे सम्बन्ध रखने वाली प्राचीन कथाओं को सुनते हैं वे भगवान के लोक को प्राप्त करते हैं जो ब्राह्मण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मन्त्रों से कहे गये सूक्त को जपता है, वह पुरुष सब पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को जाता है ।।८/१२।। यत्न पूर्वक प्रातः ब्राह्मणों की विधिवत् पूजाकर श्राद्ध करना चाहिए पश्चात् शक्ति के अनुसार गाय, पृथिवी, वस्त्र आदि वस्तुएं दान में देनी चाहिए । प्रलय पर्यन्त उसके पितृगण

तृप्त रहते हैं और श्राद्ध का अनुष्ठान करने वाला भगवान के लोक को जाता है। पश्चात् त्रयोदशी तिथि में गुहा वासीलिंग का दर्शन करना चाहिए। पुनः मार्कण्डेय के द्वारा प्रतिष्ठापित श्री मार्कण्डेश्वर का दर्शन कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१३/१५॥ उत्तानपाद ने कहा--पूज्य प्रभो ! गुहा के भीतर परम सुन्दर शिव लिंग की जिसने स्थापना की हो। वह सब तुम मुझे बताओ। श्री शंकर ने कहा--मुनि श्रेष्ठ मार्कण्डेय ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उन ऋषि ने दिव्य हजार वर्ष तक परम कठोर तप किया। योगाभ्यास का आश्रय लेकर उन मार्कण्डेय जी ने गुहा के भीतर प्रविष्ठ होकर मार्कण्डेश्वर नामक लिंग की स्थापना की। जो पुरुष भक्ति से स्नान कर इन्द्रियों को वश में रखकर उपवास करता हुआ वहाँ रात्रि में जागरण करता है, प्रयत्न पूर्वक दीपक जलाता है और पञ्चामृत से भगवान शंकर को स्नान कराकर यथा शक्ति विधि पूर्वक प्राप्त सामग्री से पूजा करे। ब्राह्मण आदि अपनी अपनी शाखाओं के मन्त्रों से जाप करे। आठ हजार गायत्री अथवा एक सौ आठ गायत्री मन्त्र का जाप करे। राजश्रेष्ठ ! यह सब करने पर वह मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त कर लेता है। चतुर्दशी तिथि में विधि पूर्वक स्नान से निवृत्त होकर पूजन करके अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को पात्र को परख कर उसे दान देना चाहिए ऐसा करने से उसके पितृगण बारह वर्ष तक तृप्ती का अनुभव करते हैं ॥१६/२३॥ दान देने वाला पुरुष जहाँ सदा हर प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है। गुहां के भीतर प्रविष्ट होकर पुरुष को शक्ति पूर्वक लौटन क्रिया करनी चाहिए। इससे नीलगिरि में जो पुण्य होता है। वह सब पुण्य को यहाँ पाता है। जो पुरुष पर्व अमावास्या पूर्णमासी में शूलभेद तीर्थ में श्राद्ध करता है। चैत्र मास के अन्त में जो विशेष रूप से श्राद्ध करता है उसके पुण्य के फल को सुनो। केदार क्षेत्र में तथा गंगा सागर संगम में स्नान दर्शन आदि से जो पुण्य होता है और गंगा यमुना के संगम में प्रयाग क्षेत्र में अथवा अन्य तीर्थ में जो विशिष्ट

पुण्य होता है अर्बुद्ध क्षेत्र आदि अमरकण्टक पर्वत में भी जो पुण्य होता है मनुष्य गया आदि सब तीर्थों का वह फल यहाँ पा जाता है । विधि और मन्त्रों से युक्त जो पुरुष पितृ देवों का तर्पण करता है उस पुरुष के दस पहले की और दस पीछे की अर्थात् बीस पीढ़िया तर जाती है । फिर दक्षिण की ओर की मूर्ति में मनुष्य शुद्ध और सावधान होकर न्यासपूर्वक आठ पुष्पों को दे ।।२४/३०।। शास्त्रों में कहे गये आठ मानस पुष्पों से दक्षिणा मूर्ति शिव का पूजन करना चाहिए । तुम उन आठ पुष्पों को सुनो--१. वारिज, २. सौम्य, ३. आग्नेय, ४. वायव्य, ५. पार्थिव, ६. बानस्पत्य, ७. प्राजपत्य और ८. शिव पुष्प । ये आठ पुष्प है इनका पृथक-२ निर्णय तुम सुनो । वारिज पुष्प जल है, सौम्य पुष्प शहद घृत और दुग्ध है । धूप दीप आदि आग्नेय पुष्प है । चन्दन आदि वायव्य पुष्प के रूप है । कन्द मूल आदि पार्थिव पुष्प है । फल यह वानस्पत्य पुष्प कहा जाता है । वेद-शास्त्र और स्तुति आदि का पाठ श्रवण आदि और मन्त्र जप आदि प्राजपत्य पुष्प है और वेद विषयक वासना ही शिव पुष्प है अथवा अहिंसा पहला पुष्प है, इन्द्रियों का निग्रह दूसरा पुष्प, तीसरा दया पुष्प, चौथा क्षमा पुष्प, ध्यान पुष्प पाचवाँ और छटवाँ तप पुष्प हैं । ज्ञान पुष्प सातवाँ और सत्य आठवाँ पुष्प है ।।३१/३५।। इन पुष्पों से देव सन्तुष्ट होते हैं । राजन् ! तपस्वी और ज्ञानी पुरुष भक्ति से पूज्य है, उन्हें छाता, जूता दान दे । उनके पूजनमात्र से तीनों देव पूजित हो जाते हैं दानी पुरुष प्रलयपर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है । जो मनुष्य भक्ति पूर्वक श्री शंकर के मन्त्र का जाप करते हैं पञ्चामृत, (गोमय, गोमूत्र, गोघृत, गोदुग्ध, गोदधि) कुकुंम, अगर, कस्तूरी, कपूर, चन्दन ये सब मिलाकर यक्ष कर्दम होता है । यक्ष कर्दम और कुकुंम श्री खण्ड अगर, चन्दन और अनेक प्रकार के पुष्पों से जो श्री शंकर जी की पूजा करते हैं । रात्रि में दीप दान कर जागरण करते हैं ।।३६/४०।। धूप-दीप-नैवेद्य देकर पुराण की कथा करते व सुनते हैं, वहाँ बैठकर जो पुरुष

शिव मन्त्र का जाप करते हैं श्री सूक्त पुरुष सूक्त पवमान सूक्त के जप से श्री शंकर की उपासना करते हैं, वेदोक्त मन्त्रों से रुद्रांष्टांध्यायी वांरूण सूक्त से श्री शंकर की आराजन्ा करते हैं उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। ब्राह्मण भी भक्तिपूर्वक पूजन करे। उन्हें पूजित कर प्रणाम कर विविध बड़े मधुर भोजनों से जो तृप्त करता है वह मनुष्य शिव लोक में पूजित होता है ।।४१/४३।। जो ऋग्वेदी ऋग्वेद के 'अग्नि-मीड़े पुरोहितम्' आदि मन्त्र का जप करता है और जो यजुर्वेदी भक्ति पूर्वक रुद्राष्टाध्यायी तथा रुद्र सूक्त, पुरुष सूक्त, शुक्र देवता के सूक्त श्लोकाध्याय; 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादि मन्त्र समूह ज्योति-ब्राह्मण, गायत्री शूक्त मधु ब्राह्मणः मण्डल ब्राह्मण जप के योग्य इन्हें जपता है और जो सामवेदी देवव्रत वामदेव्य, पुरुषर्षभ पुरुषर्षम और वृध्द रथन्तर आदि सूक्तों का भक्ति पूर्वक जाप करता है। वह पुरुष जहाँ देवाधिदेव शंकर का निवास है वहाँ वह मनुष्य जाता है। इस तीर्थ में जो पुरुष भक्तिपूर्वक पादप्रक्षालन और तैलादिका अभ्यंग करता है, ऐसा करने से भक्ति पूर्वक गोदान से जो पुन्य मनुष्य पाता है वह फल उसे यहाँ मिलता है। इसमें संशय नहीं। जो वहाँ मधुर पायस खीर आदि भक्ष्य ब्राह्मणों को खिलाता है ।।४४/४८।। तो एक ब्राह्मण के खिलाने पर करोड़ ब्राह्मण भोजन का पुण्य उसे मिलता है। जो पुरुष वहाँ योग्य ब्राह्मण को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, आदि भक्ति से देता है। उससे देव मनुष्य और पितृगणों को मानो तृप्त कर दिया, जो मनुष्य यहाँ चन्द्र-ग्रहण में भक्ति पूर्वक स्नान करते हैं। देव-पूजन और विशेष रूप से जप होम करते हैं। यथा शक्ति वेद शास्त्रों में पारंगत योग्य ब्राह्मण को दान देते हैं और जो पुरुष अश्व, रथ, हाथी, वाहन और तुला पुरुष शकट (गाड़ी) सात धान्यों से पूर्ण करके देता है। जोत सहित हल, नौजवान बैल देता है, वह भी तृप्तीदायक होता है। गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि वस्तुएं उत्तम पात्र को श्रद्धा से देना चाहिए। अयोग्य पुरुष को कल्याण और उन्नति चाहते हुए विवेकी कुछ भी न दे। वह पृथिवी ही सब जीवों

को धारण करती है इससे सब सस्यों से सम्पन्न वह पृथिवी भी उत्तम योग्य ब्राह्मणों को देनी चाहिए । राजन् ! और यहाँ गो-दान से जो फल होता है उसे भी तुम सुनो ॥४९/५५॥ जब तक बछड़े के दो पैर और मुख योनि में ही दिखाई दें । गाय जब तक भूमि में गर्भ नहीं छोड़ती तब तक वह पृथिवी मानने योग्य है । जिस किसी भी उपाय से उसे ब्राह्मण को देना चाहिए । श्रेष्ठ विद्वान को जिसने ऐसी श्रेष्ठ गाय दी है उसने पर्वत, वन गहन से युक्त मानों पृथिवी दे डालीं । नियम पूर्वक दी गयी श्रेष्ठ गाय वंश की आगे-पीछे की इक्कीस पीढ़ियों को तार देंती हैं । चाँदी की खुरों वाली, काँसे की दोहनी वाली झूल से शोभित बहुत दुधारु गाय को जो पुण्यात्मा, सूर्य-ग्रहण या चन्द्रग्रहण में योग्य ब्राह्मण को भक्ति से देते हैं । सैकड़ों वर्षों तक उसके पुण्यों की संख्या मैं नहीं जान सकता । राजन् ! सब दानों की संख्या तो है पर चन्द्र-ग्रहण, सूर्यग्रहण में दान की संख्या नहीं है । राजन् ! जहाँ गाय है वहाँ सब तीर्थ हैं । वहाँ ही पर्व को जान ले इसमें कोई अन्य विचार नहीं करना चाहिए । जो पुरुष उस तीर्थ का फिर स्मरण करता हुआ वहाँ जाता है अथवा जो पुरुष यहाँ ही प्राणों को छोड़ता है । वह पुरुष श्री शंकर का अनुचर होता है ॥५६/६२॥ इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥५१॥

बावनवां अध्याय

ऋष श्रृंग के चारित्र में दीर्घतपा मुनि का आख्यान

ईश्वर उवाच-- अन्यादाख्यानकं वक्ष्ये पुरावृत्तं नराधिपः ।
सकुटुम्बो गतः स्वर्ग मुनिर्य महातपाः ॥

सवैया-- *अन्न को भंडार भरो है नर्मदा तट में, पुण्य रूप बीज सिर्फ थोड़ा सा बोना है ।*
भर गये खेत और खलिहान भक्त लोगन के, साधुन की झोली गरीब घर को कोना है

श्री शंकर ने कहा--राजन् ! मैं प्राचीन दूसरे आख्यानों को तुमसे कहता हूँ सुनो । जहाँ बड़े तपस्वी एक मुनि कुटुम्ब सहित स्वर्ग को प्राप्त हुए । उत्तानपाद ने कहा--कुटुम्ब सहित ब्राह्मण-महर्षि स्वर्ग कैसे गये ? देव ! मुझे

बड़ी उत्कण्ठा है । स्वामिन् ! अवश्य मुझ से यह कहें । सदाशिव बोले-- पहले चित्रसेन नाम से प्रसिद्ध काशीराज हुए हैं । वह बड़े वीर दानी धर्मात्मा और सब कामनाओं और सम्पत्तियों से पूर्ण थे । यह काशी नगरी मनुष्यों से पूर्ण, नाना रत्नों से अलंकृत गंगा के तट पर बसी हुई वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध थी । शरद कालीन चन्द्रमा के समान निर्मल विद्वानों के निवास से भूषित, इन्द्र यानि-इन्द्र पूजनार्थक स्तम्भों से पूर्ण गोपों और गऊओं से भरी बहुत-सी ध्वजाओं से युक्त धूपदान तथा वेद ध्वनियों से शब्दाय मान; विविध व्यापारियों से शोभित ॥१/६॥ यन्त्र ग्रहों से और बड़े-बड़े मार्गों से सुशोभित; दिव्य देव मन्दिरों से आश्रमों से और वनों से युक्त, अनेक पुष्प फलों से रमणीय केलों की क्यारियों से सुशोभित, कटहल, बकुल, ताल, अशोक और आम्र वृक्षों तथा राज वृक्ष और कैथे के वृक्षों से अनारों से परि पूरित थी । वेद मन्त्रों के स्वाध्याय में सदैव पवित्र मंगल वाली । उस वाराणसी के उत्तर की ओर बड़ा सुन्दर एक आश्रम था । वहाँ तीनों लोको में प्रसिद्ध मन्दार वृक्षों का बन था । अत्यधिक वृक्षों और पुष्पों से लदे होने के कारण उसे मन्दारक कहते हैं । वहाँ दीर्घतपा नामक महर्षि रहते थे । बुहुत जप करने के कारण उन्हें दीर्घ तपा कहा जाता है । वह वहाँ पत्नी सहित पुत्र और वधू सहित रहते हैं ॥७/१२॥ सदा उन महर्षि के पांच पुत्र प्रयत्न पूर्वक उनकी सेवा करते हैं । उनके पाँच पुत्रों में छोटा पुत्र महा तपस्वी ऋक्षभृंग था । वह वेदाध्ययन सम्पन्न गुणी ब्रह्मचर्य व्रत की निष्ठा वाला योगाभ्यास में लगा हुआ और नित्य ही कन्द मूल फलों का भोज़न करने वाला रहा । आश्रम में वह मुनि मृगों के झुण्ड में मृग के रूप में रहता था । प्रतिदिन वहाँ माता पिता के समीपवर्ती होकर वह मुनि पुत्र सायं नित्य ही भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम करता था । फिर वह पहाड़ी वीहड़ वन में चला जाता था । कभी वह मुनि पुत्र प्रति दिन मृग रूप से बाल मृगों के साथ खेलते थे दैवयोग से ऋक्षश्रृंग की मृत्यु हो गई ॥१३/१७॥ बावन अध्याय पूरे हुए ॥५२॥

तिरेपनवां अध्याय

ऋक्षश्रृंग के स्वर्ग गमन का वर्णन

उत्तानपाद उवाच--आश्रमे वसतस्तस्य स दीर्घतपसो मुनेः ।
कनीयांस्तनयो देव कथं मृत्युमुपागतः ॥

सवैया--व्यापारी बनिया की देख्यो दुकान भरी, नर्मदा मां का प्रसाद है या प्रसाद का दोना है ।
वैज्ञानिक खोजते है क्या है इस माटी में, सोना बीच माटी है या माटी बीच सोना है ॥

उत्तानपाद ने कहा--आश्रम में निवास करते हुए उन दीर्घ तपा महर्षि का छोटा पुत्र कैसे मृत्यु को प्राप्त हुआ ? श्री शंकर ने कहा--राजन् ! एकाग्र चित होकर तुम इस दिव्य कथा को सुनो । जिस कथा के सुनने मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । राजन् ! पृथ्वी में महा बलशाली महापराक्रमी चित्रसेन नाम के प्रसिद्ध ऋषिराज थे । उनके राज्य में धर्म का प्रसार था कहीं भी अधर्म की गति नहीं थी । वह राजा सदा ही वेदोक्त धर्म के पालन में तत्पर धर्म से प्रजा का पालन करते हुए अपने धर्म में सदा सावधान, युद्ध और अतिथि सत्कार के प्रेमी, क्षत्रिय धर्म का आश्रय लेकर इच्छानुसार भोगों को भोगते थे । उनके कोष का अन्त नहीं था । उनके हाथी घोड़े रथ तथा पैदल सेना भी बड़ी थी । वह राजा कैलाश में श्री शंकर की भाँति इतिहास पुराणों के ज्ञाता पण्डितों के साथ उत्तम वाद करते हुए शोभा पाता था ॥१/६॥ इस प्रकार वह राज्य का पालन करता हुआ एक समय मतिमान मंत्री से बोला--मैं मृगया--शिकार के लिए जाना चाहता हूँ । राज्य के पालन में तुम लोग सावधान रहो । मन्त्रियों ने कहा--जाइये । तब वह राजा वन को गया । उसके अधीन मांडलिक अन्य राजा भी घोड़ों पर चढ़कर पीछे दौड़ते हुए छत्रों से छत्रों को घिसते हुए सटे हुए छत्र वाले होकर वन को राजा के पीछे गये । हाथी घोड़ों के पैरों से उठी हुई भूमि की धूलि से दिशाओं और सूर्यमण्डल के साथ वह सब दृश्य जगत ढंक गया । वहाँ सूर्य नहीं दिखाई पड़ता था, और न चन्द्रमा भी । दिशाएँ और वृक्ष भी अदृश्य

से हो रहे थे। चारों ओर की पहाड़ी चोटियाँ भी दृष्टि गोचर नहीं थी। वर्षा की आधी रात के समान लोग एक दूसरे को नहीं देख पा रहे थे। कुछ समय के अनन्तर उस राजा ने वहाँ एक बड़े मृगयूथ को देखा ।।७/१२।। वह राजा सब राज पुत्रों के साथ दौड़ा अर्थात् मृगों का पीछा किया। उस समय उन मृगों के समूह का बड़ा शब्द हुआ। वे सब दिशाओं में भाग गये। अथवा उन राजकुमारों का कोलाहल हुआ कि वे सब दिशाओं को चल पड़े और राजा चित्रसेन एक मार्ग से अकेले ही वहाँ को चल पड़े जहाँ वे मृग जा रहे थे। तब वह पहाड़ों से गम्भीर दुर्गम गुहा वाले बन में प्रविष्ट हुआ। लताओं झाड़ियों से जो स्थान घिरा था जिस स्थान में स्थित पुरुष दिखाई नहीं देता था। मृगों को अदृश्य मान देखकर राजा ने सब दिशाओं को देखा और विचार किया अब में किस दिशा को जाऊँ ? मेरी सेना कहाँ मिलेगी ? ।।१३/१६।। इस प्रकार राजा चित्रसेन बड़े कष्ट में पड़कर वृक्ष की छाया का आश्रय लेकर विश्राम करने लगे। भूख प्यास से व्याकुल दुर्गम पर्वतीय गहन प्रदेश से युक्त निर्जन वन में घूमते हुए राजा ने वहाँ कमलिनी वृन्द से शोभित हँस कारंड व पक्षियों से भरे चक्रबाकों से युक्त दिव्य जल वाले सरोवर को देखा। उसे देखकर प्रसन्न और रोमाँञ्चित होकर उस महाराज ने कमलों का स्पर्श कर विधि पूर्वक तर्पण किया। कमलों से आच्छादित करके भगवान शंकर का पूजन किया। फिर सावधान होकर निर्मल मधुर जल पिया ।।१७/२१।। जल से बाहर आकर समीप में वृक्ष देखकर पृथ्वी के तल में उत्तरीय वस्त्र बिछाकर बैठ गये यह विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ ? वहाँ बैठे हुए चित्रसेन ने वन प्रदेश में बहुत से मृगों को देखा। उनमें कुछ अपूर्व मुखवाले थे, कुछ सो रहे और कुछ कान ऊपर उठाये खड़े थे। मृगों के बीच में बड़े तपस्वी योगी ऋक्षभृंग स्थित थे। तब राजा ने सामने मृगों को देखकर भोजन का विचार किया कि इन मृगों में किसी मृग को मारकर मैं अपनी इच्छा से भोजन करूँ। मृग का

माँस खाकर मैं स्वस्थ हो जाऊँगा। फिर प्रयत्न पूर्वक मार्ग को खोजकर काशी जाऊँगा ।।२२/२७।। तब राजा ने वृक्ष को जड़ के सहारे बैठे हुए ही ऐसा विचार कर हाथ के अग्र भाग से धनुष उठाकर बाण का सन्धान किया। जहाँ बहुत मृग थे वहाँ ही बाण को फेंका। उन मृगों के बीच में महा तपस्वी ऋक्षश्रृंग उस बाण से बिद्ध हो गया। डरकर के सभी मृग शब्द करते हुए वहाँ से चले गये। वह ऋषि वहाँ ही गिर पड़े और 'कृष्ण! कृष्ण! ऐसा कहा! हा हा! किसी ने बड़ा पाप कर डाला जिसने मुझे इस समय मारा है। यह बड़ा कष्ट है किसी पापात्मा की मुझ पर यह खोटी नजर हुई है। मृगो के बीच में स्थित होकर मैं किसी को कोई कष्ट तो नहीं देता हूँ उस मनुष्य वाणी को सुनकर वह राजा विस्मय में पड़ गया। तब वहाँ राजा ने शीघ्र जाकर ब्रह्मतेज से सम्पन्न ब्राह्मण को देखा। हा हा यह सब बड़े कष्ट की बात है आज मुझसे यह बड़ा पाप हो गया, जिससे इस ब्राह्मण का वध हो गया ।।२८/३३।। खेद करते हुए चित्रसेन ने कहा--महात्मन्! कामना बिना ही मृग के भ्रम से तुम मेरे द्वारा मारे गये हो। अब बहुत कष्टों का संग्रह कर मैं अपने शरीर को जला देना चाहता हूँ। क्योंकि दृष्य अदृष्य सभी पाप ब्रह्म हत्या के समान नहीं होते। इससे आत्म दाह के अतिरिक्त और उपाय से मुझे प्राप्त ब्रह्महत्या की शुद्धि सम्भव नहीं प्रतीत होती। ऋक्षश्रृंग ने कहा-मेरे मर जाने पर तुम्हारे आत्मदाह से भी कोई सिद्धि तुम्हें नहीं प्राप्त होगी। इसके विपरीत मेरे मर जाने पर बहुत हत्यायें होगी। मेरे मर जाने पर मेरे वृद्ध पिता माता तपस्वी भाई और भातृजाया-भाइयों की पत्नी ये सभी मर जाऐगे। ये हत्याएँ तुम्हें प्राप्त होगी इस अवस्था मैं तुम्हारी शुद्धि कैसे होगी। हाँ यदि तुम्हारा कुछ करने का मन हो तो मैं एक उपाय तुम्हें बताता हूँ सुनो चित्रसेन ने कहा--जो तुम्हारे मन में हो वह उपाय तुम मुझसे कहो। महामुने! मैं वह सब बड़े यत्न से करूंगा ।।३४/ ३९।। ऋक्ष श्रृंग ने कहा-मैं तुमसे पूछता हूँ। तुम किसप्रकार और किस कारण

से यहाँ आये हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में तुम कौन हो ? अथवा शूद्र पुत्र हो । चित्रसेन ने कहा--पूज्य ! जन्म से शूद्र नहीं हूँ, न वैश्य हूँ, न ब्राह्मण हूँ । और मैं अन्त्यज भी नहीं हूँ । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! महामुने ! मैं क्षत्रिय हूँ । मै धर्म को जानता हूँ । कृतज्ञ अर्थात् दूसरे उपकार का जानने वाला हूँ । बिना इच्छा से ही यह पाप मुझसे हो गया है । कैसे शुद्धि होगी ? कृपा कर कहें । ऋक्षश्रृंग ने कहा--तुम मुझे लेकर आश्रम चलो वहाँ मेरे माता पिता है । उनसे तुम उनके पुत्र के मारने वाले व्याकुल दुःखों अपने को निवेदन करो वे मुझे देखकर तुम पर दया करेंगे । और वैसा उपाय बतायेंगे जिससे शान्ति होगी ।।४०/४४।। श्रेष्ठ राजन् ! राजा चित्रसेन उसके वचन को सुनकर उस ब्राह्मण को कन्धे पर रखकर आश्रम के समीप गये । जब वह ब्राह्मण को वहन करते हुए थक जाते थे, तब बारम्बार वह विश्राम कर लेते थे । उस समय राजा ने ब्राह्मण को मूर्छित और इन्द्रियों की शक्ति से क्षीण देखा उस समय चित्रसेन ने उस ब्राह्मण को बट वृक्ष की छाया में लिटा दिया । और वस्त्र को चौगुना कर बारम्बार हवा करता रहा । राजेन्द्र ! उन राजा को देखते ही महातपस्वी ऋक्षश्रृंग जो योग के जानकार थे ध्यान योग से मृत्यु को प्राप्त हो गये । विधि से बोधित कर्म से उस ब्राह्मण की महाराज ने दाह-क्रिया कराई । फिर वह महाराज स्नान कर शोक से व्याकुल होकर बहुत विलाप करने लगे ।।४५/४९।। तिरेपनवाँ अध्याय पूर्ण ।।५३।।

चौअनवां अध्याय

दीर्घतपा मुनि का स्वर्गारोहण वर्णन

ईश्वर उवाच-- ततश्चानतरं राजा जगामोद्वेगमुत्तमम् ।
कथं यामि गृहं त्वद्य वाराणस्यामहं पुनः ।।

सवैया--नर्मदा में वास शिव को और शिवके हृदय राम बसे, तिनके दर्शन को सबतीर्थ नित्य आते हैं ।
तीर्थों में स्थिर सब देवता निवास करें, शिव की पूजा कर सब पुण्य लाभ पाते हैं ।

श्री शंकर ने कहा--उसके अनन्तर राजा बड़ी घबड़ाहट में पड़ गये ।

मैं अब फिर वाराणसी राजधानी में अपने घर कैसे जाऊँ। ब्राह्मण की हत्या से युक्त अग्नि में अपने शरीर को हवन कर दूँ। अथवा उन मुनि के वचन से उस आश्रम को जाऊँ ।।१/२।। वहाँ जाकर महर्षि से सब वृत्तान्त का निवेदन करूँ। ऐसा विचार कर वह राजा आश्रम के समीप पहुँचा। वह ऋक्षश्रृंग की हड्डियाँ लेकर उन शुद्ध अन्तःकरण जितेन्द्रिय महर्षि के सामने आने वाले मार्ग में स्थित हुआ। उसे देखकर महर्षि दीर्घतपा ने कहा--राजन्! आइये आपके आगमन का अभिनन्दन है। इस आसन पर बैठिये। यहाँ बैठने पर मैं विष्टर आसन सहित अर्घ पूजा सामग्री और मधुपर्क तुम्हें देता हूँ ।।३/५।। राजा चित्रसेन ने कहा--महर्षि! मैं तुम्हारे अर्घ के योग्य नहीं हूँ। मैं तो बोलने योग्य भी नहीं हूँ। मृगों के झुण्ड में स्थित तुम्हारे ब्राह्मण पुत्र को मैंने मार डाला है। मुझे तुम अपने पुत्र को मार डालने वाला समझो। ब्राह्मण? तुम मुझे कठोर दण्ड से दण्डित करो। महा तपस्वी ब्राह्मण ऋक्षश्रृंग को मृग के भ्रम से मैंने मारा है। मुनि श्रेष्ठ! ऐसा समझ कर तुम यथोचित व्यवहार मेरे साथ करो। उस राजा के वचन सुनकर माता व्याकुल होकर घर से बाहर निकल कर हाय मैं मारी गयी कहकर पृथिवी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहुत दुःख से व्याकुल पुत्र शोक से पीड़ित होकर वह विलाप करने लगी। पुत्र! पुत्र! मैं मारी गयी इस प्रकार कुररी पक्षी की भाँति व्याकुल माता बड़ी दीनता से विलाप कर कहने लगी पुत्र! तुम मुझे छोड़कर चले गये हो। तुम अपना मुख मुझे दिखलाओ मुझ माता का आदर करो ।।६/१०।। प्रिय तुम! शस्त्रों के श्रवण और अध्ययन से सम्पन्न जप हवन में तत्पर घर के द्वार पर आये हुए तुम्हें मैं कब देखूँगी। संसार में लोकोक्ति से यह सुना जाता है कि चन्दन बहुत शीतल होता है पर पुत्र के अंगों का भली भाँति स्पर्श आलिंगन चन्दन से भी शीतल होता है। चन्दन और अमृत बिन्दु से भी क्या प्रयोजन है? यदि मनुष्य का शरीर पुत्र के अंगों के स्पर्श न कर पाय। परम प्रिय वत्स! मैं तुमसे लिपटना चाहती

हूँ । तुमसे रहित अत्यन्त दुखित होकर मैं मर जाऊँगी ।।११/१५।। इस प्रकार विलाप करती हुई दीन होकर पुत्र शोक से पीड़ित मूर्च्छित हुई व्याकुल होकर वह पृथिवी पर गिर गयी । पुत्र के शोक से पीड़ित अपनी पत्नी को देख कर वह महर्षि दीर्घ तपा वहाँ चित्रसेन राजा पर कुपित हो गये । दीर्घ तपा बोले--महा पापी राजन् ! तुम हट जाओ । तुम मुझे अपना मुख मत दिखाओ । तुमने मेरे पुत्र को क्यों मारा ? राजन् ! तुम्हें बहुत ब्रह्म हत्याएँ प्राप्त होंगी । कुटुम्ब के सामने तुम मृत्यु सूचना लाकर उपस्थित हुए हो । ऐसा कहकर तब ब्राह्मण ने बार-बार विचार करते हुए क्रोध को त्याग कर मुनि भाव से शान्त होकर बोले ।।१६/२०।। दीर्घ तपा ने कहा--बेटा ! तुम घबराहट और भय छोड़ दो । मैंने तुमसे कठोर शब्द कहे हैं । मान देने वाले राजन् ! मैंने पुत्र शोक से पूर्ण एवं दुःख से सन्तृप्त होकर ही इन कठोर शब्दों को कहा है । अपने कर्मों से प्रेरित बुद्धिमान मनुष्य भी क्रिया करता है । निश्चय ही बुद्धिमान मनुष्यों की बुद्धि पिछले कर्मों का अनुसरण करने वाली होती है । इस विधान से मेरी मृत्यु ही विहित है । तुम्हें पहले बताई गयी हत्यायें अवश्य प्राप्त होगी इसमें संशय नहीं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के बीच में अथवा शूद्र और चाण्डाल जातियों में तुम कौन हो ? तुम मुझे सत्य कहो । तुमने ब्राह्मण को क्यों मारा यह भी कहो । राजा चित्रसेन ने कहा--ब्राह्मण ! तुम मुझे क्षमा करो । मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ । पूज्य ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ । वैश्य और शूद्र पुत्र भी नहीं हूँ । न तो व्याध बहेलिया हूँ और न अन्त्यज हूँ । महामुने ! मैं क्षत्रिय हूँ । मैं काशी का राजा हूँ । वन के मृग आदि को मारने के लिए इस उत्तम वन में आया हूँ । मैंने भ्रम से ही मृग रूप धारी मुनि को गिरा दिया है और इस समय मैं पापी तुम्हारे चरणों के समीप उपस्थित हुआ हूँ । ब्राह्मण ! मैं अब क्या करूँ । वह उपाय मुझसे कहो ।।२१/२८।। महर्षि दीर्ध तपा ने कहा--राजन् । एक ब्रह्म हत्या से भी उद्धार पाना सम्भव नहीं है । ये ग्यारह ब्रह्म हत्यायें कैसे पार पाने

योग्य हैं। राजन् ! तुम उन्हें सुनोकाशी राज। अपनी पत्नी के सहित माता के साथ चार पुत्र ऋक्षश्रृंग के कारण मेरे साथ जीवित नहीं रह सकेंगे। प्रिय ! मैं सुन्दर उपाय तुमसे कहूँगा तुम उसे सुनो ! राजन् ! सुखदायी उस उपाय को तुम कर भी सकते हो। राजन्। मुझे कुटुम्ब सहित अग्नि में जलाकर हड्डियाँ नर्मदा के शूल भेद तीर्थ जल में जाकर डाल देना ॥२९/३२॥ नर्मदा के दक्षिण तट पर सब पापों का विनाशक सर्व दुःखों को हरने वाला उत्तम सूल भेद नामक वह तीर्थ है। तुम शुद्ध होकर मेरी हड्डियों को उस तीर्थ में डाल देना। मेरे वचन से तुम सब पापों से मुक्त भी हो जाओगे इसमें संशय नहीं है ॥३३/३४॥ राजा ने कहा--पूज्य ! मुझे आज्ञा दीजिये, निश्चय ही मैं उसका पालन करूँगा। मेरा जो कुछ राज्य कोष, बान्धव, पुत्र आदि सब है वह तुम्हारे अधीन है। पूज्य ब्राह्मण। मैं सब देता हूँ। तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। राजन् ! इस प्रकार परस्पर जब ब्राह्मण और राजा बात कर रहे थे उसी समय शीघ्र ही मुनि पत्नी का हृदय स्फुटित हो गया पुत्र शोक से युक्त हुई वह निर्जीव होकर पृथिवी पर गिर गयी। माता के शोक से सभी पुत्रों ने प्राण त्याग दिये तब सारी पुत्र बधुएं भी पतियों के साथ मृत्यु को प्राप्त हुई। राजश्रेष्ठ ! उस समय मुनि समेत सभी मृत्यु को प्राप्त हो गये। तब राजा ने उस आश्रम में रहने वाले सभी ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त का निवेदन किया। उन ऋषियों से तब आज्ञा पाकर उस राजा ने बड़े यत्न से लकड़ियाँ लेकर उनका दाह संस्कार किया और अस्थि सञ्चय भी किया। राजन् ! राजा चित्रसेन ऋक्षश्रृंग आदि की हड्डियाँ यत्न से लेकर पैदल ही दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। जब जाने में चलने से असमर्थ हो जाते थे तब छाया का आश्रय लेकर ठहर रास्ते थे ॥३५/४२॥ राजा बोझ से दबे हए थे। अतः विश्राम कर बढ़ रहे थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर हड्डियों को रखकर सवस्त्र स्नान करते थे। वह दक्षिण की ओर चलते हुए निराहार होकर केवल जल-पीते हुए शीघ्र ही

नर्मदा तट पर पहुँचे राजा ने आश्रम में स्थित ब्राह्मणों को देखकर उनसे पूछा। चित्रसेन ने कहा--यहाँ कोई आश्रम है तब मुनि बोले यहाँ से एक कोस के भीतर ही नर्मदा के दक्षिण तट पर एक परम सुन्दर तीर्थ देखोगे इसमें सन्देह नहीं ॥४३/४७॥ उस राजा ने ऋषि के वचन से शीघ्र ही जाकर बहुत ब्राह्मणों से भरे उस तीर्थ को देखा--वह स्थान बहुत वृक्षों लताओं से पूर्ण बहुत विचित्र पुष्पों से शोभित रीछों और सिंहों से भरा हुआ था। वह तीर्थ नाना वृत्तधारी ब्राह्मणों से पूर्ण था। कुछ लोग एक पैर के बल से खड़े थे। दूसरे सूर्य में दृष्टि लगाये हुए थे तो कुछ लोग पैर के एक अंगूठे पर स्थित होकर तपस्या कर रहे थे। दूसरे ऊँचे हाथ किये स्थित थे। कुछ लोग दिन में एक बार भोजन करते थे और कुछ कन्द फल खाने वाले थे। कुछ तीन रात्रियों में भोजन करने वाले तो दूसरे सराक नामक व्रत करने वाले थे ॥४८/५१॥ कुछ चान्द्रायण व्रत करते थे और कुछ पक्ष पर्यन्त उपवास करने वाले रहे। कुछ मास पर्यन्त उपवास करने वाले तो कुछ दो मास पर्यन्त व्रत धारण करते थे। कुछ योगाभ्यास में लगे हुए थे और दूसरे उस परम पद का ध्यान करते हुए सुखी थे। कुछ लोग गिरे सूखे पत्तों के खाने वाले थे और कुछ कटु-भोजन वाले थे तो कुछ शेवार भोजन वाले भी थे और कुछ वायु का ही भोजन करते थे। कुछ गृहस्थाश्रम में स्थित थे और कुछ अग्निहोत्र वाले थे। ऐसे परम शुद्ध वीतराग ब्राह्मणों को देखकर राजा घुटनों के बल तथा शिर के बल पृथिवी पर प्रणाम कर बोले। चित्रसेन ने कहा--ब्राह्मणों! किस देश में वह तीर्थ हैं तुम सत्य कहो। जिससे इष्ट-सिद्धि मिलती है ॥५२/५६॥ ऋषियों ने कहा--राजन्! सौ धनुष पर्यन्त तुम आगे जाओ भ्रगुतुंग की चोटी पर जल से पूर्ण-निर्मल एक विशाल कुण्ड तुम देखोगे। वेद पाठियों के उस वचन को सुनकर वह कुण्ड के समीप गया। उस तीर्थ का दर्शन कर राजा को भ्रम हो गया। तब उस राजा ने आश्चर्य में पड़कर बारम्बार चिन्तन करते हुए आकाश में स्थित मांस सहित एक

कुरर पक्षी को देखा । वह साँप को पकड़े था । उस आकाश में मांस रहित मांस भक्षी उसका पीछा कर रहे थे । सभी मांस की इच्छा से परस्पर लड़ रहे थे । तब चोंच के प्रहार से मारा गया वह जल में गिरा जहाँ पहले श्री शंकर जी ने एक शूल के प्रहार से जिस भूभाग का भेदन किया था ॥५७/६१॥ उस तीर्थ के प्रभाव से वह शीघ्र ही पुरुष हो गया । तभी उस राजा ने विमान में स्थित दिव्य रूप धारी पुरुष को देखा । गन्धर्व अप्सराएं यक्ष स्वर्ग की ओर अग्रसर उसकी स्तुति कर रहे थे । अप्सराओं से स्तुति किये जा रहे उसके सूर्य के ऊपर चले जाने पर चित्रसेन बड़े ही आश्चर्य में पड़ गया । ऋषि ने तीर्थ का जैसा माहात्म्य बताया था वैसा ही है इसमें संशय नहीं । तीर्थ के अपूर्व प्रभाव को देखकर वह रोमाञ्चित हो गया । मेरा आज जीवन धन्य हो गया । जिससे मैं यहाँ आ गया हूँ । हड्डियों को भूमि में रखकर विधि पूर्वक स्नान कर तिल मिश्रित जल में पितृ देवताओं का तर्पण किया । फिर राजा ने हड्डियाँ लेकर जल के भीतर उन्हें फेंक दिया । तब एक क्षण उन्हें देखकर राजा ऊपर की ओर मुख किये स्थित हो गये । उसी समय उन्होंने दिव्य रूप धारण किये हुए कल्याण स्वरूप दिव्य वस्त्रों से आच्छादित दिव्य आभूषणों से आभूषित उन सबको देखा । दिव्य अप्सराओं से युक्त विचित्र विमानों से पृथक पृथक भली भाँति बैठे हुए उन्हें देखकर राजा बड़े हर्षित हुए ॥६२/६९॥ ऋषि-विमान पर चढ़कर चित्रसेन से बोले--प्रिय ! महाराज चित्रसेंन ! तुम्हारी कृपा से मेरी यह ऐसी दिव्य गति हुई है । तुमने अत्यन्त उत्तम कार्य किया है । अपना पुत्र भी पितृगण के निमित्त ऐसा कार्य नहीं कर सकता । प्रिय ! मेरे वचन से तुम निष्पाप होओगे । राज श्रेष्ठ ! तुम मन में सोचे सभी फल पाओगे । उस समय बुद्धिशाली चित्रसेन राजा को आशीर्वाद देकर पुत्र सहित वह दीर्घ तथा महर्षि स्वर्ग को चले गये ॥७०/७३॥ चौअनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥५४॥

पचपनवां अध्याय

काशीराज के मोक्ष का वर्णन

उत्तानपाद उवाच--महात्म्यं तीर्थगं दृष्ट्वा चित्रसेनो नरेश्वरः ।
किं चकार क्व वा वासं किवाहारो वभूव ह ॥

सवैया--राम की परिक्रमा कर गणेश प्रथम पूज्य भये, वेद और पुराण नित्य जाको जस गाते है ।
सारे तीर्थ सारे पुण्य एक साथ सुलभ होत, तासों भक्त नर्मदा की परिक्रमा को जाते हैं ॥

उत्तानपाद ने कहा--राजा चित्रसेन ने शूल भेद तीर्थ के माहात्म्य को देखकर क्या किया ? कहाँ निवास किया तथा क्यों भोजन किया ? श्री शंकर ने कहा--वह राजा चित्रसेन भृगुतुंग पर्वत पर चढ़कर ईशान कोण का आश्रय लेकर उसने कुण्ड में बहुत बड़ा तप किया । ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, आदि सब देवों का हृदय में ध्यान कर जब अपने को ऊपर से नीचे फेंका तब श्री शंकर ने राजा को हाथ से पकड़ कर उससे कहा । सदाशिव बोले--महाराज ! असमय में तुम व्यर्थ प्राणों का त्याग मत करो--आज भी तुम युवक हो, तुम्हारा मरना उचित नहीं । तुम शीघ्र ही अपने स्थान पर जाओ । इच्छानुसार भोगों को भोगते हुए तुम स्वर्ग में दूसरे इन्द्र के समान निष्कण्टक राज्य करो ॥१/५॥ चित्रसेन ने कहा--देव ! मैं राज्य को नहीं चाहता महादेव ! तुम मुझे छोड़ दो मेरे कार्य में विघ्न मत करो । महेश्वर ! तुम्हारी कृपा से आज ही मुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी । श्री शंकर जी ने कहा--जिसके आगे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर हों उसे स्वर्ग से क्या कार्य है ? वह वहाँ जाकर भी क्या करेगा ? हम तीनों ही देव प्रसन्न हैं उत्तम वर माँग लो महाराज ! तुम जो चाहते हो वह माँग लो यह मैं सत्य कहता हूँ । इसमें संशय न करना ॥६/९॥ चित्रसेन ने कहा--यदि मुझ पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों देव प्रसन्न हैं तो आज से लेकर आप लोग सदा ही यहाँ स्थिर रहें । जिस प्रकार गया क्षेत्र को आप लोगों ने पुण्य स्थल बना दिया है ठीक उसी प्रकार इस शूल भेद क्षेत्र को भी परम पवित्र बना दो जहाँ-जहाँ आप लोगों का

निवास हो वहाँ-वहाँ मैं स्थित रहूँ और सम्पूर्ण गणों में मुझे स्वामित्व प्राप्त हो । श्री शंकर ने कहा--राजन् ! आज से शूलभेद तीर्थ में हम रहेंगे निश्चय हीतीनों कला द्वारा तीनों देव सूक्ष्म कला से यहाँ निवास करेंगे । आप निश्चय ही नन्दी नामक गणाधीश होओगे । मेरे समीप आपकी प्रथम पूजा होगी । तुम हड्डियों के फेंकने से जहाँ दीर्घ तपा मुनि कुटुम्ब सहित वर देकर शूल तीर्थ के ऊपर दक्षिण की ओर तीनों देव स्थित हो गये । लोग परस्पर ऐसा कहते हैं कि यह तीर्थ बहुत श्रेष्ठ है । जैसे गण क्षेत्र परम पुण्य रूप कहा जाता है वैसे ही नर्मदा के तट पर शूल भेद तीर्थ अति पुण्य क्षेत्र है । इसमें संशय नहीं ।।१०/१७।। श्री शंकर ने कहा--यह तीर्थ गया क्षेत्र के समान ही पुण्य तीर्थ है । यहां एक बार पिण्ड दान और जल दान से ही मनुष्य निर्मलता को प्राप्त हो जाता है । राजन् ! एक गया क्षेत्र को छोड़कर सम्पूर्ण तीर्थ शूलभेद तीर्थ की सोलहवीं कला की तुलना में नहीं उत्तर दक्षिण दिशा में दस हस्त परिमित कुण्ड हैं । ईशान कोण पूर्व तथा पश्चिम दिशा में इक्कीस हाथ वाला कुण्ड है पिण्डदान आदि कर्मों में इतने प्रमाण वाला यह तीर्थ है । अधर्म परायण पुरुष यहाँ दान नहीं दे पाते । भगवान विष्णु वहाँ पिता के रूप से, ब्रह्मा के रूप से पितामह और रुद्र के रूप में प्रपितामह स्थित हुए । इस प्रकार तीनों पुरुष यहाँ स्थित है । हमारा पुत्र पौत्र आदि कोई कब इस तीर्थ को देखेगा और कब इसे तारेगा राजन् ! इस प्रकार से पितर पुत्रों को प्रतीक्षा करते है । मनुष्य शूल भेद तीर्थ में स्नान कर तथा एक बार भी श्री शंकर का दर्शन करके फिर सात जन्म तक अपुत्र निर्धन या रोगी नहीं होता । पिता के पक्ष की इक्कीस पीढ़ियों को और मातृ कुल की इक्कीस पीढ़ियों को स्त्री पक्ष की दस पीढ़ियों यह तार देता है ।।१८/२४।। राजन् ! शूल भेद वन में यदि कोई शाक मूल फल या अन्य उत्तम पदार्थ हो तो क्या कहना, उससे एक ब्राह्मण को भी भोजन करा देने पर करोड़ ब्राह्मणों का भोजन सम्पन्न हो जाता है । जो भक्त पुरुष पाँच स्थानों में श्राद्ध

करता है। प्रेत-भूत रूपी सम्पूर्ण कुलों का भी वह उद्धार कर देता है। श्रद्धा पूर्वक पितृ निमित्त के दान आदि करने वाला पुरुष जहाँ श्री शंकर का वास है वहाँ निवास करता है। जो पुण्य आत्मा की हत्या करने वाले गौ, ब्राह्मण को मारने वाले हैं दाढ़ वाले जीव सिंह, व्याघ्रादि के द्वारा जल में डूब जाने पर या बिजली गिरने से मर जाने पर और जिनका अग्नि संस्कार आशौच और मृतक दाह नहीं होता उस तीर्थ में इन पुरुषों के निमित्त जो पुरुष भक्ति से श्राद्ध करता है उन्हें अवश्य ही एक युग पर्यन्त के लिए छुटकारा मिल जाता है इसमें संशय नहीं ॥२५/३०॥ अज्ञान से अथवा जो पाप वाले भाव से हो गया है। राजन् ! वह पुरुष स्नान मात्र से उस सम्पूर्ण पाप को नष्ट कर देता है। जिस प्रकार धोबी से धोया गया वस्त्र शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार पापी पुरुष तीर्थ में स्नान कर निर्मल हो जाता है। जो पुरुष इस तीर्थ में विधि पूर्वक सन्यास ग्रहण करता है नित्य ही श्री शंकर का ध्यान करते हुए सन्यास की दीक्षा लेता है वह परम-पद को पाता है। वह पुरुष इच्छानुसार शिवलोक में विहार कर शुभ कुल में उत्पन्न होकर वेद-वेदांगों के तत्व का जानकार होता है। वह परम-सुन्दर और सौभाग्यशाली सब रोगों से रहित धर्माचरण से युक्त होकर राजा अथवा राजपुत्र होता है ॥३१/३५॥ राजन् ! तुमसे मैंने इस तीर्थ का फल को बताया। मनुष्य जिसे सुनकर सब पापों से निश्चय छूट जाता है। जो पुरुष इस आख्यान को श्रेष्ठ ब्राह्मण आदि को आगे कर सुनाता है और श्राद्ध अथवा देव मन्दिर में पर्व पर अमावास्या पौर्णमासी में पढ़ता है उस पर देवगण और पितृगणों के साथ मनुष्य भी प्रसन्न होते हैं। इसका पाठ करने वाले पुरुषों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष तीर्थ के माहात्म्य को लिखकर ब्राह्मणों को देता है। वह पुरुष अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करने वाला होकर इष्ट फल पाता है और बहुत काल पर्यन्त वह रुद्र लोक में निवास करता है ॥३४/४०॥ पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

गंगा अवतरण और बहेलिए के वाक्य कथन पूर्वक दान आदि के फल का वर्णन

उत्तानपाद उवाच-- *अन्यच्च श्रोतुमिच्छामि केन गंगाऽवतारिता ।*
रुद्रशीर्षे स्थिता देवी पुण्या कथामिहाऽऽगता ।।

सवैया--सुना है स्वर्ग में हैं कल्पवृक्ष, कामधेनु, इन्द्रपुरी की नित्य शोभा बढ़ाते हैं ।
जाने अनजाने जो भी छाया में पहुंच जात, भोग और योग जो इच्छा हो सो पाते हैं ।।

राजा उत्तानपाद ने कहा--मैं और भी कुछ सुनना चाहता हूं आप कहें कि गंगा अवतरण किसके द्वारा हुआ ? आप श्री शंकर के शिर में स्थित पुण्यशालिनी गंगा यहाँ कैसे आयी ? यदि हे शम्भो ! आप हम पर प्रसन्न हैं तो पुण्य देवशिला का भी माहात्म्य परम श्रेष्ठ गंगा जी का अवतरण कैसे हुआ यह सब तुम एकाग्र मन वाले होकर सुनो । राजन् ! दक्षिण दिशा में विन्ध्याचल है । राजन् ! उसके शिखर पर सभी देव एक समय उपस्थित हुए । वहाँ सब लोकों के साथ देवाधिदेव जगदगुरु श्री शंकर की पूजाकर ब्रह्मा आदि सभी देवों ने श्री गंगा का आह्वान किया और प्रार्थना की कि हे भगवन् ! जटाओं के मध्य में स्थित गंगा को आप पृथिवी पर छोड़ें । तब शंकर ने प्रकाश मान भगवती गंगा को अपने शिर से पृथिवी पर छोड़ा ।।१/६।। उस स्थान में महापुण्य दायिनी गंगा देवों के द्वारा उत्पन्न हुई । उससे पृथिवी पर मनुष्यों के कल्याण के लिए वह देव नदी हो गयी जो लोग उसके तट में निवास करते हैं, भक्ति से स्नान करते हैं, नित्य ही उसके जल का पान करते हैं वे यमलोक नहीं जाते । राजन् जहाँ वह शूल भेद कुण्ड में गिरी है । देव नदी गंगा के पश्चिम की ओर वहाँ--पूर्वाभिमुख सरस्वती हैं दक्षिण दिशा में शूलभेद का बहुत श्रेष्ठ तीर्थ है वहाँ स्वयं भगवान के

द्वारा रचित पुण्य दायिनी देव शिला है । यहाँ स्नान कर जो मनुष्य भक्ति से पितृ-देवताओं का तर्पण करता है उसके पितृगण प्रलय पर्यन्त तृप्त होते हैं । राजन् ! वहाँ जो पुरुष भक्तिपूर्वक स्नानकर ब्राह्मणों को भोजन कराता है, दिये गये थोड़े से अन्न से भी जो उन्हें तृप्त करता है उसके पुण्य का अन्त नहीं है ।।७/१२।। उत्तानपाद ने पूछा--पृथिवी में किन दानों को श्रेष्ठ माना गया है ? मनुष्य जिन दानों को भक्तिपूर्वक योग्य पात्रों को देकर सब पापों से छूट जाता है । देवशिला की महिमा और वहाँ के स्नान दान आदि उत्पन्न फल और व्रत उपवास नियमों से जो फल मिलता है । प्रभो ! वह तुम मुझसे कहो । श्री शंकर ने कहा-राजन् ! पहले महा पराक्रमी बड़े बलशाली मण्डलाधिपति चेदि नरेश वीरसेन नाम से प्रसिद्ध थे । उनके राज्य में कोई शत्रु नहीं था । रोग, दोष एवं चोरों का सर्वथा अभाव था । वहाँ अधर्म भी नहीं था । धर्म काही प्रचार सर्वत्र था । स्त्री सहित बहुत पुत्र वाले राज़ा सदा ही प्रसन्न रहते थे । उन राजा की भगवती पार्वती के समान सुन्दरी एक पुत्री थी । माता-पिता एवं वन्धुजन को इष्ट वह थी । समय आने पर विधि पूर्वक उसका विवाह कर्म सम्पन्न हुआ ।।१३/१८।। इसके पश्चात चेदि नरेश वीरसेन बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले यज्ञ में बैठे । उसी समय उसका पति मृत्यु को प्राप्त हुआ । उस अपनी पुत्री को विधवा देखकर राजा बड़े दुःखी हुए । वह वहाँ दुःख से पीड़ित अपनी पत्नी से यह वचन बोले--प्रिये ! जीवन भर के लिए यह अत्यन्त दुःसह दुःख आया है । रूप, यौवन सम्पन्न यह किस प्रकार रक्षा के योग्य हैं । कहीं इस अवस्था में कुल न दूषित कर दे । इस पुत्री की रक्षा कैसे हो ? भानुमती की रक्षा के विषय में कोई अन्य उपाय नहीं है । परस्पर विवाद करते हुए माता पिता को देख सुनकर वह

कन्या बोली--भानुमती ने कहा--पिताजी ! तुम्हारे आगे कुछ कहते हुए मुझे किसी प्रकार की लज्जा नहीं । हे राजन् ! यह सत्य है मेरे लिए तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा । पिताजी ! आज से लेकर मैं केशों की सजावट नहीं करूँगी । तुम्हारे घर में मोटे वस्त्र के आधे टुकड़े को धारण करूँगी ।।१९/२४।। पुराणों में बताये गये व्रतों को मैं शीघ्र ही करूँगी । अपने शरीर को सुखा दूँगी और भगवान को प्रसन्न करूँगी । पिताजी ! मेरी ऐसी इच्छा है । यदि आप ऐसी अनुमति दें । भानुमती के वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए । तीर्थ यात्रा का निश्चय कर बहुत बड़ा खजाना देकर वृद्ध पुरुषों को उसकी रक्षा में नियुक्त करके हथियार बन्द पुरुषों को भी नियुक्त कर पुरोहित के साथ अन्य ब्राह्मणों को दासी दास और पैदल सैनिकों को जो इसकी रक्षा में समर्थ थे नियुक्त करके राजा ने उसे जाने की आज्ञा दी । तदनन्तर राजन् ! पिता के मत से ही गंगा के तट पर जाकर गंगा के दोनों तटों में स्नान कर गन्ध, चन्दन, माला, भूषण आदि से श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करती हुई वह बारह वर्ष पर्यन्त गंगा के तट पर ही रही ।।२४/३०।। फिर वह गंगा को छोड़कर दक्षिण दिशा गयी । जहाँ महानदी रेवा है वहाँ ही मय मन्त्रीयों के साथ पहुँची । पाँच वर्ष तक वह ओंकार क्षेत्र और अमरकण्टक में रही । उत्तर दक्षिण तीर्थों में भ्रमण करती हुई वह एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में पहुँची । तीर्थों मे बार-बार स्नान कर आलस्य छोड़कर भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा कर देव नदी शिव गंगा के संगम में पश्चिम दिशा में जाकर मुनि समूह से पूर्ण एक पुण्य आश्रम को देखा । मुनियों को देखकर वह प्रणाम कर बोली । महानुभावो ! आप लोग इसका नाम और महिमा कहें । मुझ पर कृपा करें ।।३१/३५।। ऋषियों ने कहा--यह चक्रतीर्थ प्रसिद्ध है । पहले प्रसन्न होकर

शूलधारी श्री शंकर ने विष्णु को चक्र दिया था । इस तीर्थ में जो स्नान कर पितृ देवताओं का तर्पण करता है उसका संसार में पुनः आगमन नहीं होता इसमें सन्देह नहीं । हे तपस्विनी ! दूसरे दिन शूल भेद तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ जाकर पूर्वोक्त विधान से विधिपूर्वक स्नान करना उचित है । ऐसा करने से तीन जन्मों के पाप से मनुष्य छूट जाता है इसमें संशय नहीं । तिलमात्र युक्त जल से तीन अंजलि दे । उसके पितृगण बारह वर्ष पर्यन्त निश्चय ही तृप्त रहते हैं । राजन् ! जो पुरुष भक्ति से वेदज्ञ ब्राह्मणों के सान्निध्य को लेकर श्राद्ध करता है । अधर्म पूर्वक ब्याज लेने वाले और वेदादि ज्ञान से रहित नित्यकर्मादि ब्राह्मण कर्मों से हीन, ब्राह्मणों द्वारा नहीं कराये । इस प्रकार पितृगण को दिया गया दान अक्षय हो जाता है । तीसरे दिन पुण्य देने वाली उत्तम देव शिला जाये । पहले देवों के द्वारा उत्पन्न की गयी पुण्य दायिनी गंगा वहाँ दिखाई देती है । राजन् ! वहाँ भी स्नान कर तिल मिश्रित जल देना चाहिए ॥३६/४०॥ वहाँ एक बार पिण्ड देने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है । दोनों पक्षों को एकादशी में उपवास कर रात्रि जागरण करे, पुराणों की कथा सुने, पुष्प धूप आदि से भगवान विष्णु की पूजा करे, पितर ब्राह्मणों को भोजन कराये और अपनी शक्ति से दान दे । चौथे दिन पुनः जहाँ पूर्वाभिमुख सरस्वती है वहाँ जाये ॥४१/४५॥ यह सरस्वती मनुष्यों को पवित्र करने के लिए ब्रह्मा के शरीर से निकली है । मनुष्य उसमें भक्ति से स्नान कर पितृ देवताओं का तर्पण करे । विधि पूर्वक श्राद्ध कर विद्वान सदाचारी ब्राह्मणों को भोजन कराये । जिससे उसके पितृगण बारह वर्ष पर्यन्त तृप्त रहते हैं । यह स्थान सर्व देव मय और सर्व तीर्थ मय है । करोड़ों देवों से तथा कोटिलिंगों से युक्त बहुत उत्तम है । जो पुरुष वहाँ स्नान कर जितेन्द्रिय

और पवित्र होकर त्रिरात्र व्रत करता है वहाँ एक पक्ष-मास अथवा छैमास व एक वर्ष निवास करता है तो पुनः उसका जन्म मनुष्य लोक में नहीं होता उसका वास स्वर्ग में होता है। जो वहाँ नियम में स्थित होकर रहता है वह पुरुष तीन जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है ॥४६/५०॥ पुरुष के बिना ही जो स्त्री बारह वर्ष पर्यन्त पवित्र व्रत वाली होकर स्थित होती है वह स्त्री भी असंख्य समय तक शिव लोक में निवास करती है। मुनियों के वचन सुनकर राजा वीरसेन की पुत्री बड़े हर्ष से वहाँ चली गयी। तदनन्तर उस तीर्थ में स्नान कर दिन-रात सावधान रहती हुई वह राज पुत्री तीर्थ का प्रभाव देखकर फिर वचन बोली पुरोहित सहित ब्राह्मणों ! आज तुम मेरा वचन सुनो मैं ऐसे स्थान को जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ूँगी। मेरे माता पिता से तुम लोग यह वचन कहो कि तुम्हारी कन्या शूल भेद तीर्थ में रहकर नियम युक्त और व्रत पालन में तत्पर है। राजन् ! ऐसा कहकर वह भानुमती वहीं रहने लगी। एक-एक दिन के बीच में उपवास करती हुई वह नित्य विष्णु का चिन्तन करती थी। दिन-रात वह धूप और दीपक के साथ चन्दन जलाती है। हाथ पैर धोकर पवित्रता से वह स्वयं ब्राह्मणों को भोजन कराती है। इस प्रकार वह राजकुमारी बारह वर्ष पर्यन्त वहाँ व्रत धारिणी होकर स्थित रही ॥५१/५७॥ श्री शंकर ने कहा--राजन् ! देवशिला का और माहात्म्य श्रवण करे। महाबाहो ! इस पुराने इतिहास को सुनो कोई वनचारी शबर बहेलिया अपनी स्त्री के साथ दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर वहाँ मांस के लिए किसी वन में गया। वहाँ उसने पक्षियों को न मृगों को ही देखा और न फलों को ही पाया। केवल कमलिनी समूह से शोभित एक सरोवर देखा वहाँ सरोवर को देखकर शबरी बोली--तुम भोजन के लिए ये दिव्य कुमुद

ले लो ।।५८/६१।। यहाँ शूल भेद देव के पूजन के लिए इन पुष्पों का विक्रय होगा । क्योंकि यहाँ शूलभेद तीर्थ में लोग धर्मशील रहते हैं । उसने अपनी पत्नी के वचन सुनकर कुमुद पुष्पों को ले लिया । तट पर उतरकर सामने एक बाग को देखा । उससे खूब पके हुए बिल्व फलों को लेकर वह शूल भेद पहुंचा । उसने वहाँ बहुत लोगों को देखा । चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी तिथि में राजन् ! बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ भी वहाँ नहीं खाती थीं । वही देवशिला के ऊपर बनाये गये वस्त्रों से चारों ओर घिरे हुए विचित्र मालाओं से सुशोभित दिव्य मण्डप को देखा ।।६२/६६।। व्रतधारी नियमों से सम्पन्न आश्रमों में रहने वाले ऋषि लोग भी वहाँ आये, वे सभी अग्निहोत्री थे । राजश्रेष्ठ ! मुनि समुदायों से भरे हुए देव नदी के रमणीय तट पर आ रहे लोगों को मार्ग नहीं मिल रहा था । वहाँ बहुत जनता को देखकर शबर ने अपनी पत्नी से कहा--तुम जाकर किसी से भी पूछो आज स्नान का क्या कारण है । जो पर्व सुने जाते हैं उसमें कोन सा पर्व आज है । सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण तो नहीं है या अयनतिथि है ? किंवा अक्षय तृतीया है । तब शबरी अपने पति के वचन से वहाँ गयी । अपने सामने एक स्त्री को देखकर उत्तम कमल पुष्प लिए उससे पूछा । भद्रे ! आज कौन तिथि है ? कौन-सा उत्सव पर्व है ? यह मुझे बताओ ये लोग क्यों स्नान कर रहे हैं ? इनके स्नान का कारण क्या है ।।६७/७२।। स्त्री ने कहा--सब पापों का नाश करने वाली पुण्य एकादशी तिथि आज है । जिसने एक बार भी इसका व्रत कर लिया वह स्त्री स्वर्ग जाती है । उस स्त्री के वचन सुनकर शान्त होकर शबरी ने राजश्रेष्ठ । उस स्त्री के वचन आकर कहे । आज तो बालक वृद्धों से उपवास की गयी पुण्य दायिनी एकादशी तिथि है । सर्व पाप विनाशकारी

आज मदनैकादशी तिथि है । यहाँ श्रेष्ठ सुन्दरी कोई राजकुमारी नियम से युक्त है । वह नियत आहार वाली व्रत में स्थित भानुमती नामक पतिव्रता सुनी जाती है ।।७३/७६।। तीनों लोकों में इस राज पुत्री के समान कोई प्रसिद्ध नहीं है । पृथिवी में वह सुन्दरी अवतार लिए हुए दृष्टिगोचर हो रही है । स्त्री के वचन सुनकर शबर ने उससे कहा--तुम शीघ्र ही दाम के अनुसार कमलों को देकर भोजन करो मेरी यह बुद्धि हो रही है कि मैं भौजन आज न करूँ । भद्रे ! अपनी पाप बुद्धि के कारण मैंने शुभ कल्याण या पुण्य का संग्रह कभी नहीं किया । शबरी ने कहा--नाथ ! मैं भी तुमसे पूर्व किसी दिन भोजन नहीं किया । तुम्हारे भोजन से बचा अन्न ही मैंने सदा खाया है । ऐसा मैं याद करती हूँ । स्त्री के निश्चय को जानकर वह स्नान करने गया । आधे उत्तरीय वस्त्र से श्रद्धा पूर्वक स्नान कर भक्ति से सम्पूर्ण देवों को प्रणाम कर देव शिला के पास गया । शंकित होकर भी वह भगवान को नमन कर स्थित हुआ ।।७७/७२।। शबरी ने जिस स्त्री को दो कुमुद दिये थे उसने उन्हें रानी को दिया । उन पुष्पों को देखकर तब उसने उस दासी से कहा--इन पुष्पों को तुमने कहाँ पाया है मुझे बताओ ? शीघ्र वहाँ जाकर तुम और कमल पुष्प ले आओ । अन्न व धन देकर तुम कमल पुष्प ला दो । भानुमती के वचन सुनकर वह शबरी के पास गयी और बोली--मुझे तुम और श्रीफल और बहुत फूल दो । शबरी ने कहो--मैं तुम्हें पुष्प और श्रीफल विशेष रूप से दूँगी । किन्तु इसके बदले में कोई लाभ नहीं चाहती कुछ कामना मुझे नहीं है । यह जाकर रानी से कह दो । उस दासी ने वहाँ शीघ्र जाकर उस वृत्तान्त का उससे निवेदन किया । शबरी के कहे वचनों को विस्तार से उस दासी ने कहा--दासी के वचन सुनकर रानी स्वयं वहाँ गयी । बड़े प्रेम से

रानी ने शबरी से कहा--तुम मूल्य लेकर कमल पुष्प दे दो ।।८३/८९।। शबरी ने कहा--देवी ! मैं फल पुष्पों का कोई मूल्य नहीं चाहती हूँ । मुझसे आप इच्छानुसार श्रीफल और पुष्प ले लो, विधि पूर्वक तुम भगवान् विष्णु की पूजा करो । रानी भानुमती ने कहा--इस समय में तुम्हारे कमल पुष्पों को बिना मूल्य नहीं लूँगी, एक बुखारी परिमित अन्न मैं इसके बदले तुम्हें दूँगी तुम ग्रहण करो । दस बीस अथवा तीस चालीस बुखारी परिमित अन्न चाहे ले लो । और इससे भी अधिक सौ बुखारी ले लो (प्रायः १२८ सेर की एक खारी होती है) दुर्भिक्ष रूपी समुद्र से भी तुम पार हो जाओ । धन रत्न सोना जो कुछ तुम्हें इष्ट हो वह सब कमल प्राप्ति के लिए में दूँगी इसमें संशय नहीं । शबरी ने कहा--देवि ! हे सुन्दर मुख वाली ! आज मैं भगवान् को छोड़कर भोजन की चिन्ता नहीं करती । कल्याणि ! देव कार्य के सिवा मेरी और कोई इच्छा नहीं है । रानी ने कहा--तुम अन्न मत छोड़ो अन्न में ही सब स्थित है । उससे सब प्रकार से तुम मेरा अन्न ले लो । तपस्वी महा भाग्य शाली जो वन में रहने वाले महात्मा हैं वे सभी गृहस्थ के द्वार पर सावधान होकर अन्न की याचना करते हैं ।।९०/९६।। शबरी ने कहा--मैंने पहले ही कुछ लेना मनाकर दिया है । रानी जी सब सत्य में ही स्थिर है । सत्य से ही सूर्य तपते हैं । सत्य से ही अग्नि देव जलते हैं । सत्य से समुद्र मर्यादा में रहता है । वासुदेव सत्य से ही रहते हैं । सत्य से सत्य का पाक होता है । सत्य में ही गाय दूध बहाती हैं । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सत्य के ही आधार में टिका हुआ हुआ है । इसमें सब प्रकार से सत्यता से सत्य की रक्षा करनी चाहिए देवकार्य को छोड़कर मेरी कोई अन्य इच्छा नहीं है । रानी जी तुम पुष्प लो आंर भगवान् विष्णु की श्रद्धा से पूजा

करो ।।९७/१०१।। यह तो सुना ही जाता है कि ब्राह्मण के वचनों से कहीं कोई दोष नहीं होता । कुश शाक दूध गन्ध पुष्प अक्षत दही शय्या आसन भुनी वस्तुएं और जल आदि प्राप्त वस्तु का तिरस्कार नहीं करना चाहिये । रानी ने कहा--उद्यान में भेंट से प्राप्त हुआ पुष्प, और वन में मिला पुष्प, खरीदा गया पुष्प दान में मिला पुष्प ये चार प्रकार के पुष्प हैं । सबसे उत्तम पुष्प वन में मिला पुष्प जो स्वयं अपने द्वारा लाया गया हो । बगीचे में प्राप्त पुष्प मध्यम श्रेणी का है । खरीदा पुष्प नीच श्रेणी का माना गया है । जो पुष्प दान से प्राप्त होता है विद्वान् उसे निष्फल कहते हैं । पुरोहित ने कहा-रानी तुम फल ले लो भगवान् विष्णु की पूजा करो । किसी बहाने से इसका आप उपकार कर देना । श्री शंकरजी ने कहा--शबरी के दिये कमल सहित श्रीफलों को लेकर उस रानी ने भगवान की बड़ी उत्तम पूजा की ।।१०२/१०६।। पुराणों की कथा सुनकर रात्रि जागरण किया । तब शबरी ने अपनी स्त्री से यह वचन कहा--सुन्दरि ! यथा शक्ति दीप के लिए तैल ले लो । तब दीपक प्रज्वलित कर उन दोनों ने भगवान् की उत्तम पूजा कर भगवान् का चिन्तन करते हुए रात्रि में जागरण किया । तदनन्तर प्रातः काल स्नान के लिए उत्सुक लोगों को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने देखा कि कुछ लोग शूल भेद में नहा रहे हैं । दूसरे देव नदी में कुछ सरस्वती में दूसरे मार्कण्डेय कुण्ड में, कुछ लोग चक्रतीर्थ में जाकर विधि पूर्वक स्नान कर रहे हैं ।।१०७/१११।। उन सभी ने स्नान से पवित्र होकर देव शिला के ऊपर प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध किया । उन लोगों को श्राद्ध करते देखकर शबर ने भी प्रयत्न पूर्वक बिल्व फलों से पिण्ड दान किया । भानुमती ने अपने पति को पिण्डदान किया । शुद्ध सदाचारी, पाखण्ड आदि दोषों से रहित ब्राह्मणों को भोजन कराया हविष्य अन्न (हवि देने योग्य खीर पूड़ी आदि) दही, शर्करा, शहद, घृत और पायस (खीर) तथा शुद्ध संस्कृत अन्न से सदाचारी विद्वान ब्राह्मणों को खिलाकर रानी ने विधिपूर्वक दान दिया । खड़ाऊँ, जूते, छत्र,

शय्या, बैल (साँड़) और अनेक दान सुवर्ण, रत्न; धन आदि दिया। महाराज ! चक्रतीर्थ में जो पुरुष कपिला गाय देता है उसने पर्वत वन सहित पृथ्वी मानो दे डाली हो ।।११२/११६।। उत्तानपाद ने कहा--देवेश ! राजा को जो जो दान श्रेष्ठ बताये गये हों कृपा कर उन सब दानों को तुम मुझसे कहो । श्री शंकर ने कहा--तिलों को देने वाला सुन्दर संतान को; दीप दान करने वाला उत्तम नेत्र को पाता है । भूमि को देने वाला स्वर्ग पाता है । सुवर्ण को देने वाला दीर्घ आयु, घर को देने वाला रोग रहित होता है । स्वर्ग, रथ गाड़ी शैय्या देने वाला स्त्री तथा अभय देने वाला एश्वर्य पाता है । अन्न देने वाला सदा सुखी, ब्रह्म विद्या का देने वाला सनातन ब्रह्म को पा लेता है । जल, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घृत आदि सभी दानों में ब्रह्म दान ज्ञान दान सबसे बढ़कर है । मनुष्य जिस जिस भाव से जो जो दान देता है उस उस भाव से ही वह क्रमशः फल पाता है ।।११७/१२२।। रानी के दिये सब दानों को देख कर शबर ने पत्नी से जो कहा--राजन् ! वह तुम सुनो ! भद्रे ! वेदों के पारगामी ब्राह्मणों ने पुराणों का पाठ किया, वह सब दान धर्म का शुभ फल मैंने सुना है । पूर्व जन्म से सञ्चित पाप को स्नान, दान, व्रत आदि से नष्ट कर दुःख से छूटने वाले शरीर को छोड़कर मनुष्य उत्तम गति पाता है । कल्याण शीले ! मैं संसार से डरा हुआ हूं तुमसे सत्य कहता हूँ । मैंने अनेकों पाप बहुत बार किये हैं बहुत जीवों की हत्या की है । सदा ही पर्वतों को जलाया है उस पाप से मैं जल रहा हूँ । मेरी दरिद्रता नहीं हट रही है मुझ पापी ने पहले तीर्थ-स्थान भी नहीं किया ।।१२३/१२८।। भद्रे ! इससे मैं बहुत दुःखी हूं मुझे सदा की दरिद्रता प्राप्त हुई है अतः अब तुम माता के घर जाकर रहो मुझ पर किये स्नेह भाव को छोड़ दो पहाड़ की चोटी पर चढ़कर अब मैं अपने शरीर को छोड़ना चाहता हूँ । शबरी ने कहा--मुझे भी माता पिता से कोई कार्य नहीं और स्वजन बान्धवों से भी कोई प्रयोजन नहीं है प्राणनाथ ! जो गति तुम्हारी होगी वही गति

मुझे भी इष्ट है। स्त्रियों का कोई ऐसा धर्म भी नहीं है पति के बिना उसका जीवन भी नहीं है। धर्म शास्त्रों में अनेक प्रकार के स्त्री शरीर में दोष सुने जाते हैं अतः भोजेन्द्र शबर ! तुम अब पारण करो जिससे तुम्हारा व्रत नष्ट न हो। जो तुम्हारी चाहना हो करने की इच्छा हो वह विष्णु के उद्देश्य से करो। स्त्री के वचन को सुनकर वह शबर तब बड़ा प्रसन्न हुआ। श्रीफल लेकर विधि पूर्वक शीघ्र ही हवन कर उसने सब देवों को प्रणाम कर उस स्त्री के साथ भोजन किया। चैत्र की पूर्णमासी में विषुवत काल जानकर वहाँ वह तीन दिन और रहा ॥१२९/१३४॥

इति श्री छप्पनवां अध्याय ॥

सत्तावनवां अध्याय

व्याघ्र के स्वर्ग गमन का वर्णन

ईश्वर उवाच-- *भानुमती द्विजान्भोज्य बुभुजे भुक्तशेषतः ।*
भुक्त्वा सुसुखमास्थाय तदन्नं परिणाम्य च ॥

सवैया-- धर्म-अर्थ काम-मोक्ष चारों पदारथ नर, नर्मदा के दर्शन से सहज ही पाते हैं ।
जाने अनजाने श्री नर्मदा सलिल नहाय, पृथ्वी के मानव संतोष मोक्ष पाते हैं ॥

भानुमती ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर शेष भोजन से स्वयं भोजन किया। भोजन करके सुख पूर्वक बैठकर अन्न का परिपाकसा करती हुई पीछे कामदेव की तिथि त्रयोंदशी के दिन मार्कण्डेय कुण्ड में जाकर स्नान किया। सबके अंतःकरण में रहने वाले भगवान श्री विष्णु की पूजा की। उपवास का नियम शुद्ध जल एवं पञ्चामृत से तथा सुगन्धित द्रव्यों से नहलाकर धूप दीप निवेदन करती हुई विचित्र पुष्पों से एवं सुन्दर नैवेद्य से भगवान शंकर की पूजा की। रात्रि में जागरण कर पुराणों की कथा सुनती हुई नृत्य-गीत और स्तोत्रों से भगवान शंकर का ध्यान किया भगवान के सम्मुख विधिपूर्वक सिद्ध किया सब अन्न फैलाया ॥१/५॥ चारों वर्णों के

तथा परिवार के सभी लोगों को भोजन कराया गया चतुर्दशी पर्यन्त श्री शंकर जी की पूजाकर शंख विविध बाजे ढोलको और पटाकों की ध्वनि से शब्दायमान करती हुई बहुत जनों के साथ रात्रि जागरण करके नृत्य गीतों तथा स्तोत्र पाठों से वह रात्रि बिताई । प्रातः काल खीर शहद और घृत आदि की सामग्री द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराया । अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को योग्यता के अनुरूप उनको दान देकर सुगन्धित पुष्पों से इच्छा पूर्ति उनकी पूजाकर विचित्र सूक्ष्म वस्त्रों से भगवान को पूजित कर वेष्टित किया सुन्दर मालाओं तथा बहुत दीपकों से प्रकाशमान--अनेक प्रकार के भोज्य पक्वान्नों से सुन्दर स्वादिष्ट लड्डू आदि पदार्थों से उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सम्मानित किया । वे सभी ब्राह्मण वेद पाठी और योग्य थे ।।६/११।। उन लोगों ने उस पर्व को पद्मक नाम से कहा है । आज सूर्य का दिन पूर्णमासी तिथि चित्रा नक्षत्र है । संक्रान्ति और विषुवत काल भी है । व्यतीपात योग्य विष्टिकरण है अतः इसे 'पद्मक' कहते हैं । अयन आदि के पुण्य से यह चतुर्गुणित चौगुणा फल देने वाला है । इस 'पद्मक' योग में दिया गया दान हवन जप सभी अक्षय हो जाते हैं । वे सभी ब्राह्मण भानुमती के साथ शूल भेद गये । उस समय वहाँ उन्होंने स्त्री के साथ स्थित शबर को कुण्ड में देखा । राजन् ! वह ईशान कोण की ओर पर्वत में चोटी के ऊपर जाकर स्त्री के साथ गिरने को तत्पर हुआ ।।१२/१६।। भानुमती ने कहा--बहुत धैर्य धारण करने वाले वीर ! तुम ठहरो ! ठहरो ! मेरे वचन सुनो । तुम अपने प्राणों को छोड़ रहे हो ? अब तुम भी युवक हो तुम्हें क्या सन्ताप है ? क्या घबराहट है ? क्या दुःख है ? क्या रोग है ? तुम आज भी बच्चे दे दिखाई पड़ रहे हो । इसका कारण बतलाइये । शबर ने कहा--इसमें मेरा कोई कारण नहीं कुछ दुःख भी नहीं है । मैं संसार के भय से डरा हूँ । मेरी

अब बुद्धि अन्य विषय में प्रवृत्त नहीं होती । बड़े सौभाग्य से मनुष्य जन्म मिलता है । इसे पाकर भी जो धर्म का उत्तम आचरण नहीं करता हे सुन्दरि ! वह अपने ही दोष से घोर नरक में जाता है । अतः पापों के नाशक इस तीर्थ में ही मैं गिरना चाहता हूँ ।।१७/२१।। रानी ने कहा--आज भी धैर्य का उपार्जन का समय है खोटे कर्म करने वाला मनुष्य भी निश्चय ही व्रत और दान से शुद्ध हो जाता है । मैं तुम्हें अन्न वस्त्र और बहुत सामग्री दूँगी भगवान शंकर का ध्यान करते हुए तुम नित्य ही धर्म का आचरण करो जीवित रहो । शबर ने कहा--मैं धन धान्य और वस्त्र नहीं चाहता राजकुमारी ! जो पुरुष जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप खाता है । रानी ने कहा--कन्द-मूल-फल मात्र का आहार करते हुए तथा घूमकर उत्तम भिक्षा नियमानुसार करते हुए और अच्छे तीर्थों में स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।२२/२५।। पश्चात् पाप रहित होकर शुद्ध हो जाते हैं उस कर्म से तुम भी पवित्र होकर निश्चय ही उत्तम गति पाओगे शबर ने कहा--प्राणों से भी श्रेष्ठ अर्थात् प्राण रक्षा के कारण अन्न को आज मैंने छोड़ दिया है सत्य का लोप न हो । हे देवी ! मेरी ऐसी निश्चित बुद्धि है तुम मुझपर अनुग्रह करो आज तुम सब लोगों के साथ मुझे क्षमा करो । ऐसा कहकर आधे उत्तरीय वस्त्र से अपने को बाँधकर वह इसके लिए उद्यत हुआ । स्त्री के साथ बहेलिया फिर भगवान का ध्यान कर ऊपर से कूद पड़ा । राजन् ! पहाड़ के अर्ध भाग से गिरकर वह जीव रहित हो गया राजन् ! उन दोनों को कुण्ड के ऊपर चूर्णित देखा । कुछ समय बीतने पर शबर अपनी पत्नी के साथ दिव्य विमान पर चढ़कर अति-उत्तम गति को प्राप्त हुआ ।।२६/३१।। सन्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।५७।।

▬▬▬▬▬

अट्ठावनवां अध्याय

शूलभेद तीर्थ की महिमा का वर्णन

उत्तानपाद उवाच--अथतो देव देवेश भानुमत्यकरोत्र किम् ।
एष मे संशयों देव कथयस्व प्रसादतः ॥

सवैया-- शुभ और शांति का प्रतीक है शिव का नाम, शत्रुओं को वर देकर भोला कहाते हैं ।
बर्फ में वास नित्य नर्मदा के साथ नित्य राम के भजन में मन सों डमरू बजाते हैं ॥

उत्तानपाद ने पूछा--देवाधिदेव ! हे ईश्वर ! इसके अनन्तर भानुमती ने फिर क्या किया वह मुझे शंका है । कृपाकर कहो । शंकरजी बोले--वह भानुमती कुछ समय विचार कर कुण्ड के पास पहुँची । कुण्ड की महिमा देखकर रानी हर्ष से पूर्ण हो गयी । अनेकों ब्राह्मणों को बुलाकर उसने उसी समय सब की पूजा की । राजकुमारी । ब्राह्मणों को विधि पूर्वक दान देकर वह उत्तम निश्चय कर शान्त चित्त से स्थित हुई । राजन् ! तदनन्तर पितृ गणों तथा देवों की भी पुनः विधिवत् पूजा कर चैत्र मास के एक पक्ष को बिताकर वह स्थित रही । फिर वह रानी अमावस्या तिथि में उस पर्वत के पास गयी । पहाड़ की चोटी पर चढ़कर हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणों को देखती हुई उनसे यह वचन बोली ॥१/६॥ मेरे माता पिता भाई बन्धु बान्धव मित्र आदि जो है आप लोग उनसे क्षमा प्रार्थना कर मेरा वचन जाकर कहिये कि तुम्हारी पुत्री शूल भेद तीर्थ में अपनी शक्ति से तपकर उसी तीर्थ में अपने शरीर को छोड़कर स्वर्ग को प्राप्त हुई । ब्राह्मणों ने कहा--उत्तम व्रतवाली रानी । तुम्हारे माता-पिता से कह देंगे । हे सुन्दर मध्य भाग वाली इस विषय में तुम संशय मत करो । तब उन सबको छोड़कर वह पर्वत की चोटी पर स्थित हुई । आधे उत्तरीय वस्त्र से बारम्बार दृढ़तापूर्वक बाँधकर राजन् ! एक चित्त होकर उसने अपने को फेंक दिया । ज्योंही वह पहाड़ के आधे भाग में पहुँची त्यों ही बहुत सुर सुन्दरियाँ दिखाई पड़ी । वे बोली बेटी महा

भाग्य शीले ! बड़ी तपस्विनी हो ! तुम दिव्य विमान पर चढ़कर कैलाश जाओ ।।७/१२।। तब वह सबके देखते देखते चली गयी । मार्कण्डेय जी ने कहा- इस प्रकार तुमसे हमने शूलभेद का विस्तार से वर्णन किया जिसे हम ने पहिले ऋषियों और देवों के समागम में श्री शंकर से सुना था । जो पुरुष इस चरित्र को तीर्थ में अथवा देव मन्दिर में पढ़ता है या सुनता है वह पुरुष करोड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है । ब्राह्मण को मारने वाला, शराब का पीने वाला, चोरी करने वाला, गुरु शय्या अथवा गुरु पत्नी का गमन करने वाला, गो हत्यारा तथा देव ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाला, स्वामी का द्रोह करने वाला, मित्र को मारने वाला, विश्वास घाती, दूसरों की धरोहर को हड़पने वाला या उसे नष्ट करने वाला उसको छिन्न-भिन्न करने वाला, तुला तोल माप को ठीक न रखने वाला, केवल अन्याय पूर्वक ब्याज आदि से धन कमाने वाला तथा कन्या को बेचने वाला, दूसरे की स्त्री तथा भाई की स्त्री, गाय पुत्र वधू और कन्या इनमें गमन करने वाला एवं दूसरों से द्वेष करने वाला, धर्म को दूषित करने वाला, ये सभी पापी-शूल भेद के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं ।।१३/२०।। राजन् ! जो मनुष्य इस चरित्र को श्राद्ध कर्म में भोजन करते हुए ब्राह्मण सुनता है । उसके पितृ गण सब प्रकार से परम प्रसन्न होकर विदा होते हैं और जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर भक्ति से पढ़े जा रहे इस शूल भेद तीर्थ के माहात्म्य को सुनता है वह सब पापों से मुक्त होकर सब भाँति कल्याण पाता है । यह कीर्ति बढ़ाने वाला परम पवित्र आख्यान है पढ़ने सुनने वाले मनुष्यों की आयु और कीर्ति को बढ़ाने वाला है । इस प्रकार नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित शूल भेद तीर्थ की बड़े-बड़े पापफन्दों के काटने में कुदाल के समान पुण्य महिमा को मैंने कहा हैं । पापी पुरुष ही उसे नहीं सुनते ।।२१/२४।।

अट्ठावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।५८।।

उनसठवां अध्याय

पुष्करिणी में आदित्य तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः पुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
श्रुते यस्याः प्रभावे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

सवैया-- मानव के कलेवर के अन्दर और बाहर विष ही विष है, भक्त हित वचनों में अमृत बरसाते हैं ।
सुन्दर शरीर पर असुन्दर श्रृंगार बना, शंकर इस जग में प्रलयंकर कहलाते हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर मनुष्य सब पापों को नष्ट करने वाली पुष्करिणी की यात्रा करे । जिसका प्रभाव सुनने पर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । नर्मदा के उत्तर तट पर परम पवित्र एक तीर्थ है । जहाँ भगवान वेद मूर्ति श्री सूर्यनारायण सदा विराजमान हैं जिस प्रकार कुरुक्षेत्र सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला उत्तम क्षेत्र है उसी प्रकार यह तीर्थ भी सब कामनाओं या फलों को देने वाला पुण्य क्षेत्र है । राजन् ! जिस प्रकार कुरुक्षेत्र में दान की वृद्धि होती है उसी प्रकार पुष्करिणी में भी दान का प्रभाव बढ़ता है इसमें संशय नहीं । हे राजन् ! जो पुरुष इस तीर्थ में सुवर्ण निर्मित एक गऊ दान देता है, जिस प्रकार नर में उत्तम स्थानीय है उसी प्रकार पुष्करिणी में उस दान की भी स्थिति उत्तम मानी है । जो पुरुष सूर्य ग्रहण में स्नान कर विधि पूर्वक दान देता है । हाथी, घोड़े, रथ, रत्न आदि घर गौएँ गाड़ी ले चलने वाले बैल सुवर्ण चाँदी आदि वस्तुएं तेरह दिन तक ब्राह्मणों को देता है उसे तेरह गुना फल होता है । जो पुरुष तिल युक्त जल से पितृ देवों का तर्पण करता है राजन् ! उसे तीर्थ में बारह वर्ष में सिद्धि प्राप्त होती है । जो पुरुष वहाँ खीर से शहद या घृत से श्राद्ध करता है वह मनुष्य उससे स्वर्ग पा जाता है । वहाँ पितृ निमित्तक दान अक्षय होता है । मनुष्य उस तीर्थ में अक्षत बेर इंगुदी फल और बेल से बिलों के साथ तर्पण करने पर अक्षय फल पाता है । उस तीर्थ में निश्चय ही यह फल होता है इसमें संशय नहीं । जो मनुष्य वहाँ स्नान कर सूर्य की पूजा करता है, आदित्य

हृदय जपकर पुनः श्री सूर्य का पूजन करता है वह पुरुष देवों से वन्दित उत्तम माना जाता है। राजन् ! जो पुरुष वहाँ ऋग्वेद की एक ऋक या यजुर्वेद सामवेद के एक-एक मन्त्र का जप करता है वह पुरुष निश्चय ही सम्पूर्ण वेद का फल पाता है जो पुरुष सूर्य नारायण का ध्यान करते हुए तीन अक्षर वाले ओंकारार्थक मन्त्र का जप करता है। वह पुरुष आदित्य हृदय का जपकर सब पापों से छूट जाता है। श्रेष्ठराजन् ! जो पुरुष वहाँ विधि पूर्वक प्राणों को छोड़ता है वह पुरुष उस उत्तम स्थान को जाता है जहाँ भगवान सूर्य विराजमान हैं ॥१/१४॥ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

आदित्येश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- भूयोऽप्यहं प्रवक्ष्यमी आदित्येश्वर मुत्तमम् ।
सर्वदुःखहरं पार्थ सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

सवैया-- आदि और अन्त जाको कोई जान नहीं पावत है, अमरकंटक से माँ नर्मदा प्रगटानी है ।
जाको जस गावत प्राणी भवसागर पार होत, वेद और पुराण जाकी महिमा बखानी हैं

श्री मार्कण्डेय जी बोले--पृथानन्द युधिष्ठिर ! मैं फिर सब दुखों के विनाशक सब विघ्नों के विघातक उत्तम आदित्येश्वर की महिमा का वर्णन करूँगा। यह आदित्येश्वर तीर्थ आयु-लक्ष्मी का बढ़ाने वाला पुत्र स्वर्ग का देने वाला परम कल्याण मय है। कुरु-वंशोत्पन्न ! स्वर्ग मनुष्य लोक और पाताल में अन्य तीर्थ जिसकी शोभा नहीं पाते। कुरुक्षेत्र गया, गंगा, नैमिषारण्य और पुष्कर, वाराणसी, केदार, प्रयाग, रुद्रनन्दन, स्वामी कार्तिकेय महाकाल, सहस्राक्ष--इन्द्र तीर्थ, शुक्ल तीर्थ, ये सभी तीर्थ राजश्रेष्ठ ! आदित्येश्वर तीर्थ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है। राजश्रेष्ठ आदित्य तीर्थ में जो हुआ वह तुम सुनो ॥१/५॥ मैं बहुत वृद्ध हूँ पर तुम्हारे स्नेह से कह रहा हूँ। बड़े प्रभावशाली सभी तपस्वी महर्षि

सुनो । भगवान शंकर के पास नन्दी और स्कन्द आदि गणों के साथ मैंने सुना है । पार्वती जी ने श्री शंकर जी से आदित्य तीर्थ का जो फल पूछा है तथा बड़े प्रेम से जिसे पार्वती जी को श्री शंकर जी ने कहा--उस सम्पूर्ण श्री शंकर के उपदेश को मैंने एकाग्रचित से सुना है । वह सर्व मैं तुमसे कहूँगा । पाण्डव ! तुम यह सब ध्यान से सुनो पहले की बात है--दुर्भिक्ष से पीड़ित ब्राह्मण किसी समय नर्मदा तट पर पहुँचे । उद्दालक वशिष्ठ, माण्डव्य, गौतम, याज्ञवल्क्य, गर्ग, शाण्डिल्य, गालव, नाचिकेत, विभाण्डक, बालखिल्य आदि शाखातप शंख, जैमिनी, गोलिक, जैगीषव्य, शतानीक ये सभी ऋषि वहाँ आये । उनने नर्मदा की चारों ओर से तीर्थ यात्रा की ।।६/१२।। क्रमशः वे ऋषि वृक्षों से ढके हुए धावड़ा, तेदू, पाटल वृक्षों से उज्जवल आदित्येश्वर तीर्थ पर पहुँचे । वह तीर्थ जम्बीर, अर्जुन, कुब्जशमी, केसर, किंशुक के वृक्षों से परिपूर्ण था । उस महापुण्य मय सुगन्धित पुष्पों से भरे हुए पुन्नाग नारियल खैर कल्पवृक्षादि वृक्षों से भी पूर्ण अनेकों जंगली जीवों से भरे हुए मृग विलावों से युक्त रीछ, हाथियों से व्याप्त चीतों से भरे हुए फूलों से सुशोभित वन में सभी ऋषि प्रविष्ट हुए वहाँ उन ऋषियों ने रक्त वर्णवाली रक्त वस्त्रों से युक्त तथा लाल पुष्पों की मालाओं से सुशोभित रक्त चन्दन से अलंकृत लाल आभूषणों से भूषित हाथों में पाश लिये हुए भयानक स्त्रियों को वन के मध्य में देखा ।।१३/१८।। उसके समीप ही काले मेघों के समान विशाल शरीर वाले भयानक मुख वाले हाथों में पाश लिये हुए भयंकर वर्षा के अभाव में वीरान प्रदेश के तुल्य व्याकुल पीले नेत्रों वाले पुरुषों को भी देखा । वहाँ ऋषियों ने बड़ी जिह्वावाली, विकराल मुख, पैनी दाढ़ी वाली, भयंकर एक दूसरी वृद्धा नारी को देखा । कुरुक्षेत्र ! भरत वंशोत्पन्न राजन ! तदनन्तर वह वृद्धा समूह के पास गयी । उन पापियों ने स्वाध्याय में लगे हुए ब्राह्मणों को देखा । वे तप में लगे हुए समूह रूप में बैठे हुए ब्राह्मणों से बोले--पूज्यो ! हमारे स्वामी वहीं स्थित है आप उनके पास जाओ और

शीघ्रता से उनका उद्धार करो। उनके वचन सुनकर वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण शीघ्रता करते हुए नर्मदा तट पर पहुँचे और नर्मदा जी का दर्शन कर कुछ ऋषि उनकी स्तुति करने लगे दूसरे देवि ! तुम्हारी जय हो तुम्हें हमारा नमन है यह कहने लगे ।।१९/२४।। सिद्ध गणों से सेवित माता तुम्हें मेरा प्रणाम हो। सब में पवित्र रूपे मंगल स्वरूपे ! तुम्हें नमस्कार है। ब्राह्मणों में सम्मानित तुम्हें सादर प्रणाम है। शंकर के अंग से उत्पन्न श्रेष्ठ रूप वाली ! तुम्हें मेरा नमन हो। सब पवित्रों को भी पवित्र करने वाली ! तुम्हें नमन है। वर देने वाली ! सुख देने वाली ! पापों को हरने वाली ! विचित्र प्रभाव वाली नदियों में श्रेष्ठ माता तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ। अनेक जीवों से सेवित अंगों वाली गंन्धर्व यक्ष सर्प आदि को पवित्र करने वाली तुम सदा ही पवित्र हो। बड़े-बड़े हाथियों महिषों सूकरों के द्वारा तुम्हारा जल पिया जाता है। माता तुम जल की बड़ी-बड़ी तरंगों की मालाओं से युक्त हो ।।२५/२७।। सब में श्रेष्ठ सुख देने वाली ! देवि ! तुम पाप नाशों से जकड़े हुए हम सबको पापों से मुक्त कर दो। तभी तक मनुष्य नरकों में घूमते हैं जब तक तुम्हारे जल का आश्रय नहीं लेते हैं। यदि तुम्हारा जल चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से स्पर्श पा लेता है तो मनुष्य को परम पद दे देता है। कमल के समान मुख वाली ! संसार में अनेकों भयों से पीड़ित, अनेकों पापों से घिरे हुए बहुत द्वन्दों-राग द्वेष आदि से पूर्ण मनुष्यों के उद्धार के लिए तुम्हीं गति हो। देवि ! नदियाँ तुममें मिलकर निर्मल और पवित्र होती हैं इसमें संशय नहीं। दुःखी पुरुषों को तुम अभय देती हो। अनेकों महापुरुष तुम्हारी पूजा से धन्य हो गये ।।२८/३१।। मातः जब कि जीव तुम्हारा जल स्पर्श नहीं करते तभी एक विष्ठा-मूत्र से भरे देह वाले देहाभिमान रखते हुए मनुष्य नरकों में भ्रमण करते रहते हैं। देवि ! म्लेच्छ पुलिन्द--नीच जंगली जात वाले राक्षस ये सभी जो तुम्हारे पुण्य जल को पीते हैं वे भी बड़े भय से छूट जाते हैं। फिर उन ब्राह्मणों के विषय में क्या कहना है जो स्वयं संसार-बन्धन से डरे

हुए हैं। इस घोर कलियुग के फैलाव में सरोवर और नदियाँ सूख जाती हैं हे देवि ! पर तुम आकाश गंगा की भांति जल-राशि से पूर्ण होकर शोभित होती है। वर देने वाली देवि ! तुम्हारी कृपा से हम लोग जिस प्रकार इस समय का परिपालन कर मोक्ष वाले, तुम वैसी हम पर कृपा करो। जो पुरुष तुम्हारा आश्रय लेकर तुम्हारी शरण में जाते हैं तुम उन पुत्रों को माता पिता के समान पालती हो हे मात ! जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा पालित होकर हम सब वर्षा के अभाव से नष्ट इस भयंकर समय को पार कर दे वह करे। युधिष्ठिर ! ऐसी स्तुति की जाने पर तब नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा की परा मूर्ति ब्राह्मणों के सन्मुख प्रकट हुई। श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! जो मनुष्य परम भक्ति से युक्त परम-शान्त होकर इस नर्मदा स्तोत्र को पढ़ते हैं वे दिव्य वस्त्रों से भूषित अंग वाले होकर वृष से युक्त विमान से श्री शिव को पाते हैं ॥३२/३८॥ जो पुरुष नर्मदा के जल में स्नान कर इस स्तोत्र का निरन्तर जप करते हैं, अन्त काल में पुरुषों को यह उत्तम शीघ्र गति देती है। जो पुरुष प्रातः काल उठकर अथवा सोते हुए लेटे हुए प्रति दिन इस उत्तम स्तोत्र को पढ़ता है महा प्रभाव शाली युधिष्ठिर ! भगवती नर्मदा उस पुरुष के शरीर का क्षय होने पर अपने जल में स्थान देती है और उसे उत्तम आश्रय भी देती हैं ॥३९/४०॥ ऐसे पुरुष ही पापों से छूट कर स्वर्ग में हर्षित होते हुए दिव्य भोगों को भोगते हैं अन्यथा नहीं। भरत वंशोत्पन्न राजन् ! इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर नर्मदा जी दक्षिणाभिमुख बहती हुई जल से अभिषिक्त ब्राह्मणों से बोली--मैं तुम्हें वह अमृत भाव देती हूँ योगीजन भी जिसे नहीं पाते। जो सम्पूर्ण देवों को भी दुर्लभ हैं वह तुम सब मेरी कृपा से पाओगे। इस प्रकार राजन् ! उन ब्राह्मणों ने प्रसन्न चित्त होकर अतिश्रेष्ठ वर पाकर जाते हुए एक बड़ा आश्चर्य देखा। मार्कण्डेय जी ने कहा--कुन्ती नन्दन ! उन लोगों ने नर्मदा के तट पर बैठे हुए स्नान-देव पूजन में लगे हुए पाँच महा बलशाली पुरुषों को देखा। सारे वेदांग पारगामी ब्राह्मणों

ने उन्हें देखा और उनसे जो पूछा महाराज । उसे तुम सुनो ।।४१/४६।। ब्राह्मणों ने कहा--वन के बीच में भयंकर स्त्रियों के जोड़े को देखकर और पाश हाथ में लिए हुए भयंकर दुःख में देखने योग्य, बड़े चंचल; शुभ-वाणी बोलते हुए वृद्ध पुरुषों को देखकर वहाँ जाने का साहस नहीं होता था । वे सब परस्पर एक दूसरे को बार बार देख रहे थे । वे जो परस्पर बात कर रहे थे वह सब तुम सुनो । हमारे में पाँच पुरुष स्थित है । श्रेष्ठ सज्जनों । तुम लोग शीघ्र ही उनका उद्धार करो ।।४७/५०।। इसके अनन्तर वे पाँचों पुरुष इस शुभ वचन को सुनकर एक दूसरे को देखते हुए बारम्बार कहने लगे वे कहां है किसके है कहां से गये हैं ? उनने क्या कहा है ? पुरुषों ने कहा--सभी ने पूर्व; पश्चिम, उत्तर दक्षिण के तीर्थ में स्नान किया है किन्तु उनसें भक्ति पूर्वक पापों का नाश नहीं हो सका पर इस तीर्थ के प्रभाव से पाप रहित हो गये हैं । अग्नि और काल के समान सामर्थ्य वाले ब्राह्मणों । आप सभी सुनो । देह धारियों को गिराने वाले अचिन्त्य भयानक जो पाप है उनमें एक बड़े पापी ने तो गुरु पत्नी का गमन किया है ।।५१/५५।। दूसरे ने मित्र का धन सुवर्ण आदि हड़पा है । अन्य दूसरे ने बड़ी भयंकर ब्राह्मण की हत्या की है, जो बड़ा पाप है और चौथे ने अनिच्छा से ही सुरापान किया है । पाँचवे पापी ने बिना कामना के ही गाय की हत्या कर डाली है । राजन् ! यद्यपि कामना के बिना ही सबके ये पाप हुए हैं । उस समय ब्राह्मणों के उद्धार करने के वचन सुनकर वे बड़े विस्मय में पड़ गये । वे बड़े पापी शीघ्र ही ब्राह्मणों की आज्ञा मानकर पाप रहित हो गये । श्री नर्मदा के इस तीर्थ के प्रभाव से सभी पापी मुक्त हो गये । यहाँ पापों का प्रवेश किसी भी रूप में सम्भव नहीं है ऐसा विचार कर सभी पापी जनों ने मन में श्री भगवान का ध्यानकर अग्नि देव का चिन्तन किया । पवित्र नर्मदा के जल में स्नान कर पितृ देवों का तर्पण किया ।।५६/६१।। सूर्य नारायण को प्रणाम कर हृदय में भगवान विष्णु का ध्यान कर प्रज्वलित हो रहे अग्नि देव की

भक्तिपूर्वक परिक्रमा कर पाण्डव श्रेष्ठ ! राजन पापों से छटपटाते हुए सात्विक वासना बनाकर रजोगुण तमोगुण को त्यागकर नर्मदा के उत्तर तट पर सब पाप अग्नि में नष्ट कर दिये । युधिष्ठिर ! तब उन ब्राह्मणों ने उन लोगों को विमान में बैठे देखा । ऋषियों ने नर्मदा के तट पर बड़ा ही आश्चर्य देखा ।।६२/६५।। तब से लेकर वे सभी ऋषि राग द्वेष से रहित होकर प्रसन्न मनवाले हो मोक्ष की इच्छा से आदित्य तीर्थ का सेवन करते हैं । राजन् ! तुम इस तीर्थ के पुण्य को मुझसे सुनो । राजन् ! वृद्ध भाव से पीड़ित लेकिन भक्ति से प्रसन्न होकर मैं दो कोस के बीच में स्थित होकर भी उस तीर्थ प्रदेश की महिमा कहूंगा । जिस प्रकार कुरुक्षेत्र पुण्य देने वाला है उसी प्रकार सूर्य तीर्थ भी मैंने सुना है । राजन् ! श्री शंकर जी ने स्वामि कार्तिकेय से पहले कहा है । श्री मुख से सबने सुना है ! मैं भी वहाँ समीप में स्थित था । शंकर जी ने कहा--षडानन ! सूर्यग्रहण होने पर जो पुरुष आदित्य तीर्थ अथवा कुरुक्षेत्र जाते हैं इन दोनों का तुल्य फल होता है । स्नान, दान, जप, होम इन सभी में विशेषतः हवन कार्य में कुरुक्षेत्र और आदित्य तीर्थ में समान पुण्य होता है इसमें विचार नहीं करना चाहिए ।।६६/७०।। ग्राम अथवा वन में सर्वत्र ही देव सहित नर्मदा पुण्यदायिनी है । नर्मदा रवि तीर्थ में विशेष रूप से पुण्य देंने वाली है । षष्ठी तिथि में रविवार 'व्यतीपात' और वैधृतियोग 'संक्रान्ति' 'अमावास्या' ग्रहण के समय जो पुरुष इन्द्रियों को जीतकर इस तीर्थ की यात्रा करते हैं । काम क्रोध से रहित राग-द्वेष से मुक्त होकर राजन् । परम भक्ति से उपवास कर भगवान के सम्मुख रात्रि में जागरण कर उनके लिए दीप प्रज्ज्वलित करे । युधिष्ठिर ! प्रेम से विष्णु की कथा सुने, वेद का स्वाध्याय करे । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का पाठ करना चाहिए उस तीर्थ में जो पुरुष एक ऋचा का भी पाठ करता है वह वेद पाठ का फल पाता है ।।७१/७५।। मनुष्य वहाँ गायत्री के जप से चारों वेदों के पाठ के फल को पाता है । प्रातः अन्नदान सुवर्ण आदि से ब्राह्मणों की पूजा

करनी चाहिए । पाण्डु नन्दन ! भूमिदान वस्त्र और शक्तिपूर्वक अन्न दान छाता, जूता, शय्या, गृह आदि के दान को ग्राम बैल, हाथी, कन्यादान, घोड़ा, गाड़ी, विद्यादान आदि विद्वान ब्राह्मणों को देने से मनुष्य को सबसे अभय प्राप्त होता है । शत्रु भी मित्र तथा विष भी अमृत हो जाता है । सारे ग्रह शान्त हो जाते हैं । भगवान सूर्य उस पर प्रसन्न हो जाते हैं । राजन् ! रवितीर्थ का यह सब फल मैंने तुमसे कह सुनाया । जो मनुष्य भक्ति पूर्वक रवि तीर्थ के शुभ फल को सुनते हैं ।।७६/८०।। वे पुरुष भी सब पापों से छूटकर सूर्य लोक में निवास करते हैं । गोदान से मनुष्य को जो पुण्य होता है तथा भृगुदर्शन से जो होता है केदार क्षेत्र में जल पिलाकर जो पुण्य होता है वही पुण्य यहाँ होता है । एक वर्ष तक पीपल की सेवा करते हुए तिल पात्र देने का फल आदित्येश्वर के कीर्तन से मनुष्य पा जाता है । राजपुत्र जिसका प्रभाव सुन लेने पर जो होता है वह सब मैं तुमसे कहूँगा । राजन् ! तुम भक्तिमान हो । फूटे पात्र में जल की भाँति सब पाप नष्ट हो जाते हैं । तीर्थ के सम्मुख पहुंचने पर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है इसमें संशय नहीं । मनुष्य वहाँ मरकर पुनः जन्म नहीं लेता । पाण्डुपुत्र ! यह परम गुप्ततीर्थ मैंने तुमसे कहा । बड़े पापी, किये गये उपकार को न मानने वाले, स्वामी और मित्रों से 'वञ्चना करने वाले पुरुषों से' योग्य पुरुषों को सदा ही इस तीर्थ की महिमा छिपानी चाहिए ।।८१/८६।। साठ अध्याय पूरे हुए ।।६०।।

इक्सठवां अध्याय

शक्रेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्परं पुण्यं नर्मदा दक्षिणे तटे ।
शक्रतीर्थं सुविख्यातमशेषाऽघविनाशनम् ।।

सवैया--जाको जस गावत सुनत अनेक भक्त तर गये, पिता जाके शंकर हैं और माता भवानी हैं
जाको अस्तित्व प्रलय काल में रहत जानो नर्मदा में पानी है तब तक बादल में पानी हैं

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर मनुष्य नर्मदा के दक्षिण तट पर

सम्पूर्ण पापों के नाशक परम प्रसिद्ध परम पवित्र शक्रतीर्थ इन्द्रतीर्थ की यात्रा करे । पहिले वहाँ ही भगवान शंकर को सन्तुष्ट करने के लिए इन्द्र ने बड़ी भक्ति से बड़ा उग्र तप किया था । राजन् ! तब श्री शंकर ने सन्तुष्ट होकर इन्द्र को देवों का स्वामी तथा राज्य एवं दानवों के वध का सामर्थ्य रूपी वर दिया । राजन् ! नर्मदा के तीर्थ के प्रभाव से इन्द्र ने यह वर पाया था । उससे ही पृथ्वी में यह तीर्थ परम पुण्य रूप माना गया है । कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोंदशी को उपवास कर इस तीर्थ में स्नान तथा निवास कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१/५॥ पाण्डु नन्दन ! दुःस्वप्न से होने वाले तथा दुर्निमित्त से होने वाले पापों से गृह, डाकिनी, शाकिनी से होने वाले पापों से मनुष्य इस तीर्थ में मुक्त हो जाता है । राजन् ! भक्तिपूर्वक जो पुरुष शक्रतीर्थ का दर्शन करते हैं उन दर्शन करने वाले पुरुषों का जन्म का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है इसमें सन्देह नहीं । अगम्या-- नहीं गमन करने योग्य स्त्री में गमन करने से, नहीं ले जाने योग्य के ले जाने पर, स्वामी और मित्र के साथ धोखा करने पर व उसके विनाश करने पर जो पाप होता है वह सब नष्ट हो जाता है इसमें संशय नहीं । राजन् ! वहाँ श्रेष्ठ विद्वान् सदाचारी ब्राह्मण को गाय देनी चाहिए यह बड़ा शुभ क्षेत्र है । अथवा सब लक्षणों से सम्पन्न घोड़ा देना दिलाना चाहिए स्वर्ग में वास चाहने वाले पुरुष को बड़ी भक्ति से देना चाहिए । राजन् ! यह सब शक्रेश्वर का फल मैंने तुमसे कहा ॥६/१०॥ इक्सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

करोड़ीश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र करोड़ीश्वरमुत्तमम् ।
यत्र वै निहतास्तात दानवाः सपदानुगाः ।

सवैया-- नर्मदा को क्षेत्र ऐसो पुण्य को क्षेत्र यामें, थोरो सो पुण्य सहस गुना हो जाता है ।
कथा के कराये एक यज्ञ को फल मिले, अन्नदान दीन्हे ते अमित दान का फल पाता है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजेन्द्र ! पश्चात् मनुष्य श्रेष्ठ करोड़ीश्वर तीर्थ का गमन करे । जहाँ प्रिय युधिष्ठिर द्वारा अपने अनुचरों के साथ बहुत दानव मारे गये हैं । जय की बुद्धि करने वाले निरन्तर प्रसन्न इन्द्र आदि देवों ने उन दानवों और उनके पुत्र पौत्रों का पहले के बैर का स्मरण कर उन्हें मारा है । कुपित देवों ने संग्राम में दानवों को मारकर, उनके शिरों को लेकर बन्धुभाव की बारम्बार याद कर, नर्मदा के जल में उन्हें डालकर वहाँ स्नान करके सम्पूर्ण देवों ने भगवान श्री शंकर की स्थापना की थी । इन्द्र के साथ सब देवों ने लोक सिद्धि के लिए भगवान शंकर का पूजन किया था । पुनः प्रसन्न चित्त होकर सब देव आकाश में चले गये ॥१/५॥ महा भाग्यशालिनी ! करोड़ दानवों का वहाँ देवों ने वध किया । तब से वह तीर्थ पृथ्वी में 'करोड़' नाम से प्रसिद्ध हुआ । युधिष्ठिर । संसार में वह पापों का विनाशक है । दोनों पक्षों की अष्टमी चतुर्दशी तिथि में भक्ति पूर्वक उपवास कर श्रीशंकर जी के सामने रात्रि में जागरण करे । उत्तम कथाओं का पाठ करते हुए वेदाध्ययन से युक्त होकर प्रातः काल होने पर देवेश्वर भगवान शंकर का पुनः पूजन करना चाहिए । पञ्चामृत से स्नान कराकर चन्दन से उनका लेपन करे । बहुत सुन्दर श्रेष्ठ पल्लव पुष्पों से प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा करे । दक्षिण दिशा की ओर बैठकर शिव मन्त्र का जप करे पुनः मन्त्र का जप करते हुए शास्त्रोक्त विधान से दक्षिण दिशा की ओर तिल सहित जल की अंजलि प्रेत के निमित्त नाभिप्रमाण जल में डाल दें । जितेन्द्रिय होकर ब्राह्मण के द्वारा वहाँ श्राद्ध करना चाहिए ॥६/११॥ विद्वान सदाचारी योग्य ब्राह्मणों को जो वेद पाठ में तत्पर हो गाय सुवर्ण ताम्बूल भोजन से पूजित कर भूषण तथा पादुकाओं से सत्कृत करने से करोड़ों गुणा फल होता है इसमें विचार नहीं करना चाहिए । उस तीर्थ में जो पुरुष शास्त्रीय विधान से शरीर त्याग करता है । राजन् ! उसको वहाँ जो पुण्य प्राप्त होता है वह तुम मुझसे सुनो । जब तक मरे हुए मनुष्य की हड्डियाँ नर्मदा के जल में रहती

है । तबतक धर्मात्मा मनुष्य परम दुर्लभ शिव लोक में निवास करता है । फिर पुण्य विशेष का भोग समाप्त होने पर वहां से गिरकर यहाँ मनुष्य जन्म पाता है । यहां वह राजा से पूजित होकर करोड़पति श्रीमन्त होता है ।।१२/१६।। सब धर्मों से युक्त बुद्धिमान बलशाली पुत्रवाला पृथ्वी से प्रसिद्ध दीर्घायु मनुष्य होता है । राजश्रेष्ठ ! पुनः उस तीर्थ का स्मरण करके वहाँ जाकर 'करोड़ीश्वर' की पूजाकर गति को पाता है । इन्द्र, चन्द्र, यम, रुद्र, वायु-विश्वेदेव आदि सभी देवों के द्वारा यह करोड़ीश्वर स्थापित है । जो भक्ति युक्त होकर लोगों के कल्याण की कामना से नर्मदा के उत्तर तट पर भवन निर्माण करता है । न्याय से कमाये गये धन से उस तीर्थ में लकड़ी पत्थर ईटों से सुन्दर भवन बनवाता है । राजन् ! वह मनुष्य निश्चय ही उत्तम गति पाता है । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, स्त्री कोई भी । शक्ति पूर्वक यह कार्य सम्पन्न करे वे सभी देव पूजित शिव लोक में जाते हैं । राजन् ! जो पुरुष सदा तीर्थ के इस माहात्म्य को प्रेम से सुनता है छै मास के भीतर का समस्त पाप उसका नष्ट हो जाता है ।।१७/२३।। बासठवाँ अध्याय समाप्त ।।६२।।

तिरसठवां अध्याय

कुमारेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र । कुमारेश्वरमुत्तमम् ।
प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरसन्निधौ ।।

सवैया-- नर्मदा नहायेंते सभी तीर्थों का फल मिलें, जन्म-जन्मों के मन के पाप धुल जाते हैं ।
जो नर परिक्रमा वासिन को सीधौ देत, वे सीधौ स्वर्गधाम बिना रोक टोक पाते हैं ।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! पुनः मनुष्य की सब तीर्थों में प्रसिद्ध अगस्त्येश्वर के समीप उत्तम कुमारेश्वर की यात्रा करनी चाहिए प्रिय राजन् ! जहाँ स्वामी कार्तिकेय ने सब पापों के विनाशक श्री शंकर की बड़ी भक्ति से आराधना कर सिद्धि पाई । उस आराधना के प्रभाव से ही वह शत्रुओं के विनाशक देव सेनापति बड़े तेजवाले हो गये । वह तीर्थ सेवन का ही

माहात्म्य है । उस समय से लेकर नर्मदा के तट पर वह प्रसिद्ध तीर्थ हो गया । उस तीर्थ में खासकर जो पुरुष एकाग्रचित जितेन्द्रिय होकर कार्तिक मास की चतुर्दशी और विशेष रूप से अष्टमी तिथि में दही, दूध घी से भगवान शंकर को स्नान कराता है ।।१/५।। उसे वहाँ गायन भी करना चाहिए तथा विधि पूर्वक पिण्ड दान भी । पाण्डु पुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को अपने-अपने कर्मों में लगे रहकर शुभ वृत्ति से ये कर्म करने चाहिए । कुन्ती पुत्र ! सुपात्र ब्राह्मण को जो कुछ दिया जाता है वह सब अक्षय होता है राजन् । श्री कार्तिकेय स्वामी के द्वारा यह तीर्थ मय बन गया है पाण्डुनन्दन । कुमारेश्वर से होने वाला यह सब फल मैंने तुम्हें बताया जो कुमारेश्वर के दर्शन से पुण्य प्राप्त होता है मनुष्य वहाँ मरकर स्वर्ग पाता है यह भगवान शंकर का भाषण सत्य ही है ।।१/९।। तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६३।।

चौसठवां अध्याय

अगस्त्येश्वर तीर्थ का माहात्म्य वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् ।
नराणां पापनाशाय अगस्त्येश्वरमुत्तमम् ।।

सवैया-- कैलाश के ऊँचे शिखर पर बैठे सोहें सदाशिव, शांत रस जैसे शरीर धर कर आयों है ।
पास ही बैठी हैं जगन्माता श्री पार्वती, सामने है नन्दी, गोद में गणपति सुहायों है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--तदनन्तर मनुष्य अपने पापों के नाश के लिए प्रसिद्ध परम श्रेष्ठ अगस्त्येश्वर तीर्थ की यात्रा करे । राजन् ! मनुष्य वहाँ स्नानकर ब्रह्म हत्या से छूट जाता है । कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में मनुष्य इन्द्रियों को जीतकर समाधिस्थ हो महादेव शंकर को घृत स्नान कराये ऐसा पुरुष इक्कीस कुल वाला होकर राज पद से गिरता नहीं है । धन, जूते, छाता, घृत, कम्बल, भूखे सभी पुरुषों को भोजन दान देने से इस तीर्थ में करोड़ गुना फल होता है ।।१/४।।

।। चौसठवाँ अध्याय इति श्री ।।६४।।

पैसठवां अध्याय

आनन्देश्वर तीर्थ माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र आनन्देश्वरमुत्तमम् ।
रुद्रस्य परमानन्दो यत्र जातो युधिष्ठिर ।

सवैया-- राम की परम गाथा को सुना रहे सदाशिव, दशरथ ने चारों कुंवर पढ़ने पठाए हैं ।
गुरुवर वशिष्ठ ने पढ़ाये है चारों वेद, थोड़े ही समय में राम विद्या सभी पाए हैं ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राजेन्द्र ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम आनन्देश्वर तीर्थ को गमन करे । युधिष्ठिर ! जहाँ श्री शंकर को आनन्द मिला, सब पापों के क्षय करने वाले उस तीर्थ की महिमा मैं तुमसे कहूंगा । युधिष्ठिर ने कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! श्री शंकर के वहाँ आनन्द का कारण संक्षेप से कहिये । श्री मार्कण्डेय जी बोले--राज श्रेष्ठ ! उत्तम आनन्देश्वर की महिमा मैं कहता हूँ सुनो । देवाधिदेव श्री शंकर दानवों का वधकर सम्पूर्ण देवों से पूजित किन्नर यक्ष सर्पों से स्तुति किये जाने पर वृष पर आरुढ़ वे महादेव आनन्द से युक्त होकर नाचने लगे । पार्वती के आधे अंग से स्थित भयंकर रूप धारण कर भूत वेताल कंकाल भी जो भयंकर रूप धारण किये थे उनसे युक्त भैरव रूप धारी भगवान शंकर ने, हे युधिष्ठिर ! नर्मदा के दक्षिण तट पर नृत्य किया । वहाँ सन्तुष्ट मरुद्गणादि देवों के द्वारा कमल रूपी आसन वाले वह देव स्थापित हुए ।।१/६।। तब से लेकर वह तीर्थ आनन्देश्वर नाम से कहा जाता है । राजन् ! अष्टमी चतुर्दशी पौर्णमासी तिथियों में भगवान शिव का विधि पूर्वक सुगन्धित द्रव्यों से विलेपन करे । युधिष्ठिर ! वहाँ यथा शक्ति ब्राह्मणों का भी पूजन करे । वहाँ मनुष्य को गो दान तथा मंगल जनक वस्त्रदान भी करना चाहिए । बसन्त की त्रयोंदशी में वहाँ श्राद्ध भी करना चाहिए उत्तम आनन्देश्वर तीर्थ में इंगुदी फलों के गूदे से वेर बेल अक्षत और जल से भी प्रेतों का श्राद्ध करना चाहिए । ऐसा करने से प्रलय पर्यन्त वे पुरुष आनन्दित होगे । उनके यहाँ सात जन्मों में भी सन्तान का कभी विच्छेद

नहीं होता । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! उन्हें प्रत्येक जन्म में आनन्द मिलता है ।।७/११।। पैंसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।६५।।

छ्यासठवां अध्याय

मातृ तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र । मातृतीर्थमनुत्तमम् ।।
संगमस्य समीपस्य नर्मदादक्षिणे तट्टे ।।

सवैया-- पूछा उमा ने--"श्रीराम के गुरु वशिष्ठ है तो आपके गुरु हैं कौन ? हमको बताईये।
दीक्षा नहीं ली तो क्षमा करेगे प्रभो-आप भी किसी गुरु से दीक्षित हो जाईये ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजेन्द्र ! पश्चात् नर्मदा के दक्षिण तट पर संगम के समीप स्थित परम श्रेष्ठ मातृ तीर्थ में गमन करे । वहाँ नर्मदा के तट पर माताएँ प्रकट हुई थीं और पार्वती से अर्धनारीश्वर वेष धारी, सर्प रूपी यज्ञोपवीत धारण किये भगवान शंकर भी प्रकट हुए । योंगिनी माताओं ने श्रीशंकर से कहा हे प्रभो ! बड़ा कष्ट है महेश्वर ! तुम्हारी कृपा से हम सब सर्व देवों के लिए अजेय हैं पृथिवी में प्रसिद्ध हमारे नाम से यहाँ तीर्थ हो । योगिनीयों ! ऐसा ही हो यह कहकर श्री शंकर अन्तर्धान हो गये । श्री मार्कण्डेय जी बोले जो मनुष्य उस तीर्थ में भक्ति पूर्वक नवमी तिथि में नियम पूर्वक शुद्ध होकर उपवास कर मातृ तीर्थ की पूजा करता है ।।१/५।। उस पर सब माताएँ प्रसन्न होती हैं और श्री शंकर जी भी प्रसन्न होते हैं युधिष्ठिर ! पुत्र रहित वन्ध्या और मृत पुत्रों वाली स्त्री को वहाँ मन्त्र शास्त्र जानने वालों में श्रेष्ट पुरुष स्नान प्रारम्भ कराये । वह गुरु सुवर्ण सहित घड़े से पञ्चरत्न और फल से युक्त होकर पुत्र चाहने वाली स्त्री को कांसे के पात्र में स्नान कराये । वह स्त्री बड़े पराक्रमी गुणी पुत्र को पाती है । राजन् ! जो मनुष्य इस तीर्थ में जिस कामना को चाहता है वह उसे पाता है । मातृ तीर्थ से बढ़कर कोई तीर्थ न हुआ न होगा ।।६/९।।

छियासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ।।६६।।

सड़सठवाँ अध्याय

लुंकेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- तस्यैवानन्तरं तात जलमध्ये व्यवस्थितम् ।
लुंकेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ।

सवैया-- जगद्गुरु शंकर आज सोच में पड़ गये, विष्णु के सिवा किसका चेला कहाईये ।
पूछा विष्णु से 'उन्होंने कहा-कि नहीं', अपना गुरु ढूँढ़ने आप नर्मदा किनारे जाईये ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--प्रिय युधिष्ठिर ! उसी के समीप जल के बीच स्थित सुर असुरों से नमस्कृत लुंकेश्वर नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है । पृथिवी में वह तीर्थ बड़ा पुण्य देने वाला अनेक आश्चर्यों से युक्त है । भरत वंशोत्पन्न ! राजन् ! तुम मुझसे इस तीर्थ का माहात्म्य और उत्पत्ति सुनो ! पहले महाबलशाली बल से गर्वित ब्रह्मपुत्र का कालपृष्ठ नाम से प्रसिद्ध पराक्रमी दानव था । गंगा के तट पर उसने बड़ा उग्र तप किया । नीचे की ओर मुखवाला होकर उसने दिन रात धूम का पान किया । तब पार्वती के साथ श्री शंकर जी वहाँ से निकले । बड़ी उग्र तपस्या में लगे हुए उस दानव को देखकर दयाशीला माता पार्वती ने श्रीशंकर से कहा महादेव ! देखो यह मनुष्य धूम पान करते हुए तपकर रहा है । उस पर तुम प्रसन्न होओ प्रभो ! अब शीघ्र ही इसे वर दो ।।१/६।। श्री शंकर जी ने कहा देवि प्रिये ! तुम्हारा वचन मुझे नहीं रुचता । मनुष्य को सदा स्वकर्तव्य का चिन्तन करना चाहिए दूसरे के कार्य से क्या प्रयोजन ? मूर्ख स्त्री बालक और शत्रुओं के कथन से जो मनुष्य चलता है वह पुरुष घोर विपत्ति में पड़ता है यह सत्य कहा गया है । देवि पार्वती ने कहा--स्त्री से पति बहुत से कारण और बहाना बना लेता है तब वह स्त्री लघुता को प्राप्त होती है शास्त्रों में ऐसा भी सुना जाता है । यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं प्राणों का त्याग कर दूँगी । इस प्रकार पार्वती की प्रेरणा से श्री शंकर जी उस दानव के समीप गये ।।७/१०।। श्री शंकर ने कहा--दानव ! तुम धूम्र पान क्यों कर रहे हो; किसलिए तप करते

हो, तुम्हें क्या दुःख और सन्ताप है ? अपना अभीष्ट कार्य मुझसे कहो आज भी तुम जवान दिखायी दे रहे हो । तुम्हारी अवस्था बीस वर्ष की सी प्रतीत हो रही है इससे तुम अपने तपका विशेष कारण बताओ । दानव बोला--मुझे तुम अचल भक्ति दो; तुम पर मेरी स्थिरता हो । भगवान ! मेरे एक सहस्त्र वर्ष तो निर्विघ्न बीत चुके हैं और भी दो हजार दिन तुम्हारी प्रसन्नता के लिए किये गये तप से पूर्ण हो चुके हैं । श्री शंकर जी ने कहा--सुव्रत ! तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो मैं तुम पर प्रसन्न हूं । शंकर के वचन सुनकर दानव ने विचार किया । क्या मैं स्वर्ग माँगू अथवा सम्पूर्ण पृथिवी को ? काम लोभ के बाण से पीड़ित होकर वह दानव इस प्रकार विचार करने लगा ।।११/१६।। दानव बोला--भगवान ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे वर देना चाहते हो तो मैं संग्रामों से सन्तुष्ट नहीं होता और बल भी कुछ मुझमें नहीं है । अतः भगवन् ! जिसके मस्तक पर मैं हाथ से स्पर्श कर दूँ वह देव दानव वा गन्धर्व कोई भी हो तत्क्षण ही भस्म हो जाय । श्री शंकर ने कहा--दानव ! तुमने जो विचार किया है वह सब तुम्हारा सफल हो । तुम उठो शीघ्र ही अपने भवन जाओ । दानव ने कहा--देवाधिदेव हे ईश ! जब तक मैं आपके वर की प्रतीक्षा करूँ तब तक तुम यहाँ ठहरो । आपके मस्तक पर मैं हाथ रखकर जान लूँ इस प्रकार मुझे विश्वास हो जायगा ।।१७/२०।। उस समय भगवान शंकर विचार करने लगे कि इस कार्य में स्वामि कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा कोई भी सहायक होने में समर्थ नहीं है आई हुई आपत्ति को समझ कर भगवान् शंकर नन्दीश्वर वृष से बोले । इस समय तुम कुछ देर इस पापी से युद्ध करो । श्री शंकर ने शिर का स्पर्श करने के लिए दैत्य कालपृष्ठ ने अपना हाथ फैलाया पर नन्दीश्वर के पृच्छ से ताड़ित होकर वह दैत्य दुखित होकर पृथिवी पर गिर गया । श्री शंकर पार्वती के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले गये । भय से डरकर ग्रीवा को मोड़कर पुनः पुनः पीछे की ओर देख रहे थे भगवान शंकर के अदृश्य हो

जाने पर वह दानव कालपृष्ट नन्दीश्वर से लड़ने लगा महाबली महापराक्रमी वे दोनों ही लड़ने लगे। क्रोध से वज्र समान प्रहारों से तीन घड़ी तक हाथों से वह बैल के शिर को स्पर्श नहीं कर सका। पुच्छ के प्रहार से उस दानव को हनन कर वृषभ नन्दीश्वर तब श्री शंकर के पास पहुंचा। वह दैत्य कालपृष्ठ भी शीघ्र ही उठा और नन्दीश्वर के पीछे दौड़ा। वायु के वेग से वह जहाँ भगवान शंकर थे वहाँ पहुँचा दानव को आया जानकर नन्दीश्वर ने शंकर से कहा--देव ! मेरी पीठ पर चढ़कर शीघ्र गमन कीजिये। वृषभ की पीठ पर पार्वती के साथ श्रीशंकरजी चढ़कर स्वर्ग पहुँच कर इन्द्र के भवन गये। बल से गर्वित उस दानव ने शिव का पीछा नहीं छोड़ा। इन्द्र लोक को छोड़कर उस समय श्री शंकरजी ब्रह्म लोक को गये। श्री शंकर जी भय से देवी के साथ जहां जाते थे। वहाँ-वहाँ उसने पीठ पीछे आते हुए दानव को देखा ।।२५/३१।। सम्पूर्ण लोकों में घूमकर शंकर जी बड़े विस्मय में पड़ गये। उन्हें कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ कुछ समय विश्राम प्राप्त हो सके। देव-दानव का वहाँ भयंकर युद्ध जानकर प्रसन्न चित्त देवर्षि नारद वहाँ बहुत समय तक नाचते रहे। आज मैं धन्य हूँ मेरा जन्म सफल हो गया मेरा जीवन अच्छा जीवन है। बड़े कलह को देखकर मुझे बड़ा सन्तोष होता है। नारदजी देव-दानव का युद्ध वहाँ छोड़कर जहाँ भगवान शंकर थे वहाँ आये। महादेव ने उन ब्राह्मण को देखकर सत्कार पूर्वक उनसे यह कहा मुनि श्रेष्ठ ! नारद ! तुम विष्णु को जानते हो कि वे कहाँ हैं / तुम शीघ्र ही वहाँ जाकर इस स्थिति का उनसे निवेदन करो ।।३२/३७।। नारदजी ने कहा--देव-दानव सिद्धों की गन्धर्व सर्प और राक्षसों की सबकी आपत्ति को देवाधिदेव आप निश्चय ही हर लेते हैं। असम्भव कुछ नहीं कहना चाहिए। तथा मन से वैसा चिन्तन भी न करे। भगवान् ! आप पर वैसी आपत्ति नहीं समझता हूँ। शंकर जी ने कहा--नारद ! जहाँ श्री विष्णु हैं। वहाँ तुम शीघ्र जाओ। दानव जो कर रहा है वह सब तुम्हें ज्ञात है। इन्द्र

सहित सम्पूर्ण देवों से यह अवध्य है, वध के योग्य नहीं है । महामुने ! तुम विष्णु के समीप जाकर उनसे निवेदन करो । नारद ने कहा--मैं वहाँ नहीं जाऊँगा । क्योंकि क्षीर सागर में वह सुख पूर्वक सो रहे हैं । भगवान विष्णु को प्रेरणा देने में इन्हें आज्ञा दीजिये । माता बहन और पुत्री के द्वारा ही राजा स्वामी अथवा गुरु को जो सो रहे हों जगावे अथवा गुरु के द्वारा जागरण करवाये अन्यथा नहीं ।।३८/४३।। शंकरजी ने कहा--यदि किन्हीं के घरों में बड़ी आग लगी हो तो वहाँ के लोग जो आग की लपेट में आ गये हों वे निश्चय मर जायेंगे, क्योंकि जानकर सहायक उन्हें सोते अवस्था में जगा नहीं पायेंगे । अतः समय एवं परिस्थिति का विचार परमावश्यक है । नारदजी ने कहा--भगवन् ! तुम शीघ्र ही अब जाओ अपनी रक्षा करो मैं भी जहाँ विष्णु भगवान हैं वहाँ ही जाता हूँ इसमें सन्देह नहीं । तब भयंकर नन्दी और महाकाल खम्भे हाथ में लिए हुए मुग्दर आदि हथियारों से वहाँ उस दानव को मारने लगे ।।४४/४६।। वे तीनों ही बड़े शरीर वाले सात ताल वृक्षों के प्रमाण वाले थे । परस्पर युद्ध करते हुए उन्हें शान्ति नहीं मिल रही थी । तदनन्तर ब्राह्मण नारद विष्णु के पास गये । उस समय शेष रूपी पलंग पर लेटे क्षीर सागर में सोये हुए श्री विष्णु को देवर्षि नारद ने देखा । श्रीलक्ष्मी जी भगवान के दोनों चरणों को अपनी जाँघों पर रखे थीं । अप्सरायें उनके सम्मुख गा रही थीं । उन सुन्दर केशों वाले श्री विष्णु को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर नारद ने कहा--आज मेरा जीवन सफल हो गया जीवन सुन्दर जीवन हो गया । लक्ष्मी देवि ! तुम शंका रहित होकर देवों के स्वामी श्री विष्णु को उठा दो । नारद का वचन सुनकर लक्ष्मी जी ने भगवान के चरणों के अंगूठे को दबाया और बोलीं--नारद जी द्वार पर स्थित है भगवन् ! तुम उठो । भगवान भी नारद को देखकर बड़े हर्षित हुए । मुनि श्रेष्ठ ! तुम्हारा स्वागत है आज रात्रि सुन्दर प्रभात वाली हैं ।।४७/५२।। नारद ने कहा--देव ! तुम्हारे दर्शन से आज मेरा प्रातःकाल सफल हो गया । देवों का कुशल नहीं

है, वे बड़े भय में है, शीघ्र उठिये और चलिये। श्री विष्णु बोले--ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र और जो दूसरे देवगण है तुम उनकी आपत्तिका कारण कहने योग्य हो उसे कहो, नारद ने कहा--दानव कालपृष्ठ ने बड़ा उग्र तप किया। उसके तप से सन्तुष्ट होकर श्री शंकर ने उसको इष्ट शिर में हस्त स्पर्श करने से भस्म होने का वर दे दिया। वर प्राप्ति के बल से ही वह देव शंकर को मारना चाहता है। ऐसी चेष्टा देखकर महादेव शंकर देवों के द्वारा अन्यत्र ले जाये गये है ।।५३/५६।। नारद के वचन सुनकर मुनि के साथ श्री विष्णु वहाँ आ गये। भगवान ने उत्तर दिशा की ओर जाते हुए उन शंकर को और श्री शंकर श्री विष्णु को देखकर बार-बार परस्पर लिपट कर मिले, परस्पर नमन कर श्री विष्णु बोले--भगवन ! आशुतोष ओढर दानी देव। भय का कारण बताइये देव-दावन यक्षों में किसे यमभवन भेज दूं। महेश्वर ! शिर तथा अंगों को इन्द्रियों को काटकर उसे यमलोक भेज दूँगा। जिसने आपके मस्तक में स्वेद पैदा किया हैं, इसमें संशय नहीं हैं ।।५७/६०।। शंकर जी बोले--मूर्खो में रहने से मनुष्य को सुख नहीं होता, रोगियों के बीच भी सुख नहीं है, पराधीन जीवन में भी सुख नहीं है। स्त्री के अधीन रहकर मैंने दानव को वर दिया है कि यह जिसके शिर पर हाथ रख दे वह भस्म की ढेरी हो जाय। केशव उसे मैने दुर्जय और अमर कर दिया है इस अवस्था में वह पापी मुझे ही मारना चाहता है। तुम्हारे अधीन अब उपाय हैं। विष्णु ने कहा--हे सदाशिव तुम्हारे साथ सब देव जाये, मैं दानव कालपृष्ठ के वध के लिए कोई उपाय रचता हूँ। देव, तुम देवों के साथ नर्मदा के तट पर जाओ और ठहरो समय मत गँवाओ भगवन् तुम शीघ्र जाओ, जहाँ गंगा और महानदी नर्मदा दक्षिण वाहिनी हों और जहाँ सरस्वती पूर्वाभिमुख दृष्टिगोचर हो, उसके समान बड़ा तीर्थ मर्त्यलोक में नहीं है। जो लोग वहाँ भक्ति पूर्वक स्नान और दान करते है उससे उनका सात जन्मों का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। इसमें संशय नहीं। यह बहुत पुण्य देने वाला

सब पापों का नाशक है, देवेश ! तुम देवों के साथ उसी लुंकेश तीर्थ पधारो, विष्णु के वचन से ही वह उस तीर्थ कुण्ड पर पहुँचे ॥६१/६९॥ देवों के साथ ही श्री शंकर ने वहाँ बड़े प्रेम से निवास किया, उसके अनन्तर भगवान ने अनेक माया कर उद्यानवन से शोभित बसन्त मासकी रचना कर दी, वह वन अशोक, बबूल, पीपल सुन्दर श्रीवृक्ष (बेल) कैथे, शिरीष, रजचम्पक श्रीफल ताल कदंब, गूलर आदि अनेकों वृक्षों से बहुत सुगन्धित, अनेक पुष्पों से शोभित भौरों से गुंजारित हो उठा, उस वन के बीच में बहुत से पक्षियों से शब्दायमान, कोयलों के कलरवों से गुंजित तथा प्रतिध्वनित बहुत सघन एक बड़ा बट वृक्ष था। कृष्ण ने वहाँ उसी समय कन्या रूप धारण किया। चराचर सहित त्रिलोकी में उसके समान कोई कन्या नहीं थी ॥७०/७५॥ सुन्दर रूप वाली शुभ नेत्रों वाली साथ दूसरी भी कन्यायें थीं जो दिव्य रूप धारण किये हुये तथा दिव्य अलंकारों से अलंकृत थीं, जो कोई उन स्त्रियों की कामना करे ऐसे पुरुष की कामना करने वाली वे थी, मोतियों रत्न तथा वैदूर्य मणियों से और इष्ट हार तथा बाँसों से बँधा हुआ झूला वहाँ बना था, उस पर बैठ कर वे सुन्दर कन्यायें वहाँ मुस्करा कर गान कर रही थी। सजे हुए वन का स्पर्श कर शीतल वायु का चारों ओर गन्ध फैल रहा था, वह सुरभि दानव की नासिका में प्रविष्ट होकर उसे आकर्षित कर रहा था ! तब वह पुष्पों के गन्ध से बड़े बिस्मय में पड़ गया। ऐसे गन्ध को सूँघकर उसने विचार किया कि ऐसा पुष्प हमने देखा सुना नहीं है ॥७६/८०॥ सुन्दर सुरीले ध्वनि से गुंजारित गीत का श्रवण करते हुए गीत की सुरीली तान सुनकर भी वह भगवान की माया से मोहित हो गया। जिस प्रकार मृग बहेलिया के कपट से लगाये गये बड़े जाल में फँस जाते हैं। राजन् ! उसी प्रकार कालपृष्ठ दानव भी कृष्ण के जाल में फँस गया। उस कन्या को देखकर वह दैत्य मूर्च्छा से पृथ्वी में गिर गया उस अवस्था में भी उसने वट के नीचे एक कन्या को देखा। स्त्रियों के प्रकाशमान मुख को देखकर वह पुनः काम

से पीड़ित हो गया। एक सुवर्ण दण्ड लेकर उसने उस कन्या को गिराने की चेष्टा की ॥८१/८४॥ कन्या ने कहा--श्रेष्ठ फल उत्पन्न दानव तुम मुझे मत छुओ मत छुओ। मैं कुमारी हूँ, तुम मुझे शीघ्र ही छोड़ दो मैं घर जाऊँगी दानव ने कहा--सुन्दरी मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ इस प्रकार तुम सम्पूर्ण पृथ्वी की रानी बन जाओगी, इसमें संशय नहीं है। कन्या बोली--दानव, कुमारावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र, स्त्री की रक्षा करता हैं स्त्री स्वाधीन नहीं है। 'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रो रक्षति वृद्धत्वे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'। मैं श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हूँ मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। तुम्हें इस कार्य के लिए मेरे पिता भाई और माता से कहना चाहिए ॥८५/८८॥ दानव ने कहा सुन्दर नेत्रों वाली सुन्दरी ! यदि आज तुम मुझे नहीं चाहती हो स्वतन्त्रता ग्रहण नहीं करती हो तो सत्य ही मेरी भी हत्या तुम्हें लगेगी। कन्या ने कहा-जिस किसी पुरुष में विश्वास नहीं करना चाहिए। मनुष्य स्त्रियों में विचित्र व्यवहार वाले लम्पट आसक्त और काम से मोहित होते हैं। अच्छा तुम मुझसे अपना विवाह कर विविध भोगों को भोगो। पीछे जन्म का नाश तो होगा ही न तुम रहोगे, न मेरा कोई दूसरा होगा। ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, वैश्य, कन्या और शूद्र कन्या इन चारों वर्णों की कन्याओं का दूसरा पति नहीं होता। इस जन्म में एक ही पति होता है। दानव ने कहा--जो तुमने वचन कहा है। मैंने उसे अपने हृदय में धारण किया है। आज तुम मेरा विश्वास कर लो जो तुम्हें मन में रुचता हो कहो ॥८९/९३॥ कन्या ने कहा--दानव ! तुम मुझे गोप कन्या जानो मैं सखियों के साथ क्रीड़ा करती हूँ। हमारे कुल में जो नियम-शर्त है तुम उसे विधि पूर्वक पूर्ण करो। हमारे कुल में विश्वास को अन्य कोई नियम नहीं है। सम्पूर्ण गोप कुल में शिर में हाथ रखने का नियम है। राज श्रेष्ठ ! कामान्ध होकर उसने अपने मस्तक पर हाथ रख लिया वह उसी समय तृण समूहकी भाँति भस्म हो गया। सब देवों ने श्री

विष्णु पर सुन्दर पुष्प वृष्ट की। निर्भय और दुःखरहित होकर सम्पूर्ण देव प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान गये। कालपृष्ठ के मर जाने पर श्री विष्णु क्षीर सागर गये। जो पुरुष दानव के इस चरित्र को भक्ति से सुनता है ॥९४/९९॥ श्री शंकर के वचन के अनुसार नित्य वह विजयी होता है। इस कारण से राज़न् यह तीर्थ शंकर के लुंकेश्वर--लुके-छिपे नाम से प्रसिद्ध है और भी जिस कारण से स्नान मात्र से सम्पूर्ण पाप नष्ट होता है, त्वचा, हड्डी, रक्त मांस, मेदा, स्नायु स्थित पाप स्नान मात्र से समाप्त होता है। मज्जा और वीर्यगत करोड़ों जन्मों से होने वाला पाप नष्ट हो जाते हैं। महाराज ! जो पुरुष लुंकेश्वर में भक्ति से जल पीता हैं, तीन अंजलि मात्र पीने से पाप हजारों टुकड़े हो जाता है। विशेष रूप से दोनों चतुर्थी और अष्टमी के उपवास कर जो पितृगण के उद्धार के लिए पिण्ड-दान तर्पण करता है। पाण्डुनन्दन ! उसने नर्क में पड़े सब पितरों का उद्धार कर दिया। वेदों के पारंगत विद्वान ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक वहाँ एक कौड़ी भी देता है। उससे उसे कुरुक्षेत्र आदि के दान का फल प्राप्त होता है। अन्यथा नहीं ॥१००/१०४॥ राजन् ! भगवान श्री शंकर ऐसा कहते है। यह स्पर्श लिंग शंकर से निर्मित है। इसके स्पर्श मात्र से मनुष्य को रुद्र लोक का वास होता है। उससे कुरुक्षेत्र आदि से किये दान का फल मिलता हैं। इसी कारण से गणराज इसके लोकपाल रक्षक हैं और चार हाथों वाली मंगलमय श्री दुर्गा भी रक्षा में नियुक्त हैं लोकपालों के स्वामी श्री कुवेर श्री शँकर के पार्श्ववर्ती है। सब समय ग्रहों के व्यवहार से मनुष्य की रक्षा करते हैं। राज श्रेष्ठ ! पुत्र भाई के रूप से, स्वामी के सम्बन्ध से तथा और भी अनेकों रूपों वाले देवगण लुंकेश्वर तीर्थ को आज भी नहीं छोड़ते ॥१०५/१०९॥

सड़सठवां अध्याय पूरा हुआ ॥६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

धनद तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- धनदस्य तु तत्तीर्थ ततो गच्छेद्युधिष्ठिर ।
नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयकरम् ॥

सवैया-- बाल रूप बनके शिव पहुंचे नर्मदा तट, जहाँ पंडित घाट-घाट पर शाला लगाते हैं ।
नाम जब पूछा तो गुरु का नाम आया नहीं, देखी एक जगह जहाँ विष्णु शर्मा पढ़ाते हैं ॥

श्री मार्कण्डेयजी बोले--युधिष्ठिर ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिण तट पर सब पापों का क्षय करने वाले धनदतीर्थ की मनुष्य यात्रा करे । वहाँ सब तीर्थों का फल मिलता है । इसमें संशय नहीं है । मनुष्य जितेन्द्रिय होकर चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोंदशी में बड़ी भक्ति से उपवास कर रात्रि में जागरण करे । राज श्रेष्ठ ! बुद्धिमान मनुष्य वहां पञ्चामृत से कुबेर को स्नान कराये, घृत का दीपक जलाये, गाना बजाना करें । अपना कल्याण चाहनेवाला प्रभात में ब्राह्मणों को पूजे जो दान लेने में समर्थ है विद्यावान सिद्धान्त वादी श्रोत स्मार्थ क्रिया करने वाले, पर स्त्री बिमुख हों ॥१/५॥ भोजन वस्त्र एवं धन उपानह उन्हें दे । छत्री शय्यादान देने से सर्ब पाप रहित होता है । तीनों जन्म के पाप तीर्थ के प्रभाव से नष्ट होते है । अविनीत को भी स्वर्ग एवं विनीत को मोक्ष मिलता है । दरिद्रों को अन्नदाता जन्मान्तर में बनाता है । स्वभाव से कुलीनता एवं दुःख निवृत्ति उसे होती है । नर्मदा जल सेवन से व्याधि का नाश हो जाता है । धनद तीर्थ में विद्या दान करता है वह सूर्य लोक में आरोग्य लाभ भी वहाँ जाकर सिद्ध करता है । पाण्डु नन्दन ! वहाँ ही मनुष्य अपनी-अपनी शक्ति से नर्मदा के दक्षिण तट पर देवनिर्मित्त दोनीदान (पात्र में उत्तम वस्तु भर कर दान) विशेष रूप से सुपात्र को करते है वे पुरुष सब दुःखों से रहित शिव लोक को जाते हैं ॥६/११॥

अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६८॥

उनहत्तरवां अध्याय

मंगलेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र मंगलेश्वरमुत्तमम् ।
स्थापितं भूमिपुत्रेण लोकानां हितकाम्यया ।।

सवैया-- अपने आराध्य का नाम देखत मन भाया, शिवजी गुरु चरणों में शीश को झुकाते हैं ।
'आपकी शरण में पठन-पाठन को आया हूँ, तेज देख गुरु शिव को पास में बिठाते हैं ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजेन्द्र ! तदनन्तर संसार की हित कामना से भूमि पुत्र मंगल के द्वारा स्थापित मंगलेश्वर की मनुष्य यात्रा करे । मंगल ने चन्द्रशेखर महादेव को बड़ी भक्ति से सन्तुष्ट किया था । चतुर्दशी तिथि में भगवान शंकर मंगलेश्वर प्रत्यक्ष होकर बोले--पुत्र तुम उत्तम वर माँग लो । मैं तुम्हें हे मंगल ! वह दूँगा । तब मंगल ने कहा--हे सर्व सुखकारी प्रभो ! तुम मुझ पर कृपा करो । तुम्हारे अंगों के पसीने से उत्पन्न मैं ग्रहों के मध्य में रहूँ । तुम्हारी कृपा से हे सदाशिव ! मैं सब देवों से पूज्य हूँ--तुम्हारे दर्शन और भाषण से मैं आज कृतार्थ हो गया ।।१/५।। देवाधिदेव ! इस स्थान में मेरे नाम से आप स्थित हों । ऐसा ही हो पुत्र ! ऐसा कहकर वे शंकर अदृश्य हो गये । महात्मा मंगल ने भी श्री शंकर की पूजा की । राजन् ! उस तीर्थ में बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे । राज श्रेष्ठ ! चतुर्थी मंगल (मंगल चतुर्थी) व्रत में सपत्नीक ब्राह्मणों को प्रसन्न करे । तथा सपत्नीक विद्वान् वेदपाठी ब्राह्मण का विधि पूर्वक पूजन करे । व्रत के अन्तमें बैलों के साथ गाय भी भगवान शिव के निमित्त दान देनी चाहिए । 'सपत्नीक भगवान शंकर मुझपर प्रसन्न हों' ऐसा कहे ।।६/१०।। पाण्डुपुत्र ! लाल रंग के दो वस्त्र एवं दो बैल तथा श्वेत और काले भी देना चाहिए । छत्र-शय्या (सुन्दर पलंग सामग्री सहित) लाल माला लाल चन्दन ये सभी वस्तुएँ पवित्र अन्तःकरण से श्रेष्ठ ब्राह्मण को देना उचित है । उदार मन से मनुष्य को वहाँ शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष की चतुर्थी और अष्टमी तिथि में श्राद्ध भी

करना चाहिए । इससे राजन् ! मरे हुए पितर एक युग पर्यन्त तृप्त रहते हैं । राज श्रेष्ठ ! मनुष्य प्रत्येक जन्म में पुत्र वाला होता है । उस तीर्थ के प्रभाव से मनुष्य के सर्वांग सुन्दर पुत्र होता है । वंश में मंगल होता है अमंगल नहीं । भक्ति से जो पुरुष इस तीर्थ के माहात्म्य को कहता है । उसके सब पाप नष्ट हो जाते है ।।११/१६।। उनहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।।६९।।

सत्तरवाँ अध्याय

रवि तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
रविणा निर्मितं पार्थ सर्वपापक्षयंकरम् ।।

सवैया-- बालके बिलोक गुरु सुन्दर तपो तेजो मय; शिर पर छोटी हैं जटा; कान में कुण्डल है ।
गले में रुद्राक्ष माल, हाथों में फूल माल, एक हाथ नरियल को, कारो कमण्डल है ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--कुन्ती नन्दन ! नर्मदा के उत्तर तट पर परम पवित्र सर्व पाप विनाशक सूर्य के द्वारा रचित रवि तीर्थ है । पुरुषों की सब व्याधियों को टालने वाले नर्मदा में स्थिति नर्मदा के उत्तर तट पर भगवान सूर्य अपने अंश से स्थित है । राज श्रेष्ठ ! जो पुरुष प्रति षष्ठी अष्टमी चतुर्दशी में इस तीर्थ में स्नान कर भक्ति पूर्वक पितृ निमित्त श्राद्ध करता है राजन् उसके पापों का क्षय हो कर वह सूर्य लोक में पूजित होता है । रोगों से रहित सब जन्मों में वह सुखी और धन सम्पन्न होता है ।।१/४।। सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७०।।

इकहत्तरवाँ अध्याय

कामेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- कामेश्वरं ततश्चान्यच्छृणु पाण्डवसत्तम ॥
सिद्धो यत्र गणाध्यक्ष गौरीपुत्रो महाबलः ॥

सवैया-- कमर में छोटो सौ वस्त्र इक लपेटे हैं, हाथ में झांझ छड़ी मानो नई संवल हैं ।
पैरों की लाली महावर सी झलक रही, छोटे-छोटे चरण बड़े-बड़े नेत्र चंचल हैं ॥

श्री मार्कण्डेय ने कहा--पाण्डु नन्दन ! इसके अनन्तर तुम कामेश्वर तीर्थ के माहात्म्य को सुनो जहाँ महा बलशाली गणों के स्वामी पार्वती नन्दन गणेश जी सिद्ध हुए । उस तीर्थ में भक्ति से युक्त जितेन्द्रिय जो पुरुष शिवजी को पंचामृत से स्नान कराकर धूप और नैवेद्य से जगत् के स्वामी श्री शंकर को प्रसन्न करता है वह सब पापों से छूट जाता है । युधिष्ठिर ! वहाँ अगहन मास की (दोनों) अष्टमी में स्नान कर जो पुरुष जिस कामना से पूजन करता हैं वह उसकी वह कामना पूर्ण होती है ।।१/४।। इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।७१।।

बहत्तरवाँ अध्याय

मणिनागेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र मणिनागेश्वरं शुभम् ।
उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयंकरम् ॥

सवैया-- बालक को तेज देख पूछा गुरुजी ने, 'माता-पिता कौन है और नाम क्या तुम्हारा है ?
बोले शिव याद करके याद नहीं आता है । माता-पिता कौन हैं और नाम क्या हमारा है ॥

मार्कण्डेयजी बोले--राजेन्द्र तदनन्तर नर्मदा जी के उत्तर तट पर सब पापों के विनाशक पवित्र मणिनागेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । जो संसार के कल्याण की कामना से 'मणिनाग' के द्वारा स्थापित है । युधिष्ठिर बोले--दाढ़ में विष रखने वाले सर्प ने महेश्वर को कैसे सन्तुष्ट किया । ये सर्प बड़े विष वाले सबको भय देने वाले, और तुच्छ होते हैं । ब्राह्मण ! सम्पूर्ण पाप को शान्त करने वाला यह चरित्र मुझसे कहिये । दुर्योधन से उत्पन्न मेरे हृदय का दुःख

तथा कर्ण भीष्म से उत्पन्न दुःख और द्रौपदी की व्यथा से प्राप्त उग्र दुःख तुम्हारे मुख कमल द्वारा दिये उपदेश रूप में डूब चुका है। मैं आनन्दित हो गया हूँ। ब्राह्मन्! पापों को नष्ट करने वाली तुम्हारी मुख से निकली कथा को सुनकर हमारा क्लेश शान्त नहीं होता। यह कहना अयोग्य हैं। हे ब्रह्मन्! अथवा विद्या दान का जो फल मिलता है। वह भगवान् की कथा के नित्यश्रवण से मुझे मिल रहा है ॥१/६॥ श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजन्! तुम जैसे जैसे बोलते हो तुम्हारी वाणी से वैसे-वैसे मुझे भी सुख होता है। शरीर की शिथिलता और वृद्धावस्था से युक्त हुआ मेरा तुम्हारे प्रति स्नेह नष्ट नहीं होता। प्रिय राजन्! अतः तुम बन्धुओं के साथ इस पाप हारिणी पवित्र कथा को ध्यान से सुनो। हे भारत! प्राचीन इतिहासज्ञों द्वारा कथित परम्परा से प्राप्त इस प्राचीन इतिहास को मैं तुमसे कहते हूँ। सम्पूर्ण लोकों में बहुत श्रेष्ठ दो स्त्रियाँ महर्षि कश्यप के थीं। उनमें विनता ने गरुड़ और कद्रू ने सर्पों को पैदा किया ॥७/१०॥ कश्यप जी के घर में वे दोनों बड़े सन्तोष से रहतीं थीं। प्रिय युधिष्ठिर! कद्रू और विनता भी सदा प्रसन्न थीं प्रजापति कश्यप उन दोनों के साथ प्रसन्न रहते थे। तदनन्तर एक दिन आश्रम में स्थित सुन्दर मुख वाली विनता ने मन के समान वेग से युक्त उच्चैःश्रवा घोड़े को देखकर कहा--सुन्दरी! निरन्तर दौड़ रहे बड़े वेग शाली सम्पूर्ण अंगों में श्वेत वर्ण इस घोड़े को देखो। सहसा उस घोड़े को देखकर ईर्ष्याभाव से कद्रू ने कहा भद्रे! तुम बताओं कि सूर्य का यह घोड़ा किस रंग का है? मैं कहती हूँ कि यह काला है तुम क्या कहती हो बोलो? विनता ने कहा-क्या काला तुम आँखों से देखती हो और सफेद नहीं दीखता? बहिन! असत्य भाषण से तुम यमलोक जाओगी ॥११/१६॥ सत्य असत्य बचन में तुम्हारी हमारी यह ही शर्त है। कि मेरी बात असत्य होने पर मैं तुम्हारे भवन में हजार वर्ष पर्यन्त तुम्हारी दासी होकर रहूँगी यदि उच्चैःश्रवा घोड़ा काला होगा। हे सर्पोंकी माता! और यदि उच्चैःश्रवा श्वेत होगा तो तुम

कहो मैं तुम्हारी दासी बनूँगी। इस प्रकार परस्पर दोनों का संवाद निश्चित हुआ। चिन्तित होकर कद्रू रात्री में आश्रम पहुंची और बन्धुओं से अपनी शर्त बताई। कुन्तीनन्दन! अपना प्रणबंध पुत्रों से कहा--माता की शर्त सुनकर सर्प हाहाकार करने लगे। यह उच्चैःश्रवा तो श्वेत है काला नहीं है। अतः हमारी माता निश्चय ही दासी हो चुकी है ।।१७/२०।। कद्रू ने कहा--जिस प्रकार में दासी न होऊँ वैसा प्रयत्न करो। तुम सब उच्चैःश्रवा घोड़े के रोओं में प्रवेश करो। एक मुहूर्त भर यदि वह घोड़ा काला दिखाई देजाय तो क्षण मात्र में ही विनता हमारी दासी हो जायगी। सत्य से गर्वीली उस सुन्दरी विनता को दासी बनाकर पुनः तुम लोग सुख पूर्वक अपने स्थान में स्थित हो जाना। सर्पो ने कहा माता। जिस प्रकार हम सबकी तुम पृथ्वी में पूज्य हो उसी प्रकार वह विनता भी पूज्य है। विशेष रूप से माताओं से वञ्चना नहीं करनी चाहिए। माता, पिता की अन्य पत्नी सौतेली माता ये सभी समान रूप से मान्य हैं। मन वाणी और कर्म से उनका हित करना चाहिए ।।२३/२७।। तब वह क्रुद्ध पुत्रों के इस वचन से कालाग्नि के समान क्रोधित हुई। उसने कहा--पृथ्वी पर मेरे वचन को न मानने वाले जो सर्प होंगे वे शीघ्र ही मेरे अपमान से अग्नि के मुख में पड़ेंगे। माता कद्रू के उस वचन को सुनकर क्रुद्ध कद्रू के शाप के भय से उच्चैःश्रवा घोड़े के रोमों में घुस गये और कुछ महासमुद्र में कुछ विन्ध्याचल की गुफाओं में जा छिपे। राजन्! उस समय मणिनाग नाम के सर्प ने नर्मदा के जल का आश्रय लेकर नर्मदा के तट पर तीव्र तप किया। कुन्ती नन्दन! माता के शाप के भय से वह जो किसी के द्वारा छिन्न-भिन्न होने योग्य नहीं, तर्क से समझ में न आने वाले तथा उत्पत्ति विनाश से रहित, काम के विनाशक भी हैं ।।२८/३२।। उन भगवान श्रीशंकर का ध्यान करने लगा। सौ वर्षो से कुछ अधिक वह वायु का भक्षण करते हुए रहा। उससे आधे वर्षों तक सूर्य को देखते हुए उसने तप किया। इस प्रकार ध्यान करते हुए उसे भगवान शंकर का साक्षात्कार

हुआ । सर्वश्रेष्ठ ! महाभाग ! बहुत अच्छा । तुम बड़े धैर्यशाली हो । सर्पराज ! तुमने भक्ति से मुझे वश में किया है मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । तुम्हारे मन में जो इच्छा हो वह वर माँग लो ।।३३/३४।। मणिनाग ने कहा-नाथ ! माता के शाप के भय से मैं नर्मदा के तट पर क्लेश युक्त हूँ । तुम्हारी कृपा से मुझ पर माता का शाप व्यर्थ हो । श्रीशंकर ने कहा--वत्स ! तुम मेरी आज्ञा से अग्नि के मुख में नहीं पड़ोगे पुत्र । तुम्हारा विनाश मेरे लोक में होगा मणिनाग ने कहा--महादेव ! इस स्थान में अंश भाग से आप निवास करें तथा हजारवें अंश से नर्मदा के जल में निवास कीजिये । सदाशिव लोगों के कल्याण के लिए मेरे नाम से तुम यहाँ ही निवास करो । श्री शंकर ने कहा--अस्तु मणिनाग ! तुम मेरी आज्ञा से मेरे उत्तम लिंग की स्थापना करो । यह कहकर भगवान शंकर पार्वती के साथ अन्तर्ध्यान हो गये ।।३६/३९।। मार्कण्डेय जी बोले--युधिष्ठिर ! उस तीर्थ के जो लोग पवित्र नियमित मन वाले होकर वहाँ जाकर शुक्ल कृष्ण पक्ष की पंचमी चतुर्दशी अष्टमी तिथि में श्री शंकर की पूजा करते हैं वे पुरुष यमराज के पास नहीं जाते । दही, मधु, घृत और दुग्ध से स्नान कराये जा रहे त्रिनेत्र शंकर को भक्ति से जो लोग पार्वती से युक्त शरीर वाले, काम के दहन कारी अघासुर के विनाशक को भक्ति से दर्शन करते हैं वे सब पापों से रहित उत्तमलोक में जाते हैं ।।४०/४३।। प्रिय कुन्ती नन्दन ! जो पुरुष मणिनागेश्वर तीर्थ में पितृ निमित्त से अष्टमी पंचमी तिथियों में योग्य सदाचारी वेदपाठी ब्रह्म चिन्तन करने वाले अपनी स्त्रियों में सन्तुष्ट, पवित्र, पर-स्त्री संग से रहित, शूद्र सेवा विहीन, अध्ययन अध्यापनादि छै कर्मों में लगे हुए ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध करते हैं वे उत्तम लोक में जाते हैं । श्राद्ध कर्म में लूले लंगड़े अशुद्ध भाषी नपुंषक केवल ब्याज से ही जीविका चलाने वाले किसान हल चलाकर कृषि कर्म करने वाले अपने धर्म से भिन्न वृत्ति (जीविका) अपनाने वाले लोग कभी निमन्त्रण के योग्य नहीं है ।।४६।। जिसके घर स्त्री के रूप में शूद्रा भार्या

है जो ब्राह्मण भैंस का पालन करता हो । राजन् ! श्राद्ध और व्रत कर्म में उस ब्राह्मण का दूर से ही त्याग करना चाहिए । काने अव्यक्त शब्द बोलने वाले पागल वेदपाठ से रहित जो ब्राह्मण है । हे पार्थ ! मंगलमय मणिनागेश्वर तीर्थ में उन ब्राह्मणों का पूजन नहीं करना चाहिए । यदि पितृगण के साथ अपनी ऊर्ध्वगति मनुष्य चाहता है तो मनुष्य इनका विचार अवश्य करे । सब अंगों से पूर्ण सुन्दर दुधारू गाय जो ब्राह्मण को देता है वह पुरुष बहुत युगों तक उत्तम लोकों में रहता है । पश्चात् वह स्वर्ग से यहाँ आकर उत्तम कुल में उत्पन्न होता है । राजन् ! जो पुरुष बड़ी भक्ति से मणिनागेश्वर के दर्शन करते हैं उनके वंश में सर्पों का भय नहीं होता ।।४७/५१।। मणिनागेश्वर के दर्शन के कारण उन से सर्प डरता है । सर्प मण्डल में वे गरुड़ के रूप में दिखाई देते हैं । राज श्रेष्ठ ! यहाँ दिये गये दोनों के फल भी तुम सुनो । जो श्रेष्ठ पुरुष सिद्ध-पवित्र मधुर-अन्न देते हैं जल-शय्या छाता, मधुर भाषण करने वाली दासी देते हैं । राजन् ! वे सभी वस्तुएँ सुपात्र ब्राह्मणों को देना चाहिए यदि मनुष्य आत्मा का कल्याण चाहता है । सुगन्धित पुष्प चन्दन वस्त्र भी देय है । दीपक अन्न सब साधनों से सम्पन्न सुन्दर सजा हुआ घर जो योग्य सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणों को भक्ति से देते हैं वे स्वर्ग जाते हैं । राजश्रेष्ठ ! मणिनाग तीर्थ में जो कुछ दान दिया जाता है ।।५२/५६।। उस दान के प्रभाव से मनुष्य का स्वर्ग में वास निश्चय ही होता है । कच्चे घड़े में जल की भाँति सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । जो पुरुष नर्मदा के जल से बनाये गये भोज्य अन्न ब्राह्मण को देता है वह पुरुष सब पापों से मुक्त होकर वेदों के साथ क्रीड़ा करता है । पश्चात् स्वर्ग से गिरे हुए पुरुषों के लक्षण मैं तुमसे कहता हूँ । वे पुरुष दीर्घायु जीवित पुत्र वाले, सुन्दर धनवान सब रोगों से रहित पुत्र और सेवकों सहित त्यागी, भोग सम्पन्न, सदा ही धर्म मार्ग में लगे हुए, देव ब्राह्मण गुरु के भक्त, तीर्थ सेवा में तत्पर, माता-पिता के आज्ञा पालक, नित्य ही द्रोह क्रोध से रहित होते हैं । इन गुणों से सम्पन्न

वे मनुष्य स्वर्ग से यहाँ आकर पुनः स्वर्ग जाते हैं ॥५७/६२॥ पाण्डु नन्दन ! युधिष्ठिर ! यह मणिनाग तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ है । पुण्य प्रद इस तीर्थ के वर्णन को जो पढ़ता है या सुनता है वह सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है । उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता । वे मनुष्य इच्छानुसार घूमते हैं । भाद्रपद की षष्ठी तिथि में सूर्य के दर्शन से जो पुण्य होता है वह पुण्य इस आख्यान के सुनने से होता है ॥६३/६५॥

बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

गोपारेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
सर्वपापहरं पार्थ गोपारेश्वरमुत्तमम् ॥

सवैया-- बालक का भोलापन देख गुरु द्रवित हुए, इसे विद्या देना ही कर्तव्य हमारा है ।
छोटा सा बालक यह बिना माँ-बाप का है, दया करके गुरु ने शंकर नाम से पुकारा है ॥

श्री मार्कण्डेयजी बोले--कुन्ती नन्दन नर्मदा के तट पर परम श्रेष्ठ सब पापों का विनाशक उत्तम गोपारेश्वर तीर्थ है । राजन् ! गाय के शरीर से निकला हुआ भूमि में पुण्य लिंग है । युधिष्ठिर ने पूछा । पाप क्षयकारी यह लिंग नर्मदा के दक्षिण तट पर मणिनाग के समीप गोशरीर से कैसे निकला ? ब्राह्मण श्रेष्ठ ! संक्षेप से गोपारेश्वर की उत्पत्ति कहिये । मार्कण्डेय जी ने कहा--युधिष्ठिर ! पहले वहाँ कामधेनु ने तप किया था । भड़ी भक्ति से उसने देवाधिदेव श्री शंकर की आराधना की । तब उस कामधेनु पर भगवान शंकर प्रसन्न हो गये । प्रसन्न होकर वह उसकी देह से निकल कर बोले देवि ! जगन्मातः कपिले । परमेश्वरी ! मैं तुम्हारी आराधना से सन्तुष्ट हूँ । सुमुखि ! तुम क्या चाहती हो सो कहो ॥१/८॥ सुरभि कामधेनु बोली-लोकों के कल्याण के लिए ब्रह्मा ने मेरी सृष्टि की है मेरी कृपा से सम्पूर्ण संसार के कार्य सिद्ध होते हैं । शंकर ! मेरी कृपा से लोग स्वर्ग जायेंगे ।

लोकों की हित कामना से हे शम्भो ! तुम मेरे इस तीर्थ में विराजमान होओ । ऐसा कहकर भगवान शंकर उस तीर्थ में प्रसन्नता से रहने लगे । उस समय से वह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध हुआ । राजश्रेष्ठ ! एक स्नान से ही वह तीर्थ सब पापों को नष्ट कर देता है । जो पुरुष गोपारेश्वर तीर्थ में गोदान भक्तिपूर्वक करता है यह उत्तम लोक जाता है । सुवर्ण से युक्त गाय योग्य विद्वान् ब्राह्मण को देना चाहिए, गाय बछड़े से युक्त जवान हो, सफेद हो और बहुत दूध देने वाली वस्त्र सहित उस गाय को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में या अष्टमी तिथि में देना चाहिए । सभी मासों में विशेष रूप से कार्तिक मास में बड़ी भक्ति से वेदाध्ययन शील ब्राह्मण को अत्यन्त श्रद्धा से देवे । जो विधि पूर्वक लेता है वे दोनों ही पुण्य कर्म वाले हैं । देखने वाला भी पुण्य का पात्र होता है ।।९/१२।। जो पुरुष इस तीर्थ में भक्ति से पिण्ड दान करता है । राजेन्द्र एक पिण्ड से ही उत्तम गति को पाते हैं । जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्री शंकर को प्रणाम करते हैं । फूटे पात्र में जल की भाँति उनका पाप नष्ट हो जाता है । राजन् ! उस तीर्थ में जो पुरुष साँड़ छोड़ता है । उससे पितरों का उद्धार होता है और वह शिवलोक में पूजित होता है । युधिष्ठिर ने कहा--वृषोत्सर्ग करने पर (साँड़ छोड़ने) मनुष्यों को जो फल होता है ब्राह्मण श्रेष्ठ ! प्रयत्न से वह सब शीघ्र बताइये श्री मार्कण्डेय ने कहा--सब लक्षणों से पूर्ण साँड़ को छोड़ने पर जो फल होता है धर्मनन्दन ! मैं वह कहूंगा तुम सुनो । राजन् ! कार्तिक और वैशाख की पूर्णमासी में श्री शंकर के समीप शुद्ध स्नान किये हुए जितेन्द्रिय होकर 'भगवान शंकर प्रसन्न हों ।।१३/१९।। ऐसा कहकर साँड़ छोड़ दे । पुत्र ! उसके साथ ही चार सुन्दर बछड़िया भी जो सब लक्षणों से युक्त हों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देकर भगवान शंकर ब्रह्मा और विष्णु प्रसन्न हों ऐसा कहें । साँड़ के रोगटाओं की संख्या के अनुसार उतने वर्ष राजन् वह शिवलोक में पूजित होता है । वहाँ निवास करने के पश्चात् जब मनुष्य लोक में जन्म लेता है तब वह धन-धान्य से पूर्ण श्रेष्ठ

कुल में उत्पन्न होता है। वह रोग रहित रूपवान विद्या सम्पन्न सत्यवाणी वाला पवित्रशील होता है। युधिष्ठिर। गोपारेश्वर महात्म्य मैंने तुमसे कहा यह गोपारेश्वर लिंग नर्मदा के तट पर गाय के शरीर से निकला है ॥२०/२३॥ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥७३॥

चौहत्तरवां अध्याय

गौतमेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
सर्वपापहरं मर्त्ये नाम्ना वै गोतमेश्वरम् ॥

सवैया--आदि पुरुष शंकर शिक्षा-दीक्षा को आये जब ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति सब आश्रम में छाई है।
भाँति-भाँति फूल सब असमय में फूल उठे, शीतल मंद पवन सुगन्ध बिखराई है ॥

मार्कण्डेय जी बोले--श्री नर्मदा के उत्तर तट पर बहुत श्रेष्ठ मनुष्य लोक में सब पापों को हरने वाला गौतमेश्वर तीर्थ है। युधिष्ठिर ! संसार की कल्याण कामना से स्वर्ग की सीढ़ी के समान महर्षि गौतम के द्वारा ही यह तीर्थ स्थापित है। बड़ी भक्ति से तुम वहाँ जाओ जहां भगवान शंकर पापों के विनाश के लिए स्थित होकर स्वर्गवास के देने वाले हैं। यह तीर्थ सौभाग्य बढ़ाने वाला जय देने वाला दुःख का नाशक है। यहाँ एक पिण्ड से ही तीन कुलों का उद्धार होता है। भक्तिपूर्वक थोड़ा बहुत जो कुछ दिया जाता है वह सब गौतम महर्षि के प्रताप से सौ गुना और हजार गुना हो जाता है। यह सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है ऐसा श्री शंकर ने कहा है ॥१/६॥ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥७४॥

पचहत्तरवां अध्याय

शंखचूड तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थ परमशोभनम् ।
शंखचूड़स्य नाम्ना वै प्रसिद्धे भूमिमण्डले ॥

सवैया-- मंद-मंद गति से बहत है नर्मदा नीर, गुरुजी के मन में नई बात इक समा गई।
साक्षात विष्णु हैं, गणेश है या शंकर हैं, आश्रम में आयों तब सों परम शान्ति छा गई।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--नर्मदा के तट पर परम सुन्दर पृथिवी में प्रसिद्ध 'शंखचूड़' नाम से एक तीर्थ है । पाण्डु नन्दन युधिष्ठिर ! वहाँ नर्मदा के तट पर गरुड़ के भय से शंखचूड़--नाग सुख पूर्वक स्थित है । उस तीर्थ में जो भक्ति पूर्वक सावधान होकर पवित्र हो दुग्ध-मधु और घृत से शंखचूड़ को स्नान कराता है । राजन् ! तथा रात्रि में देव के सम्मुख जागरण करता है । उत्तम व्रत वाले ब्राह्मणों को दही और अन्न से विधि पूर्वक तृप्त कर गाय दान देने से सब पापों का क्षय हो जाता है । कुन्ती नन्दन ! जो पुरुष उस तीर्थ में सर्प से डसे हुए पुरुष अंतिम कर्म संस्कार करता है अथवा उसके निमित्त तर्पण करता है वह पुरुष श्री शंकर के वचन के अनुसार उत्तम लोक को जाता है ।।१/५।। पचहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७५।।

छियत्तरवाँ अध्याय

पारेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेतु राजेन्द्र पारेश्वरमनुत्तमम् ।
पराशरो महात्मा वै नर्मदायास्तटे शुभे ।।

सवैया-- गुरुजी ने शिव को प्रसन्न मन सों दीक्षा दीनी, प्रश्न जो पूछे तत्काल पाये उत्तर है ।
अहो भाग्य ! नर्मदा तट आश्रम में शिक्षक बने, बालक में बुद्धि है या बुद्धि का समुन्दर हैं ।।

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! तदनन्तर पुरुष सर्व श्रेष्ठ पारेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । जहाँ पवित्र तट पर महात्मा पराशर ने पुत्र प्राप्ति के लिए बड़ा तप किया था । पाण्डुनन्दन । राजन् ! नर्मदा के उत्तर तट पर बड़ी भक्ति से उनके उग्र तप से हिमालय को पुत्री नारायणी शक्ति रूपा गौरी प्रसन्न हो गई । शिव के अर्धांग में निवास करने वाली महादेवी पार्वती ने प्रसन्न होकर उनसे कहा--ऋषि श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ । बड़ी बुद्धि वाले ब्राह्मण पराशर ! तुम मुझसे वर माँगो । पाराशर ने कहा--देवि ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और यदि मुझे वर देना चाहती हो तो हे मातः ! सत्य पवित्रता आदि श्रेष्ठ गुणों में निपुण पुत्र मुझे प्राप्त हो । हे देवि ! पार्वती !

इस तीर्थ में नर्मदा के दक्षिण तट पर संसार कें लोगों के उपकार उद्धार के लिए यहाँ स्थिति होकर पाराशर के नाम से तुम अपनी स्थिति करो ॥१/७॥ देवी ने कहा--ब्राह्मण ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार ऐसा ही हो यह कहकर वह वहाँ ही अन्तर्धान हो गई । महात्मा पराशर ने वहाँ पार्वती की स्थापना की और देवों में अनुपम प्रभाव शाली अविनाशी सर्वातीत सुर असुरों से नमस्कृत श्री शंकर को भी स्थापित किया । राजन् ! ऐसा कर महात्मा पराशर कृतार्थ हो गये । राजपुत्र ! उस तीर्थ में जो पुरुष भक्ति से शुद्ध और नियत मनवाला काम, क्रोध से रहित स्त्री अथवा पुरुष माघ, चैत्र, वैशाख, श्रावण, मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में सदा वहाँ जाकर पवित्र नर्मदा के दक्षिण तट पर परम भक्ति से उपवास कर इस व्रत का अनुष्ठान करता है ॥१३॥ अपनी शक्ति से दीप दानकर रात्रि जागरण करता है काम क्रोध से रहित होकर गीत नृत्य बाजे आदि का आयोजन करता है वह शुभ गति प्राप्त करता है प्रातः काल होने पर अपनी शक्ति से ब्राह्मणों की पूजा करे । कुन्ती नन्दन धन-सुवर्ण दान, वस्त्र, छत्री, शय्या, ताम्बूल भोजन से ब्राह्मणों की भली भाँति पूजा कर नर्मदा के तट पर उग्र तप वाले ब्राह्मणों तृप्त करे । राज श्रेष्ठ मनुष्य को वहाँ कच्चे अन्न अथवा पक्वान्न से अथवा जल से श्राद्ध करना चाहिए । स्त्रियों और शूद्रों को कच्चे अन्न से ही श्राद्ध करना उत्तम है । युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों को चौगुना अन्न देना चाहिए । वेदोक्त विधान से बड़े यत्न पूर्वक, ब्राह्मणों का पूजन करे । राजन् ! हाथ भर के कुशों को तथा तिल अक्षतों से श्राद्ध कर्म अनुष्ठित करना चाहिए ॥१४/१९॥ ब्राह्मणों का उत्तर मुख तथा, स्वंय दक्षिणाभिमुख बैठना । ब्राह्मण के आगे यह उच्चारण कर कुशों पर अन्न रखना चाहिए कि इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेत उत्तम लोक जाये ! मेरा पाप शान्त हो; सदा शुभ की वृद्धि हो । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मेरा वंश और बन्धु वर्ग वृद्धि को प्राप्त हो । इस प्रकार ब्राह्मण की शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए । पाण्डव श्रेष्ठ ! पारेश्वर आश्रम

में ब्राह्मण को गाय, भूमि, सुवर्ण; अन्न; वस्त्र आदि अपनी शक्ति से देना चाहिए और जो पुरुष बड़ी भक्ति से माहात्म्य को सुनते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं ।।२०/२४।। छियत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७६।।

सतहत्तरवाँ अध्याय

भीमेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयडंकरम् ।
सेवितं ऋषिशंडैश्च भीमव्रतधरैः शुभः ।।

सवैया-- जो आज्ञा दीन्ही मानो पहले ही कर लीन्हीं, नर्मदा प्रसाद है या कोई जंतर-मंतर है ।
आश्चर्य चकित गुरु सोचते है बार-बार, तेजोमय बालक चमत्कारी है सुन्दर है ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--मनुष्य पश्चात् सब पापों के विनाशक भीमेश्वर की यात्रा करें । जो बड़े व्रत करने वाले श्रेष्ठ ऋषियों से सेवित हैं उस तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर जितेन्द्रिय हुआ उपवास करते हुए ऊपर की ओर हाथ किये हुए सूर्य की ओर दृष्टि कर एकाक्षर (ॐ) मन्त्र का जंप करता है, उस पुरुष का एक जन्म का पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है । गायत्री के जप से एक जन्म का पाप और सौ बार जप करने से पूर्व जन्म का पाप नष्ट हो जाता है । हजार बार गायत्री जप से गायत्री तीन जन्म के पाप नष्ट कर देती है । राजन् ! वैदिक और लौकिक जप के योग्य मन्त्र जप करने पर तृण की भाँति सम्पूर्ण पाप वह अग्नि तत्क्षण नष्ट कर देती है । पर देवता के बल का आश्रय और विश्वास कर कभी जानकर पाप का आचरण नहीं करे, क्योंकि अज्ञान से किया गया पाप शीघ्र नष्ट होता है जानकर किया गया पाप नष्ट नहीं होता । उस तीर्थ में पुरुष यथा शक्ति दान का आचरण करता है तो हे पाण्डव नन्दन ! वह सब अक्षय फल वाला हो जाता है ।।१/७।। सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७७।।

अठतरवां अध्याय

नारदेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नारदेश्वरमुत्तमम् ।
तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ।।

सवैया-- एक बार गुरुजी ने बाहर जाने का विचार किया, बालकों से कहा गुरुभाई ये तुम्हारा हैं
काम सभी करना तुम इससे नहीं कराना कछु, बिना मां बाप का है इससे मुझको प्यारा है

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! तदनन्तर श्री नारद के द्वारा स्थापित परमश्रेष्ठ तीर्थ नारदेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । युधिष्ठिर जी बोले--मुनि श्रेष्ठ ! नारद जी ने इस तीर्थ को क्यों और कैसे बनाया ? सत्पुरुष श्रेष्ठ ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो यह सब मुझे बतायें । श्री मार्कण्डेयजी ने कहा--पृथा नन्दन ! ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनियों में श्रेष्ठ हैं । नर्मदा के तट पर पहले उनने तप किया । युधिष्ठिर ! जब नाड़ी तथा इन्द्रियों के निरोध और मनका पूर्ण निरोध किये हुए अन्तिम मर्यादा को प्राप्त नारद ने श्री शंकर को प्रसन्न किया । शंकर जी बोले--हे योगिनाथ ! अयोनिज ! ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । हे वत्स ! जो तुम्हारे मन में हो वर माँग लो ।।१/५।। नारद बोले--शम्भो ! आपकी कृपा से मेरा योग सिद्ध हो, और सदा आप में मेरी अचल भक्ति हो । मैं वेद वेदांगों का पारगामी विद्वान् और इच्छानुसार विचरने वाला होऊँ । हे विश्वनाथ ! मैं सदा त्रिकालज्ञ और सब गीतों का जानकार होऊँ । महेश्वर प्रतिदिन देव दानव और मनुष्यों का युद्ध, पाताल मनुष्य लोक और स्वर्ग में भी जाकर आपकी कृपा से सब देखूँ । आपको और माता पार्वती को भी देखूँ । यह तीर्थ सब पापों का क्षय करने वाला और सब लोकों में प्रसिद्ध हो यही वर दो ।।६/९।। सदाशिव ने कहा--नारद ! इस प्रकार सब होगा इसमें संशय नहीं । मेरी कृपा से तुम्हारा चिन्तन किया गया सब कार्य सिद्ध होगा । हे वत्स ! तुम स्वर्ग और पाताल एवं मनुष्य लोक में इच्छानुसार विचरो--भ्रमण करो तुम्हें कोई नहीं रोकेगा ।

मेरी कृपा से तुम्हें सात स्वर, तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छनायें और उनचास तानें संगीत की प्राप्त होगी। मुझे बहुत ही प्रिय दिव्य नृत्य गीत है वह सब तुम्हें प्राप्त होगा । देव दानवों किन्नरों का युद्ध भी तुम देख सकोगे । मेरे अनुग्रह से पृथ्वी में परमपुण्य तुम्हारा तीर्थ होगा । और तुम सम्पूर्ण ज्ञान में कुशल वेद-वेदांग के तत्त्वज्ञ होओगे । हे नारद ! तुम मेरी दया से एक निःसंग आसक्ति रहित होओगे । ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्ध्यान हो गये । राजेन्द्र ! सब जीवों का कल्याण करने वाले श्री शंकर को नारद ने वहाँ बड़े प्रेम से तब स्थापित किया ।।१०/१५।। श्री नारद के द्वारा स्थापित तीर्थ पृथ्वी में उत्तम तीर्थ हैं । राज श्रेष्ठ ! जो मनुष्य इन्द्रियों को जीतकर उस तीर्थ में जाता है वह कृतार्थ होता है । कुन्तीनन्दन ! भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष की जो चतुर्दशी है उस तिथि में बड़ी भक्ति से उपवास तथा रात्रि में जागरण करे । शुभ लक्षण सम्पन्न ब्राह्मण को छत्र देवे । जो पुरुष शस्त्र से मारे गये हैं उनका श्राद्ध भी वहाँ करे, वे पुरुष पिण्डदान के प्रभाव से उत्तम लोक जाते हैं ।।१६/१८।। भरत वंशोत्पन्न ! 'हमारे पितृगण परम गति को प्राप्त हो' यह उच्चारण कर पितरों के उद्देश्य से कपिला गाय श्रेष्ठ ब्राह्मण को देना चाहिए । इस श्राद्ध के करने से ब्राह्मण की प्रसन्नता तथा श्री नर्मदा जल के प्रभाव से एवं न्यायोंपार्जित धन के दान से अर्थात् इन सबके प्रभाव से प्रेत परम गति को प्राप्त हों ऐसा कहकर ब्राह्मण को अपनी शक्ति से दक्षिणा भी देना चाहिए । विशाल नेत्र राजन् ! ब्राह्मणों को हविष्य (पवित्र अन्न) भी देना चाहिए । जो पुरुष भक्ति पूर्वक शिव मन्दिर में दीपक प्रज्ज्वलित करता है वह सब फल पाकर रुद्रलोक जाता है ऐसा श्री शंकर ने स्वयं कहा है । एक विद्या दान से ही मनुष्य अक्षय गति पा जाता है ।।१९/२३।। राजन् ! वहाँ घोड़े और सस्य सम्पन्न हरी भरी खेती से युक्त भूमि भी देनी चाहिए । वहाँ पवित्र मन्त्रों से भक्ति पूर्वक बहुत अधिक अग्नि को प्रसन्न अर्थात तृप्त करे । भारत ! जो पुरुष भक्ति पूर्वक घृत और अन्य

हवनीय द्रव्य से सदा पूजन कराते करते हैं और त्रिकाल नृत्य करते हैं, नारद नामक तीर्थ जो नर्मदा के उत्तर तट पर स्थित है जहाँ अग्नि आदि देव हैं तथा सर्व देवमय ऋषि हैं, ऋषि के द्वारा वे सभी सन्तुष्ट और तृप्त रहते हैं । अतः अग्नि देव विशेषतः प्रसन्न तृप्त करने योग्य हैं । उस अग्निदेव के पूजित होने पर पुनः दरिद्रता नहीं आती प्रत्येक अन्न धन से अत्यन्त सुख प्राप्त होता है ।।२४/२७।। वे श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होते हैं । सुन्दर वेष वाले तथा सदैव धन से सम्पन्न रहते हैं । बाढ़ नदियों का, पति स्त्रियों का, सदाचार-परायण राजा प्रजा का तथा धन मनुष्यों का और ऋतुएँ वृक्षों के गये यौवन को पुनः ला देते हैं । धनेश कुवेर ने इस तीर्थ में धनद भाव--धन का स्वामित्व पाया । यम ने नियामकता, वज्रधारी इन्द्र ने भी देवराज यहाँ पर ही पाया । दूसरे राजाओं ने भी राजपद पाया । नारदेश्वर की महिमा से ध्रुव निश्चलता को प्राप्त हुए । सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ यह तीर्थ नारद के द्वारा स्थापित है । वह समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण पृथ्वी के उत्तर तट पर स्थित है । यह श्रेष्ठ तीर्थ महापापों का नाशक है ।।२८/३२।। अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७८।।

उन्यासीवाँ अध्याय

दधिस्कन्द मधुस्कन्द तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थद्वयमनुत्तमम् ।
दधिस्कन्दं मधुस्कदं च सर्वपापक्षयंकरम् ।।

सवैया-- दीन दुखी है ये इस पर दया रखना सब इससे और प्रेम करना, ये आदेश हमारा है
गुरु की कृपा देख बालकन को ईर्ष्या भई, किसी दिन सबने बदला लेने का मनमें विचारा है ।।

श्री मार्कण्डेयजी बोले--हे राज श्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य सब पापों के विनाशक "दधिस्कन्द मधुस्कन्द" इन दो तीर्थों में गमन करे । जो मनुष्य दधिस्कन्द में स्नान कर ब्राह्मण को दही देता है । भारत ! उसे सात जन्म तक दही प्राप्त होता है । उसे कोई व्याधि वृद्धावस्था तथा शोक और ईर्ष्या

आदि नहीं होते । वह एक हजार चन्द्र पर्यन्त श्रेष्ठकुल में उत्पन्न होता है । मधुस्कन्द तीर्थ में भी जो पुरुष शहद से मिले तिलों को देता है वह पुरुष सत्तर जन्म तक यमराज को नहीं देखता ॥१/४॥ वहाँ ही जो पुरुष मधु के साथ पिण्डदान करता है, उसके पुत्र पौत्र प्रपौत्रों में दरिद्रता नहीं होती । उसी तीर्थ में विधिपूर्वक स्नानकर दक्षिणाभिमुख होकर जो दही से मिले पिण्ड देता है उसके पिता पितामह प्रपितामह बारह वर्ष पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं । इसमें विचार नहीं करना चाहिए ॥५/७॥ उन्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नन्दिकेश्वरमुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महानन्दी तस्मै सर्वं वदाम्यहम् ॥

सवैया-गुरु गये पर्यटन को तब सभी बालकोंने मिलकर, बालक शंकर को खूब पीड़ा पहुँचाई है
शंकर ने समझाया सबको 'क्षमा करें मित्रवर, हम सब सहपाठी हैं, सगे गुरु भाई हैं ॥

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम नन्दिकेश्वर की यात्रा करे । जहाँ महा नन्दी सिद्धि को प्राप्त हुए । यह सब मैं तुमसे कहता हूँ । सुनो ! पूर्व समय में गणेश्वर नन्दी नर्मदा के सम्मुख तप करते हुए जय प्राप्त करके एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ पहुँचे । वह जब दधिस्कन्द और मधुस्कन्द तीर्थ छोड़कर आगे गये तब श्री शंकर ने प्रसन्न होकर नन्दिनाथ से कहा । महादेव बोले--प्रिय नन्दीश ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं । तुम इच्छानुसार वर माँगो । तुम्हारे इस तीर्थ यात्रा और सिद्ध तप से मैं सन्तुष्ट हूँ । नन्दीश्वर ने कहा-भगवन् मैं धन नहीं चाहता और कुल की उत्तम सन्तति भी नहीं चाहता । आपके चरणों को छोड़कर मैं कुछ भी नहीं चाहता ॥१/५॥ कीड़े मकोड़े या पक्षियों की नीच योंनियों को प्राप्त होने पर भी जन्म जन्मान्तरों में आपकी ही अविचल भक्ति हो राजन् वैसा ही हो ऐसा कहकर श्री शंकर जी बड़ी कृपा से उस नन्दीश्वर को हाथ में पकड़ कर सिद्ध आश्रम में ले गये । उस तीर्थ

में जो पुरुष स्नान कर भक्ति पूर्वक श्री शंकर की पूजा करता है या कराता है, वह मनुष्य अग्नि स्तम्भ यज्ञ का फल पाता है। उस तीर्थ में स्नान कर जो पुरुष प्राणों का त्याग करता है वह पुरुष शिव का अनुचर होकर प्रलय पर्यन्त उत्तम सुख पाता है। पश्चात् बड़े समय से उत्तम कुल में जन्म लेकर वेद वेदांगों का तत्वज्ञानी होकर सौ वर्ष जीवित रहता है। प्रिय युधिष्ठिर ! मनुष्य लोक को दुर्लभ सब पापों के विनाशक तीर्थ के इस उत्तम माहात्म्य को मैंने तुमसे कहा ॥६/११॥ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

वरुणेश्वर तीर्थ की महिमा

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महाराज वरुणेश्वरमुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महादेवो वरुणो नृपसत्तम ॥

सवैया-- बालकों ने कहा--'तुम छोटे हो पर खोटे हो, हमारी चुगली से गुरुजी पर धाक तुमने जमाई है
बालकों की ईर्ष्या से शुद्ध शांत आश्रम में दुख की मानो एक बदली घिर आई है।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--महाराज ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम वरुणेश्वर तीर्थ की यात्रा करे। राजश्रेष्ठ ! वरुण ने सिद्धि प्राप्त की। वरुण ने पिण्याक (पिन्नी) शाक और पत्तों से कृच्छ्र चांद्रायण आदि व्रतों से श्रीशंकर जी की आराधना की और उससे परम सिद्धि प्राप्त हुई। तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर पितृ देवताओं का तर्पण कर भक्ति पूर्वक श्री शंकर को पूजता है वह उत्तम गति को पाता है। कुंडी मार्जनी (बुहारी) अथवा बड़ा जल पात्र अन्न के सहित श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देता है। युधिष्ठिर ! तुम उसके पुण्य के फल को सुनो ॥१/४॥ बारह वर्ष में सम्पन्न होने वाले यज्ञ में मनुष्य जो फल पाता है उसी फल को वह पाता है इसमें कुछ विचार न करे। सब दानों में अन्नदान को श्रेष्ठ स्मरण किया गया है। राज श्रेष्ठ ! अन्न मनुष्य को शीघ्र ही प्रीति देने वाला है, जल भी मनुष्य को सन्तुष्ट करने वाला है उस तीर्थ में शुद्ध अन्तःकरण वाले मरे हुए मनुष्यों का प्रलय पर्यन्त वरुण के

पुर में निवास होता है। तदनन्तर समय पूर्ण होने पर मनुष्य लोक में वह उत्पन्न होता है। नित्य अन्न दान करने वाला मनुष्य सौ वर्ष जीता है ॥५/८॥ सम्पूर्ण हुआ ॥८१॥

बयासीवाँ अध्याय

दधिस्कन्ध आदि पाँच तीर्थों की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल बह्नितीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धो महातेजास्तपः कृत्वा हुताशनः ॥

सवैया--शिवजी ने सोचा ये माया में भूले हैं, इन सब को माया के जाल से हमको छुड़ाना है । गुरुजी के आश्रम और नर्मदा के तट पै रहकर के भी, इनको अज्ञान है, इनके अज्ञान को ज्ञान से जगाना है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य सर्वश्रेष्ठ अग्नितीर्थ की यात्रा करे। जहाँ बड़े तेजस्वी अग्निदेव बड़ा तप कर सिद्धि को प्राप्त हुए। दण्डक वन में पहले जो अग्नि देव मुनि के द्वारा सर्व भक्षी बना दिये गये थे। वहीं अग्निदेव नर्मदा तट का आश्रय लेकर पवित्र हो गये। उस तीर्थ में जो पुरुष स्नानकर श्री शंकर जी की पूजा कर अग्नि में प्रवेश करता है वह अग्नि की समता को पाता है ॥१/३॥ जो पुरुष भक्ति से स्नान कर वहाँ पितृदेवों का तर्पण करता है वह पुरुष अग्निष्टोम यज्ञ का फल निश्चय ही पाता है। राजन् ! उसके समीप ही उत्तम कुवेर तीर्थ है। यहाँ यक्षों के राजा कुवेर ने सिद्धि पाई। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान कर पार्वती के सहित श्री शंकर की विधि पूर्वक पूजा कर सब पापों से छूट जाता है। उस तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर ब्राह्मण को नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर सुवर्ण का दान करता है वह पुरुष अरब गुणा फल पाता है। दधिस्कन्द-मधुस्कन्द नन्दीश और वरुणालय (वरुणेश्वर) तथा अग्नितीर्थ में जो फल होता है प्रिय वत्स ! मनुष्य अग्नि तीर्थ में स्नान कर वही फल पाता है। मनुष्य लोक में वे पुरुष ही वन्दनीय और पूर्ण मनोरथ वाले होकर धन्य हैं जिन पुरुषों ने महापुण्य प्रदा श्री नर्मदा के इन पाँच तीर्थों का दर्शन किया है ॥४/९॥

वे पुरुष उत्कृष्ट दुःख विनाशक सूर्य लोक में जाते हैं। वे वहाँ चौदह इन्द्र के समय तक रहते हैं। तदनन्तर वे स्वर्ग से गिरकर इस मनुष्य लोक में धर्मशील राजा होता है। वह सब रोगों से रहित होकर उत्तम भोगों को भोगता है। नर्मदा तीर्थ का सेवन करने वाले जिन पुरुषों के विष्णु देव उपास्य हैं वे पुरुष अखण्डित प्रताप वाले होते हैं इसमें संशय नहीं। कनखल में गंगा परम पुण्य दायिनी है और कुरुक्षेत्र में सरस्वती पुण्यदायिनी है पर श्री नर्मदा तो ग्राम और वन में सर्वत्र ही पुण्यदायिनी है। मनुष्य नर्मदा के तट पर सदा ही रहे, सदैव नर्मदा का जल पान करे, वह मनुष्य सब तीर्थों में स्नान तथा प्रतिदिन सोमपान का फल पाता है। प्रलय काल में गंगा आदि सम्पूर्ण नदियाँ और समुद्र सरोवर क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। पर नर्मदा क्षीण नहीं होती इसी से यह नर्मदा कही जाती है ।।१०/१५।। ब्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८२।।

तिरासीवाँ अध्याय

हनूमन्तेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महाराज परमशोभनम् ।
वक्रहत्याहरं प्रोक्तं रेवातट समाश्रयम् ।।

सवैया--ऐसा सोच मनमें शिव बालकों के पास गये, नम्रता से कहा 'मित्र ! मुझसे क्या कराना है
बालक सब चिढ़कर बोले 'सबके कपड़े धोना है, और सबका तुमको ही खाना बनाना है ।।

मार्कण्डेयजी ने कहा--महाराज ! तदनन्तर मनुष्य ब्रह्म हत्या के विनाशक परम पवित्र नर्मदा तट पर स्थित तीर्थ की यात्रा करे। जहां "हनुमन्त" नामक लिंग स्थित है। युधिष्ठिर ने कहा नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित ब्रह्म हत्या के विनाशक इस तीर्थ का हनुमन्तेश्वर नाम कैसे हुआ, यह मुझसे कहो। श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--हे चन्द्रवंश के रत्न महावाहो ! बहुत ठीक बहुत ठीक यह तीर्थ अत्यन्त छिपा हुआ है मैंने किसी से नहीं कहा। यद्यपि

मैं वृद्धावस्था से पीड़ित हूँ । तो भी तुम्हारे स्नेह से मैं कहूँगा । पहले राम रावण का बड़ा युद्ध हुआ था ब्रह्मा जी के पुत्र महर्षि पुलस्त्य थे उसके पुत्र विश्वश्रवा थे उन विश्वश्रवा से दसमुख वाला ब्रह्म राक्षस रावण हुआ ।।१/५।। भगवान शंकर की कृपा से वह त्रिभुवन निवासी हुआ । उसने सब देवों को जीत लिया । राम की पत्नी सीता का हरण किया । कुम्भकर्ण ने सीताजी को 'छोड़-दो-छोड़ दो' कहकर उसे रोका । विभीषण और मन्दोदरी पत्नी ने बारम्बार उस पापी को रोका । तुम्हें कृतवीर्य के पुत्र सहस्त्रार्जुन ने जीता है उस सहस्त्रार्जुन को रेणुका के पुत्र परशुरामजी ने पछाड़ा और उन्हें श्रीराम ने । उन राम के साथ युद्ध में तुम्हारी जय कैसे होगी ? यह समझाया । रावण ने कहा--चिन्ता नहीं । अस्त्र-रहित वानर, मनुष्य, रीछ, सूकर और देव असुरों से मैं कभी पराजित नहीं हुआ । मार्कण्डेयजी ने कहा--श्री रामचन्द्रजी ने सुग्रीव-हनुमान-कुमुद-अंगद और अन्य सहायकों के साथ रावण को पराजित कर दिया । संग्राम में श्रीराम ने महाबली रावण को मार डाला । वायु पुत्र हनुमान ने रावण के वन को उजाड़ दिया ।।६/११।। बड़े बड़े शूरों को मार डाला । रावण पुत्र अक्षयकुमार भी संग्राम में मारा गया । श्री हनुमान ने राक्षसों के भयंकर समुदाय को पीस डाला । इस प्रकार रामायण का विस्तार और सीता मोक्ष होने पर श्रीराम के अयोध्या चले जाने पर वह वानर श्रेष्ठ हनुमान श्रीशंकरजी को प्रणाम के लिए कैलाश पर्वत पर गये । वहाँ नन्दीश्वर ने बानर श्रेष्ठ हनुमान से खड़े रहो खड़े रहो ऐसा कहा । राक्षसों के वध के कारण तुम ब्रह्म हत्या से युक्त हो अतः हे वानर ! तुम भैरव की सभा के देखने के अधिकारी नहीं । हनुमान ने कहा--नन्दीश्वर ! तुम शंकरजी से इस पाप के प्रायश्चित्त को पूछो । क्योंकि कई कारणों से मैं पाप युक्त हो गया हूँ ।।१२/१६।। नन्दीश्वर ने कहा-हनुमान ! तुमने पृथ्वी में स्थित श्री शंकर की देह से उत्पन्न श्री नर्मदा जी को क्या नहीं सुना ? श्री नर्मदा के नाम सुनने से एक जन्म का और कीर्तन से दस जन्म का पाप नष्ट हो जाता

है। श्री नर्मदा में स्नान करने से तीस जन्म का पाप नष्ट हो जाता है। इससे तुम नर्मदा के तट पर जाकर बड़ा तप करो। इस प्रकार नन्दीश्वर के वचन सुनकर वायु पुत्र श्री हनुमान जी और्वी नदी संगम के दक्षिण की ओर से नर्मदा तट पहुँचे ॥१७/११॥ उस शुभ संगम तीर्थ में श्री हनुमान ने तीन नेत्रों वाले त्रिशूल धारी जटाओं के मुकुट से युक्त सर्प रूप यज्ञोपवीत को धारण किये हुए, भस्म से शोभित सब अंगों वाले डमरू के शब्द स्वर वाले अर्धनारी वेष धारी नन्दीश्वर वृषभ पर स्थित शान्त श्री शंकर का चिन्तन किया। इस प्रकार बहुत वर्षों तक श्री हनुमान ने भगवान शंकर की उपासना की। तब शंकर पार्वती के साथ सन्तुष्ट होकर वहाँ आये। वह शंकर मेघ के समान गम्भीर शब्द वाली मधुर वाणी से बहुत अच्छा-बहुत अच्छा ऐसा बोले। बेटा! तुमने बड़ा कष्ट उठाया ॥२०/२३॥ प्रिय हनुमान! रावण के मारने में तुमने पहले कोई पाप नहीं किया। तुम तो स्वामी के कार्य में तत्पर थे। मेरे दर्शन से तुम सिद्ध हो चुके हो। हनुमान भी उमा के आधे अंग को साथ में लिये सामने स्थित श्री शंकर को देखकर साष्टांग प्रणाम करते हुए बोले। शम्भो! आपकी जय हो तुम्हें मेरा प्रणाम है। अन्धकासुर को मारने वाले तुम्हारी जय हो। शिर में गंगा को धारण करने वाले तुम्हारी जय हो। ऐसी स्तुति करने पर वरद श्री शंकर जी ने कहा--वायु नन्दन वत्स! तुम मुझसे वर माँगो तो श्री हनुमानजी ने कहा--महेश्वर! ब्रह्म राक्षस के वध से मुझे हत्या का पाप लगा है। देव! मैं आपके सम्भाषण और दर्शन से उस पाप का भागी न होऊँ। भगवान शंकर ने कहा--पुत्र! नर्मदा तीर्थ की महिमा से धर्म योग के प्रभाव से और मेरी मूर्ति के दर्शन से तुम निष्पाप हो इसमें संशय नहीं ॥२४/२८॥ वानर श्रेष्ठ! वायु नन्दन! संसार के उपकार के लिए तुम्हारे नाम रूपी दूसरे वर को मैं देता हूँ। ये नाम सब भय वाधाओं के निवारक हैं। हनुमान-अन्जनि पुत्र-वायु पुत्र-महाबली-रामेष्ट राम के परम प्रिय फाल्गुन-गोत्र-पिंगाक्ष अमित पराक्रम-उदधिक्रम श्रेष्ठ समुद्र

को लांघने में श्रेष्ठ दशग्रीव दर्पहा--रावण के अभिमान को चूर करने वाले लक्ष्मण प्राण दाता और सीता शोक विनाशक यह नाम कहकर भगवान शंकर माता पार्वती के साथ अन्तर्ध्यान हो गये। तब हनुमान जी ने भक्ति पूर्वक शंकर को स्थापित किया। उन्होंने आत्म योग के बल से ब्रह्मचर्य के प्रभाव से श्री शंकर लिंग की स्थापना की। भगवान शंकर की कृपा से वह लिंग सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यह लिंग अच्छेद किसी के द्वारा भी न काटे जाने योग्य तर्क से परे और विनाश उत्पत्ति से रहित है ॥२९/३३॥ श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--पुत्र ! हनुमन्तेश्वर तीर्थ से प्रत्यक्ष विश्वास की बात सुनो। पाण्डुनन्दन जो घटना त्रेता के अन्त और द्वापर के आदि में हुई। उस समय पृथ्वी में सुपर्वा नामक राजा को सदा ही सुख था। उनके राज्य के सभी पुरुष दीर्घायु थे। वह राजा पुत्र धन से युक्त चोरों के उपद्रव से रहित था। शतबाहु नामक उसका पुत्र भयंकर पराक्रमी था। राजन् ! वह सदा ही पाप धर्म वाले पुरुषों के साथ विषयों में आसक्त होकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर्वत और वनों में घूमने लगा। मृग और सूकरों में पूर्ण उस वन में क्रीड़ा कर उस राजा ने कहीं श्री नर्मदा को प्रणाम किया ॥३४/३९॥ आगे वह चिञ्चणी वन की शोभा से सम्पन्न कदम्ब वृक्षों से शोभित सौ कोस तक विस्तीर्ण हनुमन्त वन में जा पहुंचा। वह वन पलाश जम्बीर करञ्ज, खैर, पाटल, गुलाब और वेर के वृक्षों से युक्त शभी और तेदू वृक्षों से परिपूरित मृगों के झुण्डों से युक्त भौरों के स्वरों से प्रति-ध्वन्दित विविध कबूतरों के शब्दों से शब्दाय मान था। शरद ऋतु से आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में उसने वहाँ रमण किया। वन के बीच में जाकर किसी पुस्तक को हाथ में लिये हुए रहे चञ्चल पीतवर्ण वाले ब्राह्मण ने उसने पूछा। शतबाहु ने कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम इधर उधर देखते हुए पुस्तक हाथ में लिए अकेले क्यों घूम रहे हो कहिये ?॥४०/४५॥ ब्राह्मण ने कहा राजन् ! मैं कान्यकुब्ज देश से आया हूँ। श्री हनुमन्तेश्वर तीर्थ में जल में अस्थि प्रक्षेप के लिए

राजकन्या ने मुझे भेजा है । राजा ने कहा । ब्राह्मण ! हनुमन्तेश्वर तीर्थ के जल में अस्थि प्रक्षेप-हड्डी डालना किसलिए और क्यों किया जाता है ? यह आश्चर्य की बात मुझसे कहिये । हे राजन् ! सुपर्वा के पुत्र शतबाहु ने अपने वाहन को छोड़कर भूमि में मस्तक रखकर प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए ब्राह्मण से अपना सब प्राचीन वृत्तान्त कहा ॥४६/४८॥ ब्राह्मण ने कहा--कान्य-कुब्ज प्रदेश में बड़ा प्रतापी शिखण्डी नामक राजा है वह पुत्र रहित है, बड़े मनोरथों से उसके यहाँ एक कन्या हुई । अपने पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली नर्मदा के प्रभाव से अति सुन्दरांगी थी उस कन्या से पिता शिखण्डी ने एक समय बात की । पुत्री ! इस अनित्य संसार में मैं कन्यादान कर दूँ । कल का कार्य मनुष्य को आज ही कर लेना चाहिये और दिन के पिछले भाग का कार्य दिन के पूर्व भाग में ही करना उचित है । मृत्यु इसके किये न किये कार्य की प्रतीक्षा नहीं करती । कन्या ने पिता से कहा--पिताजी ! मैं जिस समय जहाँ चाहूँ वहाँ ही तुम कन्यादान करना । पुत्री के वचन से वह राजा विस्मित होकर बोला ॥४९/५२॥ राजा शिखण्डी ने कहा श्रेष्ठ भाग्य वाली पुत्री । तुमने जो आश्चर्य जनक बात कही है । फिर वह मुझसें कहो । पिता के बचन से वह श्रेष्ठ बालिका उनके समीप स्थित हो गई । उसने कहा हे राजन् हनुमन्तेश्वर में हुए सब वृत्तान्त का निवेदन किया कि कलापिनी मयूरी (मोर स्त्री) मैं तब स्वामी के साथ रहती थी । नर्मदा और और्वी के संगम के निकटवर्ती नर्मदा के तट पर पुण्य प्रद हनुमन्त वन में मैं इच्छानुसार जब बिहार करने लगी । रात्रि में देवदारु वृक्ष के नीचे अपने पति के साथ सो रही थी । तब वहाँ उस वन में भूखे बहेलिये आये । वध का चिन्तन करने वाले उन पापियों ने पति से युक्त मुझे देखा और स्वामी के साथ मुझे पाशों से बांध लिया ॥५३/५७॥ पंखों को जोर से पकड़कर गले को मोड़ दिया । उन बहेलियों ने पति के साथ अग्नि की लपटों में मुझे भूँजकर यथेच्छ माँस को खाकर रात्रि में शयन किये । क्रमशः रात्रि बीत

गई । प्रातः काल गृध्रों को मारने वाले सियारों ने शेष मांस भक्षण किया । नसों और मांस से लिपटी मेरे शरीर की हड्डी एक मांस पक्षी लेकर उड़ा । आकाश से गिरते उसे देखकर दूसरे पक्षी भी वहाँ आ पहुँचे ॥५८/६१॥ दौड़ते हुए पक्षियों के समूह को देखकर उस पक्षी ने उस हड्डी के टुकड़े को छोड़ दिया । राजन् ! मेरा वह अस्थिखण्ड हनुमन्तेश्वर तीर्थ में नर्मदा के जल में गिर गया । उस तीर्थ के पुण्य से मैं तुम्हारी कन्या हुई हूँ । अपने जन्म का स्मरण रखने वाली मैं आप जैसे राजा के कुल में उत्पन्न हूँ । राज श्रेष्ठ ! इससे मैं विवाह की इच्छा नहीं करती । मेरे पति आज भी विषम दशा में पक्षीमृग आदि जाति में चल रहे हैं । राजश्रेष्ठ ! उनका वह अवशिष्ट अस्थि भाग वहीं तीर्थ समीप होगा ॥६२/६६॥ पिताजी ! उसे तीर्थ में डालने के लिए शीघ्र ही किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को भेजिये । राजश्रेष्ठ ! यह सब कारण मैंने तुमसे कहा । मेरे पति विषम स्थिति पक्षी-मृग आदि जाति में इस समय है । पिताजी यदि किसी को नर्मदा तट पर भेज दो तो मैं उसे स्थान और चिनहों से युक्त अपने पति को बता दूँगी । राजन् ! वहाँ शिखण्डी ने मुझे बुलाया और कहा मैं तुम्हें बीस गाँव दूँगा । तुम नर्मदा के तट पर इस कार्य के लिये जाओ । निर्धन होने के कारण मैंने उस कार्य को स्वीकार कर लिया । कन्या ने कहा-ब्राह्मण ! तुम सब पापों का क्षय करने वाली पुण्यमती नर्मदा को जाओ । सोमनाथ के आग्नेय कोण में उत्तम हनुमन्तेश्वर है । नर्मदा से आधे कोस में एक बड़ा विशाल वट वृक्ष है । उस वट के समीप करञ्ज और कटहल वृक्ष हैं ॥६७/७२॥ तुम उस बरगद वृक्ष के समीप सूक्ष्म हड्डियों को देखोगे । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम उन्हें एकत्रित कर नर्मदा जी ले जाना । वहाँ आश्विन मास कृष्ण पक्ष की शिवतीर्थ चतुर्दशी में भगवान शंकर को भक्तिपूर्वक स्नान कराकर रात्रि में तुम जागरण करना पुनः प्रातः नाभि मात्र जल में खड़े होकर उन हड्डियों को वहाँ नर्मदा में उसकी मुक्ति हो ऐसा उच्चारण कर ब्राह्मण श्रेष्ठ ! फेंक देना । हड्डियों को फेंक कर पुनः पाप नाशक स्नान

करना । राज श्रेष्ठ ! ऐसा करने पर उसकी गति होगी । कन्या ने जो कहा वह सब मैं लिखित कर लिया । राज श्रेष्ठ ! इस हेतु में इस पापनाशक तीर्थ में आया हूँ । उसके बताये तीर्थ के चिन्ह देखकर हड्डियों को लेकर मैंने पूर्वोक्त विधान से उन्हें नर्मदा के जल में फेंक दिया ॥७३/७८॥ तब वहाँ फूलों की वर्षा शीघ्र होने लगी और हे पाण्डु नन्दन ! साधु साधु शब्द हो रहा था तभी वहाँ उस पक्षी के लिये दिव्य विमान आया । वह मयूर (बर्ही) दिव्य रूप धारी होकर विमान पर चढ़कर स्वर्ग गया । राजन् ! हनुमन्तेश्वर में ऐसा देखकर ब्राह्मण और राजा शतबाहु ने अनशन किया भगवान की आराधना में लगे हुए उन दोनों ने अपने देह को सुखा दिया । शतबाहु और ब्राह्मण भगवान का ध्यान करते हुए व्रहाँ स्थित हुए । एक पक्ष में ही श्रेष्ठ मनवाले राजा शतबाहु मृत्यु को वरण किये । छोटी घण्टियों से युक्त जाल को शोभा से सम्पन्न तब तक विमान आया । राजश्रेष्ठ ! 'अति उत्तम' तुम इस विमान पर चढ़ो । तब शतबाहु ने कहा मुझे उपदेश देने वाले गुरु स्वरूप ब्राह्मण श्रेष्ठ जब तक इसमें नहीं चढ़ते तब तक मैं स्वर्ग मार्ग की ओर नहीं जाऊँगा ॥७९/८४॥ अप्सराओं ने कहा--यह ब्राह्मण लोभी है । लोभ से ही पाप का संग्रह होता है । राजन् ! सत्वगुण का आश्रय लेकर जो हनुमन्तेश्वर में मरते हैं वे सब पापों का क्षय करने वाले शिव लोक जाते हैं राजन् ! इस ब्राह्मण का पाप क्षय अभी नहीं हुआ । ब्राह्मण के मन में घर और स्त्री की चिन्ता लगी हुई है तब नम्र होकर शतबाहु ने ब्राह्मण से कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अनर्थ के मूल इस लोभ को तुम छोड़ दो । ऐसा कहकर स्वर्ग की कन्याओं से युक्त होकर राजा स्वर्ग गया । कुछ दिनों में ब्राह्मण वैतालिकों के साथ स्वर्ग गया और वह भी तीर्थ के प्रभाव से काशीराज का पुत्र हुआ । पूर्व जन्म में कन्या के द्वारा दिये गये अपने आत्मा का ध्यान चिन्तन करते हुए वहीं (मयूर) राजा का पुत्र हुआ था । साध्वी उस कन्या ने उसे युवा देखकर पिता की आज्ञा पाकर स्वयम्बर में अपने

पति उस राजकुमार को पा लिया ॥८५/९०॥ श्री मार्कण्डेय जी ने कहा राज श्रेष्ठ ! उस तीर्थ में यह वृत्तान्त हुआ राजन् ! इस कारण यह तीर्थ परम पवित्र है । राजन् ! अष्टमी और चतुर्दशी तिथि में सब समय विशेषतः आश्विन मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में भगवान शंकर को मधु तथा दुग्ध से घृत से खण्ड से मिश्रित दही से और फिर कुश जल से क्रमशः स्नान कराये । पुनः सुगन्धित चन्दन से श्री शंकर को लेप करे । पश्चात् सुन्दर गन्ध वाले पुष्पों और विल्व पत्रों से श्री शंकर का पूजन करे । मुचुकन्द, कुन्द, जाती कुश काश आदि विविध पुष्पों से वन पुष्पों से और तत्काल ऋतुओं में होने वाले पुष्पों से श्री हनुमन्तेश्वर शिव की बड़ी भक्ति से पूजा करे घृत का दीपक जलाये उसके अभाव में तैल का दीपक जलाये । वेदों के पारगामी सब लक्षणों से युक्त कुलीन गृहस्थ ब्राह्मणों से श्राद्ध कराये । योग्य ब्राह्मणों को वस्त्र-अन्न सुवर्ण से तृप्त करे । नरक में पड़े पितृ गण स्वर्ग जायें ऐसा कहकर ब्राह्मणों को प्रणाम करे ॥९१/९८॥ पतित ब्राह्मणों को श्राद्ध में त्याग दे । जिसके घर में अन्य पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाली स्त्री हैं ऐसे पुरुष को श्राद्ध में न बुलावे । अपने पति को छोड़कर जो दूसरे पुरुषों से संग करती है देव उसे 'वृषली' कहते हैं । केवल शूद्री वृषली नहीं होती । ब्रह्म हत्या, मदिरा पान, गुरु स्त्री संग, सुवर्ण की चोरी और मित्र द्रोह से उत्पन्न पाप ये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । ऐसा शंकर जी ने कहा है । मार्कण्डेय जी से बोले--वत्स ! बहुत वाणी कहने से क्या है ? सब पापों से युक्त भी पुरुष ब्राह्मण को दान दे । इस तीर्थ में विशेष रूप से गौ दान करना चाहिये क्योंकि कुन्ती पुत्र ! सब दानों से गौ दान श्रेष्ठ माना गया है गौएँ सर्व देवस्वरूपा हैं और सब देव भी गौ रूप है । राजन् ! उसके सींग के अग्र भाग में नित्य ही इन्द्र का निवास है ॥९९/१०४॥ वृक्षःस्थल में स्कन्द, शिर में ब्रह्मा, भाल में शिव, नेत्रों में चन्द्र सूर्य देव, जिह्वा में सरस्वती राजन् ! मरुदगण और साध्य जिसके दाँत हैं । गाय के हुंकार में अंग-

व्याकरणादि पद क्रम सहित चारों वेदों को स्थित जाने । असंख्य तपस्वी ऋषि गाय के रोम छिद्रों में निवास करते हैं । महिषवाहन दण्ड हस्त वाले बड़े शरीर वाले शुभ-अशुभ परीक्षक काले वर्ण वाले यमराज नित्य ही गाय के पृष्ठ में स्थित है । दूध की धारा वाले चारों पुण्य सागर गाय के स्तनों में रहते हैं । विष्णु के चरणों से उत्पन्न दर्शन से पाप नष्ट करने वाली भगवती गंगा जिस गाय के मूत्र में स्थित है अतः वह सदा विद्वानों के द्वारा वन्दनीय है । पवित्र सर्व मंगलदायिनी भगवती लक्ष्मी भी नित्य ही गौ के गोबर में स्थित है । उससे पाण्डु नन्दन ! मनुष्य को गौ के गोबर का शरीर में लेप करना चाहिए । गन्धर्व अप्सरायें और नाग गौ के अग्र भाग में स्थित है । भरत वंशोत्पन्न ! सागरान्त पृथिवी में जो तीर्थ है वे सब गौ में जानने चाहिए अतः गाय सर्व तीर्थ मयी है और पञ्चगव्य--गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र, गोबर परम पवित्र है ।।१०५/११०।। युधिष्ठिर बोले--गौ सर्व देवमयी है वह देवों से सुशोभित है पूज्य तुम यह बताओ कि गौ में सम्पूर्ण देवों का निवास क्यों है ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--भगवान विष्णु सर्व देवमय हैं और गौएँ विष्णु के शरीर से उत्पन्न हैं । देव भी उन विष्णु के ही शरीर से उत्पन्न हैं । सफेद अथवा बहुत दूध देने वाली कपिला व बछड़े सहित जो अच्छे शील वाली और श्वेत वस्त्रों से आच्छादित हो काँसे की दोहनी से युक्त सोने से मढ़े सींगवाली अत्यन्त भूषित सजी हुई हो हनुमन्तेश्वर जी के आगे भक्ति से उत्तम सुपात्र विद्वान् ब्राह्मण को देना चाहिए ।।१११/११४।। स्वर्ग और अनन्त फल चाहने वाले पुरुष को नियम में स्थित होकर वह गाय देनी चाहिए । जो पुरुष असमर्थ पुरुष को गौ का दान करते हैं वे विष्णु लोक को जाते हैं । राजन् ! वह पुरुष इस लोक में आकर योग्य ब्राह्मण के घर में गुण, विद्या, धन और सम्पत्ति से युक्त कुशल पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है । राजन् ! तब पापों के हरने वाले हनुमन्तेश्वर तीर्थ की कथा सुनते हुए मनुष्य वर्णसांकर्य से होने वाले पाप से छूट जाते

हैं । दूर रहते हुए भी चिन्तन करने वाला और उस तीर्थ का दर्शन करने वाला मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें संशय नहीं है ॥११५/११८॥ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८३॥

चौरासीवां अध्याय

कपितीर्थ रामेश्वर लक्ष्मणेश्वर महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- अत्रैवोदाहरन्ती यममितिहासं पुरातनम् ।
कैलासे पृच्छते भक्त्या षण्मुखाय शिवोदितम् ॥

सवैया-- ऐसा कह बालक तब नर्मदा नहाने गये, शिव ने सभी सिद्धियों को याद करके बुलाया है ।
भाँति-भाँति के व्यंजन सब क्षणभर में तैयार भये, ऐसा लीलाधारी शिव ने एक नाटक रचाया है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--यहाँ कैलाश पर्वत पर भक्तिपूर्वक पूछ रहे स्कन्द से श्री शंकर के द्वारा कहे गये प्राचीन इस इतिहास को आचार्य कहते हैं । सदाशिव ने कहा--स्कन्द ! पहले त्रेतायुग में श्रीराम ने रावण को मारा उस समय चौदह करोड़ ब्रह्म राक्षस मारे गये । देवों की रक्षा के लिए उनके मारे जाने पर प्रियपुत्र । उस समय तीनों लोकों में बड़ा आनन्द हुआ । तदनन्तर सीता को पाकर श्रेष्ठ वानरों के साथ श्री रामचन्द्र जी अयोध्या आये । श्री राम का श्री भरत ने पूजन किया । उन भरत ने वह राज्य श्रीराम को सहर्ष सौंप दिया । जब निष्कण्टक राज्य का श्री राम उत्तम शासन कर रहे थे तब एक समय पहले कार्य से हनुमान जी कैलाश पर गये ॥१/५॥ उस समय द्वारपाल नन्दी ने पाप विनाशक श्रीशंकर से रुद्रावतार हनुमान जी को नहीं मिलाया । हनुमान जी ने नन्दीश्वर से पूछा कि मैंने क्या पाप किया है जिससे गौरी सहित शिव शंकर के शरीर का दर्शन नहीं पा रहा हूँ । तब श्री नन्दीश्वर ने कहा--वानर श्रेष्ठ ! तुमने देवों के लिए अवतार लिया है जो भी किया गया पाप उपभोग से ही शान्त होता है । श्री हनुमानजी ने कहा--नन्दिगण ! देवों का कार्य सिद्ध करने में मैंने क्या पाप किया है ।

ब्राह्मणों और यज्ञों के अंगों का विनाश करने वाले दुष्ट राक्षसों को मैने मारा है । तदनन्तर उनने वार्ता को उत्कण्ठित, द्वार के भीतर की ओर दत्तदृष्टि वाले होकर श्रीशंकर जी ने अपने अँश से युक्त तीव्र तेज वाले वानर श्रेष्ठ को सामने उपस्थित हनुमान जी को देखकर उनसे कहा ॥६/१०॥ शंकर जी बोले वानर ! गंगा, गया, नर्मदा, यमुना, सरस्वती ये सब नदियाँ पापों को हरने वाली है । हनुमान ! तुम उनमें स्नान विधिवत करो । नर्मदा के दक्षिण तट पर परम पवित्र सोमनाथ के समीपस्थित उत्तम तीर्थ है तुम वहाँ ही जाओ । वहाँ स्नान कर तुम्हारा महापाप नष्ट हो जायगा । तुम मेरी आज्ञा से वहीं जाओ । तब हनुमान जी शिवजी की आज्ञा से शीघ्र ही वेग से उछलकर श्री नर्मदा के दक्षिण तट पर बड़ा नाद करते हुए आये । हनुमान ने वहाँ बड़ा उग्र तप किया । युधिष्ठिर ! तप करते हुए उन श्री हनुमान का राक्षसों के वध से उत्पन्न सम्पूर्ण पाप कुछ समय में सदाशिव के अनुग्रह से नष्ट हो गया ॥११/१४॥ तदनन्तर महादेव जी देवों के साथ उस तीर्थ पर पहुँचे । वहाँ उसने हनुमान का आलिंगन किया और उन्हें वर दिया । आज से लेकर यह तीर्थ तुम्हारा होगा इसमें संशय नहीं । उस समय से यह तीर्थ कपितीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वहाँ श्री शंकर स्वयं स्थित हुए । तब सब हत्याओं के पाप को हरने वाले नाम से हनुमन्तेश्वर प्रसिद्ध हुए । उस तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर भक्ति से लिंग की पूजा करता है । शंकर जी के वचनानुसार उसके सब पाप नष्ट हो जाते है ॥१५/१८॥ वहाँ हड्डियाँ विलीन हो जाती है । पिण्डदान से अक्षयगति होती है । वहाँ जो कुछ किया जाता हैं वह सब करोड़ों गुना होता है । कालान्तर से हनुमानजी अयोंध्या से श्रीराम को देखने गये । कुशल प्रश्न कर अपने स्वरूप का निवेदन किया । श्री राम ने कहा--पवनतनय । देव कार्य और मेरा कार्य करते हुए जब तुम्हें प्रायश्चित स्वरूप तप करना पड़ा तब तो मैं भी पापी हूँ । निश्चय ही मैं भी तप करूँगा । वहाँ ही श्रीनर्मदा के पाप नाशक दक्षिण तट पर

आकर श्रीराम ने तप किया । ज्योंतिष्मतीपुरी में रहते हुए लक्ष्मण ने भी उनकी आज्ञा से श्री नर्मदा का स्नान करते हुए श्री राम की सेवा की ।।१९/२३।। तब वहाँ निवास करते हुए बड़े बुद्धिमान उन राम लक्ष्मण ने सत्य और तप के प्रभाव से नर्मदा के तट पर दो लिंगों को स्थापित किया । लिंग स्थापित कर वीर राम लक्ष्मण दोनों ही निष्पाप हो गये । तदनन्तर पुण्यात्मा मुनीश्वरों के साथ देवों के अग्रणी श्री महेश्वर ने उस तीर्थ में अपनी कला देकर उन्हें वर दिया । वहाँ मुनियों ने सब तीर्थों का घड़े में रखा हुआ जल डाला । वह एकत्र स्थित होकर लिंग कलाकुम्भ हुआ । वही 'कुम्भेश्वर' नाम से प्रसिद्ध होकर सब देव वृन्द से पूजित हुआ । श्री राम ने देवों से सेवित उस लिंग की पूजा की ।।२४/२७।। तब भगवान शंकर ने श्री राम की कीर्ति की बुद्धि के लिए वर दिया । इस प्रकार चौबीसवे वर्ष में भी राम निष्पाप भाव को प्राप्त हुए । जिस समय शनैश्चर कन्याराशिस्थ होकर गुरु के साथ हो तभी यह देव यात्रा होती है । ऐसा देवों ने बड़े हर्ष से कहा है । जिस प्रकार गोदावरी के तीर्थ में सब तीर्थों का फल होता है उसी प्रकार यहाँ नर्मदा में स्नान और लिंग दर्शन से मनुष्य को सब तीर्थों का फल मिलता है । जो लोग श्री नर्मदा के तट पर कुम्भेश्वर के समीप में स्थित होकर पितृगण का श्राद्ध करेंगे । स्कन्द ! तुम उसका फल सुनो । सब देहवासियों के शरीर में जितने रोमछिंद्र होते है उतने वर्ष प्रमाण से पितरों की अक्षयगति होती है । पृथिवी में जितने देव और जितने तीर्थ हैं मनुष्य इन तीन लिंगों के देखने से उन सबके दर्शन व स्नान का फल पा जाते हैं ।।२८/३३।। अपुत्र पुरुष पुत्र पाता है और निर्धन धन रोगी रोग से छूट जाता है इसमें संशय नहीं करना चाहिए । स्कन्द ! बृहस्पति के सिंह राशि पर आने में जो स्नानादि से फल होता है कुम्भेश्वर के समीप में स्नान आदि से उससे बारह गुना होता है । जो लोग कुम्भेश्वर उमापति को नर्मदा के दक्षिण तट पर जानते हैं पर दर्शन नहीं करते उनका जन्म निरर्थक है । जिस प्रकार चौबीसवें वर्ष मुनियों

की आज्ञा गोदावरी की आज्ञा फल दायिनी है उसी प्रकार यह तीर्थ भी है। ऐसा ही देवों का वचन है। जब तक चन्द्रमा और सूर्य हैं और जब तक आकाश में तारे हैं श्री नर्मदा के तट पर कुम्भेश्वर के समीप दिया गया दान भी तब तक अक्षय रहने वाला है। योग्य चतुर पुरुषों को वहाँ बड़े-बड़े दान देना चाहिए। यहाँ आचार्य गोदान और सुवर्ण और चाँदी के दान की प्रशंसा करते हैं। जिस नर्मदा के स्मरण मात्र से पाप राशि नष्ट हो जाती है। स्कन्द ! पुनः स्नान का क्या कहना उसका स्नान ब्रह्म हत्या को भी दूर कर देता है ।।३४/४०।। युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर श्राद्ध करता है वह एक सौ एक कुलों का उद्धार कर देता है। ऐसा शंकर जी ने कहा है। समुद्र और सरोवर तक जो कोई तीर्थ है वे शिव लिंग पूजन की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है। इस प्रकार इस तीर्थ का उत्तम नाम रखकर और वर देकर श्रीविष्णु श्री शंकर आदि देव अपने स्थान को गये। लक्ष्मण के अग्रज वह राम नर्मदा के जल से निष्पाप होकर इस तीर्थ को वर देकर अयोध्या में प्रविष्ट हुए। तदनन्तर सुवर्ण की सीता बनाकर मुनियों और देवताओं तथा अन्य लोगों को अपने बन्धु बान्धवों सहित बुलाकर उन श्रीराम ने यज्ञ किया ।।४१/४५।। पहले त्रेतायुग में वह तीर्थ स्कन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ था अतः लोगों को नियम से उस लिंग का दर्शन करना चाहिए। बड़े पापों से भी उत्पन्न पाप शरीर में तब तक ही रहते हैं जब तक देव सेवित इस तीर्थ को नहीं देखता। वे पुरुष ही धन्य और महात्मा है उनका जन्म ही उत्तम जीवन वाला है जो पुरुष ज्योंतिष्मती में स्थित श्रेष्ठ श्री शंकरजी का दर्शन करते हैं--दूसरे मोह को छोड़कर सब तीर्थों के फल की प्राप्ति के लिए कुम्भेश्वर तीर्थ की यात्रा मनुष्यों को आदर पूर्वक करनी चाहिए। मार्कण्डेय जी ने कहा--श्रीशंकर के मुख से इस प्रकार वचन सुनकर स्वामी कार्तिकेयजी ने आदर पूर्वक पिता के दोनों चरण कमलों में प्रणाम कर श्री नर्मदा के दक्षिण तट पर पहुंच कर कपि तीर्थ रामेश्वर-कुम्भेश्वर आदि का दर्शन किया ।।४६/५०।। चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८४।।

पिच्यासीवाँ अध्याय

सोमनाथ तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेद्रा राजेन्द्र नर्मदायाः पुरातनम् ।
ब्रह्महत्याहरं तीर्थं वाराणस्यां समं हि तत् ।।

सवैया--बालकों से पहिले पहुंच नर्मदा में स्नान किया, देख सब बालकों को अचरज मन मेंआया है।
पूछा पकड़ के शंकर को 'भोजन बने कि नहीं, या तुमने हमको झूठ-मूठ में भरमाया है ।

मार्कण्डेय जी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! तदनुसार श्री नर्मदा के प्राचीन ब्रह्म हत्या को हरने वाले वाराणसी के समान तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । इस तीर्थ का नाम ब्रह्म हत्याहरन तीर्थ है । युधिष्ठिर ने कहा--ब्रह्मन् ! नर्मदा के तट पर जो आश्चर्य जनक हुआ वह कहो । भगवन् ! यह तीर्थ वाराणसी (काशी के) समान कैसे है ? यह भी मुझसे कहो । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मेरा राज्य हरा जा चुका है और मैं दुःखमय संसार में डूबा हुआ हूँ । परन्तु तुम्हारे वाणी रूपी जल में स्नान करते रहने से मैं अब बान्धवों के साथ दुःख रहित हूँ । मार्कण्डेय जी ने कहा--चन्द्रवंश भूषण । महाभुज ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा अत्यन्त छिपे हुए दुर्लभ तीर्थ के विषय में तुमने पूछा है सम्पूर्ण विश्व के सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी के मन में प्रथम दस पुत्र उत्पन्न हुए । महा तेजस्वी प्रजापति ब्रह्मा ने मारिच, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, वशिष्ठ, भृगु और नारद तथा दक्ष इन दस पुत्रों को उत्पन्न किया । दक्ष के भी पचास पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं ।।१/७।। दक्ष ने उनमें से दस कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को और उसी प्रकार महाभाग्यशाली उन दक्ष ने सत्ताइस चन्द्रमा को दी । उनमें रोहिणी चन्द्रमा को अत्यन्त प्रिय थीं । दूसरी उपेक्षित होने के कारण दक्ष ने उन पर दया करते हुए चन्द्रमा को शाप दे दिया । प्रजापति दक्ष के प्रभाव से चन्द्रमा क्षयी रोगी तेज से रहित हो गये । अमृत मय किरणों वाले चन्द्र देव काँपते हुए ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले ब्रह्मन् ! वेद गर्भ कमलासन ! मेरा तुम्हें नमन है । मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ।

तुम मेरी रक्षा करो । ब्रह्मा जी ने कहा--रात्रियों के अधीश्वर ! प्रिय चन्द्र तुम तेज से रहित कलाओं से हीन दिखाई देते हो तुम किस कारण से व्याकुल मनवाले हो । चन्द्रमा ने कहा--जगत्पते ! दक्ष के शाप से मैं तेज से रहित हुआ हूँ । पितामह ! इस शाप का छुटकारा आप बताइये कैसे होगा ॥८/१२॥ श्री ब्रह्मा ने कहा--चन्द्रदेव ! नर्मदा सर्वत्र सुलभ है । पर तीन स्थानों में दुर्लभ मानी जाती है । श्री ओंकारेश्वर भृगुक्षेत्र (भड़ौंच) और और्वी नदी के संगम में निशानाथ ! तुम वहाँ जाओ जहाँ नर्मदा जी का भीतरी तट हैं । ब्रह्मा जी का आशय समझकर वह चन्द्र शीघ्र ही जहाँ नर्मदा और और्वी का संगम था वहाँ पहुंचे । निश्चल स्थितिकर चन्द्रमा ने भगवान शंकर का ध्यान किया । सौ वर्ष पूर्ण होने पर भगवान शंकर सन्तुष्ट हो गये । नन्दीश्वर पर चढ़े हुए उमानाथ शंकर जी चन्द्रमा के सामने प्रकट हो गये । चन्द्रमा ने साष्टांग प्रणाम करके उच्च स्वर से कहा--शम्भो ! तुम्हारी जय हो । तुम्हें हमारा नमन है ॥१४/१७॥ हे शिव शंकर ! कल्याणकारी देव ! तुम्हारी जय हो । पापों के नाश करने वाले तुम्हें नमन है । ईश ! तुम्हारी जय हो जगदीश ! तुम्हें मेरा प्रणाम है । वासुकि को गले में भूषण रूप से धारण करने वाले तुम्हारी जय हो, जय हो ! शूल और कपाल के धारण करने वाले तुम्हें मेरा नमन है । अन्धक के विनाशक ! तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो । मेरा नमन हैं । दानवों के वध करने वाले तुम्हें मेरा प्रणाम हो । निर्गुण निर्विकार रूप वाले भगवान् तुम जय को प्राप्त होओ । सर्व स्वरूप ! तुम्हें नमन हैं तुम्हारी जय हो । काल स्वरूप और काम के जलाने वाले तुम्हें मेरा नमन हो । नीलकण्ठ धारी तुम्हारी जय हो तुम्हें नमन है । जय हो सूक्ष्म उपाधि रहित शब्दमय । ब्रह्मन् ! तुम्हें मेरा प्रणाम है । आनन्द स्वरूप । अनादि और अनन्त स्वरूप । तुम जयको प्राप्त हो । तुम्हें नमन है तुम्हारी जय हो । हे शम्भो ! तुम अपने दास को अपना लो ॥१८/२०॥ पाण्डव ! चन्द्रमा के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर पार्वती के साथ शंकर जी

प्रसन्न हो गये । राजश्रेष्ठ । शंकरजी ने कहा-प्रियचन्द्र ! जो तुम्हारे मन में हो वह वर माँग लो । परमधीर । 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा । मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ । चन्द्रमा ने कहा--महेश्वर । मैं दक्ष के शाप से जल-सा गया हूँ क्षीण-शक्ति वाला होगया हूँ । भगवान तुम शाप की शान्ति कर दो । मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ शंकर जी ने कहा--तुम्हारी भक्ति से वश हुआ मैं उमा के साथ तुम्हारे द्वारा सन्तुष्ट किया गया हूँ । चन्द्र ! तुम तीर्थ सेवन से निष्पाप हो गये हो । ऐसा भगवान शंकर ने कहा--तदनन्तर चन्द्रमा ने कुछ विचार कर प्राणियों के मनोरथ को पूर्ण करने वाले उत्तम लिंग की स्थापना की । वह सब दुखों को हरने वाला और ब्रह्म हत्या का विनाशक है ।।२१/२५।। तब सोम के द्वारा स्थापित लिंग सोमनाथ हुआ । युधिष्ठिर जी ने कहा--प्रभो ! तुम मुझे उन सोमनाथ का प्रभाव और संक्षेप से बताओ । ब्राह्मण श्रेष्ठ ! दुःख सागर में डूबे हुए हम लोगों को आप रक्षक मिल गये हो । श्री मार्कण्डेय ने कहा--तुम तीर्थ का प्रभाव सुनो । मैं तुमसे संक्षेप से कहता हूँ । नर्मदा के उत्तर तट पर उरी के संगम में जो हुआ उसे तुम सुनो । पहले शम्बर नामक एक राजा था । उसका पुत्र त्रिलोचन हुआ । त्रिलोचन का पुत्र कण्डव था । वह बहुत ही पाप प्रवृत्ति वाला रहा एक समय वन में घूमते हुए उसने मृगों के झुण्ड को देखा । त्रिलोचन के पुत्र कण्डव ने उस मृग समूह को मार डाला । निर्जन वन में एक ब्राह्मण मृग रूप धारी होकर उन्हीं में विचर रहा था मुनि श्रेष्ठ ! मृगों के संग से वह ब्राह्मण भी मारा गया । तब ब्रह्म हत्या से युक्त कण्डव पृथिवी में घूमने लगा । विचरते हुए वह उरी नदी के संगम में नर्मदा के तट पर जा पहुँचा ।।२६/३१।। वह संगम स्थल पलाश और अशोक वृक्षों से पूर्ण था वहाँ निम्बू और कटहल के बहुत वृक्ष थे । कदम्ब और पाटल वृक्षों से भी पूर्ण बेल और नारंगी से शोभित था । चिञ्चिणी और चम्पा से युक्त अगस्त्य वृक्षों से ढका हुआ वह था । विविध जीवों से पूर्ण वह वन सर्वत्र शोभित था । चीते मृग विलाव

और हिंसक शम्बर-मृग विशेष सूकर नीलगाय खरगोश आदि जीवों से भरा हुआ मोरो के स्वरों से गुञ्जायमान था। उस वन में थका हुआ प्यासा कण्डव प्रविष्ट हुआ और उसने पवित्र पाप नाशक संगम स्थल में भी नर्मदा के जल में स्नान किया ॥३१/३५॥ युधिष्ठिर ! बड़ी भक्ति से उसने श्री सोमनाथ की पूजा की और सब पापों के विनाशक अति निर्मल जल का पान भी किया। अपने सेवकों के साथ विविध फलों का भक्षण किया। मृगों के वध से वह थका था वृक्ष की छाया में सो गया। तब उस उत्तम तीर्थ में स्नान किये एक ब्राह्मण वहाँ जा रहा था। वह ब्राह्मण मार्ग में जाते हुए तथा मन में तीर्थ का चिन्तन करता हुआ बड़ा हर्षित था। तभी उस ब्राह्मण से एक स्त्री यह बोली ! ब्राह्मण श्रेष्ठ ! खड़े रहो, खड़े रहो। राजन् ! डरकर वह ब्राह्मण ने ज्यों ही उस ओर देखा त्यों ही वृक्ष पर बैठी हुई रक्त वस्त्र से लिपटी लाल माला धारण किये रक्त चन्दन के लेप वाली रक्त आभूषणों की शोभा से हाथ में पाश लिए हुए एक नव युवती को देखा ॥३६/४०॥ स्त्री ने कहा ब्राह्मण ! यदि तुम और्वी और नर्मदा के संगम में जाते हो तो मेरा सन्देश सुन लो वहाँ मेरा पति स्थित है उन्हें शीघ्र भेज दो। उनसे कहना कि बन के बीच तुम्हारी पत्नी अकेली बैठी है। यह सुनकर वह ब्राह्मण देव दुर्लभ संगम पर गया। वहाँ ब्राह्मण ने वृक्ष की छाया में बैठे हुए कण्डव को देखा। तब वह ब्राह्मण उससे वचन बोला ब्राह्मण ने कहा--मैंने वन के बीच में कमल के समान नेत्रों वाली रक्त-वस्त्र-धारण किये हुए। रक्त चन्दन से भूषित सुन्दरी को देखा है। वह रक्त माला धारण किये हुए सुन्दर शोभा से सम्पन्न हाथ में पाश लिए हुए मृग के समान चञ्चल नेत्रों वाली वृक्ष पर चढ़ी हुई है उसने कहा है मेरे पति को भेज देना ॥४१/४५॥ कण्डव ने कहा श्रेष्ठ ब्राह्मण ! वह मृगनयनी किस स्थान में है ? वह किसकी स्त्री है ? किस कार्य से वहाँ है ? यह सब शीघ्र ही मुझसे कहो। ब्राह्मण ने कहा--इस संगम से आधे कोस की दूरी पर बगीचे के समीप में है। ब्राह्मण

वचन से राजा ने ठीक नहीं समझा । तब उस कण्डव राजा ने अपने दूत को आज्ञा दी । कण्डव ने कहा--तुम जाओ उससे पूछो वह कहाँ से आयी कौन है कहाँ जायगी ? भेजने पर वह दूत शीघ्र ही उस स्त्री के समीप गया । राजश्रेष्ठ ! उस दूत ने वृक्ष पर बैठी उसे देख कर उस सुन्दरी ने कहा मेरे स्वामी तुमसे पूछते हैं तुम कौन हो कहाँ जाओगी ।।४६/४९।। कन्या ने कहा-इन्द्रियों को वश में किये हुए ज्ञान चाहने वाले शिष्यों का गुरु शासक है । तथा दुष्ट पुरुषों का शासक राजा है और छिपे पापवाले पुरुषों को दण्ड देने वाले सूर्य पुत्र भगवान यम है । मृगरूप धारी ब्राह्मण के वध से उससे ब्रह्म हत्या हो गयी है । तुम्हारा राजा मुझसे युक्त होकर तीर्थ के प्रभाव से मुक्त हो गया । आधे कोश के भीतर प्रदेश में ब्रह्म हत्या प्रविष्ट नहीं हो सकती । यह सोमनाथ का प्रभाव वाराणसी के समान माना गया है । तुम जाओ और राजा को शीघ्र ही यहाँ भेजो संशय न करो । वह सेवक काँपता हुआ व्याकुल हो शीघ्र ही राजा के पास गया । उसने राजा से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा । उस सेवक के वचन से वह राजा पृथिवी पर गिर पड़ा ।।५०/५४।। सेवक बोला स्वामी ! तुम क्यों शोक करते हो शुभ-अशुभ तो पूर्व जन्मों के कर्मों से ही प्राप्त होते हैं उसके इस वचन को सुनकर राजा बोला-मैं श्री सोमनाथ के समीप प्राणों का त्याग करूँगा तुम शीघ्र ही बहुत ईंधन और आग लाओ । उसी समय सेवकों ने सब बस्तुएं ला दीं । राजा ने पाप नाशक संगम के शुभ जल में स्नान कर बड़ी भक्ति से श्री सोमनाथ का पूजन किया । बड़ी लपटों वाली अग्नि देव की तीन परिक्रमा कर उस राजा कण्य ने हृदय में पीताम्बरी जटामुकुट से शोभित लक्ष्मी से युक्त गरुड़ पर आरुढ़ शंख-चक्र-गदा धारण किये हुए दैत्यों के विनाशक भगवान विष्णु का ध्यान कर 'मेरी शुभ गति हो' ऐसा कह कर अग्नि में प्रवेश किया, पुष्प वर्षा होने लगी । राजकुमार ! 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' बड़ा आश्चर्य देखकर वे राजा के सेवक एक दूसरे को देखने लगे अग्नि में स्वामी को मरा हुआ देखकर

हृदय में भगवान का ध्यान कर पाण्डु नन्दन युधिष्ठिर ! वे सब विमानों में बैठ गये । इस प्रकार जब संगम में ब्राह्मण श्री शंकर का ध्यान कर रहे थे तब वे सभी सोमनाथ के प्रभाव से पाप रहित होकर स्वर्ग गये ।।५५/६३।। श्री मार्कण्डेय ने कहा--यह सोमनाथ का प्रभाव है । अब तुम एकाग्रचित्त होकर उसकी विधि सुनो--अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में रविवार के दिन सब विशेषतया शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि यदि रविवार से युक्त हो उसमें जो मनुष्य उवपास कर रात्रि में जागरण करता है वह अभीष्ट सिद्ध करता है । पञ्चामृत और गोदुग्ध गोदधि आदि से श्री सोमनाथ को प्रेम से स्नान कराये । फिर शुद्ध स्नान कर चन्दन से लिप्त कर धूप दीप आदि समर्पण करे ।।६४/६६।। घृत का दीपक जलाये, नृत गीत भी करे कराये । सोमवार अष्टमी में प्रातः काल ब्राह्मण का पूजन करे । इस पूजन में क्रोध को जीतने वाले जितेन्द्रिय पर निन्दा से रहित, सब अंगों से युक्त, प्रसंशनीय, अपनी स्त्रियों के रक्षक ब्राह्मणों को वरण करे । गायत्री का जप करने वाले दूषित कर्मों से पृथक रहने वाले ब्राह्मणों का पूजन उत्तम है । जिसके घर में दुबारा विवाह करने वाली स्त्री, धर्म भ्रष्ट और शूद्र जाति की स्त्री के रूप में हो अथवा कल्याण चाहने वाले को दूर से ही उसे त्याग देना उचित है । अधिक अंग वाले और जिनके पीछे कोई नहीं है गमन और श्राद्ध तथा दान में ऐसे लोगों को दूर से ही छोड़ दे स्वाध्याय से रहित ब्राह्मण लोहे की नव युवती के समान है । यज्ञ करने वाले के साथ अपने को भी गिरा देते हैं इसमें संशय नहीं । अध्यय अध्यापन आदि कर्मों में लगे ब्राह्मण सेमल वृक्ष की नाव के समान है । ऐसे ब्राह्मण दाता तथा स्वयं को भी तार देते हैं और तर जाते हैं । ये युधिष्ठिर जो पुरुष ईर्ष्या रहित होकर सोमनाथ में श्राद्ध करता है उसके पितृगण प्रलय पर्यन्त प्रसन्न रहते है । अन्न-वस्त्र और सुवर्ण इन वस्तुओं को जो योग्य ब्राह्मण को देता है वह शिवलोक में जाता है ।।६७/७४।। यह मेरा यथार्थ कथन है । जो पुरुष योग्य ब्राह्मण को श्वेत रंग वाला

जवान घोड़ा देता है सर्व लक्षणों से युक्त लाल अथवा पीला घोड़ा देता है, ब्राह्मण और घोड़े के अंगों को कुंकुम से लिप्त माला से भूषित और श्वेत वस्त्रों से सज्जित करके ब्राह्मण से प्रार्थना करे कि ब्राह्मण देव ! तुम मेरे कन्धों पर पग रख के घोड़े पर चढ़ो । घोड़े पर ब्राह्मण के चढ़ जाने पर यह कहे भगवान सूर्य प्रसन्न हों । ऐसा करने वाला पुरुष सब पापों से रहित होकर शिवलोक जाता है । सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में पुरुष जितेन्द्रिय होकर सोमनाथ तीर्थ में जाता है वह सत्य लोक गामी होता है और वहाँ से गिरकर वहाँ धर्मशील राजा होता है ॥७५/७९॥ राजन् ! उसका निवास सदा सुखदायी होता है उसका पुत्र दीर्घायु और स्त्री वश में रहने वाली होती है वह सब दुःखों से रहित होकर सौ वर्ष से अधिक जीता है । उपवास पूर्वक क्रोध को जीतकर जो पुरुष दुधारु श्वेत वस्त्रों से युक्त चितकबरी अथवा पीले वर्णों वाली धूमिल काले बिन्दुओं वाली बछड़े सहित गाय श्रेष्ठ ब्राह्मण को देता है वह पुरुष उत्तम भोगों को भोगते हुए यहाँ सौ वर्ष से अधिक जीता है । राजन् ! जो मनुष्य घण्टा और भूषणों से सजी हुई चाँदी के खुरों से युक्त सोने से मढ़े हुए सींगों वाली काँसे की दोहनी से युक्त सवत्सा गाय उत्तम ब्राह्मण को देता है वह भी उत्तम आयु पाकर सुख भोगता है ॥८०/८३॥ सफेद गाय देने से वंश बढ़ता है । रक्त वर्णवाली गाय सौभाग्य बढ़ाने वाली, चितकबरी और पीलेवर्ण वाली दुःखनाशक मानी गयी है । कपिला गाय सात जन्म के पापों का विनाश करती है । राजन् ! गाय का देने वाला पुरुष सत्य लोक पाता है । अमावास्या पौर्णिमा व्यतीपात बैधृति सूर्य संक्रान्ति के दिन गजच्छाया आदि योगों में तथा सूर्यग्रहण के अवसर पर जो महात्मा देव दुर्लभ संगम में जाकर स्नान करते हैं वह मिट्टी से शरीर को लिप्त कर संगम में प्रवेश करते हुए राजन् ! बल के भीतर प्राणायाम अथवा विष्णु गायत्री, सूर्य गायत्री, शिव गायत्री का यथेच्छ जप भी करे तो वे सभी पुरुष पापों से छूट जाते हैं ऐसा शंकर जी ने कहा है । सोमनाथ के प्रदेश की

परिक्रमा जो पुरुष करता है उसने सात द्वीपों वाली पृथिवी की परिक्रमा कर ली ।।८४/८९।। ब्रह्म हत्या सुरापान गुरुपत्नी संगम करने वाला गर्भघाती सुवर्ण की चोरी करने वाले ये सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं । जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर इस तीर्थ के आख्यानों को सुनता है वह तथा रोगी इसके श्रवण से रोग मुक्त होता है निरोग पुरुष सुख पा जाता है । ये युधिष्ठिर ! यदि तुम्हारा चित्त विशेष सन्तप्त है तो ध्यान से सुनो राजन् ! एक भी गर्भ हत्या कर छूटना इस लोक में बड़ा ही कठिन है फिर छब्बीस का क्या कहना युधिष्ठिर ! जिन्हें चन्द्रमा ने पाया है वह भी इस तीर्थ में आकर बड़ा कठिन तपकर सब पापों से मुक्त होकर शीत किरणों वाला सुखी हुआ । राजन् ! महर्षियों ने पुराणों में यह गाथा गायी है ऐसा हमने सुना है ।।९०/९४।। कि यहाँ एक शिव लिंग की स्थापना से दश गर्भ हत्या नष्ट होती है । भरत वंशोत्पन्न ! राजन् ! अतः चन्द्र ने तीन लिंगों की स्थापना की । नर्मदा और ऊरी और्वी संगम में एक-दूसरा भड़ौच (भृगुकच्छ) में और तीसरा प्रभास क्षेत्र में स्थापित किया, उससे वे बड़ी सिद्धि को प्राप्त हुए । इस प्रकार यह सब उत्तम तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुमसे कहा । यह धर्म यश आयु वर्धक तथा मनुष्यों को शुद्ध करने वाला है । इससे पुत्र को चाहने वाला पुत्रों को एवं कामना रहित पुरुष स्वर्ग पाता है । राजन् ! इस तीर्थ की यात्रा करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । यह सब मैंने तुम्हें सोमनाथ का फल बताया । इस माहात्म्य को सुनकर और वहाँ आठ वार श्रद्धा पूर्वक नहाकर अवश्य ही पुत्र पाता है इसमें शंका नहीं ।।९४/९९।। पिच्यासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८५।।

छियासीवां अध्याय

पिन्गलेश्वर तीर्थ के महात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--ततो गन्छेन्महाराज पिंगलावर्त्तमुत्तमम् ।
संगमस्य समीपस्थं रेवाया उत्तरेतटे हव्यवाहने राजेन्द्र ! स्थापितः पिंगलेश्वरः ॥
सवैया-- हंसकर कहा शिव ने भोजन बन गये मित्र ! नहीं तो आप सब शर्त लगा लीजिये ।
बालकों ने कहा अगर झूठ बोले तो हम, तुमको डुबो देंगे या तुम हमको डुबो दीजिये ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--महाराज ! तदनन्तर मनुष्य श्रीनर्मदा के उत्तर तट पर संगम के समीप स्थित उत्तम पिंगलावर्त्त तीर्थ की यात्रा करे । राजेन्द्र ! पिंगलेश्वर महादेव अग्नि देव के द्वारा स्थापित है । युधिष्ठिर ने कहा भगवन् ! अग्निदेव ने श्री पिंगलेश्वर की स्थापना कैसे की ? मुझ पर कृपा कर यह बताइये ? मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! सुख स्वरूप पार्वती के साथ भयंकर क्रीड़ा करने को उत्सुक चित्त श्री शंकर ने अपने वीर्य सामर्थ्य से कामरूप अग्नि देव को तृप्त किया । अपरिमित तेजस्वी श्री रुद्रदेव ने अग्नि देव के मुख में अपना तेज डाल दिया । उस तेज से जलते हुए अग्नि देव ने तीर्थ यात्रा की इच्छा की । वह समुद्र और नदियों में घूमकर क्रमशः श्री नर्मदा पर पहुंचे वहाँ पहुंचकर अग्नि देव ने परम भक्ति से तीव्र तपोमय ध्यान किया ॥१/५॥ अग्नि देव ने वायु भक्षण करते हुये सौ वर्ष से अधिक समय उसमें लगाया । तब वरदायी भगवान शंकर अग्नि देव की तपस्या से सन्तुष्ट हो गये । वह समीप में पहुंच कर यह वचन बोले । अग्नि देव ! जो तुम्हारे मन में हो वह मुझसे माँग लो । अग्नि ने कहा सर्वलोक स्वामि ! उग्र मूर्ति के धारण करने वाले शिव बारम्बार तुम्हें मेरा नमन हो । हे महेश्वर ! मैं आपके वीर्य के तेज से दग्ध होते हुए कुष्ठी हो गया हूँ । महेश्वर मुझ पर कृपा करो, मेरा रोग नष्ट कर दो । तब श्री शंकर ने कहा--देवों को हवि पहुंचाने वाले अग्नि देव । तुम मेरी कृपा से शीघ्र ही रोग रहित हो जाओ । इस तीर्थ में स्नान कर तुम अपने पूर्व रूप को पा जाओगे । इतना कहकर

श्री शंकर वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो गये ॥६/१०॥ इसके अनन्तर अग्नि ने शीघ्रता से नर्मदा के जल में स्नान किया तभी वह रोग रहित होकर दिव्य स्वरूप वाला हो गया। उन अग्नि देव ने वहाँ पिंग्लेश्वर महादेव की स्थापना की। देव-देव श्री पिंगलेश्वर के नाम से उनकी पूजा की और हर्ष से स्तोत्रों द्वारा श्री शंकर की वन्दना की। तदनन्तर वे वहाँ से अपने स्थान को चले गये। राजन्! इस प्रकार अग्नि देव ने पिंग्लेश्वर की स्थापना की। जो मनुष्य क्रोध को जीतकर उपवास करता है। उसे अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है। अन्त में रुद्रभाव को प्राप्त होता है। भरत वंशोत्पन्न! जो पुरुष गुणी सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण को वहाँ शक्ति पूर्वक अलंकारों से शोभित बछड़े से युक्त कपिला गाय देता है राजश्रेष्ठ! वह मनुष्य उत्तमगति पाता है ॥११/१५॥ छियासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८६॥

सत्तासीवां अध्याय

तीन ऋणों को छुड़ाने वाले तीर्थ का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम्।
स्थापितं मुनिसङ्घैर्यद् ब्रह्मवंशमुद्‌भवैः॥

सवैया-- बालक तब शिव के साथ गये पाकशाला में, भोजन बना है जाकी कहा उपमा कीजिये
भोजन देख बालक सब शर्त को भूल गये, कहा तुम पीछे खाना पहिले हमको दीजिये।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन्! ब्रह्म वंश में उत्पन्न मुनियों के द्वारा स्थापित नर्मदा तट पर स्थित "ऋणमोचन" नाम उत्तम तीर्थ में जाना चाहिए। मनुष्य छै मास तक भक्ति से पितृदेवों का तर्पण करते हुए पितृगण और मनुष्यों के द्वारा तथा स्वयं किये गये ऋण से श्री नर्मदा के जल के स्नान कर तत्काल ही मुक्त हो जाता है। वहाँ फलरूप से प्रत्यक्ष ही पाप दृष्टिगोचर होता है। उस तीर्थ में राजन्। जो पुरुष जितेन्द्रिय और एकाग्र चित्त होकर स्नान कर दान देता है। भगवान श्रीशंकर को पूजता है। वह पुरुष तीन ऋण देव पितृ और ऋषि ऋण से मुक्त होकर स्वर्ग में देवता के समान प्रकाशित होता है ॥१/५॥ सत्तासी अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८७॥

अठ्ठासीवां अध्याय

कपिलेश्वर तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- तस्यैवानन्तरं पार्थ कापिलं तीर्थमाश्रयेत् ।
स्थापितं कपिलेनैव सर्वपातकनाशनम् ॥

सवैया-- विहंसकर कहा शिव ने पहिले शर्त पूरी करो, सुनकर सब बालकों के पाप मन में आया ।
शिव को पकड़ लिया नर्मदा में डुबोने को, शंकर प्रलंयकर ने जोर आ जमाया है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! उसके पास ही महात्मा कपिल के द्वारा स्थापित सब पापों का नाशक कपिल तीर्थ में गमन करें । राजन् ! शुक्लपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी मैं मनुष्य बड़ी भक्ति से कपिला गाय के दुग्ध और घृत से श्री कपिलेश्वर महादेव को स्नान करावे । सुगन्धित चन्दन से भगवान शंकर को लिप्त करे फिर सुगन्धित श्वेत पुष्पा से जो मनुष्य क्रोध जीतकर श्रीशंकर को पूजते हैं । वे यमलोक को नहीं जाते । राजश्रेष्ठ ! कपिलेश्वर महादेव के पूजन से विद्वानों को भयंकर असिपत्रवन और बड़ी दुःख प्रद यमचुल्ली (यमराज की उठती ज्वालाओं वाली भट्टी) नहीं देखनी पड़तीं । श्री नर्मदा के पुण्य जल में स्नान कर योग्य ब्राह्मणों को भोजन कराये । गाय वस्त्र तथा तिल दान से छाता और शैय्या के दान से मनुष्य धर्म शील राजा होता है । वह बड़ा तेजस्वी सौम्य सरल प्रकृति वाला, जीवित पुत्रवाला, प्रिय भाषण करने वाला होता है । पाण्डु नन्दन ! कभी उसके शत्रु नहीं होते वह सदा सुखी रहता है ॥१/७॥ अठ्ठासी अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८८॥

नवासीवां अध्याय

पूतिकेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पूतिकेश्वरमुत्तमम् ।
नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयंकरम् ॥

सवैया-- सभी बालकों को एक ही बंधन में बाँधकर, माँ नर्मदा के बीच सबको डुबाया है ।
पापियों को पाप का फल देकर सदाशिव ने, गुरु की प्रतीक्षा में कुछ समय बिताया है ।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--तदनन्तर राजन् ! नर्मदा के दक्षिण तट पर सब पापों के विनाशक उत्तम पूर्तिकेश्वर की यात्रा करनी चाहिए । लोगों की हित कामना से श्री जाम्बान ने इसे स्थापित किया है । प्रसेनजित नामक एक राजा हो गये है, उसवा वृक्षः स्थल से मणि निकालने के कारण जाम्बवान को एक बड़ा ही दुर्गन्ध युक्त घाव हो गया था वह उस तीर्थ में तपकर घाव से रहित हुए वहाँ उत्तम "पूर्तिकेश्वर" नामक लिंग की स्थापना की । हे भरत श्रेष्ठ ! जो मनुष्य वहाँ भक्ति से स्नान करता है भगवान शंकर की पूजा करके वह सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है । राजन् ! कृष्ण पक्ष की अष्टमी चतुर्दशी तिथि में जो मनुष्य लगातार अहोरात्र-पूरी तिथि भर श्री शंकर की पूजा करते हैं वे यमलोक नहीं जाते ।।१/५।। नवासीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८९।।

नब्भैवाँ अध्याय

जलाशायी तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- रेवाया उत्तरेकूले वैष्णवं तीर्थमुत्तमम् ।
जलाशायीति वै नाम विख्यात वसुधातले ।।

सवैया-- गुरुजी ने आकर देखा सूनी पड़ी है शाला, छोटा सा बालक शंकर सामने जब आया है ।
पूछा गुरुंजी ने बालक सब कहाँ गये, सत्य-सत्य शिव ने सब हाल बताया है ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--पृथ्वी में श्री नर्मदा के उत्तर तट पर 'जलशायी' नाम से प्रसिद्ध उत्तम वैष्णव तीर्थ है । वहाँ भगवान् विष्णु दानवों का वध करके सो गये । देवाधिदेव चक्रधारी विष्णु ने वहीं चक्र का प्रक्षालन किया । श्री नर्मदा के जल में धोने से चक्र पाप रहित हो गया । युधिष्ठिर ने कहा--मुनि समुदाय से वन्दित चक्रतीर्थ की महिमा कहिये जो विष्णु के अनुपम प्रभाव से युक्त और नर्मदा का फलरूप है । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--बड़ी बुद्धिवाले युधिष्ठिर ! बहुत ठीक ! तुम विरक्त हो यह छिपी महिमा वाला तीर्थ चक्र धारी विष्णु के द्वारा स्वयं रचित हैं मैं तुमसे इसकी पाप नाशक कथा कहता

हूँ सुनो । पहले तालमेघ नामक एक दैत्य था ।।१/५।। राजन् ! उसने सब देवों को जीत लिया । देवगण राज्य रहित हो गये वह स्वयं यज्ञ भोगों को भोगने लगा । मैं ही विष्णु हूँ ऐसा कहता था । कुबेर का धन उसने हर लिया इन्द्र का हाथी भी उसके वश में आ गया । वह पापी इन्द्राणी को चाहता था । सूर्य के घोड़ों को भी ले लिया, तालमेल से भयभीत युधिष्ठिर ! सूर्य, रुद्र, इन्द्र, यम, स्कन्द, वरुण, अग्नि, वायु, कुबेर, बृहस्पति आदि सभी देव ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के समीप पहुँचे । वहाँ उन्हें देखकर बृहस्पति आदि देवों ने तीनों गुणों का विभाग करने से भेद को प्राप्त होने वाले श्री ब्रह्मा जी की विविध स्तोत्रों से स्तुति की । राजन् ! फीके मुख वाले उत्साह रहित वेदों को देखकर प्रसन्न मुख भगवान् ब्रह्मा ने देवों से कहा ।।६/११।। देवगणों का स्वागत है । देवो ! तुम्हारी पुरानी कान्ति क्यों नष्ट हो गयी है । बर्फ से क्लिष्ट हुए प्रभाव वाले ज्योंतियों की भाँति तुम लोगों के मुख कैसे मलिन हो गये हैं ? ज्वालाओं की शान्ति से यह वृत्रासुर के मारने वाले इन्द्र का वज्र तेज से हीन हुआ शोभा रहित सा प्रतीत हो रहा है । यह शत्रुओं को भय देने वाला वरुण के हाथ का पाश भी मन्त्र से नष्ट शक्ति वाले सर्प की भाँति दीनता को प्राप्त है । तथा कुबेर का मन काँटे की भाँति पराभव को सूचित कर रहा है । रुकीगति वाला वायु टूटी शाखाओं वाले वृक्ष सा प्रतीत हो रहा है । नष्ट कान्ति वाले दण्ड में भूमि को कुरेदते हुए सत्य पराक्रम वाले यमराज भी बुझी हुई लकड़ी की लघुता को प्रगट कर रहे हैं । ये सूर्य प्रताप के नाश से शीतल कैसे हो गये हैं । चित्र में लिखे गये की भाँति अत्यन्त दृश्यरूपता को ये कैसे प्राप्त हो गये । पुत्रो ! कहो तुम लोग यहाँ कैसे आये और क्या चाहते हो देवगण ! तुम सबके आने का क्या कारण है निःसंकोच बोलो ।।१२/१८।। सम्पूर्ण लोगों की सृष्टि मेरे अधीन है और रक्षा सब तुम्हारे अधीन है । तदनन्तर इन्द्र ने मन्द वायु से कम्पित कमलों से पूर्ण तालाब के समान शोभित हजार नेत्रों से गुरु बृहस्पति को भेजा ।

वह देव गुरु वृहस्पति हाथ जोड़े हुए इन्द्र के हजार नेत्रों से अधिक शक्तिशाली दो नेत्रों वाले कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा से बोले । पिताजी ! आपके वंश में उत्पन्न महा बलशाली तालमेघ दैत्य उठे हुए धूमकेतु की भाँति देवों को दुःख दे रहा है । उस दानव से सभी देवगण दुःखित हैं । दैत्यों का स्वामी महा-बलवान तालमेघ हम सबको पीड़ा देता हैं । उससे हम सब आपकी शरण को प्राप्त है । ब्रहमन् ! तुम्हीं सबके रक्षक बनो । तब प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्माजी उनसे बोले ।।१९/२४।। ब्रह्मा जी ने कहा--देवगणो ! तुम लोगों में उस तालमेघ के समान कोई वीर नहीं है । एक विष्णु भगवान् को छोड़कर वह दानव किसी दूसरे से जीता नहीं जा सकता । राजन् ! तदन्तर ब्रह्मा आदि सभी देव उस बैरी तालमेघ से दुःखित हो क्षीर सागर को प्रस्थान किये । भगवान् विष्णु के देखने की इच्छा से देव शीघ्र ही वहाँ से चल पड़े । वे क्षीर सागर में पहुँच कर जलशायी विष्णु की स्तुति करने लगे । देवों ने कहा हे देव पूजित ! तुम जगत् के आदि कारण होकर भी अनादि हो । तुम जगत के अन्त करने वाले होकर भी अन्त रहित हो जगत रूपी मूर्ति वाले होकर भी तुम बिना मूर्तिके हो । तुम्हारी जय हो । क्षीर सागर में शयन करने वाले तुम जय को प्राप्त हो ओ । लक्ष्मी से सदा घिरे हुए तुम्हारी जय हो । दानवों के विनाशक तुम्हारी जय हो । देवकी नन्दन तुम्हारी जय हो । शंख गदा हाथ में लिये हुए भगवान् ! तुम सर्वोत्कृष्ट हो चक्र के धारण वाले प्रबीर ! तुम्हारी जय हो । इस प्रकार देवों की स्तुति सुनकर जलशायी भगवान् विष्णु जाग गये । और वे मेघ के समान गम्भीर शब्दावली मधुर वाणी बोले-ब्रह्मन् ! समर्थ हुए तुम सबों ने हमें क्यों जगाया है ।।२५/३१।। विधाता ने कहा-दुष्टों का मर्दन करने वाले कृष्ण ! तालमेघ के भय से हम आपके भवन पर उपस्थित हुए है । अपने जनों को प्राप्त होने वाले जनार्दन ! पापी दानव तालमेघ किसी अन्य के योग्य नहीं । तुम्हीं उस दुष्ट का संहार करो । तुम्हारे द्वारा ही वह मृत्यु को प्राप्त होगा अन्यथा नहीं । श्री कृष्ण

ने कहा -- देववृन्द ! आप लोग मुझे बताओ जहाँ वह दानव रहता है ।।३२/२५।। देंवगण बोलें-वह दानवराज चौबीस हजार कन्याओं से युक्त होकर हिमालय की गुहामें निवास करता है । कृष्ण ! उसके घोड़ों और रथों की संख्या नहीं है भगवान ! वही असंख्य गुण वाले अनेक प्रकार के नट है । उसके हाथी पर्वताकार और घोडे हाथी के समान हैं । देवो को भय देनेवाला वह महाबली वहीं रहता है । अत्यन्त व्याकुल हुए देवगण के वचन सुनकर श्री विष्णु ने शत्रू के समूह के विनाशक गरुण का चिन्तन किया गदा चक्र के धारण करने वालें भगवान् विष्णु एक हाथ में चक्र और दूसरे हाथ में शाङ्‌र्ग धनुष मुसल हल लेकर दानव के वध के लिये पक्षीराज गरुड़ पर आरूड़ हो गये । उधर दानव तालमेघ के नगर में भंयकर उत्पात होने लगे ।।३६/४१।। कबूतरों के साथ गृध्दों के बीच सियार प्रविष्ट हो गया । वहाँ सर्प और चूहे का सिंह और हाथी का युध्द छिड़ गया । रक्त से भरी नदियाँ वहाँ बिना मार्गके ही बहने लगी । चारों ओर बिना समय के ही वृक्षों में फूल दिखाई देने लगे । तदन्तर जगत के प्रभू विष्णू भगवान् पर्वतराज हिमालय पर जा पहुंचे । उसने पुर के समीप सहसा पाञ्चजन्य शंखको बजा दिया । उस तीव्र शब्द को सुनकर क्रोध से अन्धा महाबली दानवराज तालमेघ यह वचन बोला यह कौन पुरुष मेरे पराक्रम को न जान कर मृत्यु के आधीन होना चाहता है ? धुन्धुमार ! तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र ही अपनी सेना से युक्त होकर उस पराक्रमी को बल पूर्वक बाँधकर मेरे सामने ले आओ ।।४२/४७।। धुन्धुमार ने कहा देवयक्ष अथवा किन्नर कोई हो मैं रथों हाथियों घोड़ों और वीर सैनिकों के साथ वहाँ उसे जाकर लाता हूँ इसमें सन्देह नहीं । तब गरुड़ पर बैठे हुए जगत के कारण महा बलशाली श्री विष्णु प्रसन्न हो गये । वहाँ पहुंचकर धुन्धुमार ने अपने सैनिकों से पकड़ लो पकड़ लो इसे ऐसा कहा इधर उधर चारों दिशाओं में दौड़ते हुए उन सैनिकों को अग्नि के समान रूप वाले गरुड़ ने टिड्डियों की भाँति भून डाला । श्री कृष्ण ने बाण से धुन्धुमार

पर भी प्रहार किया। वह पापी छाती में मारे जाने पर रथ के ऊपर मूर्छित होकर गिर गया तब व्याकुल दानवों ने बड़ा हाहाकार किया। उस समय तालमेघ क्रोधित होकर रथपर आरूढ़ हो बाहर निकला। युधिष्ठिर ! उसने वहाँ शंख चक्र गदा धारी श्रीकृष्ण को देखा ॥४८/५२॥ तालमेघ ने कहा- कृष्ण ! वे दूसरे दानव है जिन्हें तुमने मारा है। ये अच्युत ! वे हिरण्यकशिपु आदि कोई वीर पुरुष नहीं थे पृथानन्दन ! दानव ने श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। श्री कृष्ण ने दानव के छोड़े हुए बाणों को सहज ही काट डाला सुर असुरों से अवध्य उस सेना को गरुड़ने छिन्न भिन्न कर डाला श्री कृष्ण ने उसके छोड़े बाणों से दो गुने बाणों को फेंका। दानव ने भी उनसे दो गुने बाणों को फेंका। उन बाणों को अपने आठ गुने बाणों से श्री कृष्ण ने ढक दिया ॥५३/५६॥ दैत्य ने क्रोधित होकर आग्नेय अस्त्र का प्रहार किया। श्री कृष्ण ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया। उससे आग्नेय अस्त्र शान्त हो गया। तब तालमेघ ने वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया। फिर पाण्डव ! नृसिंह ने नारसिंह अस्त्र का प्रयोग किया। तब महाबली तालमेघ ने नारसिंह अस्त्र को देखकर शीघ्र ही रथ से उतर कर तलवार और ढाल हाथ में लेकर बोला--कृष्ण ! मैं तुम्हें बड़े भयंकर यम के मार्ग में भेजूँगा। युधिष्ठिर ऐसा कहकर दानव श्रीकृष्ण के समीप आ पहुँचा ॥५७/६१॥ दैत्य तालमेघ ने गदा हाथ में लिए हुए श्रीकृष्ण को तलवार से मारा। तब प्रसन्न मनवाले श्रीकृष्ण ने खड़ग के अग्र भाग को पकड़कर उस घोर युद्ध में पैर छाती में तालमेघ को मारा। उस समय श्रीकृष्ण ने दैत्य को और दैत्य ने श्रीकृष्ण को संग्राम में अनेकों बार प्रहार किया। भारत ! तब श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर तालमेघ का संहार करने के लिए अमोघ चक्र लेकर उसके मस्तक पर दे मारा। जिससे उसका शिर गिर गया तब पर्वत काँपने लगे। समुद्र मोक्ष को प्राप्त हुए। पृथापुत्र ! नदिया मार्ग छोड़कर बहने लगी। तालमेघ के मरने पर सब देवता स्वस्थ हुए और कुन्ती नन्दन। श्री कृष्ण

तभी नर्मदा के तट पर पहुंचे ।।६२/६७।। अनन्त नाग के ऊपर लक्ष्मी जी से युक्त श्रीकृष्ण नर्मदा जी को दुग्ध रूप जल मानकर नर्मदा के उत्तर तट पर छिप गये । मनुष्य लोक में ज्वालाओं से भयंकर चक्र जलाशयों के समीप ही नर्मदा के जल में गिर गया । राजकुमार ! तालमेघ के वध से उत्पन्न उसके सभी पाप श्री नर्मदा जल के सम्बन्ध से नष्ट हो गये वह शुद्ध हो गया । भारत । चक्र के सम्पूर्ण पाप नर्मदा जल में धुल गये । राजन् । तबसे यह तीर्थ "जलशायी" नाम से कहा जाता है । दूसरे लोग इसे चक्र तीर्थ "जलशायी" नाम से कहा जाता है । दूसरे लोग इसे चक्र तीर्थ भी कहते हैं । राजन् ! कुछ लोग काल और पाप विनाशक भी इसे कहते हैं । भारत वर्ष में नर्मदा का यह तीर्थ प्रसिद्ध है । राजन् ! उस तीर्थ का प्रभाव अब तुम सुनो । जिस प्रकार नागों में अनन्त और देवों में श्रीविष्णु हैं ।।६८/७३।। जिसे महीनों में मार्ग शीर्ष (अगहन) अथवा जैसे नदियों में नर्मदा, वैसे ही यह तीर्थों में श्रेष्ठ है । पार्थ ! अगहन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि के दिन जो मनुष्य काम क्रोध से रहित होकर भक्ति से वहाँ जाकर विष्णु में शुद्ध भावनाकर जलशायी तीर्थ में स्नान करता है । राजन् ! एक भोजन या केवल नक्तव्रत (रात्रि भोजन) या रात्रि में भोजन का त्याग दिन में एक बार भोजन वैसे ही बिना माँगे प्राप्त और उपवास सद् ब्राह्मणों को दान या उन्हें भोजन आदि कराता है । कुरुश्रेष्ठ ! वह फिर यमलोक को नहीं देखता पाण्डु नन्दन । जो लोग यम के भय से डरे हुंए हैं वे लोग गोपियों से घिरे हुए योग निद्रा का आश्रय लिये हुए "विश्वरूपधारी" संसार भय के विनाशक जगत के नाथ नागपर्यंकशायी श्री पति के परंम प्रिय जलशायी भगवान् के दर्शन करे ।।७४/७८।। बड़ी भक्ति से मधु और घृत से तथा जल मिश्रित खाण्ड से जगत के कारण श्रीविष्णु को स्नान करावे । जो लोग द्वेष रहित होकर स्नान कराये जा रहे जलशायी विष्णु को देखतें है वे सुर असुरों से नमस्कृत उत्तम लोक को जाते हैं । घृत का दीपक जलावे घृत

के अभाव में तेल का दीपक जलावे । श्रेष्ठराजन् । ईर्ष्या रहित भाव से युक्त जो पुरुष भगवान् के आगे रात्रि में जागरण कर भगवान की कथा को भक्ति पूर्वक सुनते हैं, उनके ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं । इसमें संशय नहीं ।।८१/८२।। जो लोग जगद गुरु जलशायी भगवान की परिक्रमा करते हैं वे सप्तद्वीप वाली पृथ्वीकी परिक्रमा करने का फल पाते हैं । पश्चात् प्रकाश मय प्रातः काल में पवित्र जल से पितरों का तर्पण करे और वहाँ योग्य अपनी पत्नी में सन्तुष्ट, शान्त, दूसरे की स्त्रियों के त्यागी, वेदाभ्यासी स्वकर्म परायण शुभ शील वाले, नित्य अग्निहोत्र करने वाले त्रिकाल सन्ध्या करने वाले ब्राह्मणों से स्वकल्याण चाहने वाला मनुष्य श्रद्धा से श्राद्ध करावे । मनुष्य लोक में वे पुरुष धन्य है । वे ही पृथ्वी में वन्दनीय है । जो सदा भगवान को देखते हैं । वे ही धन्य और पुण्यात्मा है । उस तीर्थ में जो पुरुष एक पक्षतक उपवास व पराक व्रत (बारह दिन के उपवास को पराक व्रत कहते हैं) उत्तम चान्द्रायण व्रत (चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार ग्रास ग्रहण पूर्वक शास्त्रीय विधि पालन) कठोर मासिक व्रत षष्ठान्न (छटे दिन अन्न गृहण) तथा पाँचवे दिन अन्न ग्रहण के रूप में व्रत करता है वह पुरुष उत्तम गति को पाता है ।।८३/८९।। मार्कण्डेय जी ने कहा-इसके अनन्तर में तिलधेनु के दानका फल कहता हूं । जैसे जिसको जब वह तिलधेनु देनी चाहिए और उसके देने में जो शुभ फल हैं वह सब मैं तुमसे कहता हूँ सुनो । पवित्र नैमिषारण्य में नारद आदि के मुख से यह अनेक बार सुना गया है और उत्तम कथानक प्रथम ऋषि वेदव्यास के मुखसे सुना गया हैं । वह वर्णन आयु देने वाला मंगलदायक कीर्ति वर्धक है इसे सुनाते हुए विद्वान ब्राह्मण अनन्तफल पाता है । यह स्मरण रखना चाहिए कि गाय, घर, शैया और स्त्रियाँ बहुतों को नहीं देनी चाहिये । बटी हुई दक्षिणा वाली ये सब वस्तुएँ देने वाले को पुण्यवान नहीं होती ।।९०/९३।। युधिष्ठिर ! एक वस्तु एक को ही देनी चाहिए । वह एक वस्तु को बहुतों को देना योग्य नहीं है ।

एक वस्तु बहुतों को देने पर बटवारे के लिए बेची जाने पर पाँच पीढ़ियों को जला देती हैं । सफेद तिल, काले तिल, तथा गौमूत्र के समान रंग वाले तिल होते हैं । इन विभिन्न तिलों से विचित्र गाय और बछड़ा बनबाये । यथा शक्ति सभी को चार द्रोण (बत्तीस सेर) की गाय बनवानी उचित है और कम से कम एक द्रोण (आठ सेर) का बछड़ा बनाना योग्य है इससे अधिक परिणाम इच्छानुसार हो सकता है । जिस देश में इस विषय में जो परिमाण निश्चित किया गया हो । उस परिमाण से उसे बनवाते हुए पुरुष अक्षय फल पाता है ।।९४/९७।। सुख पूर्वक पवित्र भूमि में उसकी उत्तम श्रद्धा से रचना कर पुष्प धूप और अक्षत आदि से भूमि का पूजन करे उसके दोनों कानों में रत्न भूषण, नेत्रों में दीपक, छाती में चन्दन, पैरों में सुवर्ण ऊपर शहद और घृत को स्थापित करे । सरसों के रोएँ और गले में लटकने वाले कम्बल में कम्बल पिछले भाग में मधु के साथ घृत भी पृथक देना सोने के सींग, चाँदी के खुर, सोने की पूछ से युक्त करे । रत्नों का पृष्ठ भाग (पीठ) और काँसे के पात्र की दोहनी आदि भी देनी चाहिए । जो बाल्यावस्था का पाप है अथवा जो बिना जाने हमसे हो गया है । वाणी से किया-कर्म से किया गया है अथवा मन से जिस पाप का चिन्तन हो गया है ।।९८/१०२।। जल में थूकना मूसल का लाँघना नीच जाति की स्त्री में गमन, गुरु की स्त्री से गमन, सुवर्ण की चोरी, शराब आदि के पीने से होने वाले पाप को तिलधेनु निश्चय ही शुद्ध कर देती है । दिन रात्रि के उपवास से विधि पूर्वक उस तिलधेनु को दे । जो वह यमपुर में भयंकर वैतरणी नदी प्रसिद्ध है, बालू और लोहे पत्थर के स्थल वाली है, जहाँ पापी पुरुष पकाया जाता है जहाँ अवीचि नामक नरक तथा दो यामल पर्वत हैं । जहाँ लौह के मुख वाले कौए, भयंकर कुत्ते, तलवार की धार के समान पैने पत्र वाला असिपत्र वन है, और जहाँ वह कूट शाल्मली है ।।१०३/१०७।। इन सब यातना स्थानों को लाँघकर सुख से धर्मराज के भवन में जाता है । भारत ! धर्मराज उसे देखकर

प्रिय सत्य वाणी से व्यवहार करते हैं । नरश्रेष्ठ ! मणि रत्नों से भूषित योग्य इस उत्तम विमान पर चढ़कर उत्तम गति को जाओ । तुम तिलधेनु अथवा अन्य उत्तम दान खुशामदी झूठी बड़ाई करने वाले भाट को मत दो । पुरोहित को भी मत दो । एक आँख से रहित काने-विकृत रूप वाले न्यून अंग वाले और देवल-देव मन्दिर के पूजक को मत दो । जो वेदों का विद्वान् नहीं है जो ब्राह्मण होकर सब वस्तुओं को बेचने वाला हो, मित्र की हत्या करने वाले, कृतघ्न, मन्त्र रहित ब्राह्मण को ये दान नहीं देने चाहिए । वेदान्त को सूक्ष्म दृष्टि से मानने वाले वेदपाठी कुटुम्बी ब्राह्मण को दान देना चाहिए ।।१०८/११२।। वेदान्त के तत्वज्ञ विद्वान् के पुत्र वेदपाठी हों, ग्रह पालक हो, सब अंगों से सम्पन्न सदाचारी प्रियभाषी ब्राह्मण को देना उत्तम है । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! माघ की पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, वैसाख की पूर्णिमा,मार्ग शीर्षअगहन की पूर्णमासी, आषाढ़ की पूर्णमासी और चैत्र की पूर्णमासी में दक्षिणायन और उत्तरायण के प्रारम्भ में विमुक्तकाल जब दिन और रात्रि सम हों में व्यतीपात में । अशीति मुख-सूर्य के विशेष संक्रमण में अर्थात मिथुन धन, कन्या तीन संक्रान्ति समय में और गजच्छाया योग (गजेन्द्रः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः । याम्य तिथिर्भवेत्साहि प्रकीर्तिता) जिस समय चन्द्रमा मघा में हो तथा सूर्य हस्त नक्षत्र में हो याम्या - यमराज की तिथि दशमी हो वह गजच्छाया कही जाती है । उसमें यह दान देना चाहिए । निष्पाप ! तिलधेनु के दान की यह विधि हमने तुमसे कही । उस उत्तम दान को करके मनुष्य यम से सत्कार पाकर मरने पर विष्णु लोक को जाता है इसमें संशय नहीं । सूर्य मण्डल को भेदकर ऊपर के लोकों में जाते हैं इस विषय में विचार नहीं करना चाहिए । राजन् ! चक्र तीर्थ के इस सम्पूर्ण फल को मैंने तुम्हें बताया । मनुष्य जिसे भक्ति से सुनकर सब पापों से छूट जाता है ।।११३/११७।। नब्भैवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।९०।।

इक्यानवेवाँ अध्याय

चण्डादित्य तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल ! तीर्थं परमपावनम् ।
चण्डादित्यं नृपश्रेष्ठ ! स्थापितं चण्डमुण्डयोः ।।

सवैया-- सुनकर के विष्णु शर्मा मूर्छित चरणों पर गिरे, नर्मदा जल के छींटे से शिव ने जगाया है ।
हंसकर गुरु से कहा चिन्ता न करें प्रभु, अपनी पाप भावना का इनने फल पाया है ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन ! तदनन्तर मनुष्य परम पवित्र चण्डमुण्ड दैत्यों के द्वारा स्थापित "चण्डादित्य तीर्थ" की यात्रा करे । श्रेष्ठ राजन् ! पहले भयंकर चण्ड मुण्ड नामक श्रेष्ठ दैत्य थे उन दोनों ने नर्मदा के तट पर आश्रय लेकर बड़ा तप किया । त्रिलोकी के अन्धकार को दूर करने वाले भगवान श्रीसूर्य का ध्यान करते हुए वे वहाँ उग्र तप करने लगे । उनके तप से सन्तुष्ट होकर भगवान सूर्य बोले--हे पृथा नन्दन ! नर्मदा के शुभ तट पर दिव्य रूप से प्रकट होकर भगवान सूर्य ने उनसे कहा--"बहुत अच्छा-बहुत अच्छा" तुम दोनों वीर इच्छानुसार मनचाहे वर को माँग लो ।।१/४।। चण्ड-मुण्ड ने कहा--सूर्यदेव ! हम दोनों ही सब देवों से पराजित न होने वाले सावधान सब समय सब रोगों से रहित रहें । जल का शोषण करने वाले श्री सूर्य ने उन दोनों से "ऐसा ही हो" यह कहा । चण्ड-मुण्ड दैत्यों से ऐसा कहकर वहीं सूर्य नारायण अन्तर्धान हो गये । तब चण्ड-मुण्ड ने अपनी सिद्धि के लिए बड़ी भक्ति से श्री शंकर को स्थापित किया । मनुष्य वहाँ देव मनुष्य ऋषि और पितृगण का तर्पण करे । राजन् ! ऐसा करने से मनुष्य सूर्यलोक में ब्रह्मा के एक दिन पर्यन्त सुख से रहता है । भूपते ! मनुष्य वहाँ षष्ठी तिथि में घृत से दीपक प्रज्वलित करे तो सब पापों से छूट जाता है । और सूर्यलोक को जाता है । भरतवंश श्रेष्ठ ! जो पुरुष "चण्डादित्य" की उत्पत्ति सुनता है वह पुरुष सदा ही मानसिक व्यथा और शारीरिक पीड़ा से रहित होकर सदा विजय शील होता है ।।५/९।। इक्यानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण ।९१।

बानवेवाँ अध्याय

यम हास्य तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र यमहास्यमनुत्तमम् ।
सर्वपापहरं तीर्थं नर्मदातटमाश्रितम् ॥

सवैया-- गुरु बोले गलत काम करता वह भूला है, सज्जन उस भूल का फल उसे नहीं देते हैं ।
भूले पथिक को सही मार्ग बतलाकर, सत्पुरुष इस जग में विमल यश लेते हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--श्रेष्ठ राजन् ! तदनन्तर नर्मदा के तट पर स्थित सब पापों को हरने वाला बहुत उत्तम "यम हास्य तीर्थ" को गमन करे । युधिष्ठिर ने कहा--ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पृथ्वी में यम हास्य तीर्थ कैसे हुआ यह सब मुझसे आप कहिए । मुझे बड़ी उत्कण्ठा है । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--बड़ी बुद्धि वाले राजकुमार ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा तुमने मुझसे प्रश्न किया । पहले तुम्हारे पिता पुण्यदायिनी श्रीनर्मदा में एक समय स्नान के लिए आये थे । युधिष्ठिर ! धोबी के द्वारा धोये गये निर्मल वस्त्र की भाँति ही वह धर्मराज भी निर्मल देह वाले हो गये । वह अपने निर्मल शरीर को देखते हुए विस्मित होकर हँसते हुए बोले ॥१/५॥ श्री यमराज ने कहा--पाप बुद्धि वाले पुरुष मेरे यमपुर को क्यों आते हैं ? मनुष्य एक बार श्री नर्मदा के स्नान मात्र से ही विष्णु पद पा जाते हैं । समर्थ होकर भी जो पुण्य जल वाली श्री नर्मदा जी का दर्शन नहीं करते, वे जन्म से ही अन्धे मरे हुए अथवा लंगड़ों के समान ही हैं । राजन् ! लोकों पर शासन करने वाले यम इस कारण ही हँसे थे । यम ने वहाँ श्री शिवलिंग की स्थापना कर स्वर्ग को गमन किया । राजन् ! यम हासेश्वर तीर्थ में मनुष्य क्रोध को जीतकर जितेन्द्रिय होकर विशेषज्ञ आश्विन मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को बड़ी भक्ति से उपवास करके सब पापों से छूट जाता है ॥६/१०॥ राजेन्द्र ! रात्रि में वहाँ जागरण करे घृत का दीपक जलावे यह करने से मनुष्य को जो फल मिलता है उसे सुनो यह करने से मनुष्य अगम्या स्त्री से गमन,

अभक्ष्य पदार्थ के भक्षण से प्रगट और नहीं पीने योग्य पदार्थों के पीने से होने वाले सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है । नहीं ले जाने योग्य वस्तु के ले जाने में नहीं दुहने योग्य गधी आदि के दोहने में जो पाप होते हैं । वे सभी पाप स्नान मात्र से टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं । यह मनुष्य कभी यमलोक नहीं देखता । राजन् ! भूमि में यह पितृगण के उद्धार के लिए बहुत छिपा तीर्थ है ।।११/१४।। यम हास्य तीर्थ में दान करने वाले पुरुषों का सब अक्षयफल होता है जो पुरुष अमावास्या में क्रोध को जीतकर सुवर्ण भूमि दान से बहुत तिलों के दान से कृष्ण मृग चर्म के दान से तथा तिलधेनु के दान से योग्य ब्राह्मणों का पूजन करता है । और जो शास्त्र विहित कर्तव्य का पालन करने वाले योग्य ब्राह्मण को उत्तम हाथी, घोड़ा, हल आदि के साथ दो बैल कन्या दुधारू गाय भैंस देते हैं वे यम के पास नहीं जाते ।।१५/१८।। युधिष्ठिर ! यमराज प्रत्येक जन्म में उन पर प्रसन्न रहते हैं । यमराज का वाहन महिष (भैंसा) है भैंसी उनकी माता है । उन भैंसों के देने से निश्चित ही यमराज प्रसन्न होते हैं । पापों से युक्त होने पर भी वह फिर यम को नहीं प्राप्त होता है । इस कारण से महिषी का दान उत्तम है । उसके सींग में जल स्थापित करे । प्रथम धूमिल वस्त्र से उसे वेष्टित करना चाहिए । लोहे के खुर बनाना चाहिए । ताँबे से पृष्ठ भाग भूषित हो, पूर्व दिशा में नमक का पर्वत-अग्नि कोण में गुड़ का पर्वत दक्षिण भाग में कपास नैर्ऋत्य दक्षिण पश्चिम के मध्य कोण में मक्खन पश्चिम में सप्त धान्य और वायव्य--पश्चिम उत्तर के मध्य कोण में चावल उत्तर सुवर्ण ईशान कोण में घृत को स्थापित करे । ऐसा करके मुझ पर यमराज प्रसन्न हों यह ब्राह्मण के आगे उच्चारण करे ।।१९/२४।। श्रेष्ठ ब्राह्मण महा भयंकर यमलोक भयानक असिपत्र वन बड़ी भयंकर यम की चुल्ही भय देने वाली वैतरणी--दुःखप्रद कुम्भीपाक, बड़ा भयानक कालसूत्र और यमल पर्वत, आरा पैनी धार वाला, तैल यन्त्र, कठोर मूर्ति वाले कुत्ते--गीध जो बड़ी श्वास वाले भयंकर शब्द करने वाले घोर रौरव

नरक ये सभी यमलोक में सुने जाते हैं । तुम्हारी कृपा से और इस तीर्थ के प्रभाव से वे सब मुझे सुखद हों । ब्राह्मण ! इस दान के प्रभाव से और यमराज की कृपा से मैं जन्म-जन्म में नरक में न जाऊँ यह कहे । यम हास्य तीर्थ के वर्णन को जो पुरुष प्रेम से सुनते हैं वे पुरुष भी पापों से रहित होकर यमलोक को नहीं देखते ।।२५/३०।। वानवेवां अध्याय सम्पूर्ण ।।९२।।

तिरानवेवाँ अध्याय

कल्होडी तीर्थ के माहात्मय का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कल्होड़ीतीर्थमुत्तमम् ।
विख्यातं भारते लोके गंगायाः पापनाशनम् ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! तदनन्तर भगवती गंगा के पाप नाशक भारत में प्रसिद्ध उत्तम कल्होड़ी तीर्थ की यात्रा करे । कुन्तीनन्दन ! नर्मदा के तट पर स्थित प्राणियों के पाप नाश के लिए ऊपर की भाँति पुष्कर सा यह तीर्थ मनुष्यों को मिलना कठिन है । वह तीर्थ परम पुण्य दायक है ऐसा साक्षात् शंकर जी ने कहा है । वहाँ भगवती गंगा स्नान के लिए पशु रूप में पधारी थीं । इस कारण से संसार में वह उत्तम कल्होड़ी तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है । युधिष्ठर ! वहाँ पूर्णमासी के पूर्व ही त्रिरात्र व्रत करना चाहिए । पृथापुत्र ! रजोगुण-तमोगुण क्रोध पाखण्ड ईर्ष्या आदि दोषों को जो छोड़ देता है वह पुरुष मोक्ष से होने वाले फल को पा लेता है ।।१/५।। तीनों सन्ध्याओं में दुग्ध से श्री शंकर को स्नान कराये । बछड़े सहित गाय के दुग्ध को ताम्र पात्र में रखकर उसे मधु से युक्त कर "ॐ नमः शिवाय" इस मन्त्र से उपयुक्त दुग्ध-मधु द्वारा स्नान करावे । वह मनुष्य देव सुन्दरियों के साथ देव स्थान स्वर्ग को जाता है । जो पुरुष वहाँ विधि पूर्वक स्नान कर पितृगण उद्धार के लिए उत्तम ब्राह्मणों को दान देता है । सफेद गाय देनी चाहिए और यह कहना चाहिए कि मेरे पितामह प्रसन्न हों । शुद्ध सदाचारी अपनी स्त्री में सन्तुष्ट ब्राह्मण को सत्वगुण से युक्त होकर मनुष्य सुवर्ण के ऊपर स्थित

वस्त्र से आवृत्त (झूल) से शोभित बछड़े सहित गाय को जो देता है । राजन् ! वह पुरुष शिवलोक को पाता है ॥६/१०॥ यह कल्होड़ी तीर्थ का तिरानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९३॥

चौरानवेवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- तस्यैवानन्तर राजन्नन्दितीर्थं व्रजेच्छुभम् ।
सर्वपापहरं पुन्सां नन्दिना निर्मितम्पुरा ॥

सवैया--ऐसा कह शिव ने नर्मदा बीच डुबकी लगाई, बालकों की टोली गुरु के समक्ष लाये हैं ।
नर्मदा जल के अमृतमय छींटे थोड़े से मार, सबको जिलाये ऐसे जैसे नींद से जगाए हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन ! उस कल्होड़ी तीर्थ के समीप मनुष्यों के सब पापों के हरने वाले नन्दी के द्वारा पहले स्थापित पवित्र नन्दि तीर्थ की भी यात्रा भी करे । यह तीर्थ नर्मदा के तट पर पाप समूह से दुखित जीवों को मोक्ष देने वाला है । हे युधिष्ठिर ! दिन-रात्रि वहाँ निवास कर पञ्चोपचार पूजा (जल-चन्दन विल्व पत्र धूप दीप नैवेद्यादि) से श्री नन्दिकेश्वर की पूजा करे । धर्मपुत्र ! वहाँ जो पुरुष ब्राह्मणों को रत्न देता है । वह पुरुष उस उत्तम स्थान पर जाता है जहाँ श्री शंकर का निवास है तथा सब सुखों से युक्त होकर अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है ॥१/४॥ चौरानवे अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९४॥

पिचानवेवाँ अध्याय

नारायणी तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! वदर्याश्रममुत्तमम् ।
सर्वतीर्थपरं पुण्य कथितं शम्भुना पुरा ॥

सवैया--जागे सब बालक जाग उठी उनकी अंध बुद्धि, श्रीगुरु चरणों में शीश सबने झुकाए हैं ।
आश्चर्य चकित बाल शिव को देख कहने लगे कि, इसी ने डुबायो औरं इसी ने बचाये हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--श्रेष्ठ राजन् ! तदनन्तर मनुष्य पहले श्री शंकर

जी के द्वारा कहे गये सब तीर्थों में श्रेष्ठ पुण्यप्रद बदरीकाश्रम की यात्रा करे। जहाँ किरीट धारी छोटे भाई फाल्गुन (अर्जुन) ने भारत संग्राम के लिए सिद्धि प्राप्त की थी उन्हें नर रूप स्थित तुम देवता मानो। वे दोनों ही नर नारायण एक समय नर्मदा के तट पर आवे। राजन् ! जो भगवान् का भक्त है उसी को उनका ज्ञान होता है। जो सम्पूर्ण स्थावर और चर में समदृष्टि वाला है ब्राह्मण और चाण्डाल में समदर्शी है उस पुरुष पर ही भगवान प्रसन्न होते हैं। कुन्ती नन्दन ! तुम एकात्मभाव का दर्शन करो मुझमें और अपने में अंतर करने के कारण ही वहाँ नर नारायण ने श्री नर्मदा के तट पर शंकर जी की स्थापना की है। यह लिंग त्रिमूर्ति धारी नारायण जी के द्वारा स्थापित है स्वर्ग मार्ग के साथ मोक्ष का देने वाला है मनुष्य वहाँ जाकर शुद्ध होकर एक दिन रात्रि का उपवास करते हुए काम-क्रोध आदि दुर्गुणों को त्याग कर सात्विक भाव को अपनाये। चैत्र मास की अष्टमी तिथि में जागरण करे अथवा दोनों पक्षों की चतुर्दशी तिथि में जागरण करे। विशेष रूप से आश्विन मास में यह करना उत्तम है। पाण्डु नन्दन ! वहाँ मनुष्य बड़ी भक्ति से मधु के साथ दूध से स्नान करावे। दही शर्करा से युक्त और घृत से सुशोभित यह उत्तम पञ्चामृत है उससे भी श्री शंकर को स्नान कराये। पञ्चामृत से स्नान कराये जा रहे शिव को जो प्रेम से देखता है उसका निवास शंकर के समीप इन्द्र लोक में होता है इसमें संशय नहीं ॥६/११॥ शठता से भी भगवान शंकर को किया गया प्रणाम संसार के सूल--अविद्या से बंधे हुए जीवों के बन्धन को छुड़ाने वाला है। उसका ही अध्ययन ठीक है, उसने ही सब पुण्यों का अनुष्ठान किया है जिसने "ॐ नमः शिवाय" इस मन्त्र का अभ्यास स्थिर किया है। जो पुरुष इन्द्रियों को वश में कर परम भक्तिभाव से बड़े प्रेम से भगवान शंकर को उत्तम विधि से स्नान कराता है। हे कुन्ती नन्दन ! उस पुरुष को जो फल होता है उसे संक्षेप में तुमसे कहूंगा। यद्यपि मैं वृद्धावस्था से दुःखित हूं तो भी तुम्हारी भक्ति से मैं कहूंगा। प्रेम से श्री

शंकर को स्नान कराने से वे पुरुष सब सुखों के प्राप्तकर्त्ता होते हैं । अपनी जाति वालों के बन्धु वान्धवों के ईर्ष्या के कारण होते हैं वे धर्म के स्थान भी होते हैं ।।१३/१६।। राजन् ! पृथिवी में सब मनोरथों से पूर्ण होते हैं, जो पुरुष वहाँ नर्मदा के जल से मिश्रित श्राद्ध करता है । राजन् ! योग्य, कुलीन, वेदों पारगामी, सुन्दर रूप वाले, सुशील, अपनी स्त्री में सन्तुष्ट, शुभ वेषधारी, श्रेष्ठ आर्यदेश में उत्पन्न, स्पष्ट व्यवहार वाले ब्राह्मणों से जब सूर्य कुतुप काल में (अह्नो मुहूर्ता विख्याता दशपञ्च च सर्वदा तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः) दिन के पन्द्रह मुहूर्त सदा ही होते हैं उनमें आठवें मुहूर्त को कुतुप कहते हैं इस मुहूर्त में ही श्राद्ध का प्रारम्भ श्रेष्ठ माना गया है) मुहूर्त में स्थित हो पिण्डदान करना चाहिए । धर्म नन्दन ! यदि मनुष्य अपने पितृगण की उत्तम गति चाहता है तो काने पाखण्डी और दुष्ट पुरुषों को यत्न से छोड़ दे । अपना कल्याण चाहने वाला पुरुष कठोर स्वभाव वाले नपुंसक और ब्राह्मणों के निन्दक ऐसे निन्दक ब्राह्मणों को अवश्य छोड़ दे । इस प्रकार से मनुष्य सब प्रयत्न से योग्य सदाचारी ब्राह्मण को इस कार्य में ग्रहण करे । उत्तम ब्राह्मण कुम्भीपाक आदि बड़े नरकों में पड़े हुए प्रेतों को भी वहाँ से छुड़ा देता है ।।१७/२२।। राजकुमार ! ऐसा करने से बन्धनों में पड़े हुए सभी पितरों की मुक्ति होती है । मुझ पर पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हों यह विचार कर उत्तम ब्राह्मणों को सुवर्ण दान करे । भरत वंशोत्पन्न राजन् ! उस तीर्थ में ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक अन्न-वस्त्र गाय, बैल, भूमि तथा उत्तम छाता दे । वह पुरुष स्वर्ग पाता है । ऐसा श्री शंकर ने कहा है । वहाँ जो पुरुष अग्नि में अथवा जल में प्राणों का त्याग करता है अथवा अनशन से प्राणों को छोड़ता है, वह शिवलोक को जाता है । राजन ! नर नारायणी के तट पर और देवद्रोणी में जो पुरुष प्राण त्याग करता है वह भगवान शंकर के निकट चौदह इन्द्र पर्यन्त रहता है । (एक इन्द्र का समय इकहत्तर चौयुगी से कुछ अधिक होता है) फिर स्वर्ग से लौटकर वह बलशाली

राजा भी होता है, सब ऐश्वर्य और गुणों से युक्त प्रजाओं के पालन में तत्पर रहता है फिर उस तीर्थ का स्मरण करता है और वहाँ आता है ॥२३/२८॥ पिच्यानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९५॥

छियानवेवाँ अध्याय

कोटीश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थ कोटीश्वरं परम् ।
ऋषिकोटिः समायाता तत्र वै कुरुनन्दन ॥

सवैया-- शंकर का बदला हुआ रूप देख सब दंग रह गये, जटा के बीच सर्पराज और गंगा का जल है
माला को देखा तो मुंडन की माला लगी, छड़ी को देखा तो त्रिशूल भयों मानो वही संबल है ॥

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा--राजन तदनन्तर मनुष्य "उत्तम कोटीश्वर तीर्थ" की यात्रा करे । कुरुनन्दन ! जहाँ करोड़ ऋषि आये थे । कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) के कल्याण के लिए वेद मंगल पाठी सब ब्राह्मणों ने मन्त्रणा कर सबके कारण स्वरूप तथा बन्धन के नाशक श्री शंकर की स्थापना की । राजकुमार ! पृथ्वी में "कोटीश्वर" के नाम से कहा गया यह तीर्थ संसार से तारने वाला प्राणियों के दुःख शोक का नाशक है । श्रेष्ठ राजन् ! जो पुरुष पूर्णिमा में उन्हें भक्ति से स्नान कराता है पितरों का तर्पण कर बिधिपूर्वक पिण्ड दान करता है उससे युधिष्ठिर ! विशेषतः श्रावण की पूर्णमासी में पिणडदान आदि से प्रलय-पर्यन्त पितृगण की अक्षय तृप्ति होती है । नर्मदा के तट पर स्थित यह पितृगण का बहुत उत्तम स्थान है । श्रेष्ठ मुनियों ने इसे बनाया है यह सब जीवों को मोक्ष देने वाला है ॥१/६॥ छियान्नवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९६॥

सत्तानवेवाँ अध्याय

व्यास तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल व्यासतीर्थमनुत्तमम् ।
दुर्ल्लभं मनुजैः पुण्यमन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ॥

सवैया-- कमर का वस्त्र वाघंबर बन गयौ, वृहत रूप में देखौ वह छोटो सौ कमंडल है ।
ऊपर से नीचे तक शिव को स्वरूप देखो, नीलो है कंठ जाकौ बांके लाल नेत्र चंचल हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन ! तदनन्तर मनुष्यों को दुर्लभ पुण्यप्रद अन्तरिक्ष में स्थित बहुत उत्तम व्यास तीर्थ को मनुष्य गमन करे । युधिष्ठिर जी ने कहा--भगवन् यह व्यास तीर्थ किस कारण से अन्तरिक्ष में स्थित है ? यह संक्षेप से बताइये ग्रन्थ का विस्तार छोड़िये । श्री मार्कण्डेय ने कहा--साधुओं में अनुराग रखने वाले बड़ी भुजाओं वाले कुन्ती नन्दन ! बहुत ठीक बहुत ठीक तुम धर्मशील और अपने कर्मों में तत्पर तीर्थ यात्रा के प्रेमी हो । राजन् ! व्यास तीर्थ सब जीवों को दुर्लभ है राजकुमार ! मैं वृद्ध भाव से पीड़ित हूँ असमर्थ हूँ स्मरण और ज्ञान भी ठीक नहीं है धन से रहित स्मृति भी ठीक नहीं । मैंने अति गुप्त इस तीर्थ का कथन किसी से भी नहीं किया ॥१/५॥ राजेन्द्र ! व्यास जी के आश्रम से वहाँ कलयुग का प्रवेश नहीं होता । श्रीनर्मदा जी की चेष्टा से ही वह "व्यास तीर्थ" अन्तरिक्ष हुआ है । भगवती नर्मदा के गुणों का कथन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते अतः मैं श्री नर्मदा जी की उत्तम महिमा को सम्पूर्ण रूप से प्रिय वत्स कैसे जानूंगा ? अतः व्यास तीर्थ की थोड़ी महिमा को तुमसे कहता हूं । जहाँ आज भी तथा कलियुग में प्रत्यक्ष विश्वास से देखा जाता है । बड़े भयंकर शूल को भिन्न कर पक्षी भी वहाँ नहीं जाता । पहिले मुनि पाराशर थे उन्होंने श्री गंगाजी के जल में महान फल वाला अति उग्र तप किया वह गंगा के जल में प्रविष्ट हो प्राणायाम से स्थित हुए बारह वर्ष पूर्ण होने पर वह जल के भीतर से बाहर आये ॥६/११॥ भिक्षा के प्रयोजन से वह ग्राम गमन करते थे वह जहाँ ठहरे

थे वहां उन्होंने नौका से जीविका करने वाली एक सुन्दरी कन्या को देखा। उसे देखकर वह काम से व्याकुल होकर उससे मधुर वचन बोले कि तुम मुझे परली पार ले चलो। मृग के समान चंचल नेत्रों वाली सुन्दरी तुम कौन हो ? नदी के तट पर नौका पर चढ़ी हुई मेरे चित्त को मथने वाली देवी कहो ? उन ऋषि के ऐसे कहने पर ऋषि श्रेष्ठ को प्रणाम कर काम से मोहित उन्हें देखकर उसने अपना परिचय दिया। ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं केवटों के घर में दासी रूप से रहने वाली कन्या हूँ। भगवान् ! नौका के द्वारा जीविका के लिए मुझे स्वामी ने आज्ञा दी है। मेरे द्वारा बताये गये सम्पूर्ण वृत्तान्त को तुम जान सकते हो ऐसा कहे जाने पर यह महर्षि क्षण भर चिन्तन कर वह बोले ॥१२/१७॥ पराशर जी ने कहा--भद्रे ! मैं ज्ञान के सामर्थ्य से तुम्हारी उत्पत्ति जानता हूं। सुन्दरि ! तुम केवट की पुत्री नहीं हो तुम राजकन्या हो। कन्या ने कहा--ब्रह्मन् बताइये कि मेरे पिता कौन हैं मैं किसके पेट से किस वंश में उत्पन्न हूं? और केवट की पुत्री कैसे हुई। पराशरजी ने कहा--तुमने जो पूछा है वह सब मैं तुमसे कहता हूं। कल्याणि ! शत्रुओं के भय को बढ़ाने वाला जम्बूद्वीप का राजा चन्द्रवंश का भूषण रूप-वसु नामक एक नृपति था। राजा की सात सौ स्त्रियाँ थीं। पर पुत्र दस ही थे। धर्म से प्रजाओं को पालता था सदा ही ईश्वर के समान उसकी पूजा होती थी। पर क्षीरद्वीप निवासी म्लेच्छ उसके आज्ञा पालक नहीं थे ॥१८/२२॥ उनके विनाश के लिए बड़ी शूरता में स्थित पुत्रों और सेवकों से युक्त होकर राजा वसु समुद्र को लाँघकर क्षीरद्वीप पहुंचे। उन म्लेच्छों ने राजा वसु के साथ युद्ध प्रारम्भ किया। मृगनयनी ! राजा ने उन म्लेच्छों को पराजित किया। राजा ने पुत्र सेना और वाहन सहित उन म्लेच्छों को कर देने वाला बनाया। मृग के समान नेत्रों वाली ! तुम्हारी माता राजा वसु की प्रधान रानी थी। राजा जब अन्य देशों में स्थित थे तब तुम्हारी माता रजस्वला हुई। स्त्रियों में सदा ही काम का निवास होता है। ऋतु काल में विशेषतः काम वाणों

से विद्ध होती है। सुन्दर नेत्रों वाली उस रानी ने काम से सन्तप्त होकर विचार किया कि मैं राजा वसु के समीप दूत भेजूंगी। उसने दूत को बुलाकर कहा--दूत ! तुम शीघ्र ही राजा के समीप जाओ। दूत ने कहा--देवि ! शत्रुओं पर शासन करने वाला राजा 'वसु' समुद्र के परले पार गये हैं। शुभे ! जलयान के बिना वहाँ जाना सम्भव नहीं है। वे सभी यान दूसरे पार हैं। दूत के वचन सुनकर वह रानी काम से पीड़ित होने के कारण दुःखित हो गयी ॥२३/३०॥ तब उसकी सखी उस रानी से बोली--तुम क्यों दुःखित हो रही हो ? देवि ! तुम अपना लेख यथार्थ रूप से तोते के हाथ से भेजो। सुन्दरि ! पक्षी समुद्र को लांघकर जाते है। राजन् ! सखी के बचन सुनकर पह रानी स्वस्थ हो गयी। लेखक से कहा--तुम मेरी आज्ञा से लेख लिखो। वसु राजन् तुमसे रहित सत्यभामा आज जीवित नहीं रहेगी। लेखक ! आज ऋतुकाल प्राप्त है तुम इस लेख को लिखो। लेखक के द्वारा भूर्जपत्र में लेख के लिखे जाने पर पिंजरे के भीतर स्थित शुक रानी के समीप लाया गया ॥३१/३५॥ सत्यभामा ने कहा-शुक ! तुम इस लेख को लेकर शीघ्र ही राजा वसु के समीप जाओ। वह शुक रानी के सामने झुककर उत्तम लिखे गये पत्र को लेकर सहसा उड़ा। राजन् ! वह उड़ कर आकाश मण्डल में पहुंच गया। तदनन्तर वह पक्षी शीघ्र ही वसु राजा के समीप जा पहुँचा। सत्यभामा के द्वारा भेजे गये लेख को शुक ने राजा के समीप डाल दिया। राजा वसु ने उस लेख को हाथ में लेकर पढ़ा। लेख के अर्थ को विचार कर उस राजा ने वीर्य को ग्रहण कर एक सुन्दर दोने का पुट बनाकर तथा उसे उत्तर सहित सुरक्षित कर शुक को सौंप दिया और उससे कहा--तुम रानी के पास जाओ। वह शुक राजा वसु को प्रणाम कर बीज को लेकर उड़ा। समुद्र पर पहुंचने पर शुक को एक बाज ने देखा। उस शुक को माँस सहित जान कर बाज पक्षी ने उस पर धावा किया ॥३८/४१॥ भारत ! बाज ने चोंच के प्रहार से शुक को मार डाला। उसकी मूर्च्छा से वह बीज समुद्र के जल में गिरा।

महाराज वसु के उस बीज को मछली निगल गयी। सुन्दरि ! उस बीज से मछली के पेट में कन्या हुई। वह मछली, मछली पकड़ने वाले लोगों ने पायी उसे पाकर वे घर ले गये। जब वह मछली फाड़ी गयी, शुभ शीले ! तब तुम दृष्टिगोचर हुईं। तुम चन्द्र मण्डल के समान सौंदर्य पूर्ण तथा सूर्य के तेज के समान तेजस्विनी थीं। तुम्हें देखकर गंगा तट पर सभी केवट आनन्दित हो गये। वे सब प्रसन्न होकर अपने प्रधान के घर पहुँचे और उससे बोले कि तुम इस बड़ी कान्ति वाली रत्नरूपी कन्या को ले लो ॥४१/४६॥ पुत्र रहित उस स्वामी ने मृग के समान चञ्चल नेत्रों वाली कृश गात्र वाली कन्या को ले लिया और अपनी स्त्री से बोला--मृग के समान नेत्रों वाली सुन्दर अंगों वाली प्रिये ! तुम इसका पालन करो तदनन्तर उसने तुम्हारा पालन किया। तब उसने महर्षि पाराशर के वचन पर विचार किया। राजन् ! श्री पराशर जी द्वारा ऐसा कहे जाने पर हृदय से तो वह उन्हें अपने को दे चुकी, पर ऋषि से बोली--ठीक है ब्रह्मन् ! मेरे शरीर में मछली की गन्ध भरी हुई है। तब उन ऋषि ने उस सुन्दरी को दिव्य गन्ध से वासित कर दिया। योग के प्रभाव से ऐसा कर अग्नि को प्रज्वलित कर अग्नि की परिक्रमा कर प्रेम से उसको तव ग्रहण किया। नाव के बीच में ही ऋषि ने उस सुन्दरी के काम स्थानों का (स्तन) आदि का स्पर्श किया। धर्म पुत्री ! इस प्रकार ब्राह्मण को कामातुर जानकर वह डर गयी ॥४७/५१॥ हँसती हुई वह उन ऋषि से बोली--देव ! तुम सबके सामने ऐसा करते हुए क्या लज्जित नहीं होते ? बुद्धिमान ! अच्छी बुद्धि वाले ! नीच जनों के योग्य कर्म करते हुए क्या तुम लज्जित नहीं होते ? तब उसी क्षण ऋषि ने कुछ ध्यान करते हुए अन्धकार से पूर्ण माया का स्मरण किया तभी वह तमोगुण से युक्त माया वहां उपस्थित हुई जिसने सब चराचर को व्याप्त कर रखा है। तदनन्तर वह अन्धकार के विस्तार रूप कर्म से विस्मित और अनुरक्त भी हो गयी। तब ब्रह्मचर्य से सन्तप्त उन महर्षि ने स्त्री सुख की क्रीड़ा की। पश्चात उस

कन्या ने उसी समय गर्भ के भार से पीड़ित होकर जटाधारी, दण्डधारी कमण्डल लिए हुए शान्त कमर में मूँज की मेखला से शोभित कन्धे से उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) लिए हुए विष्णु माया के प्रभाव से रहित तेजस्वी बालक को उत्पन्न किया। पृथानन्दन ! उससे और भी सशंकित उस सुन्दर बालक को देखकर काँपती हुई वह सुन्दरी मुनि की शरण गयी। मुनि श्रेष्ठ ! उत्तम बुद्धि वाले पराशर ! अत्यन्त अद्भुत लँगोटी और मेखला से युक्त हाथ में दण्ड लिए जटाधारी उत्तरीय से शोभित मेरे इस पुत्र की तुम रक्षा करो - रक्षा करो ॥५२/५८॥ श्री पराशर जी ने कहा - पुत्र के उत्पन्न होने पर तुम मत डरो। तुम पुनः कुमारी हो जाओगी। योंजन गन्धा और सत्यवती के नाम से भी प्रसिद्ध होओगी। सुन्दरि ! तुम निर्भय होकर अपने घर जाओ, पहले रूप से ही स्थित होओ तुम इस विषय में विषाद मत करो, तुमने मेरे ज्ञान के बल को देखा है। ऐसा कहकर वह ब्राह्मण यथास्थान चले गये। वह सुन्दरी पुत्र को देखने लगी उस पर आश्रित हुई। एक समय पुत्र विनय से प्रणत होकर भक्ति पूर्वक माता को साष्टांग प्रणाम कर बोला। माता ! मैं ईश्वर के आराधन की चेष्टा करूँगा। तब वह पुत्र के वचन से दुःखित होकर वचन बोली ॥५९/६४॥ योंजनगन्धा ने कहा--वत्स ! आज मुझे अपराध रहित माता को छोड़कर मत जाओ। पुत्र तुम्हारे वियोग से मेरा मरण निःसन्देह हो जावेगा। पुत्र के समान दूसरा स्नेह भाजन नहीं और भाई के समान कोई नहीं है। सत्य से बढ़कर धर्म नहीं और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। बालावस्था में तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो तुम मेरे आधार बन जाओ। कर्मों का खेल तो देखो, न तो मेरा पति है, और न मेरा पुत्र है। व्यासजी ने कहा--हृदय में तुम विषाद मत करो मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ। देवि ! तुम कार्यों की सिद्धि के लिए आपत्ति के समय में मेरा स्मरण करना मैं तुम्हें आपत्ति से बचा लूँगा, मेरे इस कठोर उत्तर पर मुझे क्षमा करो। ऐसा कहकर व्यासजी वहाँ से चले गये और वह कन्या

भी घर गयी ।।६५/६९।। वह पराशर के पुत्र वहाँ वन के मध्य में विषाद को प्राप्त हुए । राजन् ! त्रेता युग के अन्त में द्वापर के आदि में इन्द्र आदि देवों ने उसी व्यास पद के लिए चिन्तन किया । गंगा के तट पर केवट की पालित पुत्री से उत्पन्न ज्ञानी बालक है वह इसके योग्य है । नारद के वचन से सभी देव आये । परशुराम, ब्रह्मा, इन्द्र ये सभी मुनियों के साथ नाम आदि पृथक्-पृथक् बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! कहकर साधु-साधु इन वचनों का कथन किये । पितामह ने बालक को गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत किया । द्वीप में जन्म लेने से द्वीपायन (द्वैपायन) पराशर पुत्र होने से पाराशर कृष्ण के अंश से यह कृष्ण नामक वेदों का विभाग करने से व्यास नाम से कहे जायेंगे । वह बालक ब्रह्मा के और मुनियों के द्वारा बार-बार अभिषिक्त हुआ । तुम सब लोकों में व्यास के नाम से प्रसिद्ध होओगे । ऐसा कहकर देवगण वहाँ से चले गये । फिर कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने तीर्थ यात्रा प्रारम्भ की ।।७०/७६।। उसने गंगा का स्नान किया, केदार और पुष्कर तीर्थ में भी स्नान किया । गया; नैमिषारण्य तीर्थ, कुरुक्षेत्र और सरस्वती उज्जयिनी में महाकालेश्वर, प्रभास क्षेत्र में सोमनाथ के दर्शन कर सागर पर्यन्त पृथिवी में स्नान करके महानमुनि वेद व्यास जी आगे चलते हुए रुद्र के शरीर से उत्पन्न पवित्र मंगल मयी अमृत रूपा श्री नर्मदा के तट पर आ पहुँचे । आनन्दित होकर श्री नर्मदा को देखकर चित्तका विश्राम पाया । वहाँ आकर श्रीव्यास ने बड़ा तप किया । ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि के मध्य में स्थित होकर वर्षा में निवारण आंकाश के नीचे पृथिवी पर सोते हुए हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्र वाले होकर श्री शंकर का चिन्तन किया । सृष्टि और संहार के करने वाले किसी अस्त्र शस्त्रादि से नहीं काटने योग्य वरदायी मंगल मय नित्य सिद्धेश्वर लिंग की पूजा ध्यान में तत्पर होकर करनी चाहिए । सिद्ध लिंग के पूजन से तथा ध्यान योग के प्रभाव से वह शंकर कृष्ण द्वैपायन व्यास के सामने प्रत्यक्ष हो गये ।।७७/८३।। भगवान शंकर ने कहा--पुत्र ! मैं तुम

पर प्रसन्न हूँ उत्तम वर माँग लो । श्रीव्यास जी बोले भगवन् ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे वर देना चाहते हो तो नर्मदा के तटपर तुम स्वयं ही प्रत्यक्ष रहो, उमानाथ ! तुम्हारी कृपा से मैं भूत और भविष्य काल का जानकार होऊँ । भगवान शंकर ने कहा--पुत्र ! मेरी कृपा से निःसन्देह तुम्हें ऐसा ही हो तुम्हारी भक्ति से वश में हुआ मैं नर्मदा केतट पर प्रत्यक्ष रहूँगा । हजारवे अंश के आधे भाग में तुम्हारे आश्रम में प्रत्यक्ष निवास करूँगा ऐसा कहकर श्रीशंकर उत्तम कैलाश पर्वत पर चले गये । कृष्ण द्वैपायन ने समय पर पत्नी को ग्रहण किया । शास्त्र में कही गयी विधि से विवाह करने पर तथा पत्नी का पालन करते हुए पराशर नन्दन व्यास के पुत्र हुआ । सभी ब्रह्मा-इन्द्र-आदि देवों ने वृद्धि का आशीर्वाद दिया ॥८४/८९॥ पुत्र जन्म के उत्सव में तीर्थ यात्रा के प्रसंग से वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनि और पराशर आदि मनु अत्रि विष्णु हारीत, याज्ञवल्क्य, शुक्राचार्य अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन वृहस्पति ऐसे शिष्यों सहित महाभागशाली नर्मदा तट पर रहने वाले हजारों मुनि व्यास जी के आश्रम में जो अत्यन्त शुभ और मनोहर था सन्तुष्ट होकर आये । राजन् ! उन व्यासजी ने भी उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देखकर अभ्युत्थान करते हुए पिता को प्रणाम कर पश्चात् विधिपूर्वक दूसरों को प्रणाम कर उन्हें प्रेम से आसन दिया ? चरण धोने के लिए जल और अर्ध्य निवेदन किया । पुनः हाथ जोड़कर यह वचन बोले--इसमें संदेह नहीं कि आज आप लोगों से सम्भाषण और पूजन से मेरा उद्धार हो गया । जंगल में होने वाले साग सब्जी और जंगली फल मैं आप लोगों को प्रेम पूर्वक दूँगा ॥९०/९६॥ वहाँ श्री व्यास जी ने प्रत्येक को प्रणाम कर उन सबको निमन्त्रित किया । तदनन्तर वे सब कृष्ण द्वैपायन मुनि को प्रणाम करते देखकर श्रीव्यास जी को जय के आशीर्वचनों से वृद्धिशाली होने का कथन कर--दूसरे को देखकर फिर सभी मुनि श्रेष्ठ श्री पराशरजी को देखने लगे । पूज्य ! पराशर ! तुम श्रीव्यास को उचित उत्तर

दो । उन सब मुनियों के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह भगवान पराशरने ऋषियों की इच्छा को प्रकट करते हुए पुत्र व्यास से कहा--पराशर जी बोले-खाने की इच्छा वाले ये महर्षि व्रत भंग के भय से और विशेषत; श्राद्ध में नर्मदा के दक्षिण तट पर भोजन नहीं करना चाहते । व्यास जी ने कहा-मैं आप लोगों की आज्ञा का पालन करता हूँ । आप लोग क्षण भर ठहरिये जब तक मैं श्रीनर्मदा को प्रसन्नकर उत्तम विधि सिद्ध करता हूँ ऐसा कहकर वह पवित्र नर्मदा के तट पर स्थित हुए । सहसा श्री व्यास ने भगवती नर्मदा की स्तुति की राजन् ! वह तुम सुनो ।।९१/१०२।। हे मातः ! तुम्हारी जय हो, देवि ! तुम्हें प्रणाम हो । वर देने वाली पापों का नाश करने वाली तथा बहुत फल देने वाली माता तुम्हारी जय हो । शुम्भ-निशुम्भ के कपाल धारण करने वाली हे देवी आपकी जय हो । सुर-नर-संकट हरिणी हे माँ प्रणाम करता हूँ । चन्द्र-सूर्य रूपी नेत्र धारण करने वाली देवी ! तुम्हारी जय हो अग्नि से देदीप्यमान सुन्दर मुख वाली माता तुम्हारी जय हो । भैरव के देह में छिपने वाली तुम्हारी जय हो । अन्धक दैत्य का शोषण करने वाली तुम्हारी जय हो । महिषासुर का मर्दन करने वाली शूल को हाथ में लिए हुए तुम्हारी जय हो । लोगों के सम्पूर्ण पापों को हरने वाली माताः तुम्हारी जय हो । ब्रह्मा और श्रीराम के द्वारा वन्दित हे देवि ! तुम्हारी जय हो । सूर्य व इन्द्र द्वारा सिर से प्रणाम की गयी माता ! तुम्हारी जय हो ।।१०३/१०५।। स्कन्द व शास्त्र धारी ईश के द्वारा अभिनन्दित हे देवि ! तुम्हारी जय हो । सागर गामिनी माता तुम्हारी जय हो । दुख और दारिद्रय का विनास करने वाली देवी ! तुम्हारी जय हो । पुत्र और स्त्री आदि की वृद्धि करने वाली देवि ! तुम्हारी जय हो । सबके शरीर धारण करने वाली शक्तिरूप देवि ! तुम्हारी जय हो । स्वर्ग का दर्शन कराने वाली दुखों का हरण करने वाली देवि ! तुम्हारी जय हो । व्याधियों का विनाश करने वाली एवं संसार के बन्धन से छुड़ाने वाली तुम्हारी जय हो । सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली दुखों

का हरण करने वाली देवी । तुम्हारी जय हो । व्याधियों का विनाश करने वाली एवं संसार के बन्धन से छुड़ाने वाली तुम्हारी जय हो ॥१०६/१०७॥ जो पुरुष काम क्रोध से रहित होकर श्री व्यास के द्वारा रचित स्तोत्र को भगवान शंकर के पास अथवा शुद्ध भाव से घर में पढ़ता है उस पुरुष पर वेद व्यास और भगवान शंकर परम प्रसन्न होते है तथा सब पापों का क्षय करने वाली देवी प्रसन्न होती है । पृथ्वी में जिन पुरुषों ने श्री नर्मदा की स्तुति की हो वे फिर यमलोक नहीं जाते । देवि ! तुम्हारे गुणों के कीर्तन से ब्रह्मा जी भी मोहित होते है । नर्मदे ! वृहस्पति भी तुम्हारे स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकते । देवि ! फिर तुम्हारें सम्पूर्ण गुणों को मैं कैसे जान सकता हूँ । इस प्रकार वाणी मन और शरीर से श्रीव्यास के पवित्र भाव को जानकर प्रसन्न हुई श्रीनर्मदा देवी बोली । प्रिय महामुने । व्यास ! मैं तुम्हारे सत्य भाषण से सन्तुष्ट हूँ यदि तुम कोई वरचाहते हो तो मैं तुम्हें वह सब देती हूँ ॥१०८/११३॥ व्यास जी ने कहा--देवि यदि मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे वर देने को उद्यत हो तो मातः । अपने उत्तर तट पर ऋषियों का अतिथिसत्कार करा देने के योग्य हो । नर्मदाजी बोली व्यास । मार्ग से विरुद्ध कार्य प्रवृत्ति की प्रार्थना उचित नहीं है । इन्द्र, चन्द्र, और यम भी मार्ग के विरुद्ध चलने में असमर्थ है । पुत्र । तुम कोई दूसरा वर माँग लो जो पृथ्वी में दुर्लभ हो । व्यास जी देवी के उस वचन को सुनकर मुर्च्छित हो गये । आज मुझे वृथा ही क्लेश हो गया यह मानकर वे गिर गये पर्वत, वन सहित सारी पृथ्वी विचलित हो उठी ॥११४/११७॥ उस समय मूर्च्छावस्था में पड़े हुए व्यास को देखकर इन्द्र सहित सभी देव हाहाकार करते हुए वहाँ आये । वेदों के विभाग में तत्पर श्रीव्यास को उन्होंने उठाया वस्तुतः वह व्यास श्रीनर्मदा के तट पर ब्राह्मणों के लिए कष्ट उठा रहे थे अपने लिए नहीं । गाय और ब्राह्मणों के लिए प्राणों को भी शीघ्र छोड़ देना चाहिए । इस प्रकार श्रेष्ठ ब्रह्मा आदि देवों ने उन श्री नर्मदा से कहा । तब डरी हुई नर्मदा ने बहुत

शीतल जल और वायु से भी व्यास का अभिषेक किया सत्यवती नन्दन श्री व्यास सचेतन होते हुए देवी को प्रणाम कर श्रीनर्मदा से बोले ॥११८/१२१॥ व्यास जी ने कहा--देवि, पूज्य गुरुजनों से भोजन के लिए फल आदि लेने का अनुरोध किया, पर मेरे मन्द भाग्य से मेरी वह पवित्र आशा निष्फल हो गयी जिस प्रकार साधारण मनुष्यों को उत्तम वनों के पुष्प। श्रीनर्मदा जी ने कहा--महा तेजस्वी व्यास ! इस भूतल पर तुम्हारा चित्त मुझे जहाँ ले जाना चाहता है दण्ड धारण किये हुए तुम्हारे पीछे-पीछे विन्ध्याचल के साथ में आज उसी मार्ग पर गमन करूँगी ॥१२२/१२३॥ ऐसा कहे जाने पर बड़े तेजस्वी सत्यवती नन्दन श्रीव्यास ने अपने आश्रम के दक्षिण की ओर श्रीनर्मदा की ओर श्रीनर्मदा को चलाया। हाथ में दण्ड लिए बड़े तेजस्वी मुनि ने हुंकार किया। उनके हुंकार से डरी हुई श्री रुद्रनन्दिनी नर्मदा चलने लगी। दण्ड से मार्ग दर्शन करते हुए श्री व्यास ने नर्मदा को आगे चलाया। वे व्यासजी के मार्ग के अनुसार ही आगे चली। इन्द्र आदि देवों ने वहाँ उन्हें देखा। अपने सेवकों के साथ देवों ने उन पर पुष्प वर्षा की। पराशर आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हो गये। उनके नेत्र खिल गये। प्रिय पुत्र ! हम क्या करे तुम बताओ। इस समय हम तुम्हारे कर्म से अत्यन्त प्रसन्न है ॥१२४/१२७॥ व्यास जी ने कहा--बहुत तपकर और बड़े फल वाला दान देकर मनुष्यों को वही कार्य करना चाहिए। जो कि सब सज्जनों को सुखकर हो। यदि आप लोग मुझपर प्रसन्न है और मैं कृपा का पात्र हूँ तो मेरे आश्रम में आप सब लोग यहाँ निशंक हुए स्थित रहे। नर्मदा के जल से मिश्रित सागपात और फल से मेरा अतिथि सत्कार आप सब लोग प्रेम से ग्रहण करे। श्री नर्मदा के उत्तर तट पर अपने आश्रम में आप सब रहिये। श्रीमार्कण्डेय जी बोले--उस समय वहाँ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने स्नान तर्पण आदि नित्य क्रियायें सम्पन्न की। फिर व्यास कुण्ड में जाकर सबने हवन करना प्रारम्भ किया ॥१२८/१३१॥ नारियल विल्वपत्र आदि से अग्नि में आहुति दी। गौतम, भृगु, अष्टावक्र, नारद, लोवंश, पराशर, शंख, कौशिक, महर्षि,

च्यवन, पिप्पलाद, वशिष्ठ, महातपस्वी नचिकेता, विश्वामित्र, अगस्त्य, उद्दालक, यम, शाण्डिल्य, जैमिनि, कण्व, याज्ञवल्क्य, शुक्राचार्य, अंगिरा, शांता तप, दधीचि, गालब, जैगीषव्य और दक्ष, भरत, मुदगल, महातेजस्वी बात्स्यायन संवर्त एवं शक्ति, जातूकर्ण्य, भरद्वाज, बालखिल्य, आरुणि ऐसे हजारों महर्षि वहाँ अग्निमें अग्निहोत्र करने लगे। वे हाथ में रुद्राक्ष की माला लिए हुए ध्यान योग में स्थित एकाग्र चित्त वाले होकर सभी उस समय हवन कर रहे थे ॥१३२/१३७॥ तदनन्तर मोक्ष को देने वाला रोगों का विनाशक एक शिव लिंग निकला। अखण्ड उस दिव्य लिंग को देखकर व्यास जी प्रसन्न हो गये। देवों ने पुष्प वृष्टि की और श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। भगवान शंकर को देखकर व्यासजी ने साष्टाँग प्रणाम किया। उनने ब्राह्मणों की पूजा की। पाण्डुपुत्र ! पिता से लेकर सब ब्राह्मणों को साग मूल फलों का भोजन कराया तब फिर ब्राह्मण उन्हें पुण्य आशीर्वाद देकर अपने-अपने आश्रमों को गये। तब से लेकर वह तीर्थ बुद्धिमानों के द्वारा "व्यासतीर्थ" नाम से कहा जाने लगा ॥१३८/१४२॥ युधिष्ठिर ने कहा--मुनिवर्य व्यास तीर्थ के सेवन से जो पुण्य फल होता हो वह भी सब मुझसे कहें। स्नान और दान का विधान भी जिस समय बड़ा फल देने वाला हो वह भी बताएँ। मार्कण्डेय जी ने कहा--भाइयों के सहित युधिष्ठिर सुनो मैं तुमसे सब कहता हूँ कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि में जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर उपवासकर भक्तिपूर्वक रात्रि में जागरण करता है तथा श्रीशंकर को दुग्ध और मधु घृत आदि से स्नान कराता है। खाँड से युक्त दही से तथा कुश मिश्रित पवित्र जल से स्नान कराता है। सुगन्धित चन्दन से भगवान शंकर को लिप्त करता है ॥१४३/१४६॥ फिर सुगन्धित फूलों से बेल पत्रों से पूजन करता है मुचुकुन्द, कुन्द और कुश जाति के फूलों में बहुत सुगन्धित उन्हीं पुष्पों से तथा समय के अनुसार होने वाले फूलों से सर्वोत्तम द्वीपेश्वर श्रीशंकर की परम भक्ति से पूजा करे। गन्ने की गड्डी अथवा गन्ने के रसके गडुआ के देने से शंकरजी प्रसन्न होते है। आठ गठरी देने से एक दिन का

पाप नष्ट होता है । एक सौ आठ गठरी देने से एक मास का पाप नष्ट हो जाता है एक हजार गड्डी देने से छै मास का पाप तथा इससे दोगुनी से एक वर्ष का पाप नष्ट होता है दश हजार गड्डी देने से पूर्ण जीवन का पाप नष्ट हो जाता हैं । दो गुना देने से रोग नष्ट होता है और सामान्य से तीन गुना देने से मनुष्य को धन प्राप्त होता हैं ।।१४७/१५१।। छै गुना देने से श्रेष्ठ वक्ता और उससे दो गुना देने से सिद्ध होता हैं । दस लाख देने से रुद्र भाव पाता है । इसमें संशय नहीं राजश्रेष्ठ ! बुद्धिमान मनुष्य मन्त्र पूर्वक विधि विधान से सब पापों के विनाशक स्नान को पूर्णमासी में भक्ति से करता है वारुण स्नान (जल स्नान) आग्नेय (भस्म स्नान) सब पापों को क्षय करने वाला ब्राह्म स्नान (आपोहिष्ठा) इस मन्त्र से देव-पितृ-मनुष्यों का तर्पण करते हैं । मनु ने चार प्रकार के स्नान बताये हैं भस्म स्नान-आग्नेय, जल के भीतर डुबकी लगाना वारुण स्नान, आपो-हिष्ठा मयोंभुवः--आदि मन्त्रों से किये गये स्नान को ब्राह्म स्नान तथा गोरज स्नान को वायव्य स्नान कहा जाता है । आग्नेयं भश्मना स्नान मनगाह्यंतु-वारुण । आपो हिष्ठेतिच ब्राह्मं वायव्ये नीरजः स्मृतम् ।। ऋग्वेद की ऋचा मात्र से सम्पूर्ण ऋग्वेद के स्वाध्याय से होनेवाले पुण्य को सामसे सामवेद के फल को पाता है । यजुर्मन्त्र से यजुर्वेद के पुण्य को तथा गायत्री मन्त्र से सम्पूर्ण फल को पा लेता हैं । "ॐ" इस एकाक्षर मन्त्र का अपने अधिकार के अनुसार जप करे । सूर्यमन्त्र अथवा शिव मन्त्र का जप करना चाहिए । अथवा द्वादशाक्षर वैष्णव मन्त्र का जप करना चाहिए ।।१५२/१५६।। सब लक्षणों से सम्पन्न अपनी स्त्रीमें ही सन्तुष्ट पाखण्ड और लोभ से रहित सुपात्र विद्वान ब्राह्मणों की भक्ति पूर्वक पूजा करे । ब्राह्मण धर्म को छोड़कर भिन्न दूसरी जीविका अपनाने वाले स्वधर्म से पतित, शूद्रों की सेवा करने वाले, नीच जाति की स्त्री का ग्रहण करने वाले, नीच जाति की स्त्री का भोग करने वाले, परोक्ष में धूर्तता का व्यवहार करने वाले अथवा परोक्ष में अप्रिय कार्य करने वाले, दुष्ट गुरु निन्दा में तत्पर, वेदों का द्वेष करने वाले, शुष्क

तार्किक--निरर्थक तर्क करनेवाले तथा बगला के समान वञ्चना में उद्यत, ऐसे दूषित वृत्ति वाले ब्राह्मणों का श्राद्ध दान, और सब व्रतों में त्याग करना उचित हैं। सदाचार से सम्पन्न ब्राह्मण गायत्री मन्त्र की आराधना करने वाला भी श्रेष्ठ है। चार वेदों का जानकार होकर भी दुराचारी सर्वभक्षी सब वस्तुओं को बेचने वाला ब्राह्मण पूजा के योग्य नहीं है। ऐसे ब्राह्मणों को अन्नदान सुवर्ण दानादि से पूजित न करे। जो पुरुष उत्तम ब्राह्मण को जूते पहनाता है और वस्त्र शय्या-आसन आदि भक्ति से देता है। वह भी स्वर्ग में जाता है ।।१५७/१६२।। उस व्यास तीर्थ में प्रत्यक्ष गाय और जल धेनु, घृत धेनु, तिल धेनु-शास्त्र के विधान के अनुसार और महिषी (भैंस) भी देनी चाहिए। जो कृष्ण मृग चर्म का देने वाला है और जो तिल तथा घृत का देने वाला है। कन्या और पुस्तकों का दाता है। वह अक्षय लोक को पाता है। चाँदी के खुरों से मुक्त अन्नादि सामग्री से युक्त अच्छे पुष्टाँग बैलों को खेती से युक्त कर स्वर्ग की कामना से देता है दिलाता है वे स्वर्ग जाते हैं। यह मेरा सत्य भाषण है ।।१६२/१६५।। सूत्र से द्वीप वेष्टन करे अथवा सम्पूर्ण पृथिवी को लपेट ले या बड़ी भक्ति से मन्दिर अथवा श्री शंकर जी का वेष्टन करे समान ही है। जो पुरुष वहाँ विधान से परिक्रमा करता है। राजन् ! वह जम्बूद्वीप-प्लक्ष द्वीप-शाल्मलि-कुश-कौञ्च-काश-पुष्कर ये सात द्वीपों वाली, सप्त सागर समेत पृथिवी की परिक्रमा करने वाला है। भरत ! महाराज ! द्वीपेश्वर तीर्थ में जो पुरुष रक्त वर्ण वाले वृष से वृषोत्सर्ग करता है। वह शिवलोक को पाता है। जो सांड मुख कुछ पीला, श्वेत मस्तक में, पैरों में, पूंछ में श्वेत वर्ण वाला है वह स्वर्ग का दिलाने वाला होता है। ऊपर कहा गया साँड "नील" कहलाता है। इस नील वृषको जो दीपेश्वर में छोड़ता है। भरत वंशोत्पन्न ! वह पुरुष सॉड के रोओं की संख्या से उतने वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में रहता है। राजन् व्यास तीर्थ के प्रभाव से मनुष्य अपनी इच्छा से सूर्यलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक को क्रमशः जाकर वहाँ के भोगों को भोगता है ।।१६६/१७२।। वहाँ भक्तिपूर्वक सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा

करे। जो पुरुष उत्तम ब्राह्मण को श्वेत रक्त वस्त्र देता है। जोड़े की परिक्रमा कर जगत के स्वामी मुझ पर प्रसन्न हो ऐसा कहे। इस लोक और परलोक में ब्राह्मण के समान कोई बन्धु नहीं है, जो महा भयंकर यमलोक में गिरते हुए मनुष्य की रक्षा कर ले इतिहास पुराणों के जानकर विष्णुभक्त जितेन्द्रिय विद्वान सदाचारी ब्राह्मण की बड़ी भक्ति से पूजा करे। सामवेद का गायन करने वाले ब्राह्मण की पूजा तो विशेष रूप से करनी चाहिए। जो मनुष्य गृह में स्थित होते हुए भक्ति से दीपेश्वर का स्मरण करते हैं। उन्हें न तो कोई शौक होता है, न हानि होती है और न पाप होता है। उससे जहाँ सत्यवती नन्दन महाभाग श्रीव्यास जी सिद्ध हुए वहाँ सिद्धेश्वर लिंग की प्रथम पूजा करे। इनकी पूजन से ही महाबुद्धिशाली धारा सर्प सिद्धि को प्राप्त हुए। राजन्! उस तीर्थ में जो पुरुष अपने प्राणों का त्याग करता है वह सूर्यलोक को भेदकर श्री शिव के समीप जाता है ॥१७३/१७९॥ भरत वंशोत्पन्न राजन्! जहाँ जल में स्नान कर प्राण त्याग से सात हजार वर्ष तथा वहाँ अग्नि में प्राण त्याग से ग्यारह हजार वर्ष-पर्यन्त जल में पवन से पतन सो प्राण त्याग से सोलह हजार वर्ष पर्यन्त और महायुद्ध में साठ हजार वर्ष तक तथा ग्रहण सूर्य किरणों का सेवन अथवा गोपालने में प्राणत्याग से अस्सी हजार एवं अनशन से प्राणों के त्याग से अक्षय गति होती है। पिता, पितामह, प्रपितामहः ये अपने वंश में उत्पन्न वायु रूप पुरुष को आते हुए देखते हैं। वे विचार करते हैं कि हमारे वंश में क्या कोई ऐसा पुत्र है जो हमें तिल मिश्रित जल कार्तिक-पूर्णमासी वा विशेष रूप से बैसाख की पूर्णमासी में देगा। वहाँ तीर्थ के सेवन से हम सब स्वर्ग जायेंगे। यह सब सर्व श्रेष्ठ द्वीपेश्वर का माहात्म्य तुमसे कहा--राजन्! जो पुरुष वहाँ जाकर परम भक्ति से इसे पढ़ता है या सुनता है वह पुरुष भी पाप से रहित होकर शिवलोक में प्रसन्न रहता है श्रेष्ठ मुनियों ने इसे सब तीर्थों में ऊपर पापों से मुक्ति के लिये बनाया है। राजश्रेष्ठ! यह व्यास तीर्थ सब मनोरथों का पूरक है इसमें संशय नहीं ॥१८०/१८५॥ सत्तानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९७॥

अठानवेवां अध्याय

प्रभास तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र प्रभासेश्वरमुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥

सवैया-- अद्‌भुत कर्म देख गुरु शिव को पहचान गये, स्तुति कर भार-भूति नाम तब धरायों है
बालक भी देख सब आश्चर्य चकित भये, शंकर के चरणों में शीश सबने झुकायों है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य तीनों लोकों में प्रसिद्ध स्वर्ग की उत्तम सीढ़ी के समान प्रभासेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य प्रभास क्षेत्र बड़े फलवाला स्वर्ग का सोपान और दर्शनीय कैसे हो गया । तुम मुझसे संक्षेप में शीघ्र कहो । श्री मार्कण्डेय ने कहा--रवि की पत्नी दुर्भाग्य से ग्रस्त होने के कारण उसे पति प्रेम नहीं प्राप्त था । उसका प्रभा नाम प्रसिद्ध था । पहले उसने उग्र तप से श्री शंकर की आराधना की । एक वर्ष पर्यन्त वह वायु भक्षण करती रही फिर एक वर्ष ध्यान मग्न रही । पाण्डु नन्दन ! उससे उस पर भगवान शंकर प्रसन्न हो गये । तब शंकर ने कहा--सुन्दरि ! तुम क्यों कष्ट उठा रही हो ? तुम्हें जो कहना है वह कहो । मैं और सूर्य दोनों एक ही है । हमसे भेद नहीं है ॥१/५॥ प्रभा ने कहा--शम्भो ! पति को छोड़कर स्त्री का कोई अन्य देवता कहीं नहीं है । वह चाहे गुणी हो अथवा गुणरहित धनी हो या निर्धन, प्रिय हो अथवा द्वेष करने वाला हो स्त्रियों का पति देवता है । देव श्रेष्ठ ! मैं सखियों के बीच दुर्भाग्य से जल रही हूँ । पति से मुझे सुख प्राप्ति नहीं है । उससे मैं अत्यन्त क्लेश पा रही हूँ । श्री शंकर ने कहा--जाओ तुम मेरी कृपा से सूर्य प्रिय होओगी ॥६/८॥ उस समय पार्वती ने कहा--सूर्य नारायण आपके वचन को भी अप्रमाणित करेगे अर्थात् नहीं मानेंगे । तब इस प्रभा को व्यर्थ ही क्लेश होगा । भगवती उमा की प्रार्थना से शंकर जी के द्वारा चिन्तित होकर अन्धकार के विनाशक वह भुवन भास्कर आकाश से नर्मदा के उत्तर

तट पर पधारे । श्री सूर्य बोले--अघासुर विनाशक ! देव आपने मुझे कैसे स्मरण किया ।।९/११।। भगवान शंकर ने कहा--सूर्यदेव ! तुम बड़े प्रेम से प्रभा देवी का पालन करो । पार्वती ने कहा--शोक विनाशक का तुम नित्य प्रभा के घर में निवास करो । सम्पूर्ण स्वस्त्री वर्ग में (अपनी स्त्रियों में) सूर्य ! तुम इसे प्रमुख बना लो । सूर्य ने कहा--सुन्दर मुखवाली देवि ! मैं तुम्हारे वाक्य के अनुसार ही करूँगा । यह सुनकर बुलायी गयी प्रभा भगवान से बोली । प्रभा ने कहा-देव ! कामदेव विनाशक ! उमानाथ ! तुम अपने अंश से यहाँ स्थिर रहो यहाँ तुम तीर्थ के उद्घाटन के लिए एक अंश से स्थिर रहो । श्रीमार्कण्डेय ने कहा--तब पाण्डु नन्दन ! वहाँ सर्व देवमय लिंग की स्थापना की गयी । सब लोकों में दुर्लभ जो स्थान प्रभासेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१२/१६।। अन्य तीर्थ तो समय पर ही फलदायी होते हैं । राजेन्द्र ! पर प्रभासेश तो शीघ्र ही कामना रूपी फल को देने वाला है । राजन विशेष रूप से माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में जो पुरुष उत्तम ब्राह्मण को अश्वदान करता है वह इन्द्र पर अथवा सूर्य पद पाता है । मनुष्य स्नान कर परम भक्ति से उत्तम ब्राह्मण को दान दे । श्रेष्ठ ब्राह्मण को गाय का दान देने वाला मनुष्य स्वर्ग और सत्य लोक को पाता है । सब अंगों से सुन्दर श्वेत वर्ण वाली, दुधारु, सीधी, नौजवान बछड़े सहित घण्टा से युक्त; कांसे के पात्र की दोहनी वाली श्रेष्ठ गाय जो पुरुष उत्तम पात्र ब्राह्मण को देते हैं श्रेष्ठ राजन् ! वे फिर यमलोक का दर्शन नहीं पाते ।।१७/२१।। और जो पुरुष बड़ी भक्ति से भगवान को स्नान कराता है वह प्रलय पर्यन्त उत्तम लोक को पाता है । पाण्डव ! स्नान मात्र से मनुष्य का खोटा भाग्य दूर हो जाता है । उस स्नान में जो पुरुष भक्ति पूर्वक कन्यादान करता है पाण्डु नन्दन ! कुलशील धन से सम्पन्न अवस्था वाले उत्तम ब्राह्मण को विवाह धर्म से विधि पूर्वक कन्या देता है महाराज ! जो पापी होकर भी यह करते हैं उनके पाप

जल में नमक की भाँति नष्ट हो जाते हैं। कन्यादान से मनुष्य के अनेकों पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२२/२५॥ स्वामी के द्रोह से उत्पन्न पाप, धरोहर के हड़पने का पाप मित्र के मारने का पाप, कृतघ्न किये गये उपकार के न मानने का पाप, झूठी गवाही का पाप, गाँव में भेद डालने का पाप, बगीचे के नष्ट करने का पाप दूसरे की स्त्री के सेवन का पाप, सूद का पाप और चोरी से होने वाला पाप, कुएँ को नष्ट करने का पाप; कपट के आचरण से उत्पन्न पाप, दम्भ (दूसरों को धोखा देने के लिए अपने को भिन्न रूप से प्रदर्शित) करने का पाप, निरर्थक वृक्षों के काटने का पाप, अगम्या स्त्री में गमन से उत्पन्न पाप, दूसरे की स्त्री में प्रेम कामना से अपनी सुशील पत्नी के त्याग का पाप, ब्राह्मण के धन के अपहरण से उत्पन्न पाप, विष देने से उत्पन्न पाप और गाय की हत्या से प्रकट हुआ पाप, विद्या के बेचने का पाप और पापियों के सम्बन्ध से होने वाला पाप ॥२६/३०॥ कुत्ते विलाव के बध से उत्पन्न पाप, भूमि के हरण का पाप; गाय-ब्राह्मण और अग्नि के निमित्त शुभ कर्मदान आदि करने वाले को मत दो मत दो, इस प्रकार के निषेध से उत्पन्न पाप ये सभी पाप पाण्डु पुत्र ! कन्या दान से निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। वह पुरुष सूर्यलोक जाकर शुभ रुद्रलोक जाता है और वहाँ चौदह इन्द्रों के भोग का काल पर्यन्त--रुद्र लोक में निवास कर विसाल सुख का अनुभव करता है। और मनुष्य के सब पापों का क्षय हो जाता है तब भगवान शंकर में भावना होती है। पाण्डु नन्दन ! जो पुरुष इस प्रभास तीर्थ का गमन करता है वह पुरुष सब तीर्थों का फल पाकर अश्वमेघ का फल पाता है। गाय का विधि पूर्वक दान बड़ा पुण्य देने वाला और सब पापों का क्षयकारक हैं वह सदा ही उत्तम है। किन्तु चतुर्दशी में विशेष रूप से उत्तम है ॥३१/३५॥ अन्ठानवेवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९९८॥

निन्यानवेवां अध्याय

नागेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच--ततो गच्छेन्महीपालनर्मदादक्षिणे तटे ।
स्थापितं वासुकीशं तु समस्तादुःखनाशनम् ॥

सवैया-- शिव ने गुरु से कहा आप गुरु है मेरे, माँगिये गुरु दीक्षा जो कुछ भी मन भायौ है ।
गुरु बोले प्रभो इन बालकन को क्षमा करौ, यही वरदान आज मेरे मन भायौ है ॥

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजन् तदनन्तर मनुष्य नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थापित सम्पूर्ण पापों के विनाशक वासुकीश महादेव की यात्रा करे । युधिष्ठिर ने कहा--पूज्य गुरुदेव ! नर्मदा के दक्षिण तट पर किस कारण से वासुकीश की स्थापना हुई । यह मुझसे विस्तार से बताये । श्री मार्कण्डेय ने कहा--एक समय भगवान शंकर ने नृत्य किया उस नृत्य से भगवान शंकर को स्वेद (पसीना) उत्पन्न हुआ । गंगा जल से मिश्रित स्वेद बिन्दु गिर रहे थे । शंकर के मस्तक से निकले हुए उस पसीने को सर्प पी रहा था ॥१/४॥ भारत ! तदनन्तर भगवती गंगा उस सर्प पर कुपित हो गयी । कुटिल चलने वाले सर्प ! तुम क्षुद्र जन्तु हो अजगर की योंनि पाओ । वासुकि ने कहा मैं पापी और खोटी नीति वाला हूँ माना-किन्तु शिव से सम्मानित मातः ! तुम मुझ पर अनुग्रह करो तुम त्रिलोकी को पवित्र करने वाली शुभ लक्षणों से युक्त पुण्य नदी हो । संसार के बन्धन को काटने वाली दुखियों के दुःख की विनाशक ईश्वरि ! स्वर्ग द्वार में स्थित मातः ! तुम मुझपर दया करो । तब गंगा ने कहा--तुम विन्ध्याचल में जाकर भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए बड़ा तप करो तदनन्तर तुम मेरी आज्ञानुसार अपने सर्व भाव रूप स्थान को पुनः पा जाओगे ॥५/८॥ श्री मार्कण्डेय ने कहा--तब वह वासुकी ने उत्तम पर्वत विन्ध्य में जाकर शंकर की आराधना में उद्यत होकर तप का प्रारम्भ किया । उसने नित्य ही तीन नेत्र वाले डमरू हाथ में लिए महादेव का ध्यान किया । सौ वर्ष पूर्ण होने पर जगद्गुरु भगवान शंकर उस पर प्रसन्न हो गये । उसके

समीप में आकर शंकर प्रिय सुन्दर वाणी बोले--वत्स ! सर्प ! तुम मेरी कृपा के योग्य हो यथेष्ठ वर माँग लो। वासुकि ने कहा--देव ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो देवेश ! तुम्हारी कृपा से मेरी निष्पापता हो और आप सब पापों के विनाशक कोई तीर्थ बताओ ॥९/१२॥ श्री शंकर ने कहा--बहुत बल वाले सर्प ! तुम कल्याण कारिणी नर्मदा पर जाओ उस नर्मदा के दक्षिण पुण्य तट पर विधिपूर्वक स्नान करो। ऐसा कहकर शंकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। वासुकि बहुत शीघ्रता से अजगर के रूप से ही नर्मदा के जल में प्रविष्ट हो गये। उसके मार्ग से गंगा का उत्तम प्रवाह उत्पन्न हो गया। तब वह सर्प नर्मदा के जल में निष्पाप हो गया। युधिष्ठिर ! वहाँ नर्मदा में श्री शंकर जी की स्थापना हुई तब से नागेश्वर नामक लिंग प्रसिद्ध हुआ ॥१३/१६॥ वहाँ अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में श्री भगवान शंकर को मधु में स्नान कराना चाहिए। मधु स्नान से मनुष्य शीघ्र निष्पाप हो जाता है इसमें संशय नहीं। पृथा नन्दन ! पुत्र रहित जो पुरुष यहाँ संगम में स्नान करते हैं वे पुरुष कार्तवीर्य के समान बलशाली गुणशील श्रेष्ठ पुत्रों को पाते हैं। वहाँ ही जो पुरुष उपवास करते हुए पितृ श्राद्ध करता है, राजकुमार ! श्राद्ध करते हुए ही पुरुष पितृगण को नरक से मुक्त कर देता है। उसके वंश में और बन्धु वर्ग में सर्पों का भय नहीं होता है। निर्दोष ! उसका कुल नागदेव की कृपा से प्रसन्न रहता है। राजश्रेष्ठ ! तुम पर स्नेह के कारण यह सब मैंने तुमसे कहा ॥१७/२०॥ निन्यानवेवां अध्याय सम्पूर्ण ॥९९॥

सौवाँ अध्याय

मार्कण्डेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमरोचनम्।
मार्कण्डेयमिति ख्यातं नर्मदा दक्षिणे तटे ॥

सवैया-- लीलामय शंकर ने लीला कीन्हीं नर्मदा तट, भार-भूतेश्वर तीर्थ नाम तब धरायो है
अपने सह पाठी सब बालकों पर कृपा करकें, गुरु के सहित निज धाम पहुँचायों है।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थिति 'मार्कण्डेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध परम सुन्दर तीर्थ की यात्रा करे यह सब तीर्थों में उत्तम देवों से वन्दनीय कल्याणकर है पुत्र ! यह तीर्थ परम गोपनीय है । मैंने इसके विषय में किसी से नहीं कहा । मैंने स्वर्ग की सीढ़ी के समान इस तीर्थ की पहले स्थापना की है । यहाँ ही मुझे भगवान शंकर की कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ जो पुरुष वहाँ ही जाकर जल के भीतर 'द्रुपदादिव' इस गायत्री का जप करता है पाण्डु नन्दन ! वह पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥१/४॥ वाणी, मन और कर्म से होने वाले सम्पूर्ण पाप समूह से वह छूट जाता है । शिव की पिण्डी आश्रम से लेकर दक्षिण दिशा की ओर स्थित होकर बत्तीस लक्षण सम्पन्न महापुरुष के बहुत रूप धरने वाले शूलधारी की भक्ति से साध्य करे । राजन् ! वह पुरुष शरीर का पतन होने पर शिव को प्राप्त होता है ऐसा मेरा निश्चय है भरत वंशोत्पन्न राजन् ! अष्टमी तिथि में रात्रि में घृत का दीपक जलाना चाहिए । वह पुरुष स्वर्ग लोक पाता है ऐसा शंकर जी ने कहा । राजकुमार । जो पुरुष वहीं भक्ति से श्राद्ध करता है उसके पितृगण प्रलय पर्यन्त तृप्त होते हैं । इंगुदी के फलों के गूदे से, बेरों से बेलों से, अक्षत और जल से भी वहाँ जो मनुष्य पितरों को तृप्त करता है वह पुरुष अपने जन्म का फल पा लेता है ॥५/९॥ सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१००॥

एक सौ एकवां अध्याय

संकर्षण तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थ परमशोभनम् ।
उत्तरे नर्मदाकुले यज्ञवाटस्य मध्यतः ॥

सवैया-- कलयुग में जो भार-भूतेश्वर स्नान करत, सभी पाप नष्ट होत पुण्य फल पायौ है ।
बैतरणी डूबे को ऐसे ही उबारे शिव, जैसे सब बालकन को सिर पर उठायौ है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--श्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य (यज्ञमार्ग) के मध्य

में श्री नर्मदा के उत्तर तट परम सुन्दर तीर्थ की यात्रा करे। पृथ्वी में वह 'संकर्षण' के नाम से प्रसिद्ध और पापों का नाशक है। राजन् ! पहले बलभद्र ने वहाँ बड़ा तप किया है। राजकुमार! वहाँ देवगण भी स्थित रहते हैं। पार्वती के साथ श्री शंकर और विष्णु भगवान भी वहाँ स्थित हैं। राजश्रेष्ठ। प्राणियों के कल्याण के लिए श्रीबलभद्र ने वहीं पाप नाशक श्री शंकर की बड़ी भक्ति से पूजा की जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, क्रोध तथा इन्द्रियों को जीतकर जो पुरुष शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि में शंकर को मधु स्नान कराता है। और वही जो पुरुष भक्ति से पितरों का श्राद्ध करता है वह पुरुष बलभद्र के वचनानुसार उत्तम स्थान को पाता है ॥१/६॥ एक सौ एकवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१०१॥

एक सौ दोवां अध्याय

मन्मथेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्व देवनमस्कृतम् ।
स्नानमात्रान्मरो राजन्यमलोकं न पश्यति ॥

सवैया-- दीक्षा लेकर शिव पहुँचे कैलाश पर्वत, जाके उमा को वृत्तांत सब सुनायौ है ।
कहा-भार ग्राम एक नर्मदा तट पै है, जहाँ विष्णु शर्मा को गुरु निज बनायौ है ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर मनुष्य सब देवों से पूजित मन्मथेश्वर की यात्रा करे। राजन् ! जहाँ मनुष्य स्नान मात्र से यमलोक का दर्शन नहीं करता पाण्डुपुत्र। सन्तान रहित जो स्त्री वहाँ स्नान करती है, पृथा नन्दन ! वह स्त्री सत्य प्रतिज्ञा दृढ़ व्रत पुत्र को पाती है। राजन् ! वहाँ मनुष्य स्नान कर शुद्ध और नियतमन वाला होकर एक रात्रि को उपवास करके एक सहस्त्र गौदान का फल पाता है। कामनाओं को पूर्ण करने वाला दूसरा और तीर्थराज नहीं होगा। राजन् ! जो मनुष्य वहाँ त्रिरात्रि व्रत करता है वह लाख गौओं के दान का फल पाता है ॥१/४॥ वहाँ व्रत करने से भगवान शंकर प्रसन्न होते हैं। रात्रि में गाने बजाने के मांगलिक शब्दों से जागरण द्वारा भी श्री

शंकर प्रसन्न होते हैं । मैंने 'मन्मथेश्वर' महादेव का दर्शन पाया है यम उसका क्रोधित होकर भी क्या कर सकते हैं, वे भी मंगलमय होकर उसका मंगल करते हैं । राजन् । कामदेव ने इन शंकर की स्थापना की है अतः वे सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं । पृथ्वी में 'मन्मथेश्वर' महादेव स्वर्ग मार्ग की सीढ़ी है ॥५/७॥ राजश्रेष्ठ भारत । विशेष रूप से यहाँ सन्ध्या के उपासन से, और श्राद्ध कर्म के निमित्त दान से और अन्न दान से उत्तम फल कहा गया है । भारत ! यह सब मैंने तुम्हारी भक्ति के कारण तुमसे कहा है । समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में 'श्रीमन्मथेश्वर' महादेव प्रसिद्ध है । पाण्डव श्रेष्ठ । मनुष्य यहाँ त्रयोदशी तिथि में गोदान करे कराये । राजश्रेष्ठ ! चैत्र मास के शुक्लपक्ष में वहाँ जाकर जितेन्द्रिय होकर महादेव के सम्मुख रात्रि में जागरण करके भक्ति पूर्वक घृत का दीपक देव के आगे निवेदन करे । निवेदन करने वाला चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष दोनों का फल समान माना गया है ॥८/१२॥ एक सौ दोवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१०२॥

एक सौ तीनवां अध्याय

एरण्डी संगम तीर्थ की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेन्महीपाल एरण्डीसंगम परम्
यच्छ्रुतं वै मया राजञ्छिवस्य वदतः पुरा ॥

सवैया-- सुनके भवानी बहुत मन में प्रसन्न भई, बाल चरित्र कीन्हों नाथ मेरे मन भायौ है ।
जो नर भार-भूतेश्वर में दर्शन स्नान करत, मेरो आशीष है वह परम धाम पायौ है ।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य उत्तम एरण्डी संगम की यात्रा करे । जिसके विषय में मैंने पहले कहते हुए श्री शंकर के मुख से सुना है । इसी प्रश्न को प्रथम माता पार्वती ने श्री शंकर से पूछा था । राजश्रेष्ठ । पार्वती के पूछने पर श्रीशंकर जी ने कल्याण करने वाली परम गोपनीय बात कही श्री शंकर ने कहा--देवि । तुम बहुत छिपी बात सुनो । मैंने आज तक किसी से इसे नहीं कहा । नर्मदा के परम पवित्र उत्तर तट

पर गर्भ हत्या के पाप को दूर करने वाला कामनाओं को पूर्ण करने वाला पुत्र वृद्धि करने वाला उत्तम तीर्थ है ।।१/३।। पार्वती ने पूछा--महादेव यह उत्तम तीर्थ गर्भ हत्या का विनाशक कामनाओं का पूरक और स्वर्ग देने वाला कैसे है तुम बताओ । श्रीशंकर ने कहा--महादेवि ! ब्रह्मा के मानस पुत्र नित्य ही अग्नि होत्र करने वाले देवताओं और अतिथियों के पूजक अत्रि नामक महर्षि थे । पर्वत नन्दिनि ! उन ब्राह्मण ने सात सोम संस्थायें (वैदिक सोम योग विशेष) सम्पन्न कीया । उन महात्मा अत्रि की पति में ही व्रतवाली, गुणशीला, पतिपरायणा, पति के कार्य तथा कल्याण में तत्पर 'अनुसुईया' नामक पत्नी थी इस प्रकार बहुत समय बीतने पर भी उनके कोई पुत्र-पुत्री नहीं थे । शिवे एक समय वे दोनों अपराह्न में अपने पहले हो चुके व्यवहारों को लेकर बात कर रहे सुख पूर्वक लेटे हुए थे ।।४/८।। वार्ता के प्रसंग में महर्षि अत्रि ने कहा--चन्द्र के समान प्रियदर्शन वाली कल्याणि प्रिये । सुन्दरि । सुन्दर सब अंगों की थकान हरने वाली । विद्या और विनय से युक्त कमल पत्रों के समान नेत्रों वाली । पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर आकार वाली । बडी कमर के भार के कारण मन्द गमन वाली । सुन्दरि ! सम्पूर्ण विश्व में तुम्हारे समान कोई स्त्री नहीं है ऐसी तुम मुझे प्राप्त हो । वेदवादी ब्राह्मण स्त्री को रमण सुख एवं पुत्र रूप फल वाली कहते । सुन्दरि ! पुत्रहीन पुरुष को जो सुख होता है वह सुख मेरे समान ही सब कर्मों में समर्थ मुझे पुत्र से नहीं है । कल्याणमयी सुन्दरि । उत्पन्न होने मात्र से पुत्र, महापापी होने के कारण नीचे गिर रहे मनुष्य को 'पूत' नामक नरक में रक्षा कर देता है ।।९/१२।। महाघोर नरक में किए गये हुए दूषित कर्म वाले पितामह आदि भी इस पुत्र से उद्धार पाते हैं । अच्छे पुत्र वैतरिणी में गये हुए भी पितामह आदि को उबार लेते हैं । मनुष्य पुत्र से लोकों को जीत लेता (वश में कर लेता) है । और पुत्र के पुत्र से भी उत्तम गति होती है । और पुत्र पौत्र से सदा सुख देने वाले ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । अतः इस लोक और

परलोक में पुत्र के समान कोई बन्धु नहीं है। दिन और रात्रि के मध्य में सदा चिंता में लगे हुए मेरे सारे अंग ग्रीष्म ऋतु में नदी के जल की भाँति सूख रहे हैं ॥१३/१६॥ अनसुईया ने कहा--ब्राह्मण देव जो तुम सोचते हो उस सबको मैं भी सोचती हूँ। जिससे तुम्हें व्याकुलता हैं वह मुझे भी चित्त में जलाता है। जिस कार्य से दीर्घायु वाले गुणी पुत्र हों उस कार्य का विचार करो जिससे प्रजापति ब्रह्मा प्रसन्न हों। महर्ष अत्रि ने कहा--भद्रे ! उत्पन्न होने के अनन्तर मैंने जन्म में कठिन तप किया। सुन्दरि। व्रत-उपवास और नियमों से शाकाहार से मैं दुर्बल शरीर वाला हूँ। बड़ी व्रत वाली। मैं अशक्त हूँ। उस कारण मैं शोक मग्न हो रहा हूँ। मैंने यह छिपी बात तुम्हें बतायी ॥१७/२०॥ अनसुईया ने कहा--पतिव्रता स्त्री पति के काम-सुख और पुत्र-सुख को बढ़ाने वाली धर्म अर्थ, काम के साधन में लगी हुई पत्नी विद्वानों में प्रशंसनीय मानी गयी है। पति की आज्ञा के बिना अर्थात् पति का अनादर कर जप, तप तीर्थ यात्रा शिव पूजा, मन्त्र साधना और गृहस्थ धर्म की उपेक्षा कर देवों की आराधना ये छः स्त्री शूद्रों के पतन के कारण हैं। (शूद्र भी ब्राह्मण की आज्ञा लेकर शास्त्रीय विधि से ही ये कार्य अनुष्ठित करे) अतः इनकी अपेक्षा स्त्री शूद्र को स्वधर्म पालन पर ही विशेष ध्यान देना चाहिए। स्वतन्त्र रूप से स्त्रियों के व्रत साधन में इसे सभी मुनि वेद वचनों की भाँति महादोष बताते हैं। अतः ब्रह्मन् ! तुम्हारी आज्ञा पाकर मैं पुत्र के उद्देश्य से कठिन तप करूँगी। श्रेष्ठ देवों को प्रसन्न करूँगी ॥१८/२४॥ महर्षि अत्रि ने कहा--बड़ी बुद्धि वाली मुझे सन्तोष देने वाली देवि ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! उत्तम स्वभाव वाली ! तुम्हें मैं आज्ञा देता हूँ तुम पुत्र के लिए तप का आश्रय लो। देव, मनुष्य और पितरों के ऋण से मुक्त होने में मनुष्य का स्त्री के समान कोई बान्धव तीनों लोकों में नहीं है। उत्तम स्त्री के समान कोई दूसरा सुख नहीं है इस की देवगण प्रशंसा करते हैं। सामने मुख की ओर देखने वाले आज्ञाकारी पुत्र और पिता के रूबरू हो जाने पर परांगमुख

रहने वाले अर्थात् सामना न करने वाले पुत्र योग्य पत्नी से ही मिलते हैं। उससे देव असुर मनुष्य सभी पत्नी की प्रशंसा करते हैं। बड़ा व्रत करने वाली बड़ी बुद्धि वाली ! सत्त्वगुण सम्पन्न शुभ नेत्रों वाली। देवि ! तुम शीघ्र ही मेरी आज्ञा से पुत्र के लिए उत्तम तप करो। इस वाक्य के अन्त में ही साष्टांग प्रणाम करती हुई अनसूया ने कहा-पूज्य ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम्हारी कृपा से मैं सब कामनाओं को पाऊँ। तदनन्तर हंस के समान विलास पूर्वक गमन वाली, मृग के समान नेत्रों वाली सुन्दरी वह अनसूया नियम से युक्त होकर श्री शंकर के स्वेद से उत्पन्न सब पापों की विनाशिका देवी नर्मदा नदी के तट जा पहुँची ।।२५/३१।। महर्षि अत्रि माहात्म्य कहते हुए उपदेश देते रहे। जिस नर्मदा के दर्शन मात्र से मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य अश्वमेघ का फल पा लेता है। महादेवि जो पुरुष श्रद्धा करते हुए स्वयं श्री नर्मदा का जल पीते हैं। वह सोमपान के समान ही पुण्य देने वाला होता है इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए। जो पुरुष सौ योजन की दूरी में स्थित होकर दिन और रात्रि में नर्मदा का स्मरण करते है वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, वे रुद्र लोक जाते हैं। हे सुन्दरि ! नर्मदा के समीप में दो योजन पर्यन्त नर्मदा का जल पान करने वाले और नर्मदा का स्मरण करने वाले मनुष्य फिर यम को नहीं देखते। हे सुमुखी ! उससे नर्मदा के उत्तर तटपर शुभ एरण्डी के संगम में विशाल नेत्रों वाली निर्जन में स्थित होकर शाकाहार से निर्वाह करती रही। मंगलमय स्तोत्र और व्रतों से विधि, हरि, हर तीनों देवों को प्रसन्न करती हुई नियम युक्त रही। हे महादेवि ! पार्वती ! तदन्तर ग्रीष्म--ऋतु में पञ्चाग्नि की साधना में वह तत्पर हुयी ।।३२/३७।। अनुसूया ने वर्षा के समय में गीले वस्त्र वाली होकर चान्द्रायण व्रत किया। हेमन्त ऋतु में सदा जल में वास किया। प्रातः स्नान कर सन्ध्योपासन कर्मकर पुनः देवऋषि पितृ तर्पण करती थी देव पूजन कर विधि पूर्वक हवन कर विष्णु भक्त जनों का पूजन करती थीं। स्नान, जप,

हवन आदि शुभ कर्म में ही तत्पर थीं । इस प्रकार सौ वर्ष पूर्ण होने पर शिव, विष्णु ब्रह्मा ये तीनों ही देव ब्राह्मण वेष से ऐरण्डी के संगम में अनुसूया के सामने उपस्थित हुए । प्रिये ! पार्वती वेदपाठ करते हुए वे ब्राह्मण अनुसूया के समक्ष उपस्थित हुए अनुसूया जप छोड़कर और बार-बार उन्हें देखकर उठकर खड़ी हो गई । विशाल नेत्रों वाली उन अनुसूया ने विधि पूर्वक उन्हें अर्घ्य देकर कहा--आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा तप भी सफल हुआ ब्राह्मणों के दर्शन से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है तदनन्तर परिक्रमा करके साष्टांग प्रणाम करती हुई अनुसूया ब्राह्मणों से बोली--शुद्ध अतः करण वाले मुनियों को कन्द मूल फल साफ और पवित्र अन्न को मैं अभी भोजन के लिए देती हूँ ।।३८/४४।। ब्राह्मणों ने कहा--उत्तम व्रत करने वाली देवि ! तुम्हारे विचित्र तथा वास्तविक तप से तथा हम सब तुम्हारे दर्शन करके सब मनोरथों से सन्तुष्ट हो चुके हैं, तुम्हारे इस तापस व्रत से बड़ा आश्चर्य हो गया है । तुम स्वर्ग मोक्ष और पुत्र के लिए कठिन तप कर रही हो । अनुसूया ने कहा--तप से स्वर्ग सिद्ध होता है, तप से ही उत्तम गति प्राप्त होती है । तप से ही धन और काम की प्राप्ति होती है । और तप से गुणवान पुत्र होता है । ब्राह्मणों मेरी बुद्धि से तप ही सब कामनाओं और फलों को देने वाला है ब्राह्मणों ने कहा--सूक्ष्म आकर्षक शरीर वाली उत्तम सौन्दर्य शालिनी बड़े नेत्रों वाली स्निग्ध अंग रूपवती हंसकी-सी विलास पूर्ण गति वाली तुम सब अंगों में सुन्दरता से सजी हो । तुम्हें तप से क्या प्रयोंजन है । और अपने विषय में क्यों शोक कर रही हो ।।४५/४९।। अनुसूया ने कहा--क्या तुम लोग रूपवाले शंकर, विष्णु और ब्रह्मा स्वयं हो ? उनका चिह्न मैं तुममें देख रही हूँ । अनसूया के वाक्य के समाप्त होने पर देवों ने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया । वे देव करोड़ों सूर्य के समान क्रान्ति वाले होकर अपने स्वरूप से दृष्टिगोचर हो गये । महादेवि ! भगवान विष्णु चार भुजों वाले शंख चक्र गदा धारण किये हुए अतसी के पुष्प के समान वाले पीताम्बर

धारी थे। उनका वाहन गरुड़ था। वह लक्ष्मी के साथ थे। प्रसन्न मुख शोभा वाली स्वयं अपने रूप में स्थित थे। हे पार्वती ! पीत वस्त्र धारी चार मुख कमल वाले हंस पर आरुढ़ हाथ में अक्ष माला लिए हुए लोक पितामह ब्रह्मा भी नर्मदा के तट पर प्रकट हुए। और जो सम्पूर्ण जगत् में व्यापक स्वयं साक्षात् महेश्वर है वह भी वृष पर चढ़े हुए दश हाथों वाले भस्म के अंग राग से शोभित; पाँच मुख वाले त्रिनेत्र जटाओं के मुकुट से युक्त अर्ध चन्द्र को मस्तक में भूषण रूप से धारण किये हुए इसी रूपका धारण करने वाले सर्व व्यापक महेश्वर वहाँ प्रकट हुए ॥५०/५७॥ तदनन्तर देवों का दर्शन पाकर काँपती हुयी साध्वी अनसूया देवों को बार-बार देखकर उनसे बोली अनसूया ने कहा--ब्रह्मा और रुद्र ये तीनों ही क्या कर्म करने वाले हैं तथा किस स्वरूप वाले हैं यह मैं सुनना चाहती हूँ। मुझे सम्पूर्ण रूप से बताये। श्री ब्रह्मा जी बोले--मैं ब्रह्मा वर्षा काल हूँ और जल भी मेरा रूप है। मैं मेघ रूप वाला कहा गया हूँ। मैं ही पृथ्वी में जल बरसाता हूँ सन्ध्या के पूर्व भाग में सूर्य के उदय होने पर मैं ही सब बीज के रूप में उपस्थित होता हूँ। यह सब गोपनीय कारण मैंने तुम्हें बताया ॥५८/६१॥ श्री विष्णु ने कहा--हेमन्त ऋतु विष्णु रूप है और चराचर विश्व भी उसी का रूप है। रक्षा के लिए यह सम्पूर्ण जगत ही विष्णु की सर्व श्रेष्ठ महिमा है। श्री रुद्र ने कहा--सब जीवों का क्षय करने वाला ग्रीष्म ऋतु मुझे ही कहते हैं। उत्तम तप वाली देवि ! मैं ही रुद्र रूप होकर सम्पूर्ण जगत को खींचता हूँ। उत्तम व्रतवाली देवि ! इसी प्रकार ब्रह्मा-रुद्र और विष्णु ये तीनों देव ही तीन सन्ध्या रूप तीन काल रूप तीन अग्नि रूप है उसी प्रकार हे भद्रे ! ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र तीनों एकात्मकता को भी प्राप्त है। जो तुमको मन से इष्ट है तुम्हें वे उत्तम वर को देगे ॥६२/६४॥ अनसूया ने कहा--मैं संसार में धन्य और पुण्यशालिनी हूँ मैं सदा ही प्रशंसनीय और वन्दनीय हूँ। क्योंकि मुझ पर ब्रह्मा-विष्णु और शंकर प्रसन्न है। यदि मुझपर तीनों देव प्रसन्न हैं तो दयाकर

वे सदा ही इस तीर्थ में अपने सान्निध्य से वर देने वाले हैं। श्रीरुद्र ने कहा-कल्याणशीले ! जो तुमने चाहा है तुम्हारा बचन ऐसा ही हो। एरण्डी नाम से प्रसिद्ध प्रत्यक्ष वैष्णवी माया यहाँ स्थित है। जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य के पापों का समूह नष्ट हो जाता है। चैत्र मास में मनुष्य दिन-रात्रि में उपवास करे एरण्डी के संगम में स्नान कर मनुष्य ब्रह्म हत्या को दूर करता है। वहाँ रात्रि में जागरण करे प्रातः ब्राह्मणों को भोजन कराये। शास्त्रों को विधान से विधि पूर्वक पिण्ड दान करे। पुनः परिक्रमा कर सोना-वस्त्र-चाँदी-गाय और भूमि आदि का दान करे। वहाँ किया गया दान सवा करोड़ गुना कहा गया है ऐसा स्वयंभु मनु ने कहा है ।।६६/७२।। देवि ! जो मनुष्य एरण्डी नदी के पवित्र संगम में मृत्यु पाते हैं। वे मनुष्य हजार युग पर्यन्त रुद्रलोक में निवास करते हैं। इस तीर्थ में दिन-रात्रि निवासकर वैदिक ग्यारह नाम वाले अथवा एक रुद्र वाले वैदिक रुद्र मन्त्रों से जो जप करता है वह उत्तम गति पाता है। विद्यार्थी विद्या पाता है, धन का चाहने वाला धन, पुत्र का चाहने वाला पुत्र, मनुष्य इष्ट मनोरथों को पा जाता है। एरण्डी और नर्मदा के संगम के निर्मल जल में स्नान कर मनुष्य महापापी होकर भी उत्तम गति पाते हैं ।।७३/७९।। अनसुईया ने कहा--मेरी भक्ति से सन्तुष्ट यदि, तीनों देव हैं तो वे मेरी भक्ति से वशवर्ती होकर वे ब्रह्मा-विष्णु-महेश मेरे पुत्र हों। विष्णु ने कहा-पूज्य देव भी पुत्र भाव को प्राप्त होते हों यह मैंने कभी नहीं सुना। कल्याणी तुम्हें मैं देव-तुल्य पराक्रम वाले रूप वाले गुणशाली यज्ञ करने वाले बहुश्रुत शास्त्र-श्रवण वाले पुत्र देता हैं। अनसूया ने कहा--हरे ! भक्तो के दुःखों को हरने वाले देव। जो मुझे इष्ट है और जिसकी मैंने प्रार्थना की है वही देना चाहिए। मेरी जैसी पुत्र कामना है उससे विपरीत करना उचित नहीं। विष्णु ने कहा-पहले भृगु महर्षि के सम्वाद् वश उनकी वाणी का आदर कर मैंने गर्भवास किया है। शोभने ! प्राचीन वृत्तान्त का स्मरण करते हुए मैं पुनः पुनः उसका चिन्तन करता हूँ। यह विचारकर ब्रह्मा-विष्णु

शंकर ये हम सब तुम्हारे अयोंनिज पुत्र होंगे । सुन्दर मुखवाली परम बुद्धिशालिनी देवता योंनि वास में गमन नहीं करते ।।७७/८२।। देवि ! संगम में सान्निध्य में तुम लोगों को वर देने वाली एरण्डी वैष्णवी माया के रूप में प्रत्यक्ष होओगी । कुन्ती नन्दन ! नर्मदा के उत्तर तट पर तीनों देव स्थित हैं । वर को पाये हुए वह देवी अनसुईया महेन्द्र पर्वत पर पहुँची । कृश अंगों वाले श्वेत गौर पूर्ण शरीर वाली रूखे केशों वाली कुछ कठोर सी यज्ञ सूत्र को पहने हुयी तपस्या में स्थित शुभ नेत्रों वाली वह अनसुईया महेन्द्र पर्वत पर गयी । वहाँ शिलात के नीचे में बैठे हुए उन महायशस्वी महर्षि प्रिय अत्रि को उसने देखा । हे पार्वती ! महर्षि अत्रि भी उन्हें देखकर प्रसन्न हो गये । देव 'तुम उठो उठो' ऐसा उन अनसुईया ने अपने पति से कहा ।।८३/८६।। महर्षि अत्रि ने कहा--बड़ी बुद्धिमती महाव्रत-धारिणी अनसुईये ! 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'--गालव आदि के द्वारा भी अचिन्त्यनीय दुलभ वर को तुम प्राप्त कर चुकी हो ।।८७।। अनसूया ने कहा--देवर्षे ! तुम्हारी कृपा से मैं दुर्लभ वर को पा चुकी हूँ । उससे देवगण सिद्ध और शुद्धान्तःकरण ऋषि लोग मेरी प्रशंसा करते हैं । ऐसा कह उस देवी ने बड़े हर्ष से युक्त होकर अपने प्रियपति को देखा उसमें भी वह शुभ दर्शन वाली हुई है । दर्शन मात्र से ही उनके भाल स्थल में किरण समूह में घिरा हुआ न[illegible] हजार योंजन से परिमित शुभ मण्डल कदम्ब गोलक के समान आकार वाला तीन गुना परिमाण युक्त था । देवेशि ! उसके मध्य में दिव्यरूप धारी सुवर्ण के समान वर्णमाला अमृतमय करोड़ सूर्य के समान कान्तिवाला पुरुष ही साक्षात् स्वयं ब्रह्मा प्रथम पुत्र के रूप में सोम रूप चन्द्रमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।८८/९३।। राजकुमार यह सोमरूपी चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं से इच्छा पूर्त इष्ट यज्ञ हवनादि कर्म वापी कूप तड़ागादि कर्म का पालन करता है । सुन्दर मुखवाली देवि ! महेश्वरि ! इसकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी आदि कलायें और सदा रहने वाली सोलहवीं कला है । सुन्दरि ! यह चन्द्रमा,

अण्डजपिण्डज-सर्प--पक्षी आदि, स्वेदज-कृमि-दंश आदि उद्भिज्ज वृक्ष-गुल्म आदि पृथिवी को फाड़कर ऊपर आने वाले तथा जरायुज मनुष्य आदि चार प्रकार वाले चराचरात्मक त्रिभुवन सहित सम्पूर्ण जगत् को सूक्ष्म रूप वाला होकर तृप्त करता है ।।९४/९५।। चन्द्रमा ही अपनी किरणों से सब औषधियों में रस पोषण करता है । अतः वह ही सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करने वाला है । सभी चन्द्रमा में स्थित हुए-हवन की गयी, दत्त दी गयी वस्तु का उपभोग करते हैं । वरानने ! जब चन्द्रमा वनस्पति का पति होता है । चन्द्रमा जब कलारहित होकर एक कला विशिष्ट होता है तब वह वनस्पति सोमलता गत होता है, वह समय अमावास्या है । अतः अमावस्या में वृक्षों का छेदन आदि निषिद्ध है । सोमलता पूर्णिमा को पूर्णवाली हो जाती है कृष्णपक्ष में क्रमशः वर्णहीन होकर अमावास्या में सर्वथा पत्र रहित वह हो जाती है । अतः चन्द्रमा की समस्त कलाएँ क्षीण होती हैं । इससे वह सोमलता मात्र में आविष्ट रूप अर्थात् क्षीण-कला वाला रहता है यह लता वनस्पतियों में प्रधान भी मानी जाती है । यज्ञीय रसादि उसी से सम्पन्न होता है । बिना पुष्प-फल वाले वृक्षों को वनस्पति कहते हैं और पुष्प-फल वाले वृक्षों को वानस्पत्य कहते हैं । कुछ आचार्य दोनों को ही पर्यायवाची मानते हैं । ऐसे कुछ उदाहरण भी मिलते हैं । तब धनवान होकर भी अमावास्या के दिन दूसरे के घर में खाने वाला अज्ञानी मनुष्य थोड़े समय में ही एक वर्ष के शुभ कर्म को नष्ट कर देता है । परमेश्वरि ! चन्द्र किरणों से आप्यादित पुष्प-फल सम्पन्न वृक्षों को काटने वाले मनुष्य उस पाप से यमलोक गामी होते हैं ।।९६/९७।। चन्द्रमा जब वनस्पति गामी होता है अर्थात् अमावास्या तिथि में स्थित होता है जो पुरुष उस दिन स्त्री संग करता है उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है इसमें सन्देह नहीं । अमावास्या में जो हल चलाता है मन्थन दण्ड चलाता है उसकी गौएँ पहले पीछे की नष्ट हो जाती है । तथा अमावास्या में जो पुरुष मार्ग गमन करता है उसके पितृगण उस मास

भर धूलि-भोजन वाले होते हैं ॥९८/१००॥ महादेवि ! जो पुरुष अमावास्या में श्राद्ध कर्म करता है बड़े नेत्रों वाली देवि ! एक वर्ष पर्यन्त उसके पितर निश्चय ही तृप्त होते हैं । उस तिथि में जो पुरुष सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र आदि वस्तुएँ उत्तम ब्राह्मणों को देता है देवि ! वह सब मनुष्य निःसन्देह लाख गुना पाता है ॥१०१/१०२॥ ऐसे गुणों से सम्पन्न सोमरूप प्रजापति अनसूया के आनन्द-वर्धक प्रथम पुत्र उत्पन्न हुए । महादेवि ! और दूसरे पुत्र दुर्वासा नामक सृष्टि संहार के कर्ता स्वयं साक्षात् भगवान शंकर ही हुए । देवि ! वह ऋषियों के मध्य में कठोर तपकर रहे हैं । वह प्रलयावस्था में रुद्र भाव को प्राप्त हो जाते हैं । हे वरानने ! उन दुर्वासा ने इन्द्र को भी शाप दिया है दुर्वासा के रूप से दूसरे पुत्र की भी उत्पत्ति मैंने तुमसे कही ॥१०३/१०६॥ तीसरे पुत्र दत्तात्रेय के रूप से भगवान विष्णु ही जो जगत में व्यापक सबके स्वामी साक्षात् जनार्दन है प्रकट हुए । महेश्वर ! ये तीनों देव अनसूइया के तीन पुत्र हुए । वरदान के कारण से वे देव पृथिवी से अवतीर्ण हुए । नर्मदा के तट पर पार्थ ! पुत्र की प्राप्ति कराने वाला यह तीर्थ अनसूया के द्वारा स्थापित हुआ है । सब पापों का अत्यन्त क्षय करने वाला है । श्री मार्कण्डेय ने कहा-इस लोक में नर्मदा के विषय में एक और प्राचीन कथानक आश्चर्य में डालने वाला है, राजन् ! ब्राह्मण भ्रूणगर्भ हत्या नष्ट हो गयी ॥१०७/११०॥ युधिष्ठिर ने कहा--निष्पाप ! ब्राह्मण श्रेष्ठ ! दुःख से पीड़ित ब्राह्मण का संसार में सब पापों को हरने वाला वह इतिहास मुझसे कहो । मार्कण्डेय बोले--शिवजी ने कहा हे महा देवि ! सुवणसिलक नामक ग्राम में गौतम वंशी स्त्री पुत्र से युक्त उत्तम कुलीन गोविन्द नामक किसान रहता था । वह परिवार के साथ सदा ही कृषि कर्म में लगा रहता था । एक समय वह लकड़ियों से गाड़ी भरकर घर आया । भूख से पीड़ित होने से उसने अकेले ही लकड़ियों को शीघ्रता से फेंका । घुटनों के बल चलता हुआ उसका बालक पिता के शब्द से वहाँ आया । पर गोविन्द ने शीघ्रतावश उसे नहीं देखा । उस बेचारे

को लकड़ियों में ढक दिया । राजन् ! प्यास से व्याकुल शीघ्र ही घर के भीतर गया और रस्सी बँधे बैलों से युक्त गाड़ीं को द्वार में ही छोड़ दिया ।।११११/११६।। उसकी पत्नी उसकी चित्तवृत्ति से परिचित तथा वस में रहने वाली थी । पुत्र को गिरा हुआ लकड़ियों से फटे हुए मस्तक वाला देखकर भी दीनता पूर्वक कुछ न कहती हुई बच्चे को चुपचाप डोली में रख दिया राजन् ! फिर वह पतिव्रता अपने प्रिय पति की सेवा में लग गयी । तदनन्तर स्नान आदि कर भोजन, शयन आदि की व्यवस्था की । पति की व्यवस्था पूर्ण होने पर वह धीरे-धीरे पुत्र को उठाने लगी । जब पुत्र नहीं उठा तो उसने समझा पुत्र का प्राणान्त हो गया है । तब वह दीनमुखी रोने लगी और मूर्च्छित भी हो गयी ।।११७/१२०।। उस रोने के शब्द को सुनकर गोविन्द व्याकुल मन हो गया । यह क्या है ऐसा कहकर वह भी पृथिवी में गिर गया । राजन् ! वे दोनों ही खुले केश वाले होकर भूमि में गिर पड़े । बड़े जोर से श्वास लेते हुए विलाप करने लगे । अब मैं आँगन में खेलते हुए चञ्चल किस पुत्र को देखूँगा । पुत्र ! तुम्हारे कारण से विदीर्ण हृदय को कैसे शान्त करूँगा । तुम्हारे जन्म-पर्यन्त कीर्ति और अक्षय कुल परम्परा को देखकर क्या अब मैं यहाँ से ऋण रहित होकर परम गति को पाऊँगा ।।१२१/१२४।। प्रिय पुत्र ! मुझ दीन बूढ़े की तुम गति हो । तुमको लेकर सोचे गये सभी मेरे मनोरंथ निष्फल हो गये । प्रिय पुत्र ! इस व्याकुल दीन पुत्र और बान्धवों से रहित 'रो रही' पृथ्वी में लोटती अपनी माता की रक्षा करो । 'पुम्' नामक नरक से पिता की सुत रक्षा करता है । अतः वह ब्रह्मा के द्वारा पुत्र कहा गया है । पुत्र रहित पुरुष का घर सूना है । बिना बान्धव के दिशाएँ शून्य हैं ।।१२४/१२८।। लोग यह झूठ कहते हैं कि चन्दन सबसे शीतल होता है । पिता की दाढ़ी पकड़कर खेल रहे धूलि से सने शरीर वाले अपनी गोद में बैठे हुए पुत्र से रहित पुरुष से बड़ा भाग किसका है । नग्न वेष लज्जा से रहित जटाधारी धूलियों से मलिन साक्षात शिव के समान

पुत्र को पुण्य से रहित पुरुष नहीं देखते । संसार में वीणा नामक बाजे का स्वर पड़ा सुरीला सुना जाता है पर बालक के रोने का शब्द उससे भी अधिक आनन्द दायक है ।।१२९/१३२।। समझदार लोग मृग पक्षियों में कौओं में पशु योंनियों में उन सभी में पुत्र को प्रिय कहते हैं । मछलिया, घोड़े, कछुवे, ग्राह आदि भी पुत्र की उत्पत्ति में प्रसन्न होते हैं । और पुत्र के मरण में दुःख का अनुभव करते हैं । देवता गन्धर्व और यक्ष भी पुत्र के जन्म में हर्षित होते हैं और पुत्र के मर जाने पर वे भी शोक करते हैं । प्रिय पुत्र ! मैं मन्द भाग्यवाला हूँ । राजन् ! राजा दशरथ ने पुत्र के लिए ऋषि समुदाय एकत्रित किया था । इन्द्र के स्थान में स्थिर होकर इसलिए ही उनकेआसन का प्रोक्षण किया था । पाण्डव । स्वर्ग का सुख कोई पुत्र से पृथक नहीं है । इसी कारण राजा दशरथ ने पुत्र की प्राप्ति के लिए ही उत्तम यज्ञ किया था । उस यज्ञ के प्रभाव से ही उनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न पुत्र उत्पन्न हुए । अपरिमित तेज वाले जिन परशुराम ने कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन को पराजित किया था ।।१३३/१३८।। वह परशुराम आठ वर्ष वाले श्रीराम से पराजित हुए । अकेले श्रीराम ने शत्रुओं से पराजित न होने वाले वानर वाली को मारा । ब्रह्मा का प्रपौत्र रावण जिससे त्रिलोकी काँपती थी वह सुपुत्र बन्धु बान्धवों सहित श्रीराम के द्वारा मारा गया । इस प्रकार पुत्र के बिना मनुष्य लोक में कोई सुख नहीं है । जिसका स्त्री संग वंश के लिए है जिसकी वाणी धर्म साध्य स्वर्ग के लिए है जिसका शुद्ध अन्न ब्राह्मण के लिए हैं वे निश्चय ही स्वर्ग में वास पाते हैं । यह समझ लीजिए कि जैसे ब्राह्मण हत्या से बढ़कर कोई पाप और अश्वमेघ यज्ञ से बढ़कर पुण्य नहीं है ।।१३९/१४२।। वैसे ही पुत्र की उत्पत्ति और विपत्ति से बड़ा कोई सुख या दुःख भी नहीं । मैं अब क्या कहूं । बेटा या पुत्र के बिना सुख नहीं । इस प्रकार वह गोविन्द बार-बार बहुत प्रकार से दुःख मय विलाप करता हुआ लोगों के बहुत आश्वासन देने पर ब्राह्मण बालक को लेकर बाहर चला गया । वहाँ विधि

से जाने गये कर्म से उस बालक का अन्तिम संस्कार करके दुःख से व्याकुल हुआ घर आकर दोनों रोते रहे। युधिष्ठिर जब रात्रि हो गयी तो गोविन्द पुत्र शोक से पीड़ित होकर भूमि में सो गया। उस समय दुःख से पीड़ित पति को पत्नी ने देखा तो उसको कीड़ों की राशि में पड़ा पाया ।।१४३/१४७।। वह उस पति को इस प्रकार पाप युक्त देखकर बड़े दुःख में डूब गयी। तब इस प्रकार दुःख में मग्न उसे सारी रात बीत गयी। पशुओं का चरवाहा घर से भैंसों को छोड़कर वन गया। जंगल में सब भैंसों को छोड़कर वह फिर घर आ गया। उसने ब्राह्मण गोविन्द से कहा स्वामिन्! जब तक मैं भोजन करता हूँ तब तक तुम भैंसों की जाकर रखवाली करना ।।१४८/१५०।। तब वह ब्राह्मण शीघ्र ही भैंसों की रखवाली को पहुँचा। वहाँ उसने भैंसों को नहीं देखा। पीछे वह ब्राह्मण खेत के सामने दौड़ता हुआ एरण्डी नर्मदा के संगम पर पहुँचा। पश्चात् वह नर्मदा और एरण्डी के संगम के जल में प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने बड़ी प्यास के कारण शीघ्रता से उसके जल को पिया। फिर बिना इच्छा से ही कुछ जल पीकर नेत्रों को जल से शुद्ध कर सायं अपने घर लौटा। भोजन करके दुःखी होकर रात्रि में गोविन्द ने फिर शयन किया। शोक और भ्रम से खिन्न होकर वह निद्रित हो गया ।।१५१/१५४।। युधिष्ठिर! फिर आधी रात में उसकी स्त्री ने अपने पति के शरीर को कीड़ों रहित देखा। फिर वह आश्चर्य से युक्त गुणवती भय से भरे हुए चित्तवाली उसकी पत्नी ने उस ब्राह्मण से उस पाप के विषय में निवेदन किया। पत्नी ने कहा--बीते हुए पाँचवें दिन तुम जब लकड़ियाँ फेंक रहे थे तब घर के पीछे से आया पुत्र तुम्हारे द्वारा अज्ञान से मारा गया। वह घोर पाप जो छिपा था मैंने तुमसे बताया नहीं। उस छिपे पाप से दिन रात मैं जल रही हूँ ।।१५५/१५८।। मैं न तो तुम्हारे शरीर को सुख पूर्वक देख रही हूँ और न अपने शरीर को नींद और तुम्हारे साथ के भोग शान्त हो चुके हैं। मनु शास्त्र में महर्षियों के द्वारा यह श्लोक सुना

जाता है--उसे बार-बार स्मरण कर मेरा दुःख शान्त नहीं होता । कहने से धर्म नष्ट हो जाता है, पर छिपाने से धर्म की वृद्धि होती है । लोक-परलोक में यह नियम है । इसी प्रकार पाप भी सबसे कहने पर नष्ट होता है पर छिपाने से बढ़ता है । रात्रि में विचार करती हुई मैं भय से व्याकुल होकर स्थित हुई । कीड़ों के बीच में पड़े हुए तुम्हें मैं किससे कहूँ ।।१५९/१६२।। आज फिर बालक की हत्या से उत्पन्न कीड़ों से व्याप्त तुमको मैंने देखा । वे कहीं तुम्हारे शरीर को काट रहे हैं और कहीं वे प्रायः नष्ट हो गये हैं । यह बारम्बार स्मरण कर विचार करती हूँ । समझ में नहीं आता कि क्या कारण है । अतः तुमसे पूछ रही हूं मुझसे तुम कहो । तालाब अथवा कोई नदी तीर्थ व कोई देव पूजन आदि जहाँ भी तुम गये हो उसका ही यह प्रभाव है दूसरे का नहीं ऐसा मेरा मत है राज श्रेष्ठ ! भरत वंशोत्पन्न ! ऐसा कहे जाने पर उसे ब्राह्मण ने शंकित होते हुए दिन का सम्पूर्ण वृतान्त स्त्री से कहा । आज मैं भैंसो के साथ एरण्डी संगम पर गया वहाँ मैंने नाभिमात्र जल में जाकर बहुत जल पिया हूँ ।।१६३/१६७।। और मैं कोई दूसरा तीर्थ नदी अथवा तालाब नहीं जानता । सुन्दरी ! मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ । ऐसा सब समझ कर वह सुन्दरी उपवास में लग गयी । कुछ समय के अनन्तर उस संगम में वह ब्राह्मण पत्नी के साथ गया वहाँ सुन्दर पवित्र जल में स्नान कर भगवान सूर्य को प्रणाम कर पार्वती के साथ देवों के स्वामी भगवान शंकर को स्नान कराया ।।१६८/१७०।। पञ्चगव्य, गन्ध, चन्दन, माला आदि से धूप और अच्छे नैवेद्यों से वेदत्रयी स्वरूप लिंग की और मंगलमयी देवी कात्यायनी की पूजाकर पति के साथ पतिव्रता ने रात्रि में जागरण किया । भारत ! तदनन्तर निर्मल प्रातः काल में यत्न से गोविन्द ने गोदान, सुवर्णदान, वस्त्र, अन्नदान से अपनी शक्ति से श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा की । राजन् ! वह ब्राह्मण पाप रहित होकर अपनी पत्नी के साथ घर लौटा । इस प्रकार जो पुरुष भक्ति से यह उत्तम गोविन्द का आख्यान सुनता है या पढ़ाता है

या पढ़ता है उसका गर्भ हत्या, बालहत्या, जनित पाप नष्ट हो जाता है ।।१७०/१७५।। वह प्रलय पर्यन्त शिवलोक में क्रीड़ा करता है । श्रेष्ट राजन् जो पुरुष आश्विन मास और चैत्र में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में उपवास करते हुए जितेन्द्रिय होकर सात्त्विक भावना रखकर शिव मन्दिर में निवास करता है, हाथ में त्रिशूल लिए हुए, तीन नेत्र वाले श्री शंकर का ध्यान करते हुए कंस के मारने वाले शंख, चक्र, गदाधारी पक्षी राज गरुड़ पर चढ़े हुए त्रिलोकी को वर देने वाले श्री विष्णु के हंस पर बैठे हुए चार मुख वाले सबको सृष्टि करने वाले हाथ में कमल लिए श्री ब्रह्मा का ध्यान करता है एवं जो पुरुष उस उत्तम तीर्थ पर रात्रि में निवास करता है ।।१७६/१८०।। तदनन्तर राजन् ! निर्मल प्रातः काल में अष्टमी तिथि में सब दोषों से रहित ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन करे । सब अवयवों से पूर्ण सब शास्त्रों में निपुण नित्य ही वेदाभ्यास में तत्पर अपनी स्त्री में ही प्रेम रखने वाले श्राद्ध-दान और व्रत में योग्य उन ब्राह्मणों का बड़े प्रेम से पूजन करे । पाण्डु नन्दन ! वहाँ पितृ-पूजन देव-पूजन से प्रारम्भ करे । एरण्डी नदी के संगम में पिण्ड दान और तर्पण से शीघ्र ही प्रेत भाव से मुक्त हो जाता है । और वहाँ मनुष्य को निरन्तर अन्न प्रधान दान देना चाहिए ।।१८२/१८४।। सुवर्ण भूमि और कन्या दान करना चाहिए । कुन्ती नन्दन ! हल के साथ शुभ लक्षणों वाले बोझ ढोने में समर्थ पुष्ट बैल देने चाहिए । द्रोण की संख्या से परिमित धान्य देना-चाहिए । भूषणों से भूषित बछड़े सहित दुधारू श्वेत वर्णवाली नौजवान अथवा लाल रंगवाली कृष्णा कपिला गाय काँसे की दोहनी से युक्त सुवर्ण अथवा चाँदी के खुरों से युक्त सोने के सींगवाली सवत्सा गाय उत्तम ब्राह्मण को देनी चाहिए ।।१८५/१८७।। जगत् के स्वामी शिव-विष्णु और ब्रह्मा मुझ पर प्रसन्न हो । संसार की रक्षा करने वाली गोमाता मेरा उद्धार करे । कुन्तीनन्दन ! राजन् ! जो स्त्रियाँ पुत्रार्थ एरण्डी संगम में चारों वेदों के रुद्र सूक्तों से स्नान कराई जाती है । वहाँ चार ब्राह्मणों

से उत्तम और योग्य दो ब्राह्मणों से भी स्नान कराना चाहिए । एक जल के घड़े से दोनों का अभिषेक करना चाहिए ।।१८८/१९०।। ज्योंतिविंद एक ब्राह्मण से अथवा सामवेद के गायन करने वाले से ही स्नान क्रिया करानी चाहिए । उस घोड़े को पञ्चरत्न से युक्त करे । सुगन्धित जल से युक्त सब औषधियों से मिश्रित आम्रपल्लव से शोभित अथवा पीपल पल्लव से युक्त श्वेत सूत से लपेटे गये सफेद चुन्दन से भूषित सिद्ध पुष्पों से आवृत बीच में सरसों वाले घट को पुत्र को चाहने वाला उत्तम विद्वान आचार्यवान द्वारा काँसे पात्र में स्थापित कर अंग में लगे उन सब वस्त्रों को कटक और आभूषणादि सब मण्डल में त्यागने योग्य हैं फिर अपनी सिद्धि के लिए श्री सूर्यनारायण एवं शंकर स्वरूप आचार्य को प्रणाम कर देवी के उत्तम भवन में मधुर भोजन करे ।।१९१/१९५।। ब्राह्मण को उत्तम फलों का दान, छाता ताम्बूल जूते गाड़ी आदि का दान करे । ऐसा करने वाला मनुष्य दुःख से रहित होता है । वह प्रलय पर्यन्त सूर्यलोक में क्रीड़ा करता है । वहाँ किया दान करोड़ गुना हो जाता है । जिस प्रकार सभी नद समुद्र ने प्रविष्ट हो जाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य के पाप एरण्डी के संगम में नष्ट हो जाते हैं । वाण छोड़ने पर जितनी दूर जाकर वह गिरे उतने दूर की समग्र भूमि तीर्थ क्षेत्र मानी जाती । राजन् एरण्डी संगम में भ्रूण हत्या वा बाल हत्या के समान पाप सब नष्ट हो जाते हैं ऐसा श्री शंकर जी नें कहा । जो पुरुष भक्ति से अग्नि में प्राणों का त्याग करता है ।।१६९/२००।। राजश्रेष्ठ ! उस तीर्थ में अनशन व्रत से अथवा जल में प्राणों का त्याग करता है, अग्नि में त्यागने से पाँच हजार वर्ष तथा जल में त्यागने से तीन हजार वर्ष और अनशन व्रत द्वारा प्राण त्यागने साठ हजार वर्ष तक उत्तम लोकों में सुखद भोग भोगते हैं । कौए; बगुले कबूतर, उल्लू और पशु भी संगम के जल का स्पर्श पाकर उत्तम गति को पा जाते हैं । वृक्ष भी उस उत्तम गति को पा लेते हैं जो योंगिजन ब्रह्म पद के तत्व ज्ञान से जो गति पाते हैं जिन्हों एरण्डी का दर्शन किया

है मन्मथेश्वर महादेव का दर्शन पाया है उनका क्रोधित होकर यमराज भी क्या कर सकते हैं ? यमराज भी सौम्य होकर उनका कल्याण करते हैं। और जो पुरुष संगम से निकली मिट्टी को नित्य ही शरीर में लगाते हैं उनके गर्भ हत्या बाल हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥२०१/२०५॥ राजन् ! एरण्डी नर्मदा के संगम में लोटता हुआ मनुष्य सब पापों से छूट कर शोक और दुःख रहित पद को पाता है। आश्रम में रहते हुए जो मनुष्य एरण्डी नर्मदा संगम का कथन करते हैं वे पापों से छूट जाते हैं। ऐसा शंकर का यथार्थ भाषण है। एरण्डी वृक्षों के अग्र भागों को देख लेने पर मनुष्य अपने सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इस पुण्य तीर्थ के वर्णन को पढ़ते हैं या भक्ति से सुनते हैं वे भी पापों से मुक्त हो जाते हैं। राजन् ! यह सब एरण्डी संगम का माहात्म्य मैंने कहा अब आगे में सब पापों का विनाशक अन्य तीर्थ का वर्णन करूँगा ध्यान से सुनो ॥२०६/२१०॥ एक सौ तीनवां अध्याय पूरा हुआ ॥१०३॥

एक सौ चारवां अध्याय

पुन्खिल तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- तस्यैवानन्तरं तात ! पुङ्खिलं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थे पुरी पुङ खः पार्थसिद्धिमुपावातः ॥

सवैया--सृष्टिमें एक ही स्थान है नर्मदा तट, आदि देव शंकर बालक वन के जहाँ खेले हैं।
बालपन बितायों और सद्गुरु से दीक्षा पाई, भार-भूत नाम से अनेक कष्ट झेले हैं ॥

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--प्रिय युधिष्ठिर ! उसके समीप ही पुंखिल नामक उत्तम तीर्थ है कुन्ती नन्दन ! उस तीर्थ में पहले "पुह्य" सिद्धि को प्राप्त हो गये। बड़े तेजस्वी क्षत्रियों के विनाशक समर्थ जमदग्नि नन्दन श्री परसुरामजी ने नर्मदा के उत्तर तट पर स्थित होकर बहुत उग्र तप किया था ॥१/२॥ राजन् ! तबसे यह पुंख तीर्थ प्रसिद्ध हुआ उस तीर्थ में जो पुरुष स्नान कर भगवान शंकर की आराधना करता है वह पुरुष इस लोक में

धन बल से सम्पन्न होकर पर लोक में मोक्ष को पाता है। वह वहाँ पितृगणों का पूजन करके पितरों के ऋण से रहित हो जाता है। उस तीर्थ में पुरुष अपने प्राणों का त्याग करता है निश्चय ही उसकी रुद्रलोक में निवृत्ति रहित गति होती है ।।३/५।। मनुष्य उस तीर्थ में स्नान कर अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है। राजन् ! जो पुरुष उस तीर्थ में ब्राह्मणों को भोजन कराता है वहाँ एक ब्राह्मण के भोजन कराने पर करोड़ ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल होता है। उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य श्री शंकर का विधि पूर्वक पूजन करता है वह पुरुष निश्चय ही वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ।।६/८।। एक सौ चारवां अध्याय पूरा हुआ ।।१०४।।

एक सौ पाँचवां अध्याय

मुण्डि तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- आश्चर्य भूतं लोकस्तं देवदेवेन यत्कृतम् ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि नर्मदातटवासिनाम् ।।

सवैया-- निज गुरु की आज्ञा मर्यादा निभाई शिव, जगत के गुरु हैं विष्णु शर्मा के चेले हैं।
ऐसो पुण्य ठोर हैं शिव शंकर को मन भावन, तासों भार-भूतेश्वर में साधुन के मेले हैं ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--महादेव शंकर ने जो किया है वह जगत् में आश्चर्य जनक ही है। नर्मदा तट में रहने वालों के उस वृत्त को मैं कहूँगा। एक समय श्राद्ध काल उपस्थित होने पर रक्त चन्दन का लेपन किये हुए देवेश श्री शंकर ने कुष्ठी होकर बहुत कृपण ब्राह्मणों से याचना की। वह बहते हुए बुल्ले (पीव) वाले गलित घाव पूर्ण मक्षिका और कीड़ों से युक्त चर्म रोगी हुए दूषित मुख कुष्ठी रूप से दुर्गन्धवान् आकार धारण किये पग-पग में गिर रहे थे ।।१/३।। इस वेष से वह ब्राह्मणों के आवास में जाकर द्वार पर स्खलित (गिरते) हुए यह बोले--गृहपते ! आज मैं तुम्हारे घर पर ब्राह्मणों के साथ उत्तम भोजन करना चाहता हूँ। तब यजमान के साथ वहाँ सभी लोगों ने सम्पूर्ण अंगों में चू रहे कोढ़ वाले उस ब्राह्मण को देखकर हैं ! धिक्कार

है ! ऐसा कहा। दूषित गन्ध वाले नीच ब्राह्मण तुम शीघ्र ही घर से निकल जाओ ।।४/६।। हम सबका यह उत्तम भोजन तुम्हारे देखने से अभोज्य हो गया। "ऐसा ही हो" यह कहकर देवाधि देव श्री शंकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को देखते निर्मल आकाश में पहुंच गये। महादेव शंकर के अन्तर्धान्न होने पर सब ब्राह्मण स्नान कर और सब ओर जल छिड़ककर राजन् ! ज्यों ही पृथक पृथक पात्रों में भोजन करने लगे। त्यों ही वहाँ उन्होंने बहुत से कीड़ों को जहाँ तहाँ देखा। देखकर वे सब विस्मित हो गये। उन सबने यह क्या है ऐसा कहा तब गुणी किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण ने यह कहा ।।७/१०।। बहुत ब्राह्मणों के समुदाय में वहाँ उस योगीन्द्र ब्राह्मण ने कहा--कि जो पहले यहाँ आया था वह योगी साक्षात् परमेश्वर ही थे, उनको धमकाने तिरस्कार करने से उत्पन्न इसे मैं तो उन्हीं की लीला मानता हूँ। शास्त्र में निश्चय से अतिथि के तिरस्कार का ही यह फल है अन्य का नहीं ।।११/१२।। परमात्मा और विशेष कर अतिथि तो विशेष पूजनीय है। श्राद्ध काल में आये हुए अतिथि की जो पूजा नहीं करता उस मनुष्य के श्राद्ध को पिशाच और राक्षस निश्चय ही लुप्त कर देते हैं। सुरूप अथवा कुरूप-मलिन और मलिन वस्त्र धारी श्रेष्ठ योगी हो अथवा चाण्डाल वेषधारी भी अतिथि हो उसका विचार न करे ।।१३/१५।। उसके इन वचनों को सुनकर यजमान को आगे कर वे सब ब्राह्मण उस कुष्ठी ब्राह्मण को खोजने के लिए चारों ओर दौड़ पड़े। तभी किसी सघन वन में उसे (कुष्ठी को) देखकर देख लिया ! ऐसा कहकर वे सभी वहाँ आ गये। वहाँ आकर सबने ठूँठ के समान अचल भाव से स्थित उस ब्राह्मण को देखते रहे बस, ब्राह्मण न तो बोलता है न चलता है न हिलता डुलता है और न देखता है। कुछ लोग दीन भाषण करने लगे और कुछ उसकी स्तुति कर रहे थे। सुन्दर प्रियवाणी से निरन्तर श्रीशंकरजी की स्तुति करते हुए कहने लगे देवेश ! भूख से पीड़ित इस ब्राह्मणों के विनष्ट इस अन्न का तुम विशेष रूप से पुनः संस्कार करो शुद्ध करो ।।१६/१९।।

युधिष्ठिर ! उन ब्राह्मणों के वचन को सुनकर बड़ी कृपायुक्त होकर आशुतोष शंकर प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणों से बोले--महानुभाव ! मैंने प्रसन्न होकर उस अन्न को तुम्हारे लिए अमृत के समान कर दिया है । ब्राह्मण अपने बन्धु और सेवकों के साथ भोजन करे और मण्डल का नित्य पूजन करे ॥२१/२१॥ कुन्तीनंदन ! तब से देवाधिदेव शूलधारी श्रीशंकर का यह स्थान 'मुण्डो' नाम से प्रसिद्ध है । यह सब पापों का हरने वाला और शुभ है । विशेष रूप से कार्तिकी पूर्णिमा में यह तीर्थ बहुत पुण्यप्रद है । गयातीर्थ के समान यह तीर्थ है ॥२२॥ एक सौ पाँचवां अध्याय पूरा हुआ ॥१०५॥

एक सौ छैवां अध्याय

एकसाल डिण्डिमेश्वर तीर्थ का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।
श्रुतमात्रेंण येनाऽऽशु सर्व पापात् प्रमुच्यते ॥

श्री मार्कण्डेय ने कहा--अब मैं तुम्हें भगवान शंकर के उत्तम विस्तृत चरित्र को सुनाऊँगा । जिसके सुनने मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । एक समय परीक्षा के अर्थी भूखे प्यासे देवदेव महेश्वर उत्तम भिक्षुक का रूप धर कर एकशाला नामक ग्राम में पहुंचे । उस समय उसके हाथ में रुद्राक्ष की माला थी भस्म से लिप्त शरीर वाले त्रिशुल धारण किये हुए जटा मण्डल से भूषित वह विश्वनाथ व्याघ्र चर्म को पहने हुए विशाल शरीर वाले बड़े सर्प को भूषण बनाये हुए डिण्डिम के समान उत्तम डमरू को बजाते हुए हाथों में कपाल लिए हुए बहुत बालकों से घिरे हुए भगवान कहीं गाते बजाते कहीं हसंते नाचते हुए आये ॥१/५॥ वह देव जिस-जिस घर लीला से डिण्डिम बाजा रखते थे । पार्थ ! वह घर भार से दबकर वहाँ नष्ट हो जाता था वह देव इस प्रकार बहुत जनों से घिरे हुए घूमते-घूमते दृश्य कभी अदृश्य रूप से प्रभु बाहर निकल गये । जब लोगों ने इधर उधर दौड़ते हुए उन्हें नहीं देखा । तब विस्मित होकर बैठ गये और यह शंकर होंगे । यह समझ

कर व उसकी स्तुति करने लगे ।।६/८।। जगते के स्वामी श्री शंकर की भक्ति से स्तुति करने वाले उन लोगों के समक्ष वह भगवान शंकर तब डिण्डिम रूप वाले पुनः दृष्टि गोचर हुए । तब से यह देवेश्वर, डिण्डिमेश्वर कहे जाते हैं । राजन् ! उनके दर्शन से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ।।९/१०।। एक सौ छैवां अध्याय पूरा हुआ ।।१०६।।

एक सौ सातवां अध्याय

अमलेश्वर तीर्थ की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- पुनरन्यच्च्यप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।
श्रुतिमात्रे येनैव सर्वपापात् प्रमुच्यते ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--मैं तुमसे भगवान शंकर के उत्तम चरित्र का वर्णन करूँगा जिसके सुनने मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है । बालक न होते हुए भी भगवान शंकर बालक के रूप से ग्राम के बालकों के साथ ऑवलों से खेलते हैं, वह सब मैं तुमसे कहूंगा । पाण्डव ! ग्रामीण बालकों ने पहले जो ऑवले फेंके देव शंकर ने उन ऑवलों को तत्क्षण पकड़ लिया । फिर उन्हें शंकर ने फेंक दिया ।।१/३।। जब तक वह दिशाओं में जाकर वहाँ से पृथक पृथक लौटते हैं तब तक ऑवलें को उन्होंने परमेश्वर के रूप में सिद्ध देखा । परम बुद्धिमान देवाधिदेव का तीसरे पर्याय में जो कर्म हुआ वहाँ उसी रूप में वह स्थानों में उत्तम स्थान 'आमलेश्वर' है उसके पूजन मात्र से मनुष्य परम पद पा लेता है ।।४/६।। एक सौ सातवां अध्याय पूरा हुआ ।।१०७।।

एक सौ आठवां अध्याय

श्री कपाल तीर्थ की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- चतुर्थ संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।
श्रुतमात्रेण येनैव सर्वपापात् प्रमुच्यते ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--अब देवेश्वर श्रीशंकर के क्रमशः वर्णन किये जा रहे चौथे चरित्र का वर्णन करूँगा । जिसके सुनने मात्र से मनुष्य सब पापों

से मुक्त हो जाता है एक समय भगवान शंकर ने मुण्डमाला धारण किये हुए कन्या धारी हो पिशाच राक्षस भूत डाकिनी योगिनी आदि गण से युक्त हो प्रेतासन को ग्रहण किये हुए भैरव रूप धारण कर त्रिलोकी को अभय दान देकर भयंकर तप किया ॥१/३॥ वहीं आषाढ़ी की गई अतः आषाढ़ी नाम प्रसिद्ध हुआ। (आषाढ़ी पूर्णिमा-गुरु पूर्णिमा-व्यास नाम से प्रसिद्ध है। साधु एक स्थान पर एकत्रित हो उसे मनाते हैं।) पश्चात् भगवान ने अन्य स्थान पर कन्था का परित्याग कर दिया। राजश्रेष्ठ ! तब से वह शंकर "कन्थेश्वर' कहे जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है वह सदाशिव पुनः एक समय मार्ग में अपनी इच्छा से घूम रहे थे वहाँ उन्होंने एक वैश्य को देखकर महादेव ने कहा--भद्र ! यदि तुम मुझ पर इस समय क्रोध न करो तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम मेरे लिंग को बलाओं (बला चतुष्टय अर्थात् आयुर्वेद में बला चार प्रकार की है। बला अतिबला महाबला और नागबला इन चारों प्रकार की वनस्पति) से पूर्ण कर दो तो हम तुम्हें बहुत सा धन देंगे। वह वैश्य इन बला नाम की औषधि को बेच रहा था उनके ऐसा कहने पर लोभ से मोहित होकर उस वैश्य ने शिवलिंग में चारों प्रकार की बलाओं को वहाँ जोड़ना आरम्भ किया ॥४/८॥ किन्तु वे सब उस लिंग को पूर्ण न कर सकी। राशिभूत औषधि क्षीण होती गई तब उसे दुःख प्राप्त हुआ। भगवान शंकर ने उन बलाओं के समूह को खण्ड-खण्ड कर उच्च स्वर से हंसते हुए निर्भय उसे देखकर यह वचन कहा--तुमने मेरे लिंग को पूर्ण आच्छादित नहीं किया अब यदि तुम मानलो तो मैं यहां से चला जाऊँ। हाँ यदि तुम मेरे लिंग को बला से पूर्ण कर देते तो मैं तुम्हें धन देता। वैश्य ने कहा--परमेश्वर मैं पुण्य रहित और अधन्य हूँ अतः मैं निग्रह (दण्ड) के योग्य हूँ। आपका प्रिय नौकर मैं सदा शोक करता रहूँगा। भरत गोत्रोत्पन्न राजन् ! ऐसे वैश्य पुत्र के इस वचन को सुनकर श्री शंकर उसे अक्षय धन देकर वहाँ ठहर गये ॥९/१३॥ राजेन्द्र ! तब से संसार पर दया की इच्छा से बलाओं से भूषित या लिंग विश्वास और ज्ञान के लिए

स्थित है। पृथा नन्दन ! महादेव शंकर के द्वारा की गई क्रीड़ा से सुप्रतिष्ठित तीनों लोकों में यह देव मार्ग से प्रसिद्ध है। मनुष्य इसका दर्शन और विधिपूर्वक पूजा करते हुए सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।१४/१५।। जो देव मार्ग में जाकर बालकेश्वर बलाकेश्वर का पूजन करता है पञ्चायत में पहुंचकर उनका पूजन करने वाला मनुष्य रुद्रलोक में जाता है। देवमार्ग में मरे हुए शुद्ध अन्तः करण वाले पुरुषों की रुद्रलोक से फिर कभी आवृत्ति नहीं होती--लौटता नहीं राजन् ! भक्ति पूर्वक देवमार्ग के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।।१६/१८।।

एक सौ आठवां अध्याय पूरा हुआ ।।१०८।।

एक सौ नौवां अध्याय

श्रृङ्ग तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- श्रृंगितीर्थततो गच्छेन्मोक्षदं सर्वदेहिनाम् ।
मृतानां तत्र राजेन्द्र मोक्षप्राप्तिर्न संशयः ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--उसके अनन्तर मनुष्य पर मोक्षदायी श्रृंगि तीर्थ की यात्रा करे। राजश्रेष्ठ ! वहाँ मरे हुए पुरुषों को मोक्ष प्राप्ति होती है इसमें संशय नहीं उस समय श्रृंगि तीर्थ में ही पिण्डदान से मनुष्य पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। उस पुण्य से पवित्र अन्तः करण वाला होकर मनुष्य गणेश्वर भगवान शंकर के श्रेष्ठगण की उत्तम गति को पाता है ।।१/२।। एक सौ नौवां अध्याय पूरा हुआ ।।१०९।।

एक सौ दसवां अध्याय

आषाढ़ी तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- अषाढ़ीतीर्थस मागच्छेत्ततो भूपालनन्दन ।
कामिकं रूपमास्थाय स्थितो यत्र महेश्वरः ।।

श्री मार्कण्डेय जी बोले--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य आषाढ़ी तीर्थ की यात्रा करे। जहाँ श्री शंकर इच्छानुसार रूप धारण कर स्थित है। यह तीर्थ चारों

युगों में पूजित और सब तीर्थों में श्रेष्ठ है । राजन् ! वहाँ स्नान कर रुद्र का अनुचर होता है । जो उस तीर्थ में प्राणों का त्याग करता है उसकी रुद्रलोक में निवृत्ति रहित गति होती है इसमें संशय नहीं ।।१/३।। एक सौ दसवां अध्याय पूरा हुआ ।।११०।।

एक सौ ग्यारहवां अध्याय

एरण्डी तीर्थ महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- एरण्डीसंगम गच्छेत्सुरासुरनमस्कृतम् ।
तत्तु तीर्थ महापुण्यं महापातकनाशनम् ।।

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा--उसके अनन्तर मनुष्य सुर-असुरों से पूजित एरण्डी संगम की यात्रा करे । वह तीर्थ बहुत ही पुण्यदायक और बड़े पापों का विनाशक है मनुष्य वहाँ इन्द्रिय और मन को वश में कर उपवास करते हुए विधि पूर्वक स्नान करके ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाता है । उस तीर्थ में जो मनुष्य भक्ति से प्राणों का त्याग करता है उसकी रुद्र लोक में निश्चय ही निवृत्ति रहित गति होती है ।।१/३।। एक सौ दग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ।।१११।।

एक सौ बारहवां अध्याय

जामदग्नि तीर्थ महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेद्वारकाधीशः तीर्थ परमशोभनम् ।
जामदग्निरितिख्यातं यत्र सिद्धो जनार्दनः ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य परम श्रेष्ठ जामदग्न्य नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा करे । जहाँ भगवान कृष्ण सिद्धि को प्राप्त हुए । युधिष्ठिर ने कहा--श्रेष्ठ ब्राह्मण ! जगद्गुरु वसुदेव नन्दन श्रीकृष्ण संसार के हित की कामना से मानव रूप धारण कर कैसे सिद्ध हुए ? न्याय पूर्वक तुम्हारे द्वारा कहे जा रहे देवाधिदेव चक्रधारी श्रीकृष्ण के इस सम्पूर्ण चरित्र को मैं सुनना चाहता हूँ । श्री मार्कण्डेय ने कहा--महाराज ! पहले हैहय

वंश के सहस्त्राबाहु कार्तवीर्य नाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा थे ।।१/४।। वह राजा हाथी घोडे रथों से सम्पन्न सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वेद विद्याव्रत में पारंगत सब भूतों को अभय देने वाले थे । वह श्रीमान् माहिष्मती नगरी के स्वामी बहुत अक्षोहिणी सेनाओं वाले थे । महाबलशाली वह राजा किसी समय शिकार के लिए बन में गये ।।५/६।। बहुत दिनों के पश्चात् वह अति उत्तम भृगुकच्छ (भड़ौच अथवा भारकच्छ) प्रदेश में पहुँचे । जहाँ बड़े तपस्वी अत्यन्त तेजस्वी महर्षि जमदग्नि स्थित थे वह पत्नी रेणुका के साथ सब जीवों को अभय देने वाले वहाँ सुशोभित थे । उन महर्षि के पुत्र श्री परशुराम साक्षात् प्रभुनारायण ही थे । सब क्षत्रिय गुणों से सम्पन्न ब्रह्म ज्ञानी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वह परशुराम विशुद्ध भाव से बड़ी भक्ति पूर्वक माता-पिता को प्रसन्न करते हुए रहते थे ।।७/१०।। तेजस्वी महर्षि जमदग्नि ने तब मृगया हेतु विचरते हुए राजा अर्जुन को देखकर उन्हें आतिथ्य से आमन्त्रित किया आमन्त्रण स्वीकार भृत्य सेना और वाहनों सहित वह राजा उन महानात्मा ऋषि के पवित्र आश्रम पर गया ।।१०/११।। उस समय वह राजा महती शोभा और महान ऐश्वर्य से सम्पन्न सुन्दर आश्रम को देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ । सहसा वहाँ पहुंचते ही सेवक सेना और वाहनों से युक्त उस राजा को ब्राह्मण ने सुन्दर मधुर स्वाद युक्त भोजन कराया । चकित होकर राजा ने यह कैसे हुआ इसका कारण और शक्ति को जानना चाहा । तदनन्तर महर्षि ने कामधेनु के प्रभाव को बताया । यह जानकर राजा ने ब्राह्मण से कहा--ब्राह्मण ! तुम मुझे सुन्दर वर्णवाली उत्तम गाय दक्षिणा के रूप में दो । मैं इसके बदले सौ अथवा हजारों लाखों अथवा अरबों सजी हुई गौऐं तुम्हें दूँगा ।।१२/१५।। जमदग्नि ने कहा--प्रिय राजन् ! मैं हजारों करोड़ों से भी इस उत्तम कामधेनु को नहीं दे सकता आप अब जाँय । भारत ! ब्राह्मण के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह अभिमानी राजा क्रोध से बहुत लाल नेत्रों वाला होकर वह वचन बोला ! ब्राह्मणाधम तुम्हारे ऐसा यथेच्छ आचरण

मुझ में भी हैं उससे तुम्हारे देखते-देखते तुम्हारी कामधेनु को तुम्हारे आश्रम से मैं बलात् ले जा रहा हूँ ।।१६/१८।। ब्राह्मण ने कहा--राजन् ! जो पुरुष क्रोध में भरे हुए भयंकर बड़े सर्प से निर्भय होकर क्रीड़ा कर सकता है । मृत्यु से ग्रस्त होकर जो जीवित रह सके वही मेरी कामधेनु को ले जा सकता है । ऐसा कहकर बड़े क्रोध में भरे हुए महर्षि जमदग्नि ने दूसरे ब्रह्म दण्ड के समान बड़े दण्ड को लेकर कहा--क्षत्रिय कुल में अधम ! जिस क्षत्री की शक्ति अथवा तेज हो वह क्षीण आयु वाला पुरुष अपने साधनों के साथ शीघ्र ही तत्काल मेरी गाय का हरण करे ।।१९/२१।। इस क्रूर वचन को सुनकर सैकड़ों सैनिकों से घिरा हुआ हैहय वंश का अर्जुन पृथिवी पर दौड़ता हुआ ब्रह्म दण्ड से हत होकर गिर गया । तदनन्तर चितकवरी कामधेनु की हुंकार से और नासातुण्ड के अग्रभाग से रोमटाओं के छिद्रों से भी खड्गपाश आदि अस्त्र हाथ में लिए निकल रहे हजारों योंद्धा किरात मागध आदि द्रष्टि गोचर हुए ।।२२/२४।। पर सहस्त्रार्जुन की वीरता से वे मोहित होकर परस्पर में प्रहार कर महर्षि के साथ विनाश को प्राप्त हुए । इस प्रकार संग्राम में राजा सहस्त्रार्जुन जय पाकर श्रेष्ठ ब्राह्मण को मार कर कालवश वर्ती हुई अपनी पुरी में चला आया । तदनन्तर शत्रु के चले जाने पर बहुत शीघ्रता से आतुर हुए परशुराम जी वहाँ आये । उन्होंने पिता के समीप विलाप करती हुई माता को देखा । श्री परशुराम जी ने कहा--किस पुरुष ने अपने विनाश के लिए अज्ञानवश यह साहस कर डाला है । जो मेरे पिता का वध कर यहाँ मृत्यु का तांडव देखना चाहता है ।।२५/५८।। तब वह माता रेणुका परशुराम जी के वचन से बहुत व्याकुल और प्राण रहित-सी होकर दोनों हाथों से अपने पेट पीटती हुई अपने पुत्र से बोली । पुत्र ! बाहुओं से बड़े बलशाली क्रूर अर्जुन ने दूसरे क्षत्रियों के साथ यहाँ आकर तुम्हारे पिता को मार डाला है । प्राणों से रहित चेतना हीन मारे गये अपने पिता को तुम देखो । पुत्र ! प्रथम तुम उनका विधि पूर्वक संस्कार कर यथा योग्य उनका तर्पण करो । माता

के इस वचन को सुनकर वे माता को प्रणाम कर बोले । राजन् ! परशुराम जी ने जो प्रतिज्ञा की तुम उसे सुनो । हे माता ! पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय कुल से रहित करके स्नान कर उनके रक्त से अपने पिता को तृप्त करूँगा ॥२९/३३॥ उस दुष्ट बुद्धिवाले कार्तवीर्य के बाहुओं को फरसे से काटकर रक्त पान करूँगा । मेरे इस सत्य वचन को तुम सुनो । प्रतापी जमदग्नि नन्दन उस परशुराम ने ऐसी प्रतिज्ञा कर बड़े क्रोध में भरकर अपने पिता का औध्र्व दैहिक संस्कार किया । फिर क्रोध से पूर्ण होते हुए परशुराम जी माहिष्मती नगरी पहुँचे । वहाँ जाकर राजा अर्जुन के बाहुओं को काटकर और उस अधम क्षत्रिय का प्राणान्त करके शेष क्षत्रियों के विनास के लिए वह निकल पड़े । पूर्व से पश्चिम की ओर, दक्षिण और उत्तर कुरुदेश पर्यन्त सात द्वीपों और समुद्रों से युक्त पर्वत वनों से पूर्ण पृथिवी को देखते हुए श्री परशुराम जी समन्त पञ्चक में पाँच रक्त कुण्डों की रचना की ॥३४/३८॥ उन्होंने बहुल क्रोध में भरकर उन रक्त कुण्डों में रक्त से पितरों का तर्पण किया । ऐसा हमने सुना है । तत्पश्चात् ऋचीक आदि उनके पितृगण उन श्रेष्ठ ब्राह्मण परशुराम जी के समीप जाकर उनसे तुम क्षमा करो ऐसा कहा तब वह विरत हो गये उनके समीप में रक्त कुण्डों का जो प्रदेश है वह देश समन्त पञ्चक क्षेत्र के नाम से कहा जाता है । जो कुरुक्षेत्र के नाम से पीछे प्रसिद्ध हुआ ॥२९/४०॥ पाण्डुनन्दन ! परम धर्मात्मा परशुराम जी ने उस कर्म से हटकर पितृगण से कहा--यह जो रक्त मैंने पांचों तीर्थ स्थानों में डाला है यह उत्तम तीर्थ हो जाय । वैसा ही हो ऐसा कहकर वे सब पितृगण अदृश्य हो गये ॥४१/४३॥ युधिष्ठिर ! इस प्रकार के प्रभाव वाले परशुराम जी का किसी समय देवमार्ग में सम्बन्ध हुआ । जिनका दर्शन और स्पर्श मनुष्यों के सब पापों का क्षय करने वाला है । माता रेणुका के विश्वास के लिए आज भी सब पापों के विनाशक देवमार्ग में स्थित वे पितृ-देवगण देखे जाते हैं । राजश्रेष्ठ ! नर्मदा समुद्र संगम रूपी उस तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान कर

मनुष्य पापों से मुक्त हो जाते हैं । कुन्ती नन्दन ! कुश के अग्र भाग से भी यह समुद्र स्पर्श के योग्य नहीं है । राजश्रेष्ठ ! वहाँ इस मन्त्र से मनुष्य को स्नान करना चाहिए ।।४४/४७।। विष्णु रूपधारी तुम्हें नमन हैं, जल स्वामिन् तुम्हें नमन है । देवेश ! तुम लवण समुद्र में निवास करो यह स्पर्श का मन्त्र है । अग्नि तेज है और सुख बुद्धि में शरीर से वीर्य हैं और विष्णु अमृत की नाभि है । पाण्डव ! इस सत्य वचन को कहते हुए तब नदीपति समुद्र में स्नान करे । 'अग्निश्च तेजो मुख्याव देहे रतोऽयं विष्णुरमृतस्य नाभिः एतद्ब्रुवन् पांडव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेतत् पतिं नदीनाम् ।।४८/४९।। राजश्रेष्ठ ! इस मन्त्र में पञ्च रत्नों से युक्त फल, पुष्प, अक्षतों से पूर्ण अर्ध्य समुद्र को देना चाहिए । सब देवों में प्रधान ईश ! तुम सब रत्नों के विधान और सब श्रेष्ठ रत्नों की खान हो, तुम इस अर्ध्य को ग्रहण करो तुम्हें मेरा नमस्कार है यह अर्ध्य मन्त्र है । महा समुद्र ! जन्म से होने वाले पापों से तुम मेरा उद्धार करो । 'पर्वणोत्तमाः' पर्वतधारियों में श्रेष्ठ रत्नाकर ! तुम पूजित होकर पर्वतों पर गमन करो । वह विसर्जन का मन्त्र है ।।५०/५५।। स्वर्ग के द्वार को खोलने वाला देव सागर से बढ़कर कौन है ? वहाँ सागर पर्यन्त बहुत बड़ा श्रेष्ठ तीर्थ है, वहाँ जमदग्नि नन्दन श्री परशुराम ने श्रीशंकर की स्थापना की है । जहाँ गन्धर्वों सहित देवगण मुनि सिद्ध चारण भगवान शंकर की उपासना करते हैं । जो मनुष्य महर्षि जमदग्नि देवी रेणुका के दर्शन करते हैं वे पुरुष इच्छित समय तक प्रिय वासवाले शिवलोक में निवास करते हैं । राजन् मनुष्य वहाँ स्नान कर पितृदेवों का तर्पण करते हुए दान देकर सौ से अधिक पीढ़ियों को नरक से तार देता है । भक्ति पूर्वक इसको सुनकर भी बहुत पुण्य को पाता है ।।५३/५७।। एक सौ बारहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११२।।

एक सौ तेरहवां अध्याय

कोटि तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थ कोटीश्वरं परम् ।
यत्र स्नानं च दानं च सर्व कोटिगुणं भवेत् ।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--श्री नर्मदा के दक्षिण तट पर कोटीश्वर नामक उत्तम तीर्थ हैं । जहाँ स्नान और दान सब करोड़ों गुना हो जाता है । वहाँ गन्धर्वों सहित सब देवगण और शुद्धान्तः करण ऋषि पृथिवी में दुर्लभ उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ।।१/३।। राजन् ! वहाँ देवगण ऋषियों के द्वारा कोटीश्वर महादेव की स्थापना की गयी । देव देवेश उन कोटीश्वर के दर्शन कर मनुष्य परम उत्तम सिद्धि को पाता है । श्रेष्ठ राजन् ! उस तीर्थ में जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म मनुष्य करता है वह सब करोड़ों गुना होता है । वहाँ दक्षिण मार्ग में स्थित जो भी कोई श्रेष्ठ मुनि है वे सब सिद्धि को प्राप्त करके मृत्यु के पश्चात् निश्चय ही पितृलोक जाते हैं और नर्मदा के तट पर जो श्रेष्ठ मुनि थे वे सब पहले ही देवलोक को जा चुके हैं । ऐसा शास्त्र का निश्चय है ।।४/६।। एक सौ तेरहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११३।।

एक सौ चौदहवां अध्याय

लोटेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततो गच्छेद्वारकाधीश लोटनेश्वरमुत्तमम् ।
उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपातकनाशनम् ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजन् ! तदनन्तर मनुष्य नर्मदा के उत्तर तट पर सब पापों के विनाशक उत्तम लोटेश्वर की यात्रा करे । राजन् ! वहाँ देवाधि देव श्री शंकर के दर्शन से ही तत्क्षण मनुष्य के सात जन्मों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं । बाल्यावस्था तथा युवावस्था में जो पाप किये गये हैं वे सभी देवाधिदेव श्री शंकर के दर्शन से नष्ट हो जाते हैं ।।१/३।। युधिष्ठिर

ने कहा--पूज्य विप्रदेव ! लोकों में श्री नर्मदा का चरित्र बहुत ही आश्चर्य जनक है । आपके द्वारा कहा गया यह सम्पूर्ण चरित्र पापों का विनाशक हैं । जो एक ही श्रेष्ठ तीर्थ सब तीर्थों के फल को देने वाला हो एक उसे मैं अब सुनना चाहता हूँ मुझ पर दयाकर शीघ्र ही आप कहे ।।४/५।। श्रेष्ठ महात्मन ! तीनों लोकों में जो दुर्लभ प्रश्न है आपकी कृपा से बान्धवों के साथ उनका हमने समाधान सुना । सब प्रश्नों के जानने वालों में श्रेष्ठ ! मैं अब इस एक प्रश्न का उत्तर और सुनकर तुम्हारी कृपा से बन्धुओं सहित परम प्रसन्नता को प्राप्त होऊँगा । श्रीमार्कण्डेय ने कहा--श्रेष्ठ बुद्धि वाले राजन् ! बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! जिसकी बुद्धि ऐसी है अतः तुम्हें तीनों लोकों में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है ।।६/८।। भरत वंश श्रेष्ठ ! जो पुरुष समय-समय पर धर्म अर्थ काम और मोक्ष का यथार्थ ज्ञान रखता है उस बुद्धिमान को वैसा ही करना चाहिए अतः तुम्हें कल्याणकारी इस प्रश्न का उत्तर मैं दूँगा । जिसको सुनकर पृथिवी में मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।९/१०।। भगवती नर्मदा नदियों में श्रेष्ठ सब तीर्थ मय तथा मंगल मयी है उसका भी समुद्र के संगम में विशेष पुण्य है । प्रिय श्रेष्ठ राजन् ! उस संगम स्थान में आती हुई नर्मदा को देखकर महा समुद्र देवी को प्रणाम करके "यह कौन श्रेष्ठ नदी मुझमें मिल रही है" ऐसा मन ही मन विचारा और सोचा-अरे यह तो सदाशिव के तेजोमय लिंग से उत्पन्न हुई उत्तम नर्मदा है ऐसा जान उसके सम्मुख लौटते हुए गया तब वहां समुद्र में यह महानदी प्रविष्ट हुई है ।।११/१४।। वहीं भगवान शंकर का दिव्य लिंग ऊपर प्रकट हुआ । उन नदियों में श्रेष्ठ महाभाग्य शालिनी यह श्री नर्मदा उसी लिंग से उत्पन्न है और अन्त में उसी में वहाँ विलय को प्राप्त हुई अतः यह नर्मदा बहुत पुन्य दायिनी है । नित्य ही नर्मदा के तट पर निवास करते हुए मनुष्य सदा उसी का जल पीते हुए सब यज्ञों की दीक्षा फल पाता है । दिन-दिन सोमपान का फल भी उसे प्राप्त होता है ।।१५/१६।। जो पुरुष वहाँ स्नान

कर लोटेश्वर का पूजन करता है वह पुरुष अश्वमेघ यज्ञ के फल को पाता है। राजन् ! मनुष्य की वाणी से मन के कर्म से जो पाप होता है लोटेश्वर में पहुंचकर वह सब विनष्ट हो जाता है। कार्तिकी पूर्णमासी में वहाँ का दर्शन विशेष पुण्यदायक हैं। ऐसा श्री शिवजी का वचन है। श्रेष्ठ राजन् ! सर्व पापों के नाशक इस महात्तम को तुम सुनो। श्रेष्ठ राजन् ! आने वाली कार्तिकी पूर्णिमा पर वहाँ जाकर चतुर्दशी में उपवास पूर्वक नर्मदा में स्नान पितृदेवताओं का तर्पण विधि पूर्वक श्राद्ध तथा लोटेश्वर का पूजन करके रात्रि में जागरण करे ।।१७/२१।। ऐसा करने वाले पुरुष का जीवन और चेष्टा सफल है। निःसन्देह वे लूले लंगड़े हैं या उनका जीवन व्यर्थ है जिन्होंने एकाग्र मन से भगवान लोटेश्वर का दर्शन नहीं किया। उसके कुल में पिशाच भाव और दूषित योनियों में नहीं जाता जो पुरुष संगम में जाकर विधि पूर्वक स्नान करके मंगल गीतों और नृत्यों से रात्रि जागरण करता। तदनन्तर प्रातः रात्रि को देखे समुद्र को नमन कर स्नान की विधि से आमन्त्रण देकर वहाँ स्नान करे और कराये। विष्णु रूपी तीर्थों के स्वामी के लिये मेरा प्रणाम है। हे देव ! मेरे समीप स्थिर रहो। लवण जल वाले समुद्र में तुम सान्निध्य करो ।।२२/२६।। वह आमन्त्रण का मंत्र है। "अग्नि रूपी तेज" आनन्द से पूर्ण वीर्य का धारण करने वाला शरीर, अमृत की नाभि (बन्धन स्थान) विष्णु जिसकी आत्मा हैं। पाण्डव ! यह सत्य वचन कहते हुए मनुष्य नदीपति समुद्र का अवगाहन (स्नान) करे ।।२७।। मनुष्य सैकड़ों जन्मों तक जो पाप कर चुका है। उस पाप समूह को वह लवण सागर में एक बार स्नान करने से ही नष्ट कर देता है। कुरु श्रेष्ठ ! अन्यथा देवयोनि यह समर्थ महासमुद्र, देवों को तो कुश के अग्र भाग से स्पर्श करने योग्य नहीं। तुम सब रत्नों से पूर्ण होने के कारण प्रधान हो सब रत्नों के एक मात्र प्रधान स्थान ! सब देवों में प्रधान ईश ! तुम्हें मेरा नमन है। तुम मेरा द्वारा दिये गये अर्घ को ग्रहण करो। यह अर्घ मन्त्र है ।।२८/३०।। पितृ-देव-मनुष्यों को भली भांति

तृप्त करने के पश्चात् उसके तीर पर उतर पाँच श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ जो लोकपालों के सदृश है श्रद्धा का अनुष्ठान करे । प्रथम लोकपालों को विधिपूर्वक प्रतिष्ठित कर अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ न्याय पूर्वक ब्राह्मणों का सम्यक् पूजन कर पीछे उनसे अपने पुण्य और पाप का सब प्रकार निवेदन करे । बचपन से लेकर युवावस्था में जो पाप किये हैं उन पापों के उनके आगे प्रसिद्ध कर लोकपालों को आमन्त्रित करे ॥३१/३४॥ बचपन से लेकर मरण-पर्यन्त जो कुछ पाप मुझ से सिद्ध होने वाला है मेरा सम्पूर्ण वह उनके समीप में स्थित ब्राह्मणों से मैंने कह दिया । ऐसा कहकर वह मनुष्य उन देवों के आगे पीछे लेट जाये फिर उन पाँचों को सान्त्वना देकर स्नान करे ॥३५/३६॥ श्रेष्ठ राजन् फिर विधि पूर्वक पितृनिमित्तक श्राद्ध करे ऐसा करने से मनुष्य के सब पापों का क्षय हो जाता है जो पुरुष अपने आपको अथवा मेरा शुभ-अशुभ कर्म कैसा है । जानने की इच्छा वाला है उस पुरुष की स्थिति को सुनो । उस तीर्थ में मनुष्य लोटता हुआ जाय यदि वह पापात्मा है तो दूसरी ओर जायगा और धर्मात्मा नदी की ओर गमन करेगा । ऐसी स्थिति में पाप कर्मी मनुष्य मेरा पूर्व सञ्चित पाप है समझ कर इस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान कर उसमें विधिपूर्वक दान करे ॥३७/४०॥ मनुष्य लोटेश्वर का पूजन कर सब पापों से छूट जाता है । सीधे गमन करके भी मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । श्रेष्ठ राजन् ! ऐसा समझ कर प्रयत्न पूर्वक मनुष्यों को वहाँ स्नान करना चाहिये । जहाँ श्री शंकर का सान्निध्य है राजन् इस प्रकार मनुष्य वहाँ स्नान कर वेदों के पारगामी ब्राह्मणों का विधि पूर्वक सब पापों की शान्ति के लिये पूजन करे ॥४१/४३॥ राजश्रेष्ठ ! वह तीर्थ ऐसे गुणों से युक्त है । हे राजन् ! तुम उस तीर्थ की महिमा का एकाग्र मनवाले होकर सुनो । उस तीर्थ में जो मनुष्य स्नान कर पितृदेवों का तर्पण कर भक्ति-भावना से युक्त होकर पितृनिमित्त से श्राद्ध करता है । योंग्य ब्राह्मणों को गाय-भूमि-स्वर्ण देता है वह पुरुष बहुत वर्षों तक श्रेष्ठ विमान में चढ़कर

स्वर्ग लोक में पूजित होता है । नर्मदा के सब तीर्थों में स्नान दान से जो फल होता है ।।४४/४७।। मनुष्य वह फल नर्मदा समुद्र के संगम में पाता है । सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, मणि मोतियों के भूषण, साँड़, भूमि, धान्य आदि के देने से वहाँ अक्षय फल होता है । तीर्थ में शुभ-अशुभ चिन्तन का भी वही फल होता है इसमें सन्देह नहीं युधिष्ठिर उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य अपने प्राणों का त्याग भक्ति से विधिपूर्वक करता है उसके भी पुण्य फल को सुनो । वह करोड़ों वर्ष पर्यन्त शिव मन्दिर में खेलकर वेद-वेदांग जानने वाला ब्राह्मण होके उत्तम कुल में उत्पन्न होता है वहाँ पुत्र पौत्रवान वृद्धिशाली होकर धन धान्य से युक्त हो सब व्याधियों से मुक्त हो सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है ।।४८/५२।। बारह बार सोमनाथ की यात्रा और पूजा होने पर कार्तिकी पौर्णमासी पर कृत्तिका नक्षत्र का योग होने पर जो पुण्य होता है वही पुण्य लोटेश्वर तीर्थ गमन से होता है । गया-गंगा कुरुक्षेत्र में नैमिष और पुष्कर तीर्थ में गमन करने से जो पुण्य होता है पार्थ ! वह पुण्य लोटेश्वर के दर्शन से पाता है । जो मनुष्य पढ़े जा रहे इस शुभ आख्यान को भक्ति पूर्वक सुनता है वह सब पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक को जाता है ।।५३/५५।। एक सौ चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११४।।

एक सौ पन्द्रहवां अध्याय

हंसेश्वर तीर्थ की महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- *ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र रेवाया दक्षिणेतटे ।*
कोशद्वयान्तरे तीर्थं मातृतीर्थादनुत्तमम् ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--राजेन्द्र ! तदन्तर मनुष्य नर्मदा के दक्षिण तट पर बीच में मातृ तीर्थ से दो कोस के मध्य में शत्रुता का विनाशक बहुत उत्तम पुन्य दायक हंसेश्वर नामक तीर्थ है । पहले कश्यप के कुल में उत्पन्न दाक्षायणी का पुत्र हंस उग्र तप कर ब्रह्मा बाहन बना । वह एक समय ब्रह्मा

की आज्ञा के बिना ही व्याकुल हुआ ॥१/३॥ (दक्ष यज्ञ के विध्वंस होने पर) हे युधिष्ठिर ! शिवगणों से तिरस्कृत होकर उन्हें त्याग कर अन्यत्र भाग गया। ब्रह्मा के द्वारा स्मरण करने पर भी जब वाहन न आया तब ब्रह्मा ने उस हंस को शाप देकर पद से गिरा दिया। तब हंस शीघ्रता से अपने को शाप ग्रस्त मानकर ब्रह्मा के समीप पहुँच उन्हें प्रणाम कर यह बोला ॥४/६॥ हंस ने कहा--मैं तिर्यग्योंनि (नीच योंनि) में उत्पन्न हूँ आप मुझे शाप देने योग्य नहीं, विवेक से शून्य मनवाला होना तिर्यक् (नीच) जीवों का स्वभाव ही है। देव ! तो भी मैं पापी हूँ क्योंकि मैंने स्वामी का त्याग किया है किन्तु मैं क्या करूँ पितामह ! पीछा कर रहे बड़े ही उग्र शिवगणों से डरकर आपको छोड़कर भाग गया था। भगवान से आज भी अपने सामने भय को ही देख रहा हूँ उससे आपके द्वारा स्मरण किये जाने पर भी आपके सामने नहीं आ सका। श्री मार्कण्डेय ने कहा--इस प्रकार ब्रह्मा जी के आगे बोलते हुए सुन्दर आँखों वाला और बहुत दीन वह हंस दीर्घ श्वांस लेकर पुनः बोला प्रभो ! पापी मूढ़ बुद्धि वाले सम्मुख चरणों में गिरे हुए मुझ तिर्यक् जीव की रक्षा करो ॥७/१०॥ सृष्टि के रचयिता तुम ही एक देव हो। यह अनेक प्रकार वाली सृष्टि तुम्हारे द्वारा ही रचित है फिर मैं तुम्हारे द्वारा ऐसा ही बनाया गया हूँ। ब्रह्मन् ! अतः यह दोष साक्षात् तुम्हारा ही है। आप मुझ पर शाप और दया कुछ भी करने में समर्थ है। तुमसे भिन्न कोई नहीं फिर मैं किसकी शरण जाऊँ सेवा धर्म से पतित यह दास जो थप्पड़ों से मारने योग्य है। हे पूज्य ! ऐसे मुझ दीन भक्त की रक्षा करो ॥११/१२॥ विद्या और अविद्या आप से ही तो प्रकट हुई है, धर्म अधर्म सत् और असत् दिन और रात्रि भी तुम्हीं से प्रकट होते हैं तुम्हीं जगत् के नाना भावों को उत्पन्न करते हो। एक स्वरूप प्रभो ! मैं आपकी शरण को प्राप्त हूँ। एक होकर भी तुम विविध एवं विचित्र कर्मवश बहुत रूपवाले हो। तुम कर्म रहित होकर भी सम्पूर्ण कर्म वाले हो अतः मैं इस समय तुम एक मात्र रक्षक

की शरण प्राप्त हुआ हूँ ॥१३/१४॥ सबके नमनीय तुम्हें नमन है। वर के देने वाले तुम्हारे लिये नमन है। सबके धारण करने वाले विधाता के लिये मेरा पुनः पुनः नमन है। प्रभो ! शिक्षा संस्कार और अक्षरों से रहित यह मेरी वाणी क्या स्तुति कर सकती है ? मुझ में क्या सामर्थ्य है ? क्या विशिष्ट ज्ञान है ? अतः मेरे इस कथन पर क्षमा करें ॥१५/१६॥ श्री मार्कण्डेयजी ने कहा-राजन् ! हंस के इस प्रकार कहने पर श्री ब्रह्मा जी प्रसन्न बुद्धि वाले होकर बोले। तुम्हें यह शिक्षा दी गई है। पक्षिन् ! तुम विषाद को प्राप्त न होंओ। तुम तप से अपने अन्तः करण को शुद्ध करो जिससे तुम शाप के अन्त को प्राप्त हो जाओगे। तुम इस तीर्थ में स्नान एवं श्री शंकर की स्थापना कर श्री नर्मदा की सेवा करो शीघ्र ही तुम उत्तम स्थान को पा लोगे। जो उत्तम दक्षिणा वाले बहुत यज्ञों से करोड़ों गौओ के ओर स्वर्ण के बड़े दानों से फल प्राप्त होता है। ध्यान रहे--वह फल श्री शंकर की स्थापना से होता है ॥१७/१९॥ ब्राह्मण की हत्या करने वाला शराब पीने वाला-सुवर्ण की चोरी करने वाला गुरु पत्नी गमन करने वाला पुरुष भी नर्मदा के तट पर भगवान शंकर की स्थापना कर सब पापों से मुक्त हो जाता है। इससे श्रीशंकर से उत्पन्न नर्मदा नदी के तट पर सदाशिव की स्थापना कर तुम सब पापों से मुक्त होकर उत्तम पद को पावोगे ॥२०/२१॥ ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर वह हंस प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर ऐसा ही करूँगा ऐसा कहकर शीघ्र ही उत्तम नर्मदा के तट पर पहुँचा वहाँ पहुंच कर उसने कुछ समय तपकर श्री शंकर की स्थापना की ॥२२/२३॥ भरत श्रेष्ठ नाम से बहुत उत्तम हंसेश्वर स्थापना कर और पूजाकर उस श्रेष्ठ पक्षी ने उत्तम स्थान पाया युधिष्ठिर ! मनुष्य उस हंसेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान कर भगवान श्री शंकर का पूजन करे ऐसा करने से वह सब पापों से छूट जाता है। एकाग्रमन होकर श्रीशंकर की स्तुति करने वाला मनुष्य कभी दीनता नहीं पाता। श्रेष्ठ राजन् ! मनुष्य यहाँ श्राद्ध दीपदान और ब्राह्मणों को शक्ति

पूर्वक भोजन देकर स्वर्ग लोक में पूजित होता है । जो मनुष्य भक्ति पूर्वक तीन काल या एक समय भी श्री शंकर का पूजन करता है और हे पृथा पुत्र ! श्रेष्ठ ब्राह्मण को नई व्याही हुई गाय देता है वह पुरुष साठ हजार वर्ष शिवलोक में पूजित होता है ।।२३/२७।। एक सौ पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११५।।

एक सौ सोलहवां अध्याय

तिलादेश्वरतीर्थ महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः क्रोशान्तरे गच्छेत्तिलादेवं तीर्थमुत्तमम् ।
तिलप्राशनकृद्यत्र जावालिः शुद्धिमाप्तवान् ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर मनुष्य एक कोस के अन्तर में स्थित उत्तम तिलाद तीर्थ को गमन करे । जहाँ तिलका प्राशन करने वाले जाबालि ने शुद्धि प्राप्त की । पिता-माता का त्याग करने वाला भाई को न चाहने वाला पुत्र को विक्रय करने वाला गुरु के साथ छल करने वाला पापात्मा पुरुष जहाँ जहाँ भी जाता है । भरतवंशोत्पन्न राजन् ! वह पुरुष वहाँ वहाँ सत्पुरुषों में धिक्कार ही पाता है । कोई भी पुरुष सभाओं में व अन्यत्र भी उसका साथ नहीं देता ।।१/३।। राजन् ! पापों से शुद्धि की गति को न जानने वाले वह ब्राह्मण इस प्रकार लज्जा से युक्त होकर बहुत समय तक बड़ा चिन्तित रहा । सब तीर्थों में गमन करते हुए उसने श्रीनर्मदा में भी स्नान किया । कुन्ती नन्दन ! नर्मदा के तट पर अणिवाप के निकट पहुँचकर व्रतधारी जाबालि तिलों का भक्षण करते हुए स्थित रहे । कुछ समय तक वे तिलों का एक बार भोजन करते हुए पुनः एक दिन का अन्तर भोजन करते हुए वे एक पक्ष (पन्द्रह दिन) और मास में भक्षण के नियम करने वाले अन्त में वह तिलों से ही कृच्छ् चान्द्रायण आदि व्रतों को पूर्ण कर क्रमशः वर्षों में तिल व्रत धारी बन गये ।।४/८।। कुछ समय बीतने पर उन पर भगवान शंकर प्रसन्न हो गये । उनने इस लोक और परलोक में शुद्धि और अपना

लोक भी उसे दे डाला। भरत श्रेष्ठ ! उसने भी अपने नाम से श्री शंकर की स्थापना की; भगवान ने संसार में भी 'तिलादेश्वर' नाम को प्राप्त किया। उस समय से यह तीर्थ सब पापों का नाशक प्रसिद्ध हुआ। पार्थ ! मनुष्य उस तीर्थ में चतुर्दशी अष्टमी और एकादशी तिथि में स्नान कर उपवास करते हुए तिलों का हवन, तिलों का उबटन, तिल भोजन, तिल स्नान और तिल मिश्रित जलपान एवं तिलदान से अनेकों पापों से मुक्त हो जाता हैं। तिलों से शिव लिंग को पूर्ण करे तिलों के तैल का दीपक दे ऐसा करने से मनुष्य रुद्रलोक पाता है और सात पीढ़ियों को पवित्र करता है ।।९/१३।। राजश्रेष्ठ ! श्राद्ध में तिलों के पिण्डदान से निन्दित कर्म में भी स्थित पूर्वज उत्तम गति को पाते हैं। स्वर्ग लोक में स्थित पूर्वज श्राद्ध और ब्राह्मण भोजनों से अक्षय तृप्ति पाकर बहुत वर्षों तक प्रसन्न रहते हैं। राजन् ! ऐसा करने वाला मनुष्य पिता माता और पत्नी के कुल का उद्धार कर उन्हें स्वर्ग ले जाता है ।।१४/१६।। एक सौ सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११६।।

एक सौ सत्रहवां अध्याय

वासवेश्वर तीर्थ की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः क्रोशान्तरे पार्थ वासवं तीर्थमुत्तमम् ।
वसुभिः स्थापितं तत्र स्थित्वा च द्वांदशाब्दकम् ।।

श्री मार्कण्डेय ने कहा--पृथानन्दन ! तदनन्तर मनुष्य एक कोस की दूरी पर वसुओं के द्वारा स्थापित 'वासव' तीर्थ हैं। भारत ! पितरों के शाप से ग्रस्त होकर गर्भवास के लिये घर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभाष इन आठ वसुओं ने पहले बारह वर्ष तक रह कर अविकारी भवानी पति श्री शंकर की स्थापना करते हुए इन्द्रियों को वश में रख नर्मदा के इस तीर्थ पर पहुँच कर बारह वर्ष तक तप किया ।।१/३।। राजश्रेष्ठ ! तब उन पर श्रीशंकर जी प्रसन्न हो गये। महेश्वर ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन्हें अभीष्ट उत्तम वर दिया। तदनन्तर वसुगण उन महेश्वर को वहाँ अपने

नाम से स्थापित कर आशुतोष को प्रसन्न जान उन्हें प्रणाम करके आकाश में प्रविष्ट होकर चले गये। उस समय से लेकर वह तीर्थ वासव नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाराज ! जो पुरुष उस तीर्थ में भक्ति पूर्वक प्राप्त वस्तुओं से श्री शंकर जी का पूजन करता है शुक्ल पक्ष की अष्टमी को अथवा प्रति दिन शक्तिपूर्वक प्राप्त वस्तुओं के उपहार पूजन पर प्रयत्न से उन्हें दीपक देता है वह पुरुष आठ हजार वर्ष पर्यन्त भगवान शिवजी के समीप निवास करता है ।।४/७।। पश्चात् वह गर्भवास नहीं पाता। फूल पल्लव-फल और धान्य आदि सुलभ पदार्थों से जो पुरुष भगवान शंकर का पूजन करता है वह पुरुष कभी दीनता नहीं पाता वह सब दुःखों से रहित होकर स्वर्ग लोक में पूजित होता है। कुन्ती नन्दन ! जो पुरुष एक दिन भी वासवेश्वर तीर्थ में निवास करता है। वह पुरुष पापों की राशि को भस्म कर सूर्य के समान स्वर्ग में प्रसन्न रहता है। मनुष्य उस क्षेत्र में जाकर भक्ति से ब्राह्मणों को सुन्दर भोजन कराये वस्त्र और दक्षिणा दे ।।८/११।। एक सौ सत्रहवां अध्याय पूरा हुआ ।।११७।।

एक सौ अठारहवां अध्याय

कोटीश्वर तीर्थ महिमा का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः क्रोशान्तरे पार्थ तीर्थं कोटीश्वरं परम् ।
यत्र स्नानं च दानं च जपहोमार्चनादिकम् ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--पृथा नन्दन ! तदनन्तर एक कोस की दूरी पर उत्तम कोटीश्वर तीर्थ है। जहाँ मनुष्यों के द्वारा भक्ति से किया गया, दान, जप, मोह, पूजा आदि सब करोड़ गुना हो जाता है। वहाँ पर सब देव-गन्धर्व और ऋषि-सिद्ध चारण नर्मदा को देखने के लिये समुद्र के समीप जाते हैं। ये सभी करोड़ों मिलकर नर्मदा समुद्र के संगम में अनुपम आनन्द पाकर वहाँ स्नान तथा श्री शंकर जी की स्थापनाकर कोटीश्वर नामक भगवान शंकर का विधि पूर्वक अपनी-अपनी भक्ति के अनुरूप पूजन करते हैं। सबको

सन्तुष्ट करने से वे कोटी तीर्थ में बड़ी सिद्धि को प्राप्त हुए । उससे वह तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ और अनुपम पुण्य का देने वाला ।।१/५।। श्रेष्ठ राजन् ! उस तीर्थ में शुभ अथवा अशुभ जो कर्म किया जाता है वह सब करोड़ गुना हो जाता है । उस तीर्थ में जो कोई श्रेष्ठ भक्ति मार्ग में स्थित हो जाते हैं वे भी उत्तम अमृत पद पितृलोक को पाते हैं । जो पुरुष श्री नर्मदा जी के उत्तर दक्षिण तट पर स्थित है वे देवलोक जाने वाले हैं यह मेरी निश्चित बुद्धि है । युधिष्ठिर ! मनुष्य बेल और मदार के फूलों से, धतूरे एवं कुशों के द्वारा या ऋतुओं में उत्पन्न अन्य पुष्पों से श्रीशंकर जी का पूजन अनेक उपचारों से विधि पूर्वक मन्त्रों द्वारा करे ।।६/९।। धूप, दीप, नैवेद्य से श्री शंकर जी को प्रसन्न कर मनुष्य शिवलोक में जाकर चौदह इन्द्रों के काल पर्यन्त वहाँ निवास करता है । यहाँ पौष कृष्ण अष्टमी के योग में पूजन का विशेष फल माना जाता है । श्रेष्ठ राजन् ! मनुष्य नित्य ही चतुर्दशी और अष्टमी तिथियों में श्रीशंकर भगवान का पूजन कर भक्ति पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराये इससे मनुष्यों की उत्तम गति प्राप्त होती है ।।१०/१२।। एक सौ अठारहवां अध्यायपूरा हुआ ।।११८।।

एक सौ उन्नीसवां अध्याय

अलिकेश्वर तीर्थ महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः क्रोशान्तरे गच्छेदलिकातीर्थमुत्तमम् ।
अलिका नाम गन्धर्वी कुशीला कुटिलाशया ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर मनुष्य एक कोस में स्थित उत्तम अलिकेश्वर तीर्थ को गमन करे । एक समय चित्रसेन गन्धर्व की दोहत्री यानी धेवती (लड़की की लड़की) निन्दित शीलवती कुटिल चित्तवाली अलिका नाम की गन्धर्वी ने विद्या नन्द नाम ऋषि के समीप जाकर उनको वरण किया । उन ऋषि ने भी उसे स्वीकार किया । वह दस वर्ष तक उनके पास रहीं ।

एक समय किसी कारण वश उसने सोये हुए पति के प्राण हर लिए । फिर पिता के जाकर पिता रत्नबल्लभ से यह सब वृत्तान्त निवेदन किया । राजन् ! वहाँ पिता-माता और बहुत से मनुष्यों ने उसे भय दिखाया । तू गर्भ को नष्ट करने वाली पति की हत्यारी है तू हमको मुंह मत दिखा ।।१/४।। महा पापनी तू ब्राह्मण की हत्या करने वाली है तू सबसे परित्यक्ता है तू घर से चली जा । श्रीमार्कण्डेय जी ने कहा--इस प्रकार दुःखित होकर माता-पिता से घुड़काई जाने पर उसने किसी दूसरे तीर्थ पर जाकर शरीर के त्याग करने की इच्छा की । युधिष्ठिर ! उसने ब्राह्मणों से पापों के विनाशक तीर्थ को पूछा । ब्राह्मणों से श्री नर्मदा समुद्र के संगम में पाप नाशक तीर्थ को सुना और वहाँ जाने का निश्चय किया ।।५/७।। पृथा नन्दन ! वहां जाकर उसने आहार से रहित व्रत से युक्त होकर तप किया । कृच्छ् अति कृच्छ पराक महा सान्तपन तथा चान्द्रायण, ब्रह्म कूर्च आदि भी किये गये नियमों और तप से अपने शरीर को कमजोर किया । राजन् ! इस प्रकार तपस्या से उसके डेढ़ सौ वर्ष बीत गये । श्री शंकर के ध्यान और पूजन आदि से अन्तः करण की शुद्धि की इच्छा करने वाली उसके डेढ़ सौ वर्ष बीत जाने पर कुछ समय के पश्चात् उसका बड़ा हठ समझ कर श्री पार्वती जी के द्वारा प्रेरित होकर प्रसन्न भगवान श्री शंकर जी उससे कहा ।।८/१०।। श्री भगवान सदाशिव बोले--बेटी ! तुम बहस (शोक) मत करो । इस समय तुम शुद्ध शरीर वाली हो आज मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ । तुम मन चाहे वर को माँग लो । अलका ने कहा--देवेश ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और यदि मैं वर पाने के योग्य हूँ तो अनेक पापों को अग्नि से सन्तप्त हुई मेरी शुद्धि कर दो । मुझ अनाथ के तुम्हीं नाथ हो । तुम्हीं तो जगत् के गुरु हो, दीन अनाथों का उद्धार करने वाले और सब देह धारियों के रक्षक भी आप हो ।।११/१३।। श्री शंकर ने कहा--सुन्दर शील वाली देवि--तुम शुद्ध देह वाली हो, तुम शोक मत करो । इस तीर्थ में तुम मेरी स्थापना करने के अनन्तर स्वर्ग जाओगी । ऐसा कहकर

श्रीमहादेव वहाँ ही अन्तर्धान हो गये। तब अलिका ने भी भक्ति से स्नान किया। भगवान शंकर की स्थापना की ब्राह्मणों को दान देकर बहुत उत्तम लोक को प्रस्थान किया। राजन् युधिष्ठिर ! तदनन्तर उस अलिकाने माता और पिता आदि बान्धवों के प्रेम से सम्मानित होकर दिव्य माला धारण किये हुए श्रेष्ठ विमान पर बैठ भगवती गौरी जी के लोक को प्राप्त हुई। वह आज भी सखी रूप से प्रसन्न है। पार्थ ! उस समय से वह तीर्थ अकिलेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१४/१८।। युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जो स्त्री व पुरुष स्नान कर भक्ति से पार्वती के साथ श्री शंकर जी का पूजन करता है वह अनेकों पापों से मुक्त होकर शिवलोक को पाता है। मन से, वाणी से और शरीर से जो पहले किया गया पाप है वह सब नष्ट हो जाता है, उस तीर्थ में ब्राह्मणों को भोजन कराकर और भगवान शंकर को दीपक देकर मनुष्य रोगों से तिरस्कृत नहीं होता। श्रेष्ठ राजन् ! मनुष्य धूप का पात्र, विमान, घण्टा और कलश ये सभी वस्तुएं भगवान शंकर के निमित्त देकर इन्द्र लोक को पाता है ।।१९/२२।। एक सौ उन्नीसवां अध्याय पूरा हुआ ।।११९।।

एक सौ बीसवां अध्याय

विमलेश्वर तीर्थ की महिमा वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- ततः क्रोशान्तरे पुण्यतीर्थं तद्विमलेश्वरम् ।
यत्र स्नानेन दानेन जपहोमार्चनादिभिः ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--तदनन्तर एक कोस ये पुण्य क्षेत्र विमलेश्वर तीर्थ है, जहाँ स्नान, दान, जप, हवन, पूजन आदि शुभ कर्मों से श्री विमलेश्वर की आराधना कर, जो मनुष्य चाहता है, वह उस आराधना से स्वर्ग आदि और पृथिवी के भागों को इच्छानुसार पाता है, यह वही तीर्थ है जहाँ पहले इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा को मारकर जिस तीर्थ के माहात्म्य से बड़ी निर्मलता को प्राप्त किया था ।।१/३।। और जहाँ पहले ब्राह्मण वेद विधि

से बड़ा तपकर विविध कर्मों के क्षीण होने पर सूर्य के समान प्रकाशमान हुए और भगवान शकंर के अनुग्रह से चंद्रमा के समान प्रिय दर्शन हुए, पहले काम वाणों से पीड़ित हुए भानु ने भानुमती पुत्री की कामना की। उस दोष में वह कोढ़ रोग से ग्रस्त हो गया; उसने भी यहाँ तप कर निर्मलता प्राप्त की, भगवान शंकर के प्रसन्न होने पर पुनः अपने स्थान को पाया। कुन्ती नन्दन ! उसी प्रकार पहले विभाण्डक के पुत्र श्रृंगी मुनि वे वन में योगी का संग पाकर बड़े तपस्वी हो गये, पश्चात् राजा की प्रेरणा से वेश्याओं के द्वारा राजा के पुर में पहुँचाये गये। वहाँ राजा के संसर्ग दोष से अपने मनकी मलीनता का विचार करते हुए अपनी पतिव्रता पत्नी शान्ता के साथ नर्मदा सागर संगम में पहुंच कर बारह वर्ष पर्यन्त तप कर कृच्छ् चान्द्रायण आदि व्रतों से मुनि ने भगवान महादेव को प्रसन्न किया। भगवान उमापति के प्रसन्न होने पर वह भी पुनः तेजस्वी ओर निर्दोष हो गये ।।४/१०।। राजन् ! पहले भगवान शंकर भगवती पार्वती से प्रेरित होने पर दारु वन में मुनि पत्नियों को मोहित करने के कारण को दोष युक्त समझ कर नर्मदा समुद्र के पवित्र संगम तीर्थ में स्थित होकर पार्वती के साथ तपकर वह भी निर्मल हुए, उसी से वह विमलेश्वर हो गये, संसार के कल्याण की कामना से वह वहाँ स्वयं उस नाम से स्थित हो गये ।।११/१३।। तदनन्तर प्रजाओं के स्वामी लोक पितामह ब्रह्माजी तिलोत्तमा की सृष्टि कर उसे सर्वप्रथम बहुत सुन्दर देखकर भावी योग के कारण वह ब्रह्मा उन तिलोत्तमा में कामना वाले हुए थे। उस कर्म से अपने को संदोष समझकर नर्मदा के तट पर पहुँचे तीर्थों को यात्रा करते हुए वह तीर्थ में पहुंच कर मौनव्रत धारण कर तीन बार स्नान एवं भगवान शंकर का स्मरण करते रहे, नर्मदा समुद्र के संगम में स्नान कर श्री शंकर जी का पूजन वे करने लगे राजर्षे ! तब थोड़े समय में ब्रह्मा जी भी विशुद्ध हो गये ।।१४/१६।। इसी प्रकार और भी बहुत देव, ऋषि प्रजा आदि अपने अपने दोषों को यहाँ विनाशकर विशुद्ध हो गये। श्रेष्ठ

राजन् ! उसी प्रकार तुम भी वहाँ स्नान कर शिव पूजन से निर्मल होकर विशेष रूप से बड़ी पवित्रता पा लोगे ।।१७/१८।। उस विमलेश्वर तीर्थ में मनुष्य अथवा स्त्री स्नान और भी शंकर जी का पूजन करके पाप दोष से मुक्त होकर वह ब्रह्म लोक में पूजित होता है । जो पुरुष वहाँ उपवास कर अष्टमी और चतुर्दशी में या और सब कालों में स्नान कर विमलेश्वर के दर्शन करता है वह पुरुष सात जन्म के किये हुए पापों को छोड़कर शिवलोक जाता है । विधिपूर्वक से पितरा का श्राद्ध कर मनुष्य पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है वहाँ मनुष्य ब्राह्मणों को शक्ति पूर्वक भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे ।।१९/२१।। संसार में या अपने घर में मनुष्य को जो-२ अत्यंत प्रियवस्तु प्रतीत हो । वह-वस्तु अक्षय फल चाहने वाला किसी गुणवान विद्वान ब्राह्मण को यहाँ दान दे । सोना, चाँदी, धान्य, वस्त्र, छत्र, जूता, कमण्डलु आदि सभी वस्तुएं योग्य ब्राह्मण को दान देना चाहिए मनुष्य अपनी शक्ति से भगवान का मन्दिर बनवा कर पृथिवी में बड़ा ऐश्वर्य शाली होता है । मनुष्य गीत, नृत्य और कथाओं से वहाँ भगवान शंकर को प्रसन्न करे वह उत्तम गति को पाता है ।।२२/२३।। एक सौ बीसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२०।।

एक सौ इक्कीसवां अध्याय

तीर्थ यात्रा परिक्रमा आदि विधान कथन

श्री मार्कण्डेय उवाच--एतानि तव सङ्क्षेपात्प्राविधान्यात्कथितानि च ।
न शक्तो विस्तराद्वक्तुं सङ्ख्यां तीर्थेषु पाण्डव ।।

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा-- पाण्डु नन्दन ! प्रधानता और संक्षेप से इन तीर्थों का वर्णन मैंने तुमसे कहा, विस्तार से इन तीर्थों की संख्या वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । यह पवित्र नदी नर्मदा त्रिलोकी में प्रसिद्ध एवं सब नदियों में श्रेष्ठ है, भगवान शंकर को बड़ी प्रिय है, राजन् ! जो मनुष्य निरन्तर श्री नर्मदा का मन से चिन्तन करता है, वह पुरुष सौ चान्द्रायण का उत्तम

फल पाता है यहाँ जो पुरुष श्रद्धा रहित और नास्तिक स्थित हुए है, वे घोर नरक में गिरते हैं,, ऐसा भगवान शंकर ने कहा है स्वयं भगवान सदाशिव नित्य नर्मदा का सेवन करते हैं, उससे यह नदी अति पुण्यदायिनी है, यह ब्रह्म हत्या का अपहरण करने वाली है ।।१/५।। महेश्वर के शरीर से उत्पन्न है । अतः यह माहेश्वरी गंगा है युधिष्ठिर ! यह भारत वर्ष की दक्षिण गंगा भी है । भागीरथी, जाह्नवी, वैष्णवीगंगा कही और सरस्वती नदी को ब्राह्मी (ब्रह्म सम्बन्धित) सुनी जाती है । पर यह माता नर्मदा शांकरी साक्षात माहेश्वरी गंगा है । इसमें संशय नहीं । जिस प्रकार पुरुष में परमात्मन देव- ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम से तीन मूर्तियों का आश्रय लिए हुए भी भेद से रहित है, उनमें कोई भेद नहीं है । पृथा नन्दन ! उसी प्रकार तुम तीनों नदियों में मन से भेद मत करो ।।६/८।। भरत वंशोत्पन्न राजन् ! यहाँ नर्मदा के दोनों तटों पर स्थित वृक्षों पर अन्तरिक्ष में स्थित जल और स्थल पर हजारों, लाखों, करोड़ों तीर्थ विद्यमान हैं । उनका निर्णय करने में वाणी के ईश्वर वृहस्पति अथवा श्रीमहादेव भी समर्थ नहीं, फिर अन्य कोई क्या समर्थ हो सकता है ? ।।९/१०।। नर्मदा के स्मरण से एक जन्म का, दर्शन से तीन जन्म का और स्नान से सात जन्म का पाप नष्ट होता है । जिस पुरुष ने नर्मदा का स्नान किया है, उसने देव कार्य किया है । अग्नियों में विधि पूर्वक हवन किया है, चारों वेदों का अध्ययन कर डाला । अतः प्रधानता और संक्षेप से मैंने तुम्हें तीर्थ बताये हैं । कुन्ती नन्दन ! मैं इसका विस्तार से वर्णन करने और सुनने में भी समर्थ नहीं हूँ अर्थात् इसका वर्णन और श्रवण मेरी शक्ति से बाहर है । युधिष्ठिर ने पूछा--भगवन आप मुझसे इस विषय में जो विधान हो वह तथा यम और नियम का भी वर्णन करे ओर प्रायश्चित के लिए यात्रा में क्या विधि है वह भी मुझसे कहें ।।११/१४।। श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--महाराज ! जो परलोक में भी कल्याण करने वाला है उस विषय में तुमने अच्छा प्रश्न किया है, तुम सावधान होकर सुनो, मैं अपनी बुद्धि

के अनुसार तुमसे कहता हूँ, यह मनुष्य अनित्य शरीर से नित्य सुख देने वाले कर्म का भली भाँति आचरण करे, ये प्राण अतिथि जन की भाँति अवश्य मेव जाने वाले हैं, असार धन से, दान रूपी सार, सार रहित वाणी से सत्य रूपी सार; और व्यर्थ बीत जाने से सार रहित आयु से, कीर्ति धर्म रूपी सार एवं सार रहित शरीर से परोपकार रूपी सार का संग्रह करे, इस बड़े मोहसे पूर्ण कड़ाह देव; सूर्यरूपी अग्नि से, रात्रि दिन रूपी ईंधन से और मास ऋतु रूपी कलछी (जिससे लोग कढ़ाई में साग आदि चलाते हैं) को चलाकर भूतों को पकाते हैं यही बात है ।।१५/१८।। अतः शास्त्र विधान से कहे गये कर्म को समझ कर तुम्हें कर्म करना चाहिए, संशय में पड़े हुए पुरुष का तो न लोक सुखद है और न परलोक ही बनता है ।।१९।। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि और गुरु इन सभी में जिसकी जैसी भावना होती है, वैसी सिद्धि उसे होती है । कुन्ती नन्दन ! अश्रद्धा से किया गया हवन, दिया गया दान, किया गया तप और जो कुछ किया जाता है वह सब असत् और (निन्दित) कहा जाता है, वह न तो मरकर सुखद होता है और न यहाँ ही; जो पुरुष शास्त्र की विधि का त्याग कर इच्छानुसार व्यवहार करता है वह पुरुष न तो सिद्धि पाता है और न सुख परम गति तो होना ही क्या है ? ।।२०/२२।। मनुष्यों के शरीर की शुद्धि करने वाले यहाँ अनेकों उपाय हैं, पर तीर्थ सेवन के समान अपने शरीर की शुद्धि करने वाला अन्य कोई उपाय नहीं है । शरीर की शुद्धि कृच्छ्र चान्द्रायण आदि से अथवा तीर्थों के सेवन से होती है, राजन् ! मनुष्य जब तीर्थ का उद्देश्य लेकर चलता है, तब देवगण, पितृगण, आकाशचारी हुए बहुत हर्ष से पूर्ण होकर वे उसका अनुगमन करते हैं । अभ्युदय; निमित्तक, नान्दी श्राद्ध करके देवता से इष्ट बन्धुओं से पूछकर, ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर नियमों को ग्रहण करता हुआ, भगवान विष्णु शंकर की शरण में प्राप्त हो ।।२३/२६।। इस तीर्थ यात्रा में (परिक्रमा में) श्रेष्ठराजन् ! एक बार भोजन ब्रह्मचर्य, भूमि

शयन, सत्य भाषण, दूसरे के अन्न का त्याग, प्रतिग्रह--दूसरे के दान का ग्रहण न करना, द्रोह; धोखेबाजी को छोड़कर साधु सरल वेष को धारण कर, विनय से युक्त होकर जो पुरुष पाखण्ड और अहंकार से मुक्त होता है, वह पुरुष तीर्थ के फल को पाता है, जिस पुरुष के दोनों हाथ पैर और मन बहुत संयम पूर्ण हैं, शुद्ध और सात्विक प्रवृत्ति वाले हैं, जिसमें विद्या, तप और कीर्ति का निवास है वही पुरुष तीर्थ के फल को पाता है। राजन् ! जो पुरुष क्रोध से रहित है, सत्य भाषण का प्रेमी, दृढ़ व्रत वाला और जीवों में अपने समान ही व्यवहार करने वाला है वह पुरुष तीर्थ के फल को पाता है। कुरुक्षेत्र, बदरीनारायण (बद्रीविशाल) विरजा और गया को छोड़कर सब तीर्थों में मुण्डन और उपवास यह विधि पूर्वक आवश्यक है। स्नान, देव पूजन और श्राद्ध में पिण्ड दान, शक्ति पूर्वक ब्राह्मण भोजन सब तीर्थों में यह विधि है, जो पुरुष प्रायश्चित्त के लिये नियमित मन वाला होकर तीर्थ यात्रा करता है ।।२७/३३।। कुन्ती नन्दन ! उसकी भी विधि मैं तुमसे कहता हूं, तुम सावधान होकर सुनो। एक बार भोजन; ब्रह्म चर्य, क्षार और लवण भोजन का त्याग स्नान कर तीर्थ का गमन, हवन योग्य पदार्थों में एक अन्न का भोजन करना चाहिए, पतित पुरुषों से भाषण का भी मनुष्य त्याग करे, दूसरों की निन्दा और दूसरों का अन्न भी छोड़ दे; नीच पुरुषों का संग भी त्याज्य है, जूते न पहिनते हुए गमन करे, पवित्र होकर केवल दो वस्त्र पहिने, मन में संकल्प कर ब्राह्मणों की आज्ञा से यात्रा करे, तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान कर देव पूजन कर किये गये पापों का पश्चाताप कर मनुष्य दुष्कर्मों से मुक्त हो जाता है, वेद, तीर्थ, देवता, ज्योंतिषी, औषधि और गुरु में मनुष्य की जैसी भावना होती है, उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है। भरत वंश श्रेष्ठ ! पुराणों और स्मृतियों में कहे गये तीर्थों के फलों में अर्थवाद की शंका छोड़कर विचार सुस्थिर करके यथायोग्य शास्त्र में कथित विषय की उचित कल्पना करे; आत्म शुद्धि के लिए शरीर से कष्ट मरण से अशक्ति समझ कर तीर्थ

विशेष में मनुष्य उचित प्रायश्चित्त करे ।।३४/४१।। महाराज ! तुम नर्मदा के किये गये उस प्रायश्चित को सुनो--मनुष्य चौबीस योंजन दूरी से जाकर चौबीस कृच्छ्र व्रतों का उत्तम फल पाता है, इसके ऊपर योंजनों में पाद कृच्छ फल बताया गया है । महाराज ! उसके बीच में जो मनुष्य शुद्धि की आकांक्षा से गमन करता है, विद्वान लोग योंजनों में ही उसे प्रायश्चित कहते हैं । महाराज ! प्रणव तीर्थ में और नर्मदा तथा उरि के संगम में भृगुक्षेत्र में जाकर मनुष्य दो गुना फल पाता है । श्रेष्ठराजन् ! देव नदी के संगम शूलभेद तीर्थ में पादहीन (चौथाई कम) द्विगुणित फल होता है, वैसे ही करजा संगम, एरण्डी संगम उसी प्रकार कपिला संगम में तथा कुब्जा नर्मदा के संगम के कुछ लोग तीन गुना फल कहते हैं ।।४२/४७।। महाराज ! ओंकार क्षेत्र में भी मनुष्य को तीन गुना फल मिलता है । युधिष्ठिर ! नर्मदा के साथ अन्य नदियों के संगमों में कृच्छ चान्द्रायण का ड्योढ़ा फल मिलता है । ऐसा वे प्राचीन आचार्य कहते हैं । नर्मदा और समुद्र के संगम में तीन गुना फल मिलता है । युधिष्ठिर ! शुक्ल तीर्थ में कृच्छ का चौगुना फल मिलता है । उत्तम मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन् ! मनुष्य योंजन (चार कोस) के अनुसार २४ योंजन चलकर मध्य-मध्य में वहाँ बहुत समय तक जो बास करता है ।।४८/५०।। पाप शुद्धि के लिए मनुष्य यदि पाखण्ड अहंकार से रहित होकर शुद्धि-बुद्धिवाला होकर नर्मदा के सेवन से तत्पर होता है । वह पापों से छूट जाता है; कुन्ती नन्दन युधिष्ठिर ! इस प्रकार तुमसें हमने प्रायश्चित के अर्थ लक्षण और गोपनीय नर्मदा यात्रा का विधान कहा । युधिष्ठिर ने कहा--तुम मुझे योजन का प्रमाण बताओ । शुद्धि के कारण जिसे जानकर मेरा मन निश्चिंत और सावधान हो । क्योंकि मन ही शुद्धि का कारण है । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा--पाण्डु नन्दन ! योजन का प्रमाण मैं तुमसे कहता हूं तुम सुनो । और तीर्थ यात्रा के विशेष रूप से कृच्छ से उत्पन्न विशेष धर्म को भी मैं कहूँगा

।।५१/५४।। यव (जौ) के तिरछे आठ मध्य भाग अथवा तीन धान यह एक अंगुल का प्रमाण है इस प्रकार के बारह अंगुल को विलस्त (बीता) कहते हैं दो बीता को हाथ और चार हाथ को धनुष कहते हैं । युधिष्ठिर विशेषज्ञ लोग उसे ही दण्ड कहते हैं ।।५५/५६।। दो हजार धनुष को कोस कहते हैं और चार कोस को योंजन कहा जाता है । भरतश्रेष्ठ ! यह योंजन का मान तुमसे कहा गया जिससे तीर्थ यात्रा में गमन करता हुआ पुरुष अपने द्वारा प्राप्त फल के प्रमाण को जान लेता है राजश्रेष्ठ ! इस प्रकार जल रूपी तीर्थ में कृच्छ वृत्त का फल तुम्हें मैंने बताया । पहले कहे गये उन तीर्थों में जो विशेषता है श्रद्धा करने वाले तुमसे मैं उसे कहता हूँ राजन् वह सुनो ।।५७/५९।। जिस तीर्थ में जो कृच्छ आदि के फलरूप फल कहा गया है वहाँ भी उपवास से अधिक कृच्छ्रफल मनुष्य पा लेता है मनुष्य वहाँ शक्तिपूर्वक मन्त्र जप से कृच्छ का फल पाता है । वहां ही बुद्धिमान् पुरुष स्नान कर प्रसिद्ध देवाधि देव श्री शंकर का दर्शन और पूजन और प्रणाम कर युधिष्ठिर कृच्छ्र के फल को पाता है । तीर्थ में मुख्य फल स्नान से और दूसरा फल उपवास से होता है । वहाँ देव के दर्शन पूजन आदि से तृतीय फल, दिन रात शरीर की शक्ति के अनुसार जप के करने से चतुर्थ फल सब तीर्थों में दूर से पञ्चम फल के समान कल्पित होता है । तीर में स्थित मनुष्य सब फल पाता है । मनुष्य चार कोस से कम दूरी पर स्थित होकर दशांश फल पाता है, कुन्ती नन्दन ! उपवास पूर्वक महानदी में स्नान भोजन से पहिले भी मनुष्यों को कृच्छ व्रत का फल देता है, छै योंजन अर्थात् अड़तालीस कोस बहने वाली छोटी नदी चोबीस योंजन अर्थात् छैआनवे कोस तक बहने वाली नदी और इससे अधिक बहने वाली महानदी कहलाती है ।।६०/६७।।

एक सौ इक्कीसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२१।।

एक सौ बाईसवां अध्याय

परार्थ यात्रा के फल का कथन

युधिष्ठिर उवाच-- परार्थ तीर्थयात्रायां गच्छतः कस्य किं फलम् ।
कियन्मात्रं मुनिश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ।।

युधिष्ठिर ने कहा--दूसरे के लिए तीर्थ यात्रा में जा रहे पुरुष को क्या फल होता है । मुनि श्रेष्ठ ! कृपा से पूर्ण हृदय ब्रह्मन् ! वह फल किस रूप वाला और कैसा है ? कहें ।।१।। मार्कण्डेय ने कहा--दूसरे के लिए तीर्थ यात्रा करने वाले पुरुष को यात्रा से होने वाला जैसे जितना फल मिलता है वह तुम मुझसे सुनो । राजन् ! यहाँ अपने से नीच वर्ण के लिए धन के लालचं आदि किसी भी कारण से उत्तम वर्ण को तीर्थ यात्रा आदि कार्य नहीं करना चाहिए । महाराज ! विद्वान् मनुष्य स्वयं ही शरीर की शक्ति से अथवा कार्य योग से धर्म-कर्म का भली भाँति आचरण करे ।।२/४।। मनुष्य प्रायः सदा ही अपने पुत्र पौत्र आदि से अपने वंश में होने वाले बान्धवों से अथवा समान वर्ण वाले पुरुष से ही धर्म-कर्म का आचरण कराये । युधिष्ठिर ! क्योंकि स्वयं किया गया अथवा अपने बन्धुओं से विहित धर्म-कर्म को ही आचार्य श्रेष्ठ बताते हैं अतः उनसे ही धर्म-कर्म का आचरण कराना चाहिए । अपने से उत्तम अथवा अधम से नहीं ।।५/६।। क्योंकि अपने से नीच के द्वारा किया गया कार्य अच्छा नहीं हो सकता ऐसी मेरी बुद्धि है और अपने से नीच के लिए धर्म का आचरण करने वाला पुरुष दुर्गति पाता है धर्म से भ्रष्ट पुरुष को सद्बुद्धि न दे । क्योंकि वह उसका आदर करने वाला नहीं होता । उसे उच्छिष्ट (जूँठा) भी न दे, हवनीय भक्ष भी न दे । इसे धर्म का उपदेश देना भी उचित नहीं और इस पतित पुरुष को व्रत्ताचरण की आज्ञा भी न दे ।।७/८।। वेद मन्त्रों का जप 'तप' तीर्थ यात्रा अशुद्ध मन से संन्यास मन्त्र साधन, वैदिक मन्त्रों से देवता की उपासना और दीक्षा लेना ये सभी कर्म, अपने विहित कर्मों का त्याग कर स्त्री शूद्रों के पतन कराने वाले हैं । पतिवाली स्त्री ऐसा कर निश्चय ही पतित होती है । हाँ, विधवा स्त्री इन सबका आचरण

करे । पतिवाली स्त्री भी आज्ञा पालन करने वाली पति के होते हुए उनकी आज्ञा से ही सब करे । मनुष्य दूसरे के लिए तीर्थ यात्रा आदि सत्कर्म कर पुण्यफल का सोलहवाँ भाग पाता है । अन्यत्र जाने वाले पुरुष को प्रसंगवश तीर्थ गमन आधा फल देता है । प्रसंगवश व अन्य कार्य वश तीर्थ स्थान में स्नान का फल आचार्य समझते हैं । तीर्थ यात्रा के फल को जानकर लोग उससे तीर्थ यात्रा का सम्पूर्ण फल नहीं कहते शास्त्र विहित कर्म धर्म ही पापों का विनाशक है ।।९/१२।। मनुष्य पिता के लिए, पिता भाई के लिए, माता और नाना के लिए, मामा और भाई के लिए, स्वसुर और पुत्र के लिए अपने पोषक और सहायक नानी और गुरु के लिए, बहन और मौसी के लिये अपने आचार्य (उपनयन कर देव विद्या का उपदेश देने वाले) और अध्यापक आदि के लिये तीर्थ में स्नानकर स्वयं अष्टमांश को पाता है । साक्षात् माता-पिता के लिये स्नान करने वाले पुरुष चौथाई भाग पाता है ।।१३/१५।। विद्वान् लोग परस्पर पत्नी और पति की एक दूसरे के लिये यात्रा करने पर आधा-फल बतलाने हैं । मनुष्य भाँजे और शिष्य भाई के पुत्र और पुत्र के लिये स्नान कर क्रमशः 'छठा' 'तीसरा' 'पाँचवाँ' और चौथाई भाग पाता है । कुन्ती नन्दन ! इस प्रकार परम्परा के क्रम से प्राप्त अपने बन्धुओं के ओर दूसरे के लिये धर्म का साधन कर्तव्य हमने तुमसे बताया । वर्षा ऋतु के सम्बन्ध से पृथिवी की सम्पूर्ण नदिया सरस्वती गंगा, नर्मदा और यमुना नदी को छोड़कर रजोगुण वाली मलिन दूषित जल वाली होने से अशुद्ध मानी जाती है । अतः उस समय का उनका सेवन निषिद्ध होता है ।।१६/१८।। एक सौ बाईसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२२।।

एक सौ तेईसवां अध्याय

रेवाखण्ड के पठन श्रवण दान का वर्णन

श्री मार्कण्डेय उवाच-- एवं ते कथितं राजन्पुराणां धर्मसंहिताम् ।
शिवप्रीत्या यथा प्रोक्तं वायुना देवसंसदि ॥

श्री मार्कण्डेय ने कहा--राजन् ! भगवान शंकर के अनुग्रह से देव सभा में जिस प्रकार वायु देव ने कहा था । इसी प्रकार धर्म से युक्त यह पुराण मैंने तुमसे कहा । श्री नर्मदा में श्री पद-पद पर आदि-मध्य-अन्त में साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ है देवाधिदेव श्रीशंकर को कहते हुए पहले मैंने जो बारह हजार श्लोकों वाली संहिता सुनी थी वह तुमसे मैंने कही । राजन् ! अमरकंटक पर स्थित मैं तुम्हारे द्वारा पूछा गया हूँ अतः संक्षेप में मैंने तुमसे सब कहा ॥१/४॥ श्री नर्मदा का चरित्र पुण्य प्रद है उसका जो फल है तुम उसे भी सुनो । छै अंग पद क्रमों के साथ सब वेदों के पढ़ने व सुनने पर जो फल होता है उससे अधिक इसमें फल है । बारह वर्ष पर्यन्त शास्त्र विहित यज्ञ करने वाला पुरुष जो फल पाता है श्री नर्मदा के चरित्र सुनने पर मनुष्य वैसा ही फल पाता है संमुद्र से लेकर सब तीर्थों में स्नान करने से जो फल होता है वह फल नर्मदा में एक बार स्नानकर पुण्य ओर नर्मदा के चरित्र को सुनकर होता है । श्री नर्मदा का चरित्र आदि मध्य और अन्त सब में ही शुभ है । जो मनुष्य इस चरित्र को प्रेम से सुनता है तुम उसके पुण्य फल को सुनो । ऐसा पुरुष शिवलोक जाकर रुद्र कन्या से युक्त होकर रुद्र का अनुचर होकर उनके साथ आनन्दित होता है ॥५/९॥ भारत ! सब शास्त्रों में श्रेष्ठ यह धर्म युक्त उपाख्यान चारों वर्णों में जिस-जिस किसी के भी घर में देश में मंडल में ग्राम अथवा नगर में होती है वह ब्रह्मा-शिव वह साक्षात् विष्णु हैं । यह संसार में तीन प्रकार के धर्म का उत्तम कारण रूप मार्ग है । वेदों में भी सामान्य परम सिद्ध का कारण यह शास्त्र है । कुन्ती नन्दन यह सब श्रीशंकर के मुख से सुनकर मैंने तुमसे कहा है ॥१०/१३॥ श्री नर्मदा

के उत्तर और दक्षिण तट पर जो तीर्थ है प्रधान रूप से वे विशेष पुण्य दायक हैं ॥१४॥ उन तीर्थों के स्पर्श और दर्शन के कीर्तन तथा श्रवण से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । रुद्रलोक में जाता है । भगवान शिव के द्वारा कहे गये इस पुराण को जो नित्य सुनता है वह ब्राह्मण हो तो वेद विद्या सम्पन्न होता है । और यदि क्षत्रिय हो तो विजयी होता है । वैश्य धन सम्पन्न और शूद्र धर्मात्मा हो जाता है ॥१५/१६॥ स्त्री इसे सुनकर सौभाग्य सन्तान स्वर्ग और धन को पाती है ॥१५/१७॥ ब्राह्मण की हत्या करने वाला मदिरा पायी जो गुरु शय्या गामी ये सभी पापी श्री नर्मदा की महिमा को सुनकर पापों से छूट जाते हैं । दूसरों के पापों का उघाड़ने वाला कृतघ्न, स्वामी के विश्वास का नाशक गौ हत्यारा और विष देने वाला कन्या का विक्रय करने वाला ये सभी पापी इस आख्यान को सुनकर सर्व पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं । राजन् ! फिर जो पुरुष शुद्ध चितवाले होकर निरन्तर इस नर्मदा पुराण (आख्यान) को सुनते हैं उनके विषय में क्या कहना ? इसका पूजन करने वाले पुरुषों द्वारा देव-गुरु सभी पूजित हो गये समझो उसने नर्मदा और श्री शंकर जी का पूजन कर लिया ॥१८/२१॥ जिसने इस ग्रन्थ का पूजन किया उससे सब प्रकार से चन्दन फूल और भूषण आदि पावन भक्ति से पूजित हुआ यह शास्त्र फल देने वाला है सब शास्त्रों में इस सम्पूर्ण शुभ नर्मदा चरित्र को शुद्ध लिखकर जो पुरुष विद्वान पुरुष को देता है । वह पुरुष उत्तम सुखों को भोगकर उत्तम गति पाता है ! श्री नर्मदा के सब तीर्थों में स्नान दान से जो फल मिलता है वह पुरुष उस फल को पाता है इसमें संशय नहीं है ॥२२/२४॥ यह पुराण श्री शंकर जी के द्वारा कहा गया है यह बहुत पुण्य फल का देने वाला है । स्वर्ग और पुत्र को देने वाला धन और यश का देने वाला कीर्ति का बढ़ाने वाला (जीवित पुरुष का यश और मृत पुरुष की कीर्ति कही जाती है) कुन्ती नन्दन ! यह पुराण पढ़ने और सुनने वाले पुरुषों के सब पापों का विनाशक दुःख दुःस्वप्न

का भी नाशक सब कर्मों की सिद्धि देने वाला है। इस पुराण के सुनने में शान्ति और कल्याण हो सभी लोग रोग रहित हों। गौओं और ब्राह्मणों का कल्याण हो। धर्म सबका आश्रय बने तीर्थ सहित यह नर्मदा नरक का अन्त करने वाली है। कुन्ती नन्दन! नर्मदा, सदा तुम्हें सुख दे ॥२५/२८॥ एक सौ तेइसवां अध्याय पूरा हुआ ॥१२३॥

एक सौ चौबीसवां अध्याय

तीर्थावलि वर्णन

सूत उवाच-- *इत्युक्त्वोपरराामाथ पाण्डोः पुत्राय वै मुनिः ।*
मृकण्डतनयों धीमान्सप्तकल्पस्मरः पुरः ॥

सूत ने कहा--सात कल्पों का स्मरण करने वाले मृकण्डु के पुत्र परम तीव्र बुद्धि वाले मार्कण्डेय जी पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर से ऐसा कहकर चुप हो गये। मान्य ब्राह्मणों! महर्षि मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से जैसी कही मैंने वैसी ही सम्पूर्ण उत्तम श्री नर्मदा की महिमा तुम सबसे कही है। श्री शंकर के शरीर से उत्पन्न सब जीवों को अभय देने वाली विश्व को पवित्र करने वाली दिव्य नदी यह नर्मदा परम पुण्य देने वाली है ॥१/३॥ श्री मार्कण्डेय जी से पूछा जाने पर युधिष्ठिर को ओंकारेश्वर से समुद्र पर्यन्त जैसे जितने तीर्थों और संगम भेदों को उन्होंने बताया मुनियों। मैं वैसे ही तुम सबसे संक्षेप से कहता हूँ। साठ करोड़ सड़सठ हजार तीर्थों का वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी कौन किस प्रकार कर सकता है? श्रेष्ठ मुनिगण! तो भी जिस तरह युधिष्ठिर को बताया गया है, उसी तरह मैं भी तुमसे ओंकारेश्वर तीर्थ से लेकर सब तीर्थों का वर्णन करता हूँ। महर्षिगण! संक्षेप से कहे जा रहे उन तीर्थों को तुम सुनो। पार्वती सहित भगवान शंकर को नमन कर ब्रह्मा और विष्णु को सरस्वती और श्री गणेश को तथा वेदव्यास जी के चरण-कमलों को नमन कर अदृष्ट अलौकिक अर्थों को बताने वाले सब पूर्ववर्ती आचार्यों को सादर प्रणाम कर अनेक ग्रन्थों को देखकर श्री नर्मदा देवी को

भी प्रणाम करता हुआ मैं तीर्थों का वर्णन करूँगा ।।४/९।। ब्राह्मणों विश्व रूपवाले प्रणव स्वरूप सबके रक्षक ब्रह्मा, विष्णु शिवात्मक सब की आत्मा ओंकार के लिए मेरा नमन है । जिसका आरम्भ कर मैं नर्मदा के तीर्थों का वर्णन करता हूँ । श्री मार्कण्डेय मुनि के द्वारा कहे गये इस मंगलमयी श्री नर्मदा के तीर्थ क्रम में सर्व प्रथम पुराण सहिताओं का सविधि वर्णन, मार्कण्डेय मुनि के आश्रम का वर्णन ।।१०/११।। तदनन्तर प्रश्नाधिकार, श्री नर्मदा के माहात्म्य का वर्णन, पुनः श्री नर्मदा के प्रवाहों के अनुसार उनके पन्द्रह नामों का कथन और नामों की व्याख्या कल्पों की उत्पत्ति इक्कीस कल्पों के नाम का कथन, श्री मार्कण्डेय महर्षि के द्वारा अनुभूत सात कल्पों के लक्षण, अनन्तर श्री नर्मदा और श्री शंकर के माहात्म्य का वर्णन है ।।१२/१४।। संहार का लक्षण, ओंकार की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य, अमरकंटक की महिमा का कथन, अमरेश्वर और सुन्दर दारुवन, दारुकेश्वर तीर्थ और चारुकेश्वर तीर्थ, चरुका संगम उसी प्रकार व्यतीपातेश्वर तीर्थ, पातालेश्वर तीर्थ और कोटियज्ञ तीर्थ, वरुणेश्वर तीर्थ तथा एक सौ आठ लिंगों का वर्णन, सिद्धेश्वर, यमेश्वर इसके अनन्तर ब्रह्मेश्वर, सारस्वत, अष्टरुद्र, सावित्री और सोमतीर्थ ब्राह्मणो ! अनन्तर महातीर्थ, शिवखात, रुद्रावर्त, उत्तम महावर्त तीर्थ अनन्तर सूर्यावर्ततीर्थ इसके आगे पिप्पलावर्त और पिप्पलीका संगम, अमरकण्टक का माहात्म्य, कपिला का कथन ।।१५/२१।। पुण्य विशल्या संगम, करमर्दा संगम, करमर्देश्वर तीर्थ और बहुत उत्तम चक्रतीर्थ, नीलगंगा का संगम, त्रिपुरा सुर का विनाशक तीर्थ और दोनों का कथन मधुक तृतीया व्रत अत्सरेश्वर तीर्थ देहत्याग विधि, ज्वालेश्वर तीर्थ और ज्वाला संगम ।।२२/२४।। शक्रतीर्थ, कुशावर्त और हंस तीर्थ अम्बरीष तीर्थ एवं महाकालेश्वर, मातृकेश्वर तीर्थ भृगुतंग का वर्णन, वहाँ भैरव का महात्म्य चपलेश्वर का वर्णन, चण्डपाणि का माहात्म्य, कावेरीसंगम, कुवेरेश्वर तीर्थ और वाराही संगम, चण्डेश पुण्यप्रद एरण्डी

संगम और उत्तम एरण्डेश्वर पितृतीर्थ और उसके समीप ओंकार की उत्पत्ति, श्रेष्ठ मुनियों पाँच लिंग का और औंकार का माहात्म्य वर्णित है ॥२५/२९॥ कोटितीर्थ का माहात्म्य, काकह्रद जम्बुकेश्वर तीर्थ तदनन्तर सारस्वत तीर्थ, कपिला संगम तथा उसी प्रकार कपिलेश्वर तीर्थ, तैत्यसूदन तीर्थ, चक्र तीर्थ, वामन तीर्थ, कपिला संगम तीर्थ में पूर्व की ओर एक लाख तीर्थ हैं ऐसा आचार्य जानते हैं मुनियों ने स्वर्ग और नरक का भी लक्षण कहा है ॥३०/३२॥ शरीर की स्थिति, गो-दान की विधि, ओशोक बनिका तीर्थ, मतंग-महर्षि के आश्रम का वर्णन, अशोकेश्वरतीर्थ, श्रेष्ठ मतंगेश्वर, पुण्य मृगवन, मनोरथतीर्थ अंगारगर्ता का संगम और उत्तम अंगेश्वर, मेघवन तीर्थ देवों के नामों का कथन, कुब्जा संगम, कुब्जेश्वर तीर्थ बिल्वाम्रक और पूर्ण द्वीप ॥३३/३६॥ पुण्य कीर्तन वाला हिरण्यगर्भा का संगम दीपेश्वर नाकतीर्थ और पुण्यदायक यज्ञेश्वर तीर्थ, माण्डव्याश्रम तीर्थ, विशीका संगम, वागीश्वर तीर्थ और वागुसंगम ॥३७/३८॥ सहस्त्रावर्त और सौगन्धित तीर्थ, सरस्वती संगम तथा उत्तम ईशान तीर्थ तीन देवताओं का तीर्थ, पश्चात् शूलखात, 'ब्राह्मोद' शंकर सौम्य एवं सारस्वत तीर्थ सहस्त्रयज्ञ तीर्थ कपालमोचन अग्नि तीर्थ और नर्मदा समुद्र के संगम में विमलेश्वर तीर्थ। महर्षियों ! इस प्रकार मैंने इन पुण्य तीर्थों का वर्णन मैंने तुमसे किया। यह पुण्य तीर्थ रूपा मुक्तापंक्ति तटरूप रज्जुसे गूँथी हुई है। तटरूपी रश्सी से गूँथी यह पुन्य तीर्थ मुक्तावली महर्षि मार्कण्डेय द्वारा रचित नर्मदा के जल से शोधित होकर सत्पुरुषों की शोभा के लिए और सब लोकों के लिए हैं। यह अज्ञानरूपी अंधकार को शान्त करने वाली है। धर्म के चाहने वाले पुरुषो को सदा इसको धारण करना चाहिए। एक बार इसका पाठकर मनुष्य अपने दिन रात्रि के पाप को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। तीन काल पाठ कर एक मास के पाप को नष्ट करता है। भगवान श्री शंकर जी के सामने पाठ कर तीन मास के पाप को नष्ट करता है एक मास पाठ कर एक वर्ष के पाप और इस अध्याय

का एक वर्ष पर्यन्त पाठकर सौ वर्ष के पाप को नष्ट करता है । श्राद्ध के समय भोजन कर रहे ब्राह्मणों के सम्मुख स्थित होकर इस पुण्यसमूह का पाठ करता हुआ मनुष्य गया श्राद्ध के करने का फल पाता है । देवों के पूजन समय श्रद्धा से देवों के सम्मुख पढ़ते हुए मनुष्य सब देवों को प्रसन्न कर लेता है और सम्पूर्ण कुल को पवित्र कर देता है । श्रेष्ठ मुनियों ! श्री नर्मदा के दोनों तटों पर रहने वाली यह पुण्य तीर्थावली मैंने तुम्हें बताई निष्पाप मुनियों ! तुम वैसा ही सुनो समझो । एक सौ चौबीस अध्याय पूरा हुआ ।।१२४।।

एक सौ पच्चीसवां अध्याय

तीर्थ संख्या का वर्णन

श्री सूत उवाच-- तथैव तीर्थशतबकान्वक्ष्येहंसुखिसत्तमाः ।
यैस्तुतीर्थावईगुम्फः पूर्वोक्तैरेकतः कृतः ।।

श्री सूत ने कहा--श्रेष्ठ ऋषियों ! उसी प्रकार मैं तुमसे तीर्थों के समूह का वर्णन करता हूँ । जिन पूर्वोक्त तीर्थों के द्वारा तीर्थ समूह को एकत्रित वर्णन हो गया है उन तीर्थों का पृथक पृथक वर्णन भक्तिमान पुरुषों के लिये शुभ और आनन्दायक है । पहिले पूछ रहे राजा युधिष्ठिर से मृकण्ड पुत्र मार्कण्डेय ने जैसे तीर्थों के समूहों का वर्णन किया है । मैं वैसे ही तीर्थ राशि का पृथक वर्णन करता हूँ । शिव जलपान से उत्पन्न नर्मदा रूप कल्पलता बड़ी पुण्यदायिनी है ।।१/३।। यह दोनों तटों पर स्थित तीर्थ रूपी फूलों से पुष्पित कल्याणकारी जिस नर्मदा के गुण गन्ध की शोभा से सम्पूर्ण त्रिलोकी सुगन्धित है । उस पुण्य रस के आस्वादन करने वाले उत्तम भ्रमर के रूप में बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मुनि मार्कण्डेय जी है । तीर्थों में गुच्छों से विचित्र वर्णन वाली उस पुण्य पुष्प माला को भृगुकुल श्रेष्ठ मुनि मार्कण्डेय निरन्तर धारणा करते है । श्रेष्ठ ऋषिगण ! नर्मदा सम्बन्धित तीर्थों के पृथक पृथक गुच्छे का मैं क्रम से वर्णन करूँगा ।।४/६।। ओंकार तीर्थ से लेकर पश्चिम समुद्र

पर्यन्त पापों के विनाशक नदियों के पैंतीस संगम है । उत्तर तट पर ग्यारह और दक्षिण तट पर तेईस पैंतीसवाँ नर्मदा समुद्र संगम परम श्रेष्ठ है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! इस प्रकार श्री नर्मदा के दोनों तटों पर संगमों के साथ चार सौ तीर्थ प्रसिद्ध है ।।७/९।। वहाँ तीन सौ तैंतीस शिव तीर्थ हैं । श्रेष्ठ पुरुषों ! उनमें भी व्यक्तिगत मैं तुमसे कहता हूँ तुम उन्हें सुनो ।।१०।। श्रेष्ठ मुनिगण उनमें दश मार्कण्डेय तीर्थ हैं । दस सौर्य और नौ कपिलेश्वर हैं । चन्द्रमा के द्वारा स्थापित आठ और उतने ही नर्मदेश्वर, आठ कोटि, सात सिद्धेश्वर हैं । सात नागेश्वर, नर्मदा के दोनों तटों पर सभी स्थित है । अग्निदेव के द्वारा स्थापित सात और सात आवर्तक पांच केदारेश्वर पांच वरुणेश्वर, पांच देव, चार यमेस्वर, चार वैद्यनाथ, चार वानरेस्वर ।।११/१५।। हे मुनीश्वर ! चार अंगरेश्वर, चार सारस्वत चार दारुकेश्वर, गौतमेश्वर, तीन, रामेश्वर तीन कपालेश्वर, तीन हंस, तीन मोक्ष और तीन विमलेश्वर और सहस्त्र यज्ञ भी तीन ही है । ऐसा मुनि ने कहा है प्रसिद्ध तीन भीमेश्वर, तीन स्वर्ण, दो धौतपाप, दो करन्जेश्वर ।।१६/१९।। दो ऋणमोचन तथा दो स्कन्देश्वर ब्राह्मणो ! दो दशाश्वमेघ, दो नन्दी, दो कामेश्वर, दो भृगु, दो पराशरेश्वर, दो अयोनि सम्भव, दो व्यासेश्वर, दो पितृ भी कहे गये हैं । दो नन्दिकेश्वर स्मरण किये गये है । दो मारुतेश्वर, दो ज्वालेश्वर, दो शुक्ल पुन्य दायक दो अप्सरेश्वर, दो पिप्लेश्वर, दो मान्डव्येश्वर नामक भृगुवंश श्रेष्ठ ! उसी प्रकार दो दीपेश्वर भी कहे गये हैं ब्राह्मणों शेष उन्नीस सो एक तीर्थ एक-एक पृथक है । गुच्छों में दो सो चौदह तीर्थ बताये गये हैं ये सभी तीर्थ शिव से सम्बन्धित है । श्रेष्ठ मुनियों ! अब तुम कहे जा रहे विष्णु तीर्थ, ब्रह्म तीर्थ और शक्ति तीर्थ भी क्रमशः सुनो ।।२५/२७।। महर्षि ने अठ्ठाइस विष्णु तीर्थ बताए है श्रेष्ठ मुनियों ! उनमें ६ वराह तीर्थ हैं । चार चक्र तीर्थ शेष अठारह श्रीविष्णु के द्वारा अधिष्ठिन है । ऐसा श्री मार्कण्डेय ने कहा है । उसी प्रकार सिद्धि के ब्रह्म तीर्थ सात है तीन में ब्रह्मा को पूजा ओर चार

ब्रह्मा ओर शंकर के हैं । इस प्रकार मैंने संख्या और क्रम के अनुसार अठ्ठाइस बताए । यह परम पवित्र नर्मदा चरित्र बड़े पापों का विनाशक है । पुन्य दायक यह श्री नर्मदा जी का माहात्म्य मुनि मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया परम पवित्र आख्यान है ।।२८/३१।। सूत ने कहा--इस प्रकार मैं श्री नर्मदा तटवर्ती तीर्थों का क्रम संक्षेप से कहा । जिस प्रकार मार्कण्डेय मुनिने युधिष्ठिर से संक्षेप से कहा है उन तीर्थों में अनेकों अवान्तर तीर्थ भी छिपे हुये है । जहाँ जितने वे अवान्तर तीर्थ है निष्पाप महर्षिगण तुम उन्हें मुझसे सुनो । ओंकार तीर्थ के चारों ओर और अमरकण्टक पर्वत से दो कोस के बीच में सब दिशाओं में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ माने गये हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! गुप्त और प्रकट तीर्थों की संख्या से कपिला नदी के प्रसंग में करोड़ तीर्थ पृथक रूप में स्थित है ।।३२/३५।। अशोकवनिका तीर्थ लाख तीर्थों से युक्त है । श्रेष्ठ मुनियों ! अंगारगर्ता के संगम में सौ तीर्थ हैं । कुब्जासंगम में दश सहस्त्र तीर्थ है हिरण्यगर्भा संगम में सौ तीर्थ; विशोकासंगम में अड़सठ तीर्थ, वायुसंगम में हजार तीर्थ स्थित है ।। सरस्वती संगम में सौ तीर्थ शुक्ल में दो सौ तीर्थ, विष्णु तीर्थ में एक हजार माहिष्मती (मण्डला अथवा महेश्वर) में दस सहस्त्र तीर्थ ब्राह्मणों ! शूलभेद में एक लाख से अधिक तीर्थ स्थित है । मुनि ने देवग्राम में सहस्त्र तीर्थ स्थित बताये हैं ।।३६/४०।। लुंकेश्वर में कुछ अधिक सात सौ तीर्थ, मणिनदी के संगम में एक सौ आठ स्थित है । वैद्यनाथ में भी एक सौ आठ बताये ।।४१।। ब्राह्मणों ! इसी प्रकार कुम्भेश्वर में भी एक सौ आठ, श्री नर्मदा और ऊरि के संगम में एक लाख से अधिक स्थित है । उसमें श्री अधिक हो सकते हैं, ऐसा मार्कण्डेय जी का कथन है । व्यास द्वीप में अठ्ठासी हजार तीर्थ है ।।४२/४३।। करंजा संगम में दस दस सहस्त्र आठ तीर्थ है । एरण्डी संगम में एक सौ आठ तीर्थ हैं धूतपाप में अड़सठ और स्कन्द तीर्थ में सौ पुण्य-तीर्थ मुनि ने कहे है ।।४४/४५।। कोहनेश में अड़सठ तीर्थ स्थित हैं ।

कोरिलापुर में डेढ़ करोड़ तीर्थ स्थित हैं। रामकेश में कुछ अधिक सहस्त्र तीर्थ कहा है। अस्माहक में भी सहस्त्र तीर्थ कहा है ॥४६॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों शुक्ल में आठ लाख दो हजार तीर्थ हैं ऐसा पहिले श्री मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा है। कावेरी संगम को छोड़कर शेष नदियों के संगम में प्रत्येक में एक सौ आठ तीर्थ स्थित हैं ऐसा मुनि ने कहा है। ब्राह्मणों कावेरी के संगम में पाँच सौ तीर्थ स्थित हैं उनमें भी पर्व कालों में मुनि ने तीर्थों में विशेष फल बताया है ॥४८/५०॥ आचार्य पुराण पुरुष के आश्रित मोक्षतीर्थ को उत्तमा कहते हैं। भृगु के क्षेत्र में कुछ अधिक एक करोड़ स्थित है। ऋषि श्रेष्ठ भृगु सब देवों का आश्रय स्थान और सब तीर्थों का आश्रय भी कहा गया है सिद्धियों साधक और तीनों लोकों में प्रसिद्ध पूजित है। भार भूति तीर्थ में एक सो आठ स्थित है ॥५१/५३॥ अक्रूरेष्वर में एक सो पचास स्थित है। नर्मदा समुद्र संगमस्थ विमलेश्वर में तो मुनि ने कुछ अधिक एक लाख बताये हैं ॥५४॥ एक सो पच्चीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥१२५॥

एक सौ छब्बीसवां अध्याय

रेवाखंड पुस्तक दान आदि का वर्णन

सूत उवाच-- *इति वः कथितं विप्रा रेवामाहात्म्य मुत्तमम् ।*
यथोपदिष्ट पार्थय मार्कण्डेयेन वै पुरा ॥

सूत जी ने कहा--महर्षि मार्कण्डेय ने जैसे पहले श्री युधिष्ठिर को उपदेश दिया है ब्राह्मणों ! वह सब उत्तम श्री नर्मदा महिमा मैंने तुम सबको सुनायी। उसी के साथ वहाँ के तीर्थ उनमें भी विशिष्ट तीर्थ मैंने प्रधानता से संख्या और तीर्थ कर्म के अनुसार कहा है ॥१/२॥ यह नर्मदा की महिमा अत्यन्त पवित्र और अनुपम है। यह बहुत पापों की नाशक भी है। मुने के द्वारा कहा गया यह श्री नर्मदा का चरित्र और महिमा बहुत पुण्यदायक है। श्रेष्ठ मुनियों ! सात कल्पतक जीने वाले मृकण्ड के पुत्र बुद्धिमान् परम तत्त्व के उत्तम जानकार ब्राह्मण मार्कण्डेय जी ने सब तीर्थों की सेवा एवं पहिले सब

नदियों का भली-भाँति सेवन कर लेने के पश्चात् श्री नर्मदा को बहुत कल्पों तक स्मरण के योग्य और श्री शंकर के देह सम्बन्ध से उत्पन्न समझ कर उन्हीं शिव जी द्वारा मेकलकन्या के रूप में वर्णित अजर दैत्यों का विनाश करने वाली परम श्रेष्ठ देवी बड़े बैभव से सम्पन्न संसार की विनाशक और संसार की उपकारक गंगा भगवती नर्मदा को गये और उसके शरणागत हुए। उन भगवती में उत्तम प्रेम भक्ति करके वह भी अजर अमर बन गये ।।३/७।। सज्जनो ! नर्मदा के दोनों तट पर पद-पद पर साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ स्थित है । तीर्थों से चारों ओर हजार नदिया है, मुनीश्वरों ! उन सब ओर तीर्थ वाली हजारों नदियों को मैं श्री नर्मदा के तुल्य नहीं मानती ।।८/९। जो श्री शंकर के मुख से वासुदेव ने सुनकर ऋषियों से कहा था । ब्राह्मणों ! और जो तुमने मुझ से पूछा था । वह सब मैंने तुमसे कहा है । उसी प्रकार मृकन्ड पुत्र श्री मार्कन्डेय ने उत्तम तीर्थों वाली श्री नर्मदा का सम्पूर्ण रूप से अनुभव कर परम-पवित्र नर्मदा का पद-पद पर युधिष्ठिर के प्रति वर्णन किया ।।१०/११।। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! मैंने यह सब संक्षेप में तुमसे कहा है । श्री नर्मदा का चरित्र पुन्यप्रद और तीनों लोकों में दुर्लभ है । यदि पापनाशक नर्मदा के जल का सेवन होता है तो अन्य हजारों नदियों के जलों के सेवन से क्या प्रयोजन ।।१२/१३।। श्री नर्मदा के जल का सेवन करने वाला मनुष्य सनातन मुक्ति पाता है । मनुष्य जिस-जिस कामना से नर्मदा का श्रद्धा अश्रद्धा से सेवन करता है तीर्थ जाने वाला पुरुष जो जो चाहता है वह-वह नियत रूप से पाता है ।।१४/१५।। यह नर्मदा का जल ब्रह्मा है, विष्णु हैं साक्षात् परमतत्व शंकर हैं । यह जल निराकार परम शुद्ध एक मात्र ब्रह्म तत्व है । तीर्थ और उत्तम फल देने वाली नदिया तब तक ही गरजती है जब तक कलियुग में मनुष्यों के द्वारा सेवा से मनुष्यों को देवता बनाने वाली नर्मदा का स्मरण नहीं होता । निश्चय ही संसार के कल्याण के लिए शंकर जी के द्वारा अपने शरीर में नदी रूप धारिणी शक्ति यह नर्मदा अवतीर्ण की

गई है। यश-वन-क्षेत्र आदि पुन्य क्षेत्र तभी खूब गरजते हैं जब तक कलियुग में नर्मदा के नाम का कीर्तन नहीं किया जाता। तपस्या, व्रत, दान आदि की गुरुता श्रेष्ठता तभी तक ही गिनी जाती है जब तक मनुष्य शंकर से उत्पन्न नर्मदा नदी को नहीं पाते। जो पुरुष नर्मदा के उत्तर तट पर निवास करते है वे शंकर के अनुचर होते हैं और जो नर्मदा के दक्षिण तट पर निवास करते हैं वे विश्णु लोक को जाते हैं ॥१९/२१॥ वे देश बड़े ही श्रेष्ठ है जिन देशों में भगवान शंकर से उत्पन्न नरक का अन्त करने वाली नर्मदा का निरन्तर आश्रय लिया जाता है। वे पुरुष बड़े पुन्य आत्मा है वे पुनः शोक में नहीं पड़ते जो लोग शिवांगना श्री नर्मदा का पुण्य जल पीते हैं ॥२२/२३॥ ब्राह्मणों श्री नर्मदा के इस अनुपम पवित्र को जो सुनता और कहता है वह पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है। छः अंग पद क्रमों के साथ सब देवों के स्वाध्याय से सुनने से, पढ़ने से जो फल होता है उससे इसका आठ गुना फल होता है ॥२४/२५॥ यज्ञ करने वाला पुरुष वारह वर्ष पर्यन्त वैदिक यज्ञ कर जो फल पाता है एक बार श्री नर्मदा के चरित्र सुनने मात्र से वह फल मिलता हैं। समुद्र आदि में सब तीर्थो में स्नान से मनुष्य को जो फल मिलता है, श्री नर्मदा के चरित्र को एक बार सुनकर मनुष्य वह फल पाता हैं। सब शास्त्रों में अति श्रेष्ठ सब वर्णों का हितकर धर्मयुक्त यह उपाख्यान लिखित रूप में जिस देश व मण्डल व नगर व ग्राम के मध्य में अथवा जिसके घर में लिखित रूप में स्थित है, वह ब्रह्मा वह साक्षात शिव और देव विष्णु है। देव सेवि ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का यह मार्ग है। शास्त्र गुरुओं का भी गुरु सिद्धि का उत्कृष्ट कारण है ॥२६/३०॥ देव के द्वारा कहे गये इस पुराण को जो पुरुष नित्य सुनता है ब्राह्मण देवज्ञ होता हैं, क्षत्रिय विजयी होता है। वैश्यधन सम्पन्न और शूद्र धार्मिक हो जाता है ॥३०/३२॥ स्त्री इसको सुनकर सौभाग्य और लक्ष्मी 'सुख' स्वर्गवास और उत्तम कुल में जन्म पाती है। प्रेम को भंग करने वाला अर्थात् रस

का भेदन करने वाला कृतघ्न, स्वामी द्रोही, मित्र से बञ्चना करने वाला, गाय की हत्या करने वाला, विष देने वाला, कन्या का विक्रय करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, मदिरा पीने वाला, सोने आदि की चोरी करने वाला, गुरु पत्नी गामी भी जो पुरुष वर्ष भर नर्मदा के चरित्र को सुनते हुए उनका सेवन करता है वह पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं । भोजन में भेद करने वाला केवल अपने लिए भोजन बनाने वाला (वृथापाकी) देव ब्राह्मण का निन्दक, गुरु-माता-पिता की निन्दा करनें वाला और जो साधु पुरुषों का राजा का निन्दक है वह भी इसे सुनकर पापों से मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं हैं ।।३७।। फिर जो निष्पाप और शुद्ध अन्तःकरण होकर नित्य ही शास्त्र को सुनते हैं, इस नर्मदा पुराण (शास्त्र) का वस्त्र आभूषणों से पूजन करते है, पुष्प फलों से चन्दन आदि से विविध भोजन सामग्रियों से इस शास्त्र और इसके वाचक के पूजन होने पर देवगुरु भी इस लोक परलोक में पूजित हो जाते हैं । इसमें विचार नहीं करना चाहिए अतः मनुष्य सब प्रयत्नों से चन्दन वस्त्र भूषण आदि से बड़ी भक्ति आदि से पुराण वाचक और इस पुराने शास्त्र का पूजन करे । वेद पाठ और नियम से किये गये अग्नि होमों से जो पुन्य होता है ।।३८/४१।। मनुष्य शुभ नर्मदा चरित्र के सुनने से वही फल पाता है । कुरुक्षेत्र में प्रभाव और पुष्कर में जो पुन्य होता है रुद्रावर्त और गया में विशेषतः वाराणसी में गंगा द्वारा और प्रयाग में गंगासागर संगम में ऐसे ही अन्य विशिष्ट तीर्थों में मनुष्य को जो पुण्य मिलता है वह सम्पूर्ण फल मनुष्य नर्मदा चरित्र को सुनकर पाता है । जो मनुष्य भक्ति से परम मंगल श्री नर्मदा चरित्र (पुराण) आदि मध्य और अंत में सुनता है उसके विशिष्ट फल को तुम सुनो ।।४२/४५।। वह पुरुष शिवलोक को पाकर देव कन्याओं से युक्त हो शिव का अनुचर होकर श्रीशंकर के साथ सुखी रहता हैं । श्रेष्ठ ऋषिगण ! सब कथाओं में श्रेष्ठ यह पुन्य धर्माख्यान चारों वर्णों में जिसके घर में पढ़ा जाता है मैं उसके घर को धन्य

मानता हूँ। उस गृहस्थ के कुल को धन्य मानता हूँ। जो पुरुष इस नर्मदा चरित्र (पुराण) की पुस्तक का विधिपूर्वक पूजन करता है उसके द्वारा श्री नर्मदा और भगवान श्रीशंकर का विधिपूर्वक पूजन सम्पन्न हो चुका। इसी प्रकार वाचक का पूजन होने पर देव और ऋषियों का पूजन सम्पन्न हो गया ॥४६/४९॥ इसी प्रकार जो मनुष्य सब शास्त्रों में श्रेष्ठ इस उत्तम सम्पूर्ण नर्मदा चरित्र (पुराण) को सुन्दर लिखाकर ब्राह्मण को देता हैं नर्मदा के सब तीर्थों में स्नान दान से जो फल होता है वह मनुष्य उस फल को पाता है। इसमें संदेह नहीं है। भगवान शंकर के द्वारा कहा गया यह पुराण बड़े पुन्य फल को देने वाला है। स्वर्ग देने वाला, पुत्र देने वाला, धन और यश को देने वाला तथा मरने पर कीर्ति का बढ़ाने वाला हैं। धर्म मार्ग में लगाने वाला, आयु का बढ़ाने वाला अनुपम दुःख और दुःस्वप्न का विनाशक यह पुराण पढ़ने सुनने वाले पुरुष की सब कामनाओं एवं सब अर्थ सिद्धियों को देने वाला है। जिस पुरुष के द्वारा दिये गये इस पुन्य पुराण को ब्राह्मण बाँचते है उस पुरुष को पुराण के अक्षरों की संख्या के समान वर्ष पर्यन्त शिवलोक में स्थिति होती है। इस पुराण की ७ या ११ प्रतियां योग्य ब्राह्मणों को दान देने से अमोघ मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम श्रेष्ठ श्री सूतजी के द्वारा शंकरजी के श्रीमुख से प्राप्तकर वायुदेव के द्वारा प्रथम जो वर्णित हुआ था। त्रिलोकी के लोगों के समक्ष यह नर्मदा का चरित्र कहा गया ॥५०/५५॥ एक सो छब्बीस अध्याय पूरा हुआ ॥१२६॥

एक सौ सत्ताईसवां अध्याय

श्री सत्यनारायण ब्राम्हण सँवाद

ऋषय ऊचुः-- *व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम् ।*
सर्वं च्छ्रोतुमिच्छामि कथस्व महामुने ॥

ऋषियों ने कहा--मनुष्य व्रत और तप से जो फल पाता है महामुने ! मैं वह सब सुनना चाहता हूँ। तुम मुझसे कहो ॥१/४॥ श्री सूत जी ने कहा-

श्री नारद के द्वारा ऐसा ही पूछे जाने पर श्रीपति भगवान विष्णु ने जो देवर्षि से कहा था वह तुम सावधान होकर सुनो । एक समय दूसरों पर दया करने की इच्छा से योगी नारद अनेक लोकों में घूमते हुए मृत्युलोक में आ पहुँचे । वहाँ उसने देखा कि सभी लोग नाना दुःखों से विविध योंनियों में उत्पन्न होकर पाप कर्मो से कष्ट भोग रहे है ।।२/४।। निश्चय ही किसी उपाय से इनके दुःख का नाश हो, यह मन से विचारकर तब वह विष्णु लोक पहुँचे । वहाँ शुक्ल वर्णवाले चार भुजाओं से युक्त शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से सुशोभित श्रीनारायण को देखकर उन देवेश्वर की स्तुति करने लगे ।।५/६।। नारद ने कहा--वाणी और मन से परे दिव्य रूपवाले अनन्त शक्ति सम्पन्न आदि, मध्य, अन्त से रहित गुणों से अतीत होकर भी सर्वगुण-सम्पन्न होने से गुणात्मारूप तुम्हें नमस्कार हैं । सबके आदि तथा भक्तों का दुःख नष्ट करने वाले तुम्हें मेरा नमन है । इस स्तोत्र को सुनकर तब भगवान विष्णु नारद से बोले । श्रीभगवान ने कहा--प्रिय महाभाग्यशालिन 'नारद' तुम किसलिये आये तुम्हारे मन में क्या है वह तुम कहो । फिर मैं तुमसे सब कहूँ । नारद जी बोले--भगवन् ! मनुष्य लोक में प्रायः सभी लोग विविध दुःखों से युक्त नाना योंनियों में उत्पन्न होकर पाप कर्मों से दुःखी हो रहे है ।।७/१०।। नाथ ! छोटे उपाय से उनका सब दुःख शान्त हो जाय वही आप कहो मैं वह सब उपाय सुनना चाहता हूँ यदि तुम्हारी मुझपर कृपा हो तो मुझे वह उपाय बताइये । भगवान ने कहा ! वत्स ! तुमने संसार पर दया की कामना से अच्छा पूछा । जिसका पालनकर मनुष्य मोह से छूट जाता है वह उपाय तुम सुनो । मैं तुमसे कहता हूँ । स्वर्ग और पृथिवी में बहुत दुर्लभ बहुत पुण्य का देने वाला व्रत है । ब्राह्मण तुम्हारे स्नेह से मैं अब उसको प्रकाशित कर रहा हूँ । मनुष्य भली भाँति विधि पूर्वक भगवन श्री सत्यनारायण के इस कहे जा रहे व्रत का पालन कर इस लोक में उत्तम सुख भोगकर परलोक में मोक्ष पाता है ।।११/१४।। श्री भगवान के उस वचन को सुनकर श्री नारदजी पुनः बोले--इस व्रत का फल है क्या विधान

है तथा इस व्रत को किसने किया है वह सब विस्तार से कहो और यह व्रत कब करना चाहिए । श्री भगवान ने कहा यह व्रत दुःख शोक को शान्त करने वाला धन धान्य बढ़ाने वाला सौभाग्य और सन्तान दायक सर्वत्र विजय देने वाला है मनुष्य जिस किसी दिन भी भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर सन्तुष्ट हुआ सायंकाल श्री सत्यनारायण देव का पूजन करे ।।१५/१७।। बन्धु बान्धवों और ब्राह्मणों के साथ धर्म-परायण होकर भक्ति पूर्वक नैवेद्य और उत्तम भक्षण के योग्य प्रसाद दे । केला, घृत, दुग्ध अथवा खीर, गेहूँ का आटा (पंजीरी) उसके अभाव में चावल का चूर्ण, शक्कर और गुड़ आदि सब भक्षणीय प्रसाद को एकत्रित कर श्री भगवान को निवेदन करे । अन्य पुरुषों के और बन्धु बान्धवों के साथ इस कथा को सुनकर ब्राह्मणों को दक्षिणा दे । फिर बन्धुओं के साथ ब्राह्मणों को प्रसाद आदि अर्पित कर स्वयं भक्ति पूर्वक प्रसाद का भक्षण करे और नृत्य, गीत आदि करे । तदनन्तर भगवान की स्तुति कर श्री सत्यनारायण का स्मरण करते हुए घर जाये अथवा घरके कार्यों में प्रवृत हो (इससे यह प्रतीत होता है यह कथा प्रायः भगवान के मंदिर में व घर में ही किसी स्थिति देव स्थानों में या पवित्र देव नदी तट पर सुननी चाहिए) ऐसा करने से निश्चय ही मनुष्यों की कामना सिद्ध होती हैं ।।१८/२२।। विशेष रूप में कलियुग में पृथिवी में इससे सरल कोई उपाय नहीं है । हे ब्राह्मण ! मैं इस कथाको कहूँगा । जिसको सुनकर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है । सुन्दर काशीपुरी में कोई निर्धन ब्राह्मण था, वह भूख-प्यास से व्याकुल होकर सदा पृथिवी में विचरता रहता था । ब्राह्मणों के प्रिय अथवा ब्राह्मणों पर प्रेम रखने वाले भगवान से दुखित ब्राह्मण के रूप में उसके समीप जाकर आदर से उस ब्राह्मण से पूंछा । ब्राह्मण तुम दुखित होकर सम्पूर्ण पृथिवी में क्यों घूम रहे हो ? वह सब मैं सुनना चाहता हूँ । यदि आपको कष्ट हो तो मुझसे कहो ।।२३/२६।। ब्राह्मण ने कहा मैं बड़ा निर्धन ब्राह्मण हूँ मेरा भ्रमण भिक्षा के लिए हैं तुम यदि कोई उपाय जानते

हो तो प्रभो कृपाकर मुझसे कहो। वृद्ध ब्राह्मण बोले श्री सत्यनारायण विष्णु सबके चाहे गये अर्थ रूपी फल के देने वाले है। श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम उनका व्रत करो जिस व्रत का पालनकर मनुष्य सब दुखों से मुक्त हो जाता है। श्री भगवान ने कहा इस व्रत का विधान ब्राह्मण से यत्न पूर्वक कहकर वृद्ध ब्राह्मण वेषधारी श्री सत्यनारायण देव वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो गये ।।२७/२९।। तब उस ब्राह्मण ने मन में भगवान नारायण का चिन्तन किया और श्री सत्यनारायण के द्वारा कहे गये व्रत को समझ कर वह भगवान के मन्दिर में गया फिर मैं उस व्रत का अनुष्ठान करूँगा ऐसा मन में चिन्तन किया। ऐसा निश्चय कर उस ब्राह्मण को रात्रि में निद्रा नहीं आयी ।।३०/३१।। तदनन्तर प्रातः उठकर आयी श्री सत्यनारायण का व्रत करूँगा ऐसा संकल्प कर वह ब्राह्मण भिक्षा के लिए निकल पड़ा। उस दिन ब्राह्मण ने अपने बन्धुओं के साथ श्री सत्यदेव के व्रत का अनुष्ठान किया। तब श्री सत्यनारायण की कृपा से इस सत्यदेव के व्रत के प्रभाव से वह श्रेष्ठ ब्राह्मण सब दुःखों से रहित और सब सम्पत्तियों से सम्पन्न हुआ। उस समय से लेकर उसने प्रत्येक मास में व्रत किया ।।३२।। इस प्रकार वह श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीसत्यनारायण से इस व्रत को जानकर सब पापों से छूटकर दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त हुआ। हे ब्राह्मण ! यह व्रत जब पृथिवी में फैलेगा जहाँ-तहाँ प्रसिद्ध होगा तभी मनुष्यों के सब दुःख नष्ट हो जायेगे। सूतजी ने कहा--इस प्रकार भगवान नारायण ने महात्मा नारद से कहा। ब्राह्मणो मैंने भी तुमसे वैसा ही कहा अब मैं तुम सब से क्या कहूँ ।।३३/३८।। एक सौ सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२७।।

एक सौ अठाईसवां अध्याय

ब्राह्मण लकड़हारा संवाद वर्णन

ऋषय ऊँचुः-- तस्माद्विप्राद् व्रतं केन पृथिव्यां चरितं मुने ।
सत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि श्रद्धाऽस्माकं प्रजायते ।।

ऋषियों ने कहा--मुने ! उस ब्राह्मण से सुनकर पृथिवी में किसने व्रत का अनुष्ठान किया वह सब सुनना चाहते हैं । हमें इस विषय में श्रद्धा है आप कहें ।।१।। सूतजी ने कहा--मुनिवृन्द उस ब्राह्मण से सुनकर जिसने पृथिवी में इसका पालन किया वह तुम सब सुनो । एक समय वह ब्राह्मण अपने वैभव के अनुसार बन्धु और स्वजनों के साथ व्रत कर रहे थे । इसी बीच में क़ाष्ठ केतु अथवा काष्ठ क्रेता (लकड़ी बेचने वाला) वहाँ आया ।।२/३।। तृष्णा से पीड़ित वह बाहर बेचने की लकड़ियाँ रखकर ब्राह्मण के घर गया । ब्राह्मण को व्रत में देखकर उसको प्रणाम कर कहा--तुम यह क्या कर रहे हो । इसके करने से मनुष्य क्या फल पाता है । भगवन् ! यह विस्तार से मुझे बताओ ।।४/५।। ब्राह्मण ने कहा--भगवान सत्यनारायण का यह व्रत सब मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला हैं । यह व्रत दुःख दरिद्रता को शान्त करने वाला और पुत्र पौत्रो को बढ़ाने वाला है । उस व्रत के प्रभाव से ही यह सब मेरा धन धान्य आदि है । तब उस ब्राह्मण के वचन सुनकर काष्ठों को बेचने वाला बहुत प्रसन्न हुआ ।।६/७।। वह जल पीकर और प्रसाद भक्षण कर स्थिर मनवाला होकर श्री सत्यनारायण देव का चिन्तन करते हुए अपने नगर को गया । आज नगर में मैं लकड़िया बेचकर जो धन पाऊँगा, उस धन से ही मैं श्री सत्यदेव का उत्तम व्रत और पूजन करूँगा ।।८/९।। ऐसा मन में विचार कर शिर पर लकड़ियाँ रख कर एक सुन्दर नगर में गया जहाँ धनिकों का आवास था । सौभाग्यवश उसने उस दिन काष्ठ का मूल्य-दो गुना प्राप्त किया । तब तो प्रसन्न चित्त होकर वह खूब पके केला, शर्करा, धृत, दुग्ध और गेहूँ का आटा इन सब प्रसाद की प्रत्येक वस्तुओं का क्रय करके अपने नगर गया ।।१०/१२।। फिर अपने बन्धुओं को बुलाकर उसने विधि पूर्वक श्री सत्यदेव का व्रत पूजन किया । उस व्रत के प्रभाव से वह धन-पुत्र आदि से युक्त हुआ । इस लोक में वह सुख भोगकर अन्त में श्री सत्यदेव के सत्यलोक में गया । श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! फिर मैं श्री सत्यदेव

का अन्य माहात्म्य कहूँगा ।।१३/१४।। एक सौ अठाईसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२८।।

एक सौ उन्तीसवां अध्याय

साधु वैश्य के मोक्ष का वर्णन

सूत उवाच-- आसीदुल्कामुखो नाम नृपतिर्बलिनां वरः ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी ययौ देवालयम्प्रति ।।

सूत जी ने कहा--बड़े व्रतशाली उल्कामुख नामक एक राजा जो इन्द्रियों को वश में करने वाले तथा सत्यवादी थे वह प्रति दिन भगवान के दर्शन के लिए देवमन्दिर जाते थे । बुद्धिमान् राजा ने प्रति दिन ब्राह्मणों को धन देकर सन्तुष्ट किया ।।१/२।। मुने ! कमल के समान मुखवाला पतिव्रता परम सुन्दरी उस राजा की पत्नी भद्रशीला ने पवित्र नदी के तट पर श्री सत्यनारायण देवका पूजन व्रत किया । इसी समय वहाँ साधु नामक वैश्य आया । व्यापार के लिए विविध रत्न आदि द्रव्यों से भरी नाव को नदी के तटपर खड़ा कर वहाँ पहुँचे जहाँ वह व्रत पूजन हो रहा था । वहाँ हो रहे उत्तम व्रत पूजन को देखकर साधु ने पूछा । साधु वैश्य ने कहा-राजन् ! भक्ति युक्त चित्त से तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम यह सब मुझसे प्रकाशित करो । इस समय मैं यह सुनना चाहता हूँ ।।३/६।। राजा ने कहा-- साधु वैश्य ! मैं सम्मान, धन, वैभव आदि की प्राप्ति के लिए अपने बन्धु बान्धवों के साथ अनुपम तेजस्वी अनन्त शक्ति श्रीविष्णु का व्रत पूजन कर रहा हूँ । तब उसने प्रणाम कर राजा से आदर पूर्वक यह वचन कहा--राजन् ! इसको अंग सहित मुझसे कहिये । मैं यह व्रत करूँगा । मेरे भी कोई सन्तान नहीं है । इस व्रत से निश्चय ही मेरे सन्तान होगी । विधि समझकर वाणिज्य व्यापार से तब वह लौटकर सानन्द घर आया ।।७/९।। भगवत्कृपा से कुछ दिनों में उसकी पतिव्रता पत्नी गर्भवती होने के कारण वह आनन्दित चित्तवाली होकर धर्म परायण हुई । उसके अनन्तर गर्भ पूर्ण होने पर परम सुन्दरी

पुत्री उत्पन्न हुई वह कन्या शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिन-दिन बढ़ने लगी ।।१०/११।। वैश्य साधु ने कन्या के जातकर्म आदि संस्कार कर उसका कलावती नामकरण किया ।।१२।। तब साधु की पत्नी लीलावती ने अपने स्वामी साधु से कहा पहले प्रतिज्ञा किये गये व्रत का अनुष्ठान तुम क्यों नहीं करते ? साधु ने कहा प्रिये इसके विवाह के समय मैं यह व्रत करूँगा । इस प्रकार अपनी पत्नी को आश्वासन देकर वह व्यापार के लिए फिर निकल पड़ा ।।१३/१४।। तब पिता के घर में कन्या कलावती क्रमशः बढ़ती गयी । तब कन्या को विवाह के योग्य देखकर नगर में बन्धुओं के साथ मन्त्रणा कर धर्मज्ञ साधु ने कन्या के विवाह के लिए श्रेष्ठ वर विचार करते हुए शीघ्र ही योग्य दूत को भेजा । उससे आज्ञा पाकर वह दूत 'सुवर्णपुर' गया । वह वहाँ से एक श्रेष्ठ वैश्य पुत्र को देखकर बन्धु बान्धवों के साथ सन्तुष्ट चित्त से साधु ने उस वैश्य पुत्र को विधि पूर्वक अपनी कन्या दे दी । तब वह साधु वैश्य इस अपनी कन्या के विवाह के समय में भी अपने अभाग्य वश इस उत्तम प्रतिज्ञा किये हुए व्रत को भूल गया उससे भगवान सत्यदेव उस पर अप्रसन्न हो गये ।।१५/१९।। उसके कुछ समय पश्चात् वैश्य धर्म-वाणिज्य व्यापार में चतुर वह साधु वैश्य अपने जामाता के साथ शीघ्र ही व्यापार के लिए चल पड़ा । समुद्र के समीप राजा चन्द्रकेतु के स्मरणीय रत्नसार पुर में जाकर पुरी को दिखाता श्रीमान् अपने जामाता के साथ वह साधु व्यापार करने लगा । इसी बीच में प्रभु जी सत्यनारायण ने उस साधु को भ्रष्ट प्रतिज्ञा वाला देखकर उसे यह शाप दे डाला कि आज से लेकर इस साधु को बड़ा दुःख होगा ।।२०/२३।। संयोगवश उसी दिन एक चोर राजा का धन चुराकर पीछे देखते हुए उसी मार्ग से गया । पीछे दौड़ते हुए दूतों को देखकर भयग्रस्त-चित्त से वह वहाँ ही धन रखकर शीघ्र ही दूर जाकर छिप गया । तब दूत वहाँ पहुंचे जहाँ वह साधु वैश्य था । दूतों ने वहाँ राजा के धन को देखकर उन दोनों वैश्यों साधु वैश्य जामाता को बाँधकर

हर्षित होकर दौड़ते हुए राजा के पास जाकर बोले स्वामिन् ! दो लाये गये चोरों को देखकर कार्य की आज्ञा दो । तब राजा से आज्ञा पाकर दूतों ने शीघ्र ही उन दोनों को दृढ़ता से बाँधकर बिना विचार किये ही बड़े किले के कारागार में डाल दिया । श्री सत्यनारायण जी की माया से किसी ने भी उनका वचन न सुना । इससे उनका जो धन था उसे भी राजा चन्द्रकेतु ने ले लिया । भगवान सत्यनारायण के शाप से उनके घर में स्त्री भी दुखित हुई ।।२४/२९।। घर में जो धन सुरक्षित था उसे भी सब चोरों ने चुरा लिया । वह लीलावती मानसिक पीड़ा और शारीरिक रोगों से आक्रान्त भूख से पीड़ित होकर अन्न की चिन्ता में दुखी घर-घर घूमने लगी । उस समय बड़े सुख से पली हुई कलावती कन्या भी प्रतिदिन भिक्षा के लिए घूमने लगी । एक समय भूख से पीड़ित उस कलावती ने अपने घर से एक ब्राह्मण के घर जाकर वहाँ भी सत्य नारायण के व्रत पूजनादि को देखा ।।३०/३२।। वहाँ बैठकर कथा को सुनकर मनचाहे वर को मांगकर प्रसाद ग्रहण कर रात्रि में घर गयी । तब घर पहुंचने पर उस कलावती को लीलावती ने बहुत डांटा । उसने कहा बेटी ! तुम रात्रि में इतने समय तक कहाँ रही तुम्हारे मन में क्या है ।।३३/३४।। कलावती ने माता से कहा--मातः ! ब्राह्मण के घर में इष्ट सिद्धि को देने वाला व्रत मैंने देखा है । कन्या के उस वचन को सुनकर साधु वैश्य की पत्नी लीलावती अपनी पुत्री कलावती के साथ श्री सत्यनारायण का व्रत करने को तत्पर हुई मेरे पति और जमाता शीघ्र ही मेरे घर आये, ऐसा निश्चय कर उस साध्वी ने स्वजनों और बन्धुओं के साथ व्रत को प्रारम्भ किया ।।३५/३६।। मेरे पति और जामाता शीघ्र ही घर आ जाये । मैं श्री सत्यदेव से ऐसा वर बारम्बार मांगती हूँ । भगवान तुम मेरे पति और जामाता के अपराध को क्षमा करने योग्य हो । उस लीलावती के व्रतपालन से, आराधना से वह श्री सत्यनारायण स्वामी प्रसन्न हो गये । उसने उत्तम राजा चन्द्रकेतु को स्वप्न दिखाया कि हे श्रेष्ठ राजन् !

तुम बन्दी बनाये गये वैश्यों को प्रातःकाल छोड़ दो और लिए हुए धन को दोगुना कर उसे दो। ऐसा न करने पर राज्य धन पुत्र के साथ तुम्हें मैं नष्ट कर दूँगा स्वप्न में भगवान सत्यनारायण ने ऐसा राजा से भाषण कर वे प्रभु वहाँ ही ध्यानागम्य अर्थात् अन्तर्धान हो गये ॥३७/४०॥ तदनन्तर प्रातःकाल राजा चन्द्रकेतु अपने जनों के साथ सभा के मध्य में बैठकर अपने दूतों से बोले। बन्धन में डाले गये वैश्य पुत्र दोनों महाजनों को छोड़ दो। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर महाजनों को बन्दी गृह से छुड़ाकर राजा के सामने लाकर खड़ा किया। नम्र होकर वे दूत बोले। बेड़ी के बन्धन से छूटे हुए दोनों वैश्य पुत्रों को हम ले आये हैं ॥४१/४३॥ तव दोनों महाजन श्रेष्ठ राजा चन्द्रकेतु को प्रणाम कर और पूर्व वृत्तान्त का स्मरण कर आश्चर्य से और भय से व्याकुल हो गये। दोनों वैश्य पुत्रों को देखकर राजा आदर पूर्वक यह वचन बोला। तुमको देववश यह बड़ा कष्ट प्राप्त हुआ है। अब तुमको वह भय नहीं है। अब तुम अपने को मुक्त जानकर क्षौर कर्म कराओ ॥४४/४६॥ तदनन्तर श्रीमान् श्रेष्ठ राजा के दोनों वैश्य पुत्रों को सुवर्ण निर्मित रत्न जटित आभूषणों से अलंकृत कर मधुर वचनों से परम सन्तुष्ट किया और पहले लाये गये द्रव्य को द्विगुणित कर उन्हें दिया फिर राजा ने उन दोनों से कहा--साधु वैश्य ! तुम अपने घर जाओ। तब साधु ने राजा को प्रणाम कर कहा राजन् ! तुम्हारी कृपा से हमारा गमन निर्विध्न होगा ॥४७/४८॥ (यहाँ प्रचलित पुस्तकों के अनुसार चतुर्थ अध्याय पूरा हुआ।) तब यात्रा करने वाले साधु ने ब्राह्मणों को धन देकर सुप्रसन्न होकर मंगलाचरण पूर्वक यात्रा के द्वारा नगर गमन किया। नाव के द्वारा कुछ दूर साधू के चले जाने पर भगवान श्री सत्यनारायण ने यह जानने की इच्छा की कि साधु वैश्य ! तुम्हारी नाव में क्या है ॥४९/५०॥ तब मदान्ध वे दोनों महाजन तिरस्कार पूर्वक परिहास करते यह बोले। स्वामी जी ! तुम क्यों पूछ रहे हो क्या कुछ धन पाने की इच्छा करते हो ? मेरी नाव में तो

लता-पत्र आदि ही हैं। ऐसे निष्ठुर असत्य वचन सुनकर तुम्हारा वचन सत्य हो यह कहकर शीघ्र ही वह दण्डी उसके समीप से चले गये। तब दण्डी के चले जाने पर नित्य कर्म किये हुए साधु वैश्य नाव को उठी हुई देखकर बड़े विस्मय में पड़ गया। नाव में यह सब धन लता-पत्र आदि रूप से देखकर मूर्च्छित हुआ पृथिवी में गिर गया। फिर पुनः होश में आकर चिन्तित हो गया। वह जामाता अपने श्वसुर से यह बोला है ।।५१/५४।। जामाता ने कहा--तुम दण्डी के शाप से शोक क्यों करते हैं। वह दण्डी सब कार्य करने वा नष्ट करने या हरने में समर्थ है। अतः हम उसकी शरण में ही जाय तो हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा। साधु वैश्य जामाता के वचन सुनकर उन दण्डी के समीप गया। कुछ दूर में जाकर दण्डी स्वामी को देखकर भक्ति से प्रणाम कर साधु आदर पूर्वक बोला। भगवन्! तुम्हारे समीप जो मैंने असत्य भाषण किया है तुम मेरे उस अपराध को क्षमा करो। मैं दुष्ट चित्त वाला हूँ। देव! मैं तुम्हारी माया से मोहित हूँ। अतः नाथ! जो असत्य दूषित वचन मैंने आपसे से कहा है उसे तुम क्षमा करो ।।५५/५७।। क्योंकि साधु पुरुष बड़ी कृपावाले और क्षमारूपी सारवाले होते हैं। बारम्बार तब साधु शोक से व्याकुल होकर रोने लगा। विलाप करते हुए उस साधु को देखकर दण्डी जी ने उससे कहा। तुम मत रोओ। मेरे वचन को सुनो तुम मेरी पूजा से विमुख हो गये। दूषित बुद्धि वाले साधु वैश्य! तुमने मेरा तिरस्कार बारम्बार किया। बहुत दुःख उठाया है भगवान सत्यनारायण के वचन को सुनकर वह भगवान की स्तुति करने लगा। साधु ने कहा--ब्रह्मा आदि सभी देव तुम्हारी माया से मोहित हैं प्रभो! वे सभी तुम्हारे रूप और गुणों को नहीं जानते यह बड़ा आश्चर्य है ।।५८/६२।। मैं तुम्हारी माया से मोहित हूँ, तुम्हें कैसे जानू। तुम मुझ पर प्रसन्न होओ में अपने वैभव विस्तार के अनुसार तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम मुझे पुत्र और धन दो मुझ शरणागत की रक्षा करो ।।६३।। साधु वैश्य के श्रद्धा भक्ति से पूर्ण वचन सुनकर भगवान

सत्यनारायण सन्तुष्ट हो गये। श्री सत्यनारायण जी उन्हें इष्ट वर देकर वहीं पर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर उसने नाव पर चढ़कर रत्न आदि को पूर्ण देख कर निश्चय किया कि जो मुझे इष्ट फल पाना था वह श्री सत्यनारायण की कृपा से प्राप्त हो गया। ऐसा कहकर साधु ने अपने जनों के साथ विधि पूर्वक पूजा की दण्डी स्वामी ने बहुत प्रसन्न होकर प्रस्थान किया ॥६४/६६॥ फिर नाव को वेग से चलवाकर वह अपने देश को गया ॥६७॥ उसने समीप पहुंच कर जामाता से कहा वत्स ! तुम मेरी पुरी देखो। ऐसा कहकर उसने अपने धन के संरक्षक को दूत के रूप में घर को भेजा। साधु की आज्ञा पाकर वह नगर पहुंच कर साधु की पत्नी का दर्शन कर हाथ जोड़कर उसे प्रणाम कर इष्ट वचन बोला। नगर के निकट ही बन्धुओं के साथ-बहुत धन लिए हुए वैश्यवर साधु जामाता के साथ आ चुके हैं। दूत के मुख से यह वचन सुनकर बड़ी प्रसन्न होकर पतिव्रता लीलावती श्री सत्यनारायण जी का पूजन कर शीघ्र अपनी पुत्री कलावती से बोली-पुत्री मैं जाती हूँ तुम शीघ्र ही अपने पिता साधु से मिलने के लिए आओ ॥६८/७१॥ इस प्रकार माता के वचन को सुनकर व्रत पूजन शीघ्र ही समाप्त कर वह कलावती भी प्रसाद को छोड़कर पति को देखने की इच्छा से वहाँ चली गयी। प्रसाद के तिरस्कार से देव श्री सत्यनारायण ने अप्रसन्न होकर धन के साथ उसके पति और नाव को हरकर उस जल में लुप्त कर दिया-डुबा दिया। तब कन्या कलावती अपने वैश्य पति को न देखकर बड़े शोक से वहाँ रोती हुई भूमि पर गिर पड़ी। अपनी कन्या को उस अवस्था वाली देखकर और उसके पति और नाव को न देखकर बड़े भय से युक्त होकर साधु ने कहा। यह बड़ा ही आश्चर्य हो गया। वे नाव के चलाने वाले भी बड़ी चिन्ता में पड़ गये ॥७२/७६॥ तब पतिव्रता लीलावती भी उस दृश्य को देखकर व्याकुल होती हुई बड़े दुःख से विलाप करने लगी और पति से यह बोली। अभी वह नाव कैसे अदृश्य हो गई ? समझ में नहीं आता

किस देव के तिरस्कार के कारण हरण कराया गया है । श्री सत्यदेव की महिमा को कौन जान सकता है । यह कहकर वह वहाँ अपने लोगों के साथ विलाप करने लगी फिर लीलावती कन्या को गोद में लेकर रोने लगी । तब कन्या कलावती ने स्वामी के नष्ट होने से दुःखित होकर उसकी पादुकायें (खड़ाऊँ) लेकर अनुगमन करने का मन किया । कन्या की दशा देखकर अपनी स्त्री के साथ सज्जन धर्म के जानकार साधु वैश्य ने बड़े शोक से सन्तप्त होकर चिन्तन किया ।।७७/८१।। श्री सत्यदेव ने अपनी माया से मेरे जामाता का हरण कर दिया है । मैं अपने वैभव और शक्ति के अनुसार श्री सत्यदेव की पूजा करूँगा । इस प्रकार सबको बुलाकर उसने अपना मनोरथ कहकर बारम्बार श्री सत्यदेव को भूमि में मस्तक टेककर दण्डवत् प्रणाम किया । तदनन्तर श्री सत्यनारायण देव आकाश में स्थित होकर वैश्य साधु से यह वचन बोले । तुम्हारी पुत्री कलावती नैवेद्य का तिरस्कार कर अपने पति को देखने के लिए आई अतः इसका स्वामी अदृश्य हो गया यदि वह पुनः घर जाकर प्रसाद खाकर यहाँ आये तो साधु वैश्य ! वह पति सुख को प्राप्त करेगी । इसमें संशय नहीं ।।८२/८६।। तब उस कलावती ने आकाश मण्डल से प्राणों के देने वाले वचन को सुनकर शीघ्र ही घर जाकर प्रसाद भक्षण कर फिर वहाँ आकर लोगों के साथ पति और नाव को देखा । तब कलावती ने प्रसन्न होकर पिता से कहा पिताजी आइये चलें तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो ? फिर उस कन्या के वचन को सुनकर साधु वैश्य सन्तुष्ट हो गये ।।८७/८९।। भगवान श्री सत्यदेव का विधि पूर्वक पूजनकर बहुत धन लिये हुए बन्धुजनों के साथ वह अपने घर गये । प्रत्येक मास की पौर्णमासी और संक्रान्ति में उस साधु वैश्य ने विधि पूर्वक भगवान श्री सत्यनारायण का पूजन कर इस लोक में धन धान्य से सुखी होकर अन्त में श्री सत्यदेव के लोक को प्राप्त किया है ।।९०/९१।। एक सौ उन्तीसवां अध्याय पूरा हुआ ।।१२९ ।।

।। इति श्री नर्मदा पुराण समाप्त हुआ ।।

माँ नर्मदा की प्रार्थना

जै हो मात नर्मदा देवी, जै हो मात नर्मदा की ।
शम्भु सुता दुख हरता मां को नमन करे जो रेवा की ।।टेक।।
आदि शक्ति हो जगजननी माँ अमरकण्टक से हो व्यापी नमन० ।।१।।
घाट घाट पर पिता विराजे दर्शन कर जो सेवा की नमन० ।।२।।
तीन लोक में मां की लीला ब्रह्मा विष्णु गुण हैं गाती नमन० ।।३।।
काटत फन्द द्वन्दयंद सभी के दर्शन बेड़ा को खेती है गमन० ।।४।।
धूप दीप अरु ध्वजा नारियल रहे चढ़ावत माँ की नमन० ।।५।।
"भानू" तुम्हारे चरणों मनावै खिमरी ग्राम को है वासी नमन० ।।६।।

श्री नर्मदा जी की आरती

ॐ जय जगता नन्दी मैया जय जगता नन्दी हो रेवा जय जगता नन्दी ।
देवी नारद शारद तुम वरदायक अभिनव पदचंडी । हो मैयां अभिनव पदचंडी ।।
हो रेवा अभिनव पद चण्डी--सुर नर मुनिजन सेवत शारद पद वन्ति ।
हरि ॐ जय जगता नन्दी । देवी धुम्रक वाहन राजत वीणा बाजन्ति ।।
झुमकत ३ झुननन ३ रमती राजन्ति । हरि ॐ जय जगता नन्दी ।
देवी बाजत ताल मृदंग सुर मंडल रमती । हो मैया सुर मण्डल रमती ।।
जोड़ी तान ३ पूडडड ३ रम्मति सुरवन्ती । हरि ॐ जय जगता नन्दी ।
देवी सकल भुवन पर आप विराजत निसदिन आनन्दी हो मैयैं निसदिन आनन्दी ।
हो रेवा निसिदिन आनन्दी । गावत गंगा शंकर सेवत रेवा शंकर तुम भव मेटन्ती ।
हरि ॐ जय २ जगता नन्दी--रेवा कंचन थाल बिराजत अग्र कपूर बाती ।।
हो मैया अग्र कपूर की बाती । हो रेवा अग्र कपूर बाती मर्कण्ड में विराजत ।
अमर कंठ में सुहावत । रेवा जी की कोट जतन जोति । हरि ॐ जय जगता नन्दी ।
मैया जी की आरति निश दिन पढ़ गावे । हो रेवा निश दिन पढ़ गावे ।
हो मैया निश दिन पढ़ गावे । भजत शिवानन्द स्वामी श्री जपत हरिहर स्वामी ।
मन इच्छा फल पावे । हरि ॐ जय जगता नन्दी ।।हरि ॐ०।।

श्री नर्मदा जी का भजन

है तेरे आधार नर्मदे हैं तेरे आधार ॥
मूर्ति मनोहर मंगलकारी, नीलाम्बर है मगर सवारी ।
रूप अनुपम भवभय हारी, महिमा अमित अपार ॥१॥ नर्मदे है०
शम्भु लोक से धारा आई, मेकल पर्वत तीर्थ बनाई ।
अमरकण्ट जग कीरति छाई, होवे जय जयकार ॥२॥ नर्मदे है०
रेवा कुण्ड की शोभा न्यारी, जहँ स्नान करें नर नारी ।
छठा अनूठी निर्मल वारी, चहुंदिशि फाटक द्वार ॥३॥ नर्मदे है०
पूरब बगिया बनी सुहावन, मारकण्डेय आश्रम अति पावन ।
सोनभद्र धारा मन भावन, गिरती फोर पहार ॥४॥ नर्मदे है०
कपिल धार की है छवि न्यारी, दूध धार निर्जन भयकारी ।
बड़े-बड़े गिरि दुर्गम भारी, तिनको दिये विदार ॥५॥ नर्मदे है०
धार नर्मदा पश्चिम धाई, उत्तर सोनभद्र प्रभुताई ।
दोनों शिव गंगा पद पाई; दिया पातकिन तार ॥६॥ नर्मदे है०
यम से दूतन जाय पुकारे; पापी खोज-खोज हम हारे ।
थे वे सब रेवा के द्वारे, बन्द किया यम द्वार ॥७॥ नर्मदे है०
सुमरिन से मैया दुख हरती, दर्शन से पातक संहरती ।
मज्जन से मिलती है मुक्ति पाप होय सब छार ॥८॥ नर्मदे है०
शंकर तुम्हें महावर दीन्हें तुम कंकर शंकर सम कीन्हे ।
भक्तन को निज सेवक चीन्हे किया जगत उद्धार ॥९॥ नर्मदे हैं०
मातु नर्मदे तुम्हें मनाऊँ, तुम्हरी कृपा विमल मति पाऊँ ।
शिव सरिते तेरे गुण गाऊँ, करदे बेड़ा पार ॥१०॥ नर्मदे है०
रेवा पद्मपलाशदीर्घनयनां श्यामां सुषोणधरां
नासा मौक्तिक चारुहास-सुमुखीं रक्तांच रक्ताम्बराम् ।
तन्त्रीमंमेकलगतां करेण शनकैरुन्नादयन्तीं मुहुः
वन्दे मेकलकन्यकां शिवपरां सर्वांगभूषावृत्ताम् ॥१॥

इति श्री स्कन्द पुराणान्कर्गत रेवाखंडे श्री नर्मदा पुराण सम्पूर्ण हुआ

रहस्यमयी गुप्त विद्याओं की पुस्तकें V.P. द्वारा घर बैठे आज ही मंगावें
प्राचीन महाइन्द्रजाल
पृष्ठ सं० १५००
सैकड़ों तस्वीरें मजबूत जिल्द सहित
मूल्य १५१.०० रु०
चमत्कारी सिद्ध टोने टोटके
मजबूत जिल्द डिमाई साइज
मूल्य ६०.०० रु०
महाइन्द्र जाल
पृष्ठ सं० ८००
सैकड़ों तस्वीरों सहित मजबूत जिल्द
मूल्य ८०.०० रु०
हर प्रकार की पुस्तकें मंगाने का पता :--
पंकज प्रकाशन, सतघड़ा. मथुरा (उ०प्र०) © 401130
२५०० पुस्तकों का सूचीपत्र २.०० रु. के डाक टिकट भेजकर मंगावें ।